प्रकाशन कार्य को शीघ्र और सुचारु रूप से सम्पादन करने में पूर्ण सहयोग दिया है। अगर उनकी यह निरन्तर सहायता प्राप्त नहीं होती तो प्रकाशन इतना शीघ्र और इस रूप मे कदाचित् संभव नही होता अत. उनको भी धन्यवाद है।

जिस अभिलाषा से मै इस ग्रन्थ का प्रकाशन करवा रहा हूँ वह तभी सार्थक होगी जब कि विद्वत्-वर्ग इसको अपनाकर कुछ लाभ उठाएंगे।

प्रार्थी--

हस्तिमल्ल सुराणा

(पाली मारवाड़)
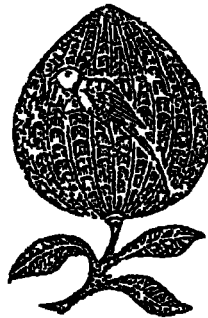
श्रीमान सेठ हस्तिमल्लजी 'सुराणा" पाली (मारवाड)

प्रकाशक का संक्षिप्त परिचय

मारवाड़ का अतिशय प्राचीन नगर "पाली" चिरकाल से व्यापार का केन्द्र रहा है। वहां 'फतेहचन्द मूलचन्द' नामका फर्म सौ वर्षसे भी अधिक समयसे आज तक अपनी व्यवसाय प्रामाणिकता और नीति कुशलता तथा धर्म प्रमुखता के साथ चलता आ रहा है। फर्म के आदि संस्थापक फतेहचन्दजी के देवलोक वासी होने पर उनके सुपुत्र मूलचन्दजी साहब फर्म के अधिष्ठाता बने और जीवन पर्यन्त व्यवसाय मे वृद्धि के साथ साथ धर्मवृद्धि मे भी जी खोलकर हाथ बंटाए। स० १९५१ मे मूलचन्दजी ने पाली निवासी वस्तीमलजी को गोद लिया तथा व्यवसाय का सारा काम उनके जिम्मे कर दिया। आपने भी देव गुरु धर्म मे निष्ठा रखते हुए व्यापार को आगे बढाया और पूर्वजो की परम्परा कायम रखने मे रत्ती भर भी कसर नहीं की। सं०,१९७५ मे वस्तीमलजी साहब ने श्रीमान् हस्तिमल्लजी साहब को जिनका जन्म स्थान "आउआ" है गोद लिया। श्रीमान् हस्तिमल्लजी साहब का स्वभाव बचपन से ही धार्मिक तथा बुद्धि व्यवसायात्मिका थी, फलतः उन्नति के साथ साथ ख्याति फैलने मे कोई विशेष देर न लगी। कार्य दक्षता और व्यवहार कुशलता एवं अदम्य उत्साह तथा अटूट लगनसे सफलता आपकी दासी बनी और देखते २ आप एक बड़ी धनराशि के अध्यक्ष बन गए। कपड़ा, कमीशन, ऊन और आढ़त के कामो मेआपकी गहरी दिलचस्पी है। योंतो आपके व्यवसाय मारवाड़के छोटेबड़े अधिकतर शहरो मे किसी न किसी रूप मे प्रसारित हैं ही लेकिन प्रमुख रूप मे पाली और बम्बई दो जगहो मे प्रचलित है जिसमे पाली फर्म का नाम 'फतेहचन्द मूलचन्द' तथा बम्बई का 'मूलचन्द वस्तीमल' ताम्बाकांटा हनुमान बिल्डिग ३ फ्लोर बम्बई है।

अधिकतर देखा जाता है कि लोग लक्ष्मीपात्र बनकर धर्म के प्रति विमुख हो जाते हैं किन्तु आप बराबर इस नियम के अपवाद रहे। जैसे जैसे व्यापार चमका वैसे वैसे धार्मिक लगन भी बढ़ती गयी और यही कारण है कि आप आज पाली के एक प्रमुख व्यापारी ही नहीं किन्तु समाज के कुशल एवं अग्रगण्य कार्यकर्ता भी हैं। पाली मे संभव ही ऐसा कोई पारमार्थिक काम होगा जिसमे आपने हाथ नहीं बंटाया हो। आत्म कल्याण के लिए व्रत, तप के साथ दान देने में भी आप कभी

प्रमाद नहीं करते और जब जहां जैसा आवश्यक समझते हैं मुक्त हस्त होकर दिया करते है। विभिन्न संस्था और समाज को बड़ी बडी रकमें देकर आपने अनुप्राणित किया है। वि० २००३ में पूज्य श्री हस्तिमल्लजी व पूज्य श्री गणेशीलालजी महाराज के पाली सम्मिलन में भी आपने बहुत बड़ा हाथ बंटाया था।

आपका हृदय स्वच्छ, मुखाकृति प्रसन्न तथा मस्तिष्क सूझ बूझ से भरा हुआ है। स्पष्टवादिता, मिलनसारिता तथा निरभिमानता एवं सहृदयता आपमे कूट कूट कर भरी हुई है। जो बात हृदय मे जंच जाय उसको पूरी करने मे शायद ही कसर करते हों।

परिवारके प्रति भी आपका प्रेम सराहणीय है और इसीकारणसे आपके परिवार तथा व्यवसायिक कार्यकर्त्ता आपमें पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। आप छोटे छोटे बच्चो के साथ भी अक्सर विनोद किया करते हैं जिसमे आपकी विनोद प्रियता की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। आप अपने छोटे भाई श्री केशरीमलजी साहब को दिल से चाहते है और हर छोटे बड़े कामो में उनकी सम्मति का सम्मान करते हैं। आपका यह भ्रातृ-प्रेम देखकर राम और भरत का स्मरण हो आता है।

धर्म और गुरु के प्रति आपकी आस्था असीम है। गत वर्ष आपने पूज्य गुरुदेव श्री हस्तिमल्लजी महाराज साहब का चातुर्मास पाली मे करवाया और उसको जिस सुन्दर ढंग से निभाया वह चिर स्मरणीय रहेगा। चातुर्मास की स्मृति को अमर बनानेके लिए प्रस्तुत पुस्तकका प्रकाशन किया है तथा भविष्यके लिए भी आश्वासन दिया है कि ऐसी कृतियों को जिनसे समाज का कल्याण संभव है लोकोपयोगी बनाने में यावज्जीवन दत्त चित्त रहूँगा।

आपका भविष्य महान है। समाज को आपसे बड़ी बड़ी आशाएं हैं। आपकी उम्र अभी केवल ४७ वर्ष की है अतः उस पर कुछ अधिक कहना संभव नहीं लेकिन आपके वर्तमान व्यवहार को देखकर कोई भी आशा कर सकता है कि समाज के सभी विकलागो का सुधार आपके कर-कमलो से होना निश्चित है जिस पर [illegible]की दिव्य दृष्टि एक बार पड जायगी। शासन देव आपकी धर्म निष्ठा, सद्विवेक और जीवन को दीर्घतम एवं सफल बनाए रहें।

इसी अमर कामना के संग—

शशिकान्त 'झा'

"आगमज्ञ मुनिराजों से आवश्यक निवेदन"

तीर्थङ्करों व अतिशयज्ञानिओं के अभाव में आज समस्त श्वेताम्बर जैन सङ्घ का आधार प्रमुख रूप से आगम ही है। हमारे मन्दपुण्य के कारण प्रथम तो आगमों का पूर्ण अश ही प्राप्त नहीं। फिर यथा तथा करके पूर्वाचार्यों की कृपा से जो भी अश हमे प्राप्त है उसमे लेखन व सशोधनों के प्रमाद ने बहुत से स्थलों मे बुद्धि भेद के कारण उत्पन्न कर दिए है। प्रश्न व्याकरण का काम करते समय हमे भी ऐसा ही अनुभव हुआ है। इतने पाठ भेद अन्यत्र कम मिलेंगे। इस कार्य में सस्कृत टीका के अलावा आगम मन्दिर से प्रकाशित प्रति का भी पाठनिर्णय मे हमने साहाय्य लिया जो आगम के विशिष्ट अभ्यासी स्वर्गीय सागरानन्द सूरि द्वारा संशोधित है। इसमे कई स्थल ऐसे हैं जिनकी सगति नहीं होती। विद्वानो के ज्ञानार्थ वैसे पाठों की तालिका प्रस्तुत करके आशा की जाती है कि आगमज्ञ विद्वान् इनका उचित समाधान करेंगे।

(१) प्रथम आस्रव सूत्र नं० २ मे हिंसा के नामों मे 'विणासो, शब्द प्रयुक्त है, प्रसंगानुसार इसका अर्थ नाश होने से यह सगत है, किन्तु आ० म० मे यहाँ 'विसाणो, पद छपा है, इसकी सगति कैसे होगी ?

(२) सूत्र ३ 'सरीसृप के प्रकरण मे 'वाउप्पिय, पाठ आता है जिसका सस्कृत नाम वायुप्रिय बन सकता है। आ० म० ने 'वाउपइय' ऐसा पाठ माना है। यह किस तरह ?

(३) सूत्र ७ द्वितीय आस्रव के मृषावादी प्रकरण मे—'भणंति अलियाहि संधि सन्निविट्ठा' के स्थान पर आ० म० की प्रति मे—'भणंति अलिया हिंसति सन्निविट्ठा, पद प्रयुक्त है, पहिले के वाक्य मे 'अलियाहि संधि सन्निविट्ठा, पद मृषावादीका विशेषण होने से सङ्गत है किंतु 'अलिया हिंसंति सन्निविट्ठा, पद मे 'हिंसति' क्रिया के साथ इसकी सगति कैसे होगी ?

(४) इसी प्रकरण में 'गामघातियाओ, के स्थान पर 'गामघातवाओ, आ० म० में प्रयुक्त हैं प्रसग से इसकी सगति कैसे होगी ?

(५) सूत्र १५ चतुर्थ आस्रव द्वार के युगलिक वर्णन प्रकरण मे 'रुइल निद्धनखा' ऐसा पाठ है। इसके लिये आ० मं० की प्रति मे 'रुइल .निद्धनक्खा' प्रयुक्त है, जो अशुद्ध ज्ञात होता है, क्योंकि 'नक्खा' मे द्वित्व विधान लाक्षणिक नहीं है।

(६) सूत्र १९ मे पञ्चम आस्रव के परिग्रह सचय प्रकरण मे 'अत्थ सत्थ इसत्थच्छरुप्पवाय,' के स्थान मे आ० म० ने 'अत्थ इसत्थच्छरुप्पवाय माना है, सो क्या 'सत्थ, पद छूटा है ? या इसी पाठ को सगत माना गया है ?

(७) सूत्र २२ प्रथम सवर द्वार के भावना प्रकरण मे 'मणेण पावएण' के स्थान पर आ० म० की प्रति मे 'मणेण अपावएण' प्रयुक्त है। इसी प्रकार तीसरी भावना मे 'वतीते पावियाते' के स्थान पर आ० म० की प्रति मे 'वतीते अपावियाते' पाठ प्रयुक्त है। सो किस तरह ?

(८) प्रथम सवर के भावना प्रकरण मे 'निक्खियव्व' पद आता है आगम मन्दिर मे इसके स्थान पर 'निक्खिवियव्व' प्रयुक्त है। पहला प्रयोग जहाँ स्वार्थ मे है वहा दूसरा प्रेरणार्थ मे प्रयुक्त है, प्रसग विधान से पहला प्रयोग तो उचित मालुम होता है, किन्तु दूसरे प्रयोग की सगति कैसे हो सकती है ? इसका आशय स्पष्ट करें।

(९) द्वितीय संवर द्वार के सत्य निरूपण प्रकरण में 'चारणगण समण सिद्ध विज्ज' पद आया है, जिसके स्थान पर आ० म० मे 'चारण गमण समण सिद्ध विज्ज, प्रयुक्त है। अर्थ दृष्टि से पहला पाठ ही सङ्गत है। टीकाकार ने भी ऐसा ही माना है। फिर आ० मं० मे 'चारण समण' के बीच मे 'गमण' पद का प्रयोग किस आशय से किया गया है ?

(१०) तृतीय संवरद्वार के चतुर्थ भावना प्रकरण में-"अदिन्ना दाण वय नियम वेरमण एव के स्थान पर आ० म० की प्रति में अदिन्ना दाण (विरमण वय नियमणं, वय नियम वेरमणं पा०) एवं" प्रयुक्त है। दोनों पाठो में अर्थ अस्पष्टसा रहता है। इनमें संगत और शुद्ध कौन पाठ है ?

(११) सूत्र २५ में चतुर्थ संवरद्वार-ब्रह्मचर्य उपमा निरूपण प्रकरण में-"हिमवंतो चेव ओसहीणं, के स्थान पर आ० मं० की प्रति मे-'हिमवंतो चेव नगाणं, बम्भी ओसहीणं ऐसा पाठ प्रयुक्त है। हस्त लिखित प्रतिमे हिमवान को औषधिओं के

स्थान मे उत्तम मानकर आठवी उपमा मे इसको माना है और रथिको मे सांग्रामिक महारथी को ३२ वी उपमा मे प्रयुक्त किया है। आ० मं० की प्रति के अनुसार हिमवान पर्वतो मे उत्तम और ब्राह्मी औषधिओ मे उत्तम मानकर पृथक् दो उपमाये दी गई है। इस प्रकार महारथिक की अन्तिम उपमा अधिक होती है। इसलिये इसकी संगति किस प्रकार करनी चाहिए ?

(१२) सूत्र स० २७ चतुर्थ संवरद्वार ब्रह्मचर्य निरूपण प्रकरणमे 'बेलंबक जाणिअ' के स्थान पर आ० म० की प्रति मे 'वेलंबकज्जाणिय, प्रयुक्त है। ह० लि० प्रति मे 'वेलबक, को स्वतन्त्र मानकर आगे 'यानिच, माना है, आ० म० की प्रति मे 'वेलंबक, को कार्य मानकर ' वेलंवक ज्जाणिय'' प्रयोग किया हो ऐसा संभव है।

(१३ सूत्र संख्या २६ के पञ्चम सवर द्वार 'अपरिग्रह व्रत निरूपण प्रकरण मे 'गय गवेलग च न जाण जुग्ग' आदि के स्थान पर आ० म० की प्रति मे 'गय गवेल कंबल जाण जुग्ग, प्रयुक्त है। प्रथम पाठ प्रसगानुसार उचित मालूम होता है, किन्तु आ० मं० की प्रति मे -'गवेलग कंबल, पाठ माना है। गवेलग और कबलको पृथक् मानना प्रसङ्ग से उचित नही दीखता, लेकिन 'गवेलगकं और बल इस प्रकार क को स्वार्थ मे मानकर 'बल, पदका सैन्य अर्थ मे प्रयोग माना जाय तो किसी तरह संगत हो सकता है।

(१४, सू० सं० २९ पञ्चम संवरद्वार के अपरिग्रह व्रत निरूपण प्रकरण मे 'वेढिम वर सरक* चुन्न' के स्थान पर आ० म० की प्रति मे 'वेढिम वसरक चुन्न, प्रयुक्त है। ह० लि० प्रति का प्रयोग जहा वेढिम वर सारक चूर्ण रूप खाद्य पदार्थ के अर्थ मे प्रयुक्त है, वहां आ० मं० की प्रति मे 'वसरक चूर्ण मानने पर अर्थ क्या माना जायगा।

(१५) सू० सं० २६ के पञ्चम संवर द्वार अपरिग्रह व्रत निरूपण प्रकरण मे 'बल विउल कक्खड पगाढ दुक्खे, के स्थान पर आ० मं० की प्रति मे 'बल विउल तिउल कक्खड पगाढ दुक्खे, प्रयुक्त है। यहां 'तिउल पदका प्रयोग किस अर्थ मे किया गया है ? विपुल के साथ अर्थ संगति कैसे ?

(१६) सू० सं० २६ के पञ्चम सवर द्वार के भावना प्रकरण मे 'एवमादिएसु फासेसु, के स्थान पर आ० म० की प्रति मे 'एवमादिएसु गिज्झियव्वं न फासेसु,

---

* ग–सारक,

प्रति परिचय

संशोधन में प्रयुक्त प्रतियां

श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र के संशोधन मे निम्न लिखित मुद्रित एवं हस्त लिखित प्रतियो का उपयोग किया गया है।

१—श्री वर्द्धमान जैन आगम मन्दिर पालीताणा द्वारा प्रकाशित एवं आगम मन्दिर के शिलालेखो की प्रतीक स्वरूप जो कि तपोगच्छीय श्री सागरानन्द सूरिजी द्वारा संशोधित है। यह लम्बे साईज पत्राकार मे मुद्रित पृष्ठ संख्या १९ है। 'त' श्रुति का विशेष प्रयोग है। अनवधानता एवं मुद्रण दोष से कई स्थलो पर पाठस्खलना दृष्टि गोचर होती है।

२—आगमोदय समिति, सूरत से प्रकाशित सटीक प्रति पत्राकार रूपमे मुद्रित। यह प्रति प्राय: शुद्ध है।

हस्त लिखित प्रतियां—

३—प्रश्न व्याकरण हस्त लिखित 'अ' प्रति इसमे १०४ पत्र है। सार्थ होने से प्रत्येक पत्रके दोनो बाजू ६-६ पक्तियां है। इसकी लम्बाई करीब १०ईंच और चौडाई प्राय: ४ ईंचकी है लिपि सुवाच्य होनेपर भी पूर्ण शुद्ध नहीं है। इसकी प्रशस्ति' संवत् १८४६ ना भाद्रपद मासे कृष्ण पक्षे सप्तमी भृगुवासरे। लिपिकृत सा जोइतादास मेवासा ज्ञाती पोरवाड वृध सारत।

४—प्रश्न व्याकरण हस्तलिखित 'ब' प्रति का लेखन दो हिस्सो मे समाप्त किया गया है। प्रथम हिस्से मे पांच आस्रवद्वार का वर्णन है। सार्थ होने से प्रत्येक पत्र मे दोनो बाजू ६-६ पक्तिया है। पत्रो की लम्पाई लगभग १० ईंच और चौडाई प्राय: ४ ईंच है। लिपि सुवाच्य है एव पाठ प्राय शुद्ध है। प्रथम हिस्से की पत्र सख्या ३५ और द्वितीय हिस्से की २८ है। द्वितीय हिस्से मे सवरद्वार का वर्णन है। इनका

लेखन कार्य मेडता नगर मे पूर्ण किया गया है। इसकी प्रशस्ति निम्न प्रकार से है--"संवत् १८५६ रा वर्षे मिति आसोज सुद द्वादसमी बुधवारे लिपि कृत्वा चतुर्मास रिष दुरग दासेण आत्माथे।" निम्न लिखित तीन प्राचीन हस्त लिखित प्रतिया श्री श्वे० स्था० जैन ग्रन्थ भण्डार, जयपुर से प्राप्त हुई। इन प्रतियों के संकेत क. ख. और ग प्रति रक्खे है। इन प्रतियो का उपयोग अन्य प्रतियो मे विशेप पाठ भेद दृष्टिगत होने पर किया गया है।

५--हस्त लिखित 'क' प्रति-इस प्रति मे अणुत्तरोववाइ के उपसहार-पाठ के बाद ,णमो अरिहंताणं' से सूत्रारम्भ किया गया है। यह मात्र मूल पाठ की प्रति है। पत्र सं० २१ है। प्रति पृष्ट मे प्राय १६-१७ पक्तिया है। लिपि सुवाच्य और कई जगह पडि मात्रा के प्रयोग वाली है। स्थान स्थान पर पद विभाग के चिन्ह किए हुए हैं। लेखक के प्रमाद की स्खलना के अलावे प्रति बहुत कुछ प्रमाण मे लेने योग्य है। इस प्रति का प्रशस्ति लेख निम्न प्रकार है 'सवत् १६०२ वर्षे कातिक सुदी पंचमी रविवासरे श्री प्यारु पुत्र तोतला दासेन लिखित गौडान्ये।"

६--हस्त लिखित 'ख' प्रति-यह प्रति सवत् १६२० की लिखी हुई है। इसमे मात्र मूल पाठ है। लिपि सुन्दर सुवाच्य एव पडि मात्रा की होते हुए भी प्राय शुद्ध है। कही कहीं अर्थ सम्वन्धी टिप्पणिया अङ्कित की हुई है। पत्र सख्या ५६ हैं। प्रति पृष्ट मे ११ पक्तिया है। लेखक की प्रशस्ति निम्न प्रकार है--"सवत १६२० वर्षे शाके १४८६ प्रवर्त्तमाने महा मागल्य प्रद। वैशाख सुदी ११ शनि दिने। महा ऋषि ऋषिराय ऋषि श्री नानजी प्रसादात् थावर मुनि पठनार्थं। वीरजी मुनिना लिखितं। श्री शुभ भवतु लेखक पाठकयो। कल्याण मस्तु श्री रस्तु॥

७--हस्त लिखित 'ग' प्रति--यह प्रति सटीक और सर्व श्रेष्ठ है। लिपि की सुन्दरता के साथ साथ पाठ प्राय शुद्ध है। त्रिपाठी होने से प्रति पृष्ठ मे मूल पाठ और ऊपर नीचे टीका लिखी गई है। पत्र सख्या ६२ है। प्रति पृष्ट में ४-६ और कही न्यूनाधिक मूल पाठ की पक्तिया है। पत्र की लम्बाई चौड़ाई प्राय. १०×४ इच है। अन्तिम पृष्ठ नही होने से प्रशस्ति-लेख नही मालूम किया जा सकता फिर भी प्रति का पडि मात्रा मे लेखन एवं कीट कवलित हाल देखते हुए लेखन-समय कम से कम ४००-५०० वर्ष पूर्व ज्ञात होता है।

मुद्रित प्रतियो मे एक ज्ञान विमल सूरि कृत टीका की सटीक प्रति है जो मुक्ति विमल जैन ग्रन्थमाला के ग्रन्थाङ्क ७ में अहमदावाद से प्रकाशित है। अभय

देव सूरि की टीका से इसमे विशेषता है कि प्रति शब्द देकर कुछ सहूलियत की गई है। मूल पाठ आगमोदय समिति के आधार पर है। केवल उसको छोटे छोटे विभाग कर के प्रकाशित किया है। इसके दो खण्ड है। प्रथम खण्ड मे पाच आस्रव और दूसरे भाग मे सवर इस प्रकार दो भागो मे छपा है। कहीं २ टिप्पण मे कठिन शब्द का गुजराती नामान्तर भी दिया है। इति।
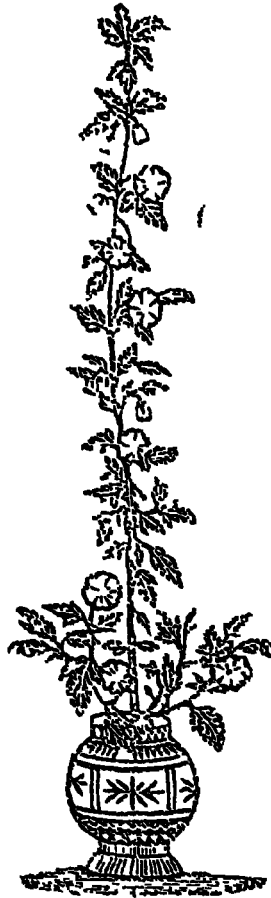
श्रीगुरुचरणा' प्रसीदन्तु

प्राक्कथन—

श्रुतसेना—

यह एक निर्विवाद सत्य है कि श्रुत सेवा बडे पुण्य का कार्य है। भाग्योदय के बिना श्रुत सेवा का अवसर प्राप्त नही होता। मेरा अतिशय शुभोदय है कि गुरु कृपा से मुझे ऐसा अवसर प्राप्त हुआ तथा रुचि एवं श्रद्धा के साथ विद्वानो का भी सहयोग मिलता रहा जिससे प्रस्तुत कार्य मे बडा बल मिला है। मै अनुभव करता हूँ कि श्रुत सेवा संसार के तापत्रय से सन्तप्त प्राणिओ को शान्ति प्रदान करनेवाली है। जो रोग, शोक एव दु.ख को भूलना चाहें उनको अवश्य विधि पूर्वक श्रुताराधन करना चाहिए। शास्त्र ने इसी को बन्धन मुक्ति का प्रधान कारण कहा है। जैसे कि —ज्ञान का १ प्रकाश होने पर अज्ञान एव मोह सूर्य-किरण मे अन्धकार की तरह विलीन हो जाते हैं और मोह के अभाव से जब राग, द्वेप का विच्छेद हो जाता तब एकान्त सुख रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह महिमाशाली ज्ञान प्रकाश श्रुत सेवा का ही परिणाम है। स्वर्गीय दिव्य वैभव का प्रत्यक्षसा दर्शन, भयङ्कर यमयातना का रोमाञ्चकारी वर्णन तथा निगूढ गुहानिहित सम आत्मतत्त्व, सिद्ध गति आदि का प्रदर्शन सिवाय श्रुत सेवा के दूसरा कौन कर सकता या करा सकता है? बिना श्रु त सेवा के ऐसा ज्ञान प्रकाश सुलभ नहीं।

श्रु त-ग्रन्थ या शास्त्र किसी नाम से कहे, इसके दो प्रकार हैं। एक सम्यक्-श्रु त और दूसरा मिथ्या श्रु त। अल्पज्ञों के द्वारा जो स्वेच्छापूर्वक केवल बुद्धि और कल्पना के बल पर लिखे गये है। जिनको पढने व सुनने से काम, क्रोध, मोह की वृद्धि हो वैसे कामशास्त्र, अर्थशास्त्र या कथा उपन्यास आदि सत् शास्त्र नहीं है। इनको पढने या सुनने से श्रु त सेवा का लाभ नही होता, क्योंकि ये राग द्वेप की वृद्धि के कारण होने से कुशास्त्र हैं। लौकिक कला और अपने विपय की जानकारी के अतिरिक्त इनसे कोई आत्मिक लाभ प्राप्त नहीं होता। करोडो ग्रन्थ पढ़ लेनेपर भी

---

१ णाणस्स सव्व स्स पगासणाए अन्नाण मोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्सय सखएण १ एगत सोक्ख समुवेइ मोक्ख। उ० ३२।२।

ये सुशास्त्र के एक श्लोक के बराबर भी नहीं होते। कहा भी है--'श्लोकोवरं परम-तत्त्व पथ प्रकाशी, न ग्रन्थ कोटि पठनं जनरंजनाय। संजीवनीति वरमौषधमेकमेव, व्यर्थश्रमस्य जननो न तु मूलभार: ॥१॥ अर्थात् परम तत्त्व को प्रकाशित करनेवाला एक श्लोक भी अच्छा किन्तु जनरञ्जन के हेतु करोड़ो ग्रन्थो का पठन अच्छा नहीं। संजीवनी जड़ी का एक टुकडा अच्छा परन्तु व्यर्थ श्रम देनेवाला मूला गाड़ी भर भी अच्छा नही। सुशास्त्र की कितनी महिमा है? मनोरंजक साहित्य करोड़ो भी सुशास्त्र के एक पद की तुलना में नही आ सकते। सुशास्त्र का वह एक श्लोक आत्म-जागरण करता है, जो अन्य साहित्यो से नही होता। ऐसे परम पदो का पठन मनन ही मंगलमय श्रुत सेवा है।

जैन साहित्य में आगम—

यो तो अधिकांश जैन साहित्य ही 'परमतत्त्व पथ प्रकाशी, इस उक्ति के अनु-सार त्याग विराग की शिक्षा देनेवाला है, क्योंकि इनके प्रणेता प्राय. त्यागी साधु थे। अत: इनको सुशास्त्र कह सकते है, फिर भी इन सब साहित्यो मे आगम का स्थान बहुत ऊंचा है। वैदिक साहित्य मे वेद और इस्लाम साहित्य मे कुरान शरीफ की तरह जैन साहित्य मे आगम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आगम का अर्थ है विधि-पूर्वक जीवादि तत्त्वो को समझानेवाला प्रामाणिक शास्त्र। अन्यत्र कहा गया है--'आप्तवचन मागम:, आगमश्चोपपत्तिश्च सम्पूर्णं दृष्टिलक्षणम्। अतीन्द्रियाणामर्थानां सद्भाव प्रतिपत्तये ॥१॥ आगमोह्याप्तवचन--माप्तं दोषक्षयाद्विदु:। वीतरागोऽनृतं वाक्यं न ब्रूयाद्धेत्वसंभवात् ॥२॥ दश०। अर्थात्—अतीन्द्रिय पदार्थों की सत्ता समझने के लिये आगम और उपपत्ति ही सम्पूर्ण दर्शन का लक्षण है।॥१॥ आप्त वचन को आगम कहते है और जिनके दोषो का क्षय हो चुका वे आप्त हैं। दोष नही रहने से वीतराग असत्य वचन नही बोलते, क्योकि वहां असत्य का कोई कारण नही रहा।॥२॥ उपरोक्त विचार से पाठक समझ गये होगे कि वीतराग वाणी को आगम कहते है। अतीन्द्रिय विषयो का प्रामाणिक निर्णय आगम से ही हो सकता है। अत: धर्म मार्ग मे* इसी को प्रामाणिक पद प्राप्त है। समस्त साहित्य मे आगम की विशिष्टता इसलिये है कि--"आगम युक्ति विरुद्ध नही होता और सद्-

---

* जम्हा न धम्ममग्गे, मोत्तूण आगम इह पमाण
विज्जइ छउमत्थेण, तम्हाएत्थेव जइयव्वं ॥

युक्ति भी आगम से विमुख नहीं जाती। एक-दूसरे का अनुगमन करते हुए आगम और युक्ति ये दोनों सत्य के ज्ञान को स्थिर करने मे समर्थ होते है। जैसे कि--
जुत्तीए अविरुद्धो सदागमो, सावि तय विरुद्धत्ति। इय अण्णोण्णानुगयं, उभयं पडिवत्ति हेउत्ति। पचाशक ॥४५॥

इस प्रकार का गुणसम्पन्न आगम वीतराग वचन ही हो सकते हैं अन्य नहीं।

शास्त्र का नाम

प्रश्नव्याकरणानि--पण्हावागरणाइं या पण्हावागरण दसा है। नन्दी और समवायाङ्ग सूत्र में पण्हावागरणाइ नाम रक्खा गया है। प्रश्न का अर्थ पूछना और व्याकरण का अर्थ उत्तर है। बहुतसे प्रश्नोत्तर होने से इसका नाम प्रश्न व्याकरणानि ऐसा बहुवचनान्त पद रक्खा गया। जैसा कि टीकाकार अभयदेव सूरि ने लिखा है -प्रश्न' प्रतीत', तन्निर्वचन-व्याकरणम्। प्रश्नानाञ्च व्याकरणानाञ्च योगात् प्रश्न व्याकरणानि, (सम० १४५) नन्दी और प्रश्नव्याकरण के टीकाकार ने भी इसी अर्थ को माना है।

दूसरा नाम है पण्हा वागरणदसा, इसका प्रयोग स्थानाङ्ग मे मिलता है। स्थानाङ्ग के दशम स्थान: मे कहा है कि पण्हावागरण दसा के दश अध्ययन है, "टीकाकार भी इसी नाम से अर्थ करते हैं, जैसे-प्रश्न व्याकरण दशा इहोक्त रूपा त। दोनो नाम प्राचीन हैं फिर भी ज्ञात होता है कि प्रश्न व्याकरण दशा यह नाम प्रश्न व्याकरणानि से कम प्रसिद्ध था। कारण भगवती, समवायांग और नन्दी मे प्रश्न व्याकरण नाम का ही उल्लेख मिलता है। इसके ५ आस्रव और ५ सवर रूप से दश अध्ययन मिलते हैं। अत इसका नाम प्रश्न व्याकरण दशा अधिक ठीक लगता है, किन्तु श्वेताम्बर परम्परा के आचार्यो ने प्राय प्रश्न व्याकरण नाम ही प्रामाणिक माना है। अधिकाश शास्त्रीय प्रयोग और दिगम्बर साहित्य मे भी 'पण्ह-वायरण' ऐसा उल्लेख है, अत प्रश्न व्याकरण नाम ही उपयुक्त समझना चाहिए। आप कहेंगे कि इसमें प्रश्न विद्या का सम्बन्ध नहीं है, फिर प्रश्न व्याकरण यह नाम कैसा ? उत्तर यह है कि सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जम्बू के प्रश्न पर आस्रव, संवर का प्रतिपादन किया है, इसलिये इसको प्रश्न व्याकरण कहने में बाधा नहीं है। देखिए--गोम्मटसार की टीका मे आचार्य ने लिखा है कि-शिष्यप्रश्नानुरूपतया कथाश्चतुर्विधा व्याक्रियन्ते यस्मिन्---तत्-प्रश्न व्याकरणम्।

प्रश्न व्याकरण का स्थान

प्रस्तुत प्रश्न व्याकरण शास्त्र मे उपरोक्त आगम लक्षण मिलते है इसलिये इसको आगम कहने मे कोई बाधा नही है। अब यह विचारना है कि प्रश्न व्याकरण का आगम मे कौनसा स्थान है ? वह कितना महत्त्व रखता है ? (दशवैकालिक सूत्र की भूमिका मे यह बता दिया गया है कि) श्वे० सम्प्रदाय की मूर्ति पूजक और अमूर्ति-पूजक दोनो सम्प्रदायो के मान्य आगम ३२ है। आवश्यक से अतिरिक्त अङ्ग, उपाङ्ग, मूल और छेद के विभाग से ३१ आगम होते हैं। उनमे अङ्ग का स्थान सर्व प्रथम है। सामान्य रीति से देखा जाय तो सभी आगम अङ्ग प्रविष्ट और अङ्ग बाह्य इन दो भेदो मे आ जाते है। कालिक एवं उत्कालिक रूप से अङ्ग बाह्य शास्त्रो को दो श्रेणी मे विभक्त कर नन्दी सूत्र मे अङ्ग प्रविष्ट १२ कहे गये है। जैसे कि--से किं तं अग पविट्ठं २ दुवालसविहं प० तं०--"आयारो १ सूयगडो २ ठाणं ३ समवाओ ४ विवाहपन्नत्ती ५ नायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७ अंतगडदसाओ ८ अणुत्तरोववाइयदसाओ ९ पण्हावागरणाइ १० विवागसुयं ११ दिट्ठिवाओ १२" इनमे प्रश्न व्याकरण का स्थान दशम है। गणधरो के मङ्गलमय शब्दो मे तीर्थंकर भगवान् की वाणी का इसमे सग्रह है। इसका मूलरूप समवायाङ्ग सूत्र और नन्दी मे द्वादशाङ्गी का परिचय देते हुए, प्रश्न व्याकरण का भी वर्णन आता है--

प्रश्न व्याकरण सूत्र के दो रूप है एक प्राचीन और दूसरा अर्वाचीन। समवायाङ्ग और नन्दी आदि सूत्रो मे द्वादशाङ्गी के अन्तर्हित जो प्रश्न व्याकरण का परिचय मिलता है वह इसका प्राचीन रूप है। पूर्वकाल मे अङ्गुष्ठ आदि प्रश्न विद्याये और दिव्य संवाद इसमे कहे गये थे। जिसके लिये नन्दी सूत्र मे कहा है कि १०८ प्रश्न पूछे हुए और १०८ अप्रश्न-बिना पूछे तथा १०८ प्रश्नाप्रश्न-पूछे या बिना पूछे दोनो तरह से शुभाशुभ कहनेवाली विद्या है। अगुष्ठ प्रश्न, बाहु प्रश्न और आदर्श प्रश्न विद्या कही गई। ऐसे अन्य भी विविध अतिशय विद्याये और नाग कुमार सुपर्ण कुमार आदि के साथ दिव्य संवाद बताये गये है। परिमित वाचना और इसका एक ही श्रुत स्कन्ध है। ४५ अध्ययन और ४५ ही उद्देश व समुद्देशकाल कहे गये है। उसका पद परिणाम ९२ लक्ष १६ हजार लिखा है। समवायाङ्ग मे कुछ विद्याये और आचार्य भाषित, प्रत्येक बुद्धभाषितादि का विशेष उल्लेख मिलता है। इन दोनो मे ४५ अध्ययन बताये गये है, किन्तु स्थानाङ्ग सूत्र के दशम स्थान मे प्रश्न व्याकरण

युक्ति भी आगम से विमुख नहीं जाती। एक-दूसरे का अनुगमन करते हुए आगम और युक्ति ये दोनो सत्य के ज्ञान को स्थिर करने मे समर्थ होते है। जैसे कि--
जुत्तीए अविरुद्धो सदागमो, सावि तय विरुद्धत्ति। इय अण्णोण्णाणुगयं, उभयं पडिवत्ति हवत्ति। पचाशक ॥४५॥

इस प्रकार का गुणसम्पन्न आगम वीतराग वचन ही हो सकते हैं अन्य नहीं।

शास्त्र का नाम

प्रश्नव्याकरणानि--पण्हावागरणाइं या पण्हावागरण दसा है। नन्दी और समवायाङ्ग सूत्र में पण्हावागरणाइ नाम रक्खा गया है। प्रश्न का अर्थ पूछना और व्याकरण का अर्थ उत्तर है। बहुतसे प्रश्नोत्तर होने से इसका नाम प्रश्न व्याकरणानि ऐसा बहुवचनान्त पद रक्खा गया। जैसा कि टीकाकार अभयदेव सूरि ने लिखा है -प्रश्न. प्रतोत, तन्निर्वचन-व्याकरणम्। प्रश्नानाञ्च व्याकरणानाञ्च योगात् प्रश्न व्याकरणानि, (सम० १४५) नन्दी और प्रश्नव्याकरण के टीकाकार ने भी इसी अर्थ को माना है।

दूसरा नाम है पण्हा वागरणदसा, इसका प्रयोग स्थानाङ्ग मे मिलता है। स्थानाङ्ग के दशम स्थान मे कहा है कि पण्हावागरण दसा के दश अध्ययन है, "टीकाकार भी इसो नाम से अर्थ करते हैं, जैसे-प्रश्न व्याकरण दशा इहोक्त रूपा त। दोनो नाम प्राचीन हैं फिर भी ज्ञात होता है कि प्रश्न व्याकरण दशा यह नाम प्रश्न व्याकरणानि से कम प्रसिद्ध था। कारण भगवती, समवायांग और नन्दी मे प्रश्न व्याकरण नाम का ही उल्लेख मिलता है। इसके ५ आस्रव और ५ संवर रूप से दश अध्ययन मिलते हैं। अत. इसका नाम प्रश्न व्याकरण दशा अधिक ठीक लगता है, किन्तु श्वेताम्बर परम्परा के आचार्यो ने प्राय प्रश्न व्याकरण नाम ही प्रामाणिक माना है। अधिकाश शास्त्रीय प्रयोग और दिगम्बर साहित्य मे भी 'पण्हवायरण' ऐसा उल्लेख है, अत प्रश्न व्याकरण नाम ही उपयुक्त समझना चाहिए। आप कहेंगे कि इसमे प्रश्न विद्या का सम्बन्ध नहीं है, फिर प्रश्न व्याकरण यह नाम कैसा ? उत्तर यह है कि सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जम्बू के प्रश्न पर आस्रव, संवर का प्रतिपादन किया है, इसलिये इसको प्रश्न व्याकरण कहने में बाधा नहीं है। देखिए--गोम्मटसार की टीका मे आचार्य ने लिखा है कि-शिष्यप्रश्नानुरूपतया कथाश्चतुर्विधा व्याक्रियन्ते यस्मिन्--तत्-प्रश्न व्याकरणम्।

प्रश्न व्याकरण का स्थान

प्रस्तुत प्रश्न व्याकरण शास्त्र मे उपरोक्त आगम लक्षण मिलते है इसलिये इसको आगम कहने मे कोई बाधा नही है। अब यह विचारना है कि प्रश्न व्याकरण का आगम मे कौनसा स्थान है? वह कितना महत्त्व रखता है? (दशवैकालिक सूत्र की भूमिका मे यह बता दिया गया है कि) श्वे० सम्प्रदाय की मूर्ति पूजक और अमूर्ति-पूजक दोनो सम्प्रदायों के मान्य आगम ३२ हैं। आवश्यक से अतिरिक्त अङ्ग, उपाङ्ग, मूल और छेद के विभाग से ३१ आगम होते हैं। उनमे अङ्ग का स्थान सर्व प्रथम है। सामान्य रीति से देखा जाय तो सभी आगम अङ्ग प्रविष्ट और अङ्ग बाह्य इन दो भेदों में आ जाते है। कालिक एवं उत्कालिक रूप से अङ्ग बाह्य शास्त्रों को दो श्रेणी मे विभक्त कर नन्दी सूत्र में अङ्ग प्रविष्ट १२ कहे गये है। जैसे कि--से किं तं अग पविट्ठं ? दुवालसविह प० तं०--"आयारो १ सूयगडो २ ठाणं ३ समवाओ ४ विवाहपन्नत्ती ५ नायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७ अंतगडदसाओ ८ अणुत्तरोववाइयदसाओ ९ पण्हावागरणाइ १० विवागसुयं ११ दिट्ठिवाओ १२" इनमे प्रश्न व्याकरण का स्थान दशम है। गणधरों के मङ्गलमय शब्दो मे तीर्थंकर भगवान् की वाणी का इसमे सग्रह है। इसका मूलरूप समवायाङ्ग सूत्र और नन्दी मे द्वादशाङ्गी का परिचय देते हुए, प्रश्न व्याकरण का भी वर्णन आता है--

प्रश्न व्याकरण सूत्र के दो रूप हैं एक प्राचीन और दूसरा अर्वाचीन। "समवायाङ्ग और नन्दी आदि सूत्रो मे द्वादशाङ्गी के अन्तर्हित जो प्रश्न व्याकरण का परिचय मिलता है वह इसका प्राचीन रूप है। पूर्वकाल मे अङ्गुष्ठ आदि प्रश्न विद्याये और दिव्य संवाद इसमे कहे गये थे। जिसके लिये नन्दी सूत्र मे कहा है कि १०८ प्रश्न पूछे हुए और १०८ अप्रश्न-विना पूछे तथा १०८ प्रश्नाप्रश्न-पूछे या विना पूछे दोनो तरह से शुभाशुभ कहनेवाली विद्या है। अंगुष्ठ प्रश्न, बाहु प्रश्न और आदर्श प्रश्न विद्या कही गई। ऐसे अन्य भी विविध अतिशय विद्याये और नागकुमार सुपर्ण कुमार आदि के साथ दिव्य संवाद बताये गये है। परिमित वाचना और इसका एक ही श्रुत स्कन्ध है। ४५ अध्ययन और ४५ ही उद्देश व समुद्देशकाल कहे गये है। उसका पद परिमाण ९२ लक्ष १६ हजार लिखा है। समवायाङ्ग मे कुछ विद्याये और आचार्य भाषित, प्रत्येक बुद्धभाषितादि का विशेष उल्लेख मिलता है। इन दोनो मे ४५ अध्ययन बताये गये हैं, किन्तु स्थानाङ्ग सूत्र के दशम स्थान मे प्रश्न व्याकरण

के दश अध्ययनो का उल्लेख मिलता है देखिए--'पण्हावागरण दसाणं दस अज्झयणा प तं० उवमा सखा, इसिभासिंयाइं, आयरिय भासियाइं, खोमग पसिणाइं, कोमल पसिणाइं, अद्दाग पसिणाइं, अंगुट्ठपसिणाइं, बाहुपसिणाइं।" उपरोक्त दश अध्ययनों मे से प्रथम दो को छोडकर शेप ८ विपय और नाम की दृष्टि से समवायाङ्ग के साथ मेल खाते हैं। फिर भी यह प्रश्न खडा रहता है कि नन्दी और समवायाङ्ग मे इसके ४५ अध्ययन कहे हैं और स्थानाङ्ग मे दश। विपय की समानता होने पर भी यह अन्तर कैसे? टीकाकार ने इसका कोई समाधान नहीं किया, केवल उक्त स्वरूप वाला प्रश्न व्याकरण दशा यहा नही है, इतना ही लिखा है। जैसे कि--'प्रश्न व्याकरण दशा इहोक्तरूपा न, स्था० १० ठा.।। उपलब्ध प्रश्नव्याकरण के अन्त मे लिखा गया है कि--पण्हावागरणे ण एगो सुयक्खधो दस अज्झयणा एकसरगा, दससु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जति,--प्रश्नव्याकरण मे एक श्रुत स्कंध और दश अध्ययन हैं। दश दिनो में ही इसका उद्देश होता है। आदि।

इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि प्रश्न व्याकरण दो हैं। इन दोनों में वर्तमान काल में दश अध्ययनवाला प्रश्न व्याकरण ही उपलब्ध है। आस्रव एव सवर का इससे प्रतिपादन किया गया है। ४५ अध्ययन पर व्याख्या करते हुए टीकाकार श्री अभयदेव सूरि लिखते हैं--"यद्यपीहाऽध्ययनाना दशत्वाद् दशैवोद्दशनकाला भवन्ति, तथापि वाचनान्तराऽपेक्षया पचचत्वारिंशदिति सभाव्यते, इति पचचत्वारिंशदित्याद्यविरुद्धम।

जो भी यहाँ वर्तमान में अध्ययन दश होने से उद्देशन काल भी दश होते है, फिर भी वाचनान्तर की अपेक्षा ४५ का कथन सम्भव होता है। उपरोक्त विवरण से समझा जाता है कि टीकाकार के समय मे प्रश्न विद्यावाला सूत्र वाचनान्तर माना जा रहा था। यह प्रश्न व्याकरण का दूसरा रूप है।

दिगम्बर सम्प्रदाय में प्रश्न व्याकरण-- श्वेताम्बर सम्प्रदाय की तरह दिगम्बर सम्प्रदाय भी द्वादशाङ्गी को मानती है। दोनों के नाम और कुछ विशिष्टता के साथ विपय मिलते जुलते है। अल्पमात्र ही अन्तर है। जैसे-नायाधम्म कहा के स्थान पर 'णाह धम्म कहा' 'उवासग दसा' के स्थान मे उवासयज्झयण और 'पण्हावागरणाइ के स्थान मे पण्हवायरण, नाम मिलता है। पद सख्या भी प्राय मिलती है। स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग आदिकी पद सख्या मे कुछ अन्तर है किन्तु उसमे लेखन एव अनुगुतिमे भ्रान्ति प्रधान कारण ज्ञात होता

है। अस्तु, हमें यहाँ प्रश्न व्याकरण के लिये ही विचार करना है। प्रश्न व्याकरण के लिए श्री वीरसेनाचार्य अपनी धवला टीका में निम्न परिचय देते हैं—'पण्हवायरण णाम अंगं तेणउदिलक्ख सोलह सहस्स पदेहि ६३१६००० अक्खेवणी, णिक्खेवणी, संवेयणी, णिव्वेयणी चेदि चउव्विहाओ कथाओ वण्णेदि। तथा अक्खेवणीणाम छद्दव्व णवपयत्थाण सरूव-दिगन्तर-समया तर णिराकरणं सुद्धि करेंती परूवेदि। .....उक्तं च—'आक्षेपणीं तत्त्वविधान भूतां' विक्षेपणी तत्त्व-दिगन्तशुद्धिम्। संवेगिनी धर्मफल प्रपञ्चा, निर्वेगनी च ह कथा विरागाम।८१। पण्हादो हद-णट्ठ-मुट्ठि-चिन्ता-ल ह लाह-सुह दुक्ख-जीविय-मरण-जय-पराजय-णाम-दव्वायु-सखच परूवेदि। अर्थात् प्रश्न व्याकरण नाम का अंग तेरानवे लाख सोलह हजार पदों के द्वारा आक्षेपणी, विक्षेपणी संवेदनी, निर्वेदनी इन चार कथाओं का तथा (भूत, भविष्यत् और वतमान काल सम्बन्धी धन, धान्य, लाभ, अलाभ, जीवित मरण, जय और पराजय सम्बन्धी प्रश्नों के पूछने पर उनके) उपाय का वर्णन करता है, जो नाना प्रकार की एकान्त दृष्टिओं का और दूसरे समयों (सिद्धान्तों) का निराकरण पूर्वक शुद्धि कर के छ द्रव्य और नौ प्रकार के पदार्थों का प्ररूपण करती हैं उसे आक्षपणी कथा कहते हे। कहा भी है—तत्त्वों को निरूपण करनेवाली आक्षेपणी कथा है। तत्त्व से दिगान्तर को प्राप्त हुई दृष्टिओं का शोधन करनेवाली अर्थात् परमत की एकान्त दृष्टिओं का शोधन करके स्वसमय की स्थापना करनेवाली विक्षेपणी कथा है। विस्तार से धर्म के फल का वर्णन करनेवाली संवेगिनी कथा है और वैराग्य उत्पन्न करनेवाली निर्वेगनी कथा है। " यह प्रश्न व्याकरण नाम का अंग प्रश्न के अनुसार हृत-नष्ट-मुष्टि चिन्ता-लाभ-अलाभ-सुख, दुःख, जीवित, मरण, जय, पराजय, नाम-द्रव्य, आयु और सख्या का भी प्ररूपण करता है। धवला पृ० १०४ से १०६।

उपरोक्त धवला के उल्लेख से प्रकट होता है कि प्रश्न व्याकरण मे आक्षेपणी आदि चार कथाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन था और प्रश्न के अनुसार हृत, नष्ट, मुष्टि, चिन्ता, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवित मरण जय, पराजय नाम-द्रव्य, आयु और सख्या का भी प्ररूपण किया गया था। इसमे प्रधानता से चार कथाओं को कह कर उन्हीं के साथ प्रश्न-विद्या का भी होना कहा गया है। किन्तु गोम्मटसार में प्रश्न-विद्या को मुख्यार्थ मान कर पश्चान्तर में शिष्य प्रश्न नुरूप से चार कथाओं का वर्णन माना गया है। जैसे कि—' प्रश्नस्य दूतवाक्य नष्ट मुष्टि चिन्तादि

रूपस्यार्थस्त्रिकाल गोचरो धनधान्यादि लाभालाभ सुखदुःख जीवित मरण जय पराजयादि रूपो व्याक्रियते-व्याख्यायते यस्मिन् तत्-प्रश्न व्याकरणम्। अथवा शिष्य-प्रश्नानुरूपतया अवक्षेपणी विक्षेपणी, संवेजनी, निर्वेदनी चेति कथाश्चतुर्विधा व्याक्रियन्ते यस्मिंस्तत् प्रश्न व्याकरणम् नाम। गोम० जीवकाण्ड० जी० प्र० टी०

प्रथमतो नष्ट मुष्ट्यादि प्रश्न का लाभालाभ आदि रूप फल जिसमे कहा जाय वह प्रश्न व्याकरण है। अथवा शिष्य के प्रश्नानुरूप जिसमे अवक्षेपणी आदि चार कथायें कहीं जाय वह प्रश्न व्याकरण है। उपरोक्त विचार से फलित होता है कि दिगम्बर परम्परा मे भी प्रश्न व्याकरण के दो रूप माने गये हैं।

सूत्र का वर्तमान रूप कब से और क्यों ?

प्रश्न व्याकरण का परिचय पढ कर पाठक विचारेंगे कि इसमे से प्रश्नविद्या क्यों और कब चली गई ? और यह इस रूप मे कब से है ? यद्यपि इस प्रश्न का व्योरेवार समाधान करना हमारी शक्ति और उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री से बाहर की बात है, तथापि यथाकथञ्चित् संचित साधनों से कुछ विचार किया जाता है। नन्दी और समवायाङ्ग के उल्लेख को देखते हुए प्रतीत होता है कि इनके लेखन काल मे प्रश्न विद्यावाले प्रश्न व्याकरण की ही प्रसिद्धि हो। आस्रव संवर का प्रतिपादन करनेवाला यह सूत्र यदि शास्त्रलेखन के समय होता तो अवश्य उसका द्वादशाङ्ग के परिचय मे उल्लेख होता किन्तु नन्दी से समवायाङ्ग के सूत्र परिचय मे कुछ बाते विशेष बता कर भी आस्रव संवर का वर्णन कहीं नहीं दिखाया गया। दिगम्बर परम्परा के धवला सन्दर्भ मे जैसे प्रश्न विद्या के साथ चतुर्विध कथाओं का प्रश्न व्याकरण मे परिचय दिया गया, वैसा भी तो यहाँ निर्देश नहीं। इससे हमारे जैसे छद्मस्थ विचारक की तो यही धारणा होती है कि देवद्धिगणी के द्वारा वीर निर्वाण ९८० से जो शास्त्रों का पुस्तकाकार लेखन कराया गया उसमे समवायाङ्ग के लेखन तक तो प्रश्न विद्यावाला प्रश्न व्याकरण था, किन्तु उसका ज्ञान सर्वसाधारण को सुलभ नहीं था। केवल परम्परा से परिचय मात्र सब को था। जब शास्त्रों का सङ्कलन तथा उनको संक्षिप्त किया गया तब अनुयोगधारी आचार्यों ने आजकल के साधुओं को अतिशय ज्ञान के योग्य न जान कर अंगुष्ठ आदि प्रश्नों को निकाल दिया। जैसे कि टीकाकार आचार्य अभयदेव सूरि लिखते हैं--"इदानीं त्वास्रव पंचक संवर पचक व्याकृतिरेवेहोपलभ्यते। अतिशयाना पूर्वाचार्यैरैदंयुगीनानाम-पुष्टालम्बन प्रतिसेविपुरुपापेक्षयोत्तारितत्वान्-इति।" अतएव अंगुष्ठ आदि प्रश्नों के

स्थान मे आस्रव एवं संवर के विचार को रक्खा हो। कारण यह कि प्राचीन समय मे गुरु शिष्य परम्परा से श्रवणानुश्रवण ही शास्त्र रक्षा का साधन था। जब विशिष्ट ज्ञान के धारक गुरु अपना ज्ञान किसी को बिना दिये ही स्वर्गवासी हो जाते तब उनका गूढ़ ज्ञान उन्हीं के साथ विलीन हो जाता था।

टीकाकार अभय देवसूरि के प्राप्त प्रश्नव्याकरण की दूसरी पुस्तक मे जो उपोद्घात ग्रन्थ हैं, उससे अवश्य प्रश्नव्याकरण मे पाच आस्रव और पांच संवर का वर्णन ज्ञात होता है। उसमे प्रश्न विद्या का नाम ही नहीं है, जो मुद्रित उपोद्घात ग्रन्थ मे देख सकते हैं। इस पर से अनुमान होता है कि पुस्तकान्तर मे उपोद्घात के साथ मिला हुआ प्रश्नव्याकरण वाचनान्तर का हो। समवायाङ्ग मे जिसका परिचय दिया गया वही वाचना लेखन काल मे अधिक मान्य हो और गौण मानकर वाचनान्तर के प्रश्नव्याकरण का परिचय उसमे नही लिया गया हो। जो कुछ हो इतना तो सत्य है कि देवर्द्धिगणी के बाद और टीका विधान से बहुत पूर्व ही वर्तमान का प्रश्नव्याकरण भी लिपिबद्ध होकर प्रकट हो चुका था।

ग्रन्थ कर्त्ता—

शास्त्र के मूल प्रणेता श्रमण भगवान् महावीर हैं, क्योंकि उन्होंने अर्थ रूप से इसका प्रथम कथन किया है। जैसे कि कहा है—"अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गथंति गणहरा निउण। सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्तं पवत्तइ" अर्थात्–तीर्थङ्कर भगवान के कहे हुए अर्थ को गणधर कुशलता से सूत्र रूप मे ग्रथन करते हैं। आदि। अतः अर्थ दृष्टि से प्रश्नव्याकरण के कर्ता भी महावीर है किन्तु सूत्ररूप से शब्द रचना करने वाले गणधर कहे जाते है। दिगम्बर परम्परा में माना गया है कि गणधर इन्द्रभूति ने [1]अन्तर्मुहूर्त्त मात्र काल में द्वादशाङ्ग की रचना की और फिर उन्होंने दोनो प्रकार का श्रुत सुधर्माचार्य को दिया। अत. गौतम गणधर ही द्रव्य श्रुत के

---

१ पुणो तेणिंदभूदिणा भाव सुद पज्जय परिणदेण बारहंगाण चोद्दस पुव्वाणं च गंथाणमेक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा। तदो भाव सुदस्स अत्थपदाण च तित्थयरो कत्ता॥ धवला १।१।१। पृ० ६५।

तद्यथा—तदोतेण गोजम गोत्तेण इंदभूदिणा अंतो मुहुत्तेणावहारिय दुवाल संगत्थेण तेणेव कालेण कय दुवालसंग गंथ रयणेण गुणेहि सगसमाणस्स सुहुमारि-यस्स गंथो वक्खाणिदो। जय ध० अ० पृ० ११।

कर्त्ता है, किन्तु श्वेताम्बर परम्परा का मत है कि भगवान् महावीर से त्रिपदी को सुनकर सभी गणधरो ने चतुर्दश पूर्व की रचना की। इन इग्यारह गणधरो के द्वारा नव वाचनाएँ हुई क्योकि दो वचनाये समान हुई थी। इस मान्यता में वर्तमान आगम सुधर्म वाचना के समझे जाते हैं। जब उपलब्ध अङ्ग-शास्त्रो के कर्त्ता सुधर्माचार्य है, तब प्रश्नव्याकरण के भी सूत्ररूप से सुधर्मा स्वामी ही कर्त्ता समझने चाहिए। जैसाकि अभय देव सूरि कहते हैं—"अस्य च श्री मन्महावीर वर्द्धमान स्वामि सम्बन्धी पञ्चम गण नायकः श्री सुधर्म स्वामी सूत्रतो जम्बुस्वामिनं प्रति प्रणयन चिकिर्षुः. सम्बन्धाऽभिधेयप्रयोजन प्रतिपादनपरा जम्बू ? इत्यामन्त्रण पूर्वां गाथामाह"।

इसमे सुधर्मास्वामी सूत्र रूप से जम्बू को शास्त्र का कथन किया, यह बताया गया है।

शास्त्र की भाषा प्रस्तुत भाषा यद्यपि अर्धमागधी है, तथापि आचाराङ्ग आदि से इसकी भाषा शैली मे अवश्य अन्तर है इसकी भाषा कादम्बरी की तरह अलङ्कारयुक्त और साहित्यिक है। वैदर्भी रीति का प्रयोग होने से इसमें समास की बहुलता है। विपय सर्वोपयोगी होकर भी भाषा की कठिनता से सर्व साधारण के लिये सुलभ नहीं है। सामान्य प्राकृत के ज्ञान मात्र से इसमे प्रवेश नहीं हो सकता है। कहा जा सकता है कि प्राकृत में शास्त्र निर्माण का यह ध्येय ही जब—"अणुग्रहाय तत्त्वज्ञै सिद्धान्त प्राकृत. कृत.—अनुग्रह करना है। तब इससे ऐसा दुर्बोध क्यो बनाया गया ? उ० शास्त्रकार को सभी प्रकारके श्रोताओं का लक्ष्य होता है। अल्पज्ञोंकी तरह कुछ विद्वानोको भी विद्वत्ता का रसास्वाद मिले, सभव है, इसके निर्माण मे यही लक्ष्य रहा हो। मध्यकाल का साहित्यिक प्रभाव भी कारण हो सकता है।

शास्त्रान्तर के साथ तुलना यद्यपि प्रश्न व्याकरण आस्रव और संवर को करनेवाला अपनी शैली का एक ही है, अन्यत्र ऐसा स्वतन्त्र विचार नहीं मिलेगा, फिर भी कई शास्त्र इसकी आंशिक तुलना मे आते हैं। प्रथम आस्रव मे बताई गई जलचरादि जन्तुओ की नामावली और म्लेच्छ जातिया पन्नवणा के प्रथम पाद में अधिकांश मिलती है। म्लेच्छ जाति के नामों में कुछ हेरफेर हैं। जैसे गौड के लिये पन्नवणा मे निन्नक और गोड लिखा है। गोधा विशेष है। आन्ध्र द्राविड के स्थान में अम्भड दमिल और चिल्लल के लिये

चिल्लल है। अरोस को पन्नवणा मे हरोस और पोक्कण के लिये वोक्कण लिखा है। रोम मास के लिये रोम पास रोस ऐसा पाठ दिया है। वकुस को पहुस और चुंचुय के स्थान पर वंधुयाय ऐसा पाठ है। चूलिका के स्थान पर सूयलि और महुर के स्थान भग्गर है। मरहट्ठ मुट्ठीय और आरब के स्थान पर केवल मोढ इतना ही है। डोविलग के स्थान पर डोविलग लओस और प ओस है। केकय के स्थान कक्कोस और अक्खाग तथा रुरु के स्थान मे भरु पाठ भेद है। मृषावादी दार्शनिकों का वर्णन सूत्रकृताङ्ग के प्रथम अध्ययन से मिलता जुलता है। युगलिक नरनारियो का वर्णन जो चतुर्थ आस्रव मे है, जीवाभिगम के युगलिकाधिकार के समग्न है। अहिंसा के वर्णनमे जिन मुनिओका परिचय है उस पाठकी उववाई से तुलना होती है। संवराध्ययन की पचीस भावनाये आचाराग के भावनाध्ययन मे संक्षिप्त कही गई है। पञ्चम संवर मे एकविध असंयम से लेकर तेतीस आसातना तक जो उल्लेख मिलता है उनका स्पष्ट परिचय समवायांग मे और कुछ दशाश्रुतस्कन्ध मे मिलता है। ये शास्त्र प्रश्न व्याकरणगत विषय के पूर्तिरूप है।

देश और अनार्य जाति का महाभारत मे भी विशद वर्णन है। नारक वर्णन सूत्रकृताङ्ग और उत्तराध्ययन के नरक वर्णन से भावतः साम्य रखता है।

प्रस्तुत शास्त्र परिचय—

मुख्य विषय भेद के अनुसार इस शास्त्र को हमने दो खण्ड मे विभक्त कर लिखा है। प्रथम खण्डमे ५ आस्रव अर्थात हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह का वर्णन है। प्रत्येक आस्रव को स्वरूप, नाम करने का प्रकार, कर्ता और फल के भेद से ५ द्वारो मे बताया है। फिर उत्तर खड मे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पांच संवर का कथन है प्रत्येक व्रत को पाच भावनाओ से सुरक्षित बताया गया है। इसमे सर्व प्रथम मूल, फिर संस्कृत और पश्चात अन्वयार्थ एवं भावार्थ लिखा गया है। पाठान्तर मूल मे कोष्ठक से और अधिकाश, विशिष्ट स्थलो के टिप्पण से बताये गये है॥ पीछे परिशिष्ट मे शब्द कोश, विशिष्ट स्थलो के टिप्पण ऐतिहासिक नाम, पाठान्तर और कथा भाग दिया गया है।

अन्तरङ्ग परिचय—

प्रथम आस्रव मे पहले हिंसा का रूप बताकर उसके ३० नाम कहे गये है. फिर हिंसको के वर्णन मे कहा है कि वे असंयमी अविरती एव चंचल परिणाम वाले तथा पर दुःख देने मे तत्पर होते है। मारे जाने वाले जन्तुओ की गणना मे १३ जलचर ३८ चतुष्पद ८ उरग १६ भुज परिसर्प और पक्षिओ की

जातियां ४७ गिनाई गई है। इसके बाद त्रसजीवो की हिंसा के विविध कारणों को बताकर पांच स्थावरों की हिंसा के भी पृथक् पृथक् कारण बतलाये हैं। चैत्य, देवकुल और मठ आदि धर्म साधन कहे जाने वाले भी प्रथम आस्रव मे पृथ्वी की हिंसा के कारण बताये गये हैं। हिंसा चाहे स्ववश, परवश या अर्थ एवं अनर्थ से की जाय, हास्य, रति, वैर से हो अथवा क्रोध, लोभ, मोह से हो, सभी प्रकार की धर्म, अर्थ या काम निमित्त से होने वाली हिंसा अधर्म का द्वार है। उसे करने वाले हतबुद्धि व निर्दय हैं।

हिंसको मे विविध प्रकार के शिकारी, पारधी, और मच्छीमार आदि अनेक गिनाये गये है। हिंसा प्रधान ५५ म्लेच्छ जातियां और पशु पक्षी मत्स्य आदि जीव इस हिंसा के खास कर्ता कहे गये हैं।

अन्त मे हिंसा के फलस्वरूप मिलनेवाली नरक गति की रोमाञ्चकारी यमयातनायें विस्तार से कही गई है। यमयातना भुगत कर नरक से निकलनेवाले नारकीय जीव पशुगति में जाकर ३० से भी अधिक प्रकार की पराधीन वेदनाये भोगते हैं फिर पंचेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तेइन्द्रिय आदि क्रम से एकेन्द्रिय तक के भयप्रद दु खो का वर्णन किया गया है। हिंसको के लिये मनुष्य जन्म ऐसा दुर्लभ हो जाता है कि किसी किसी को तो अनन्त काल जैसे सुदीर्घ काल के पश्चात् मनुष्य भव का लाभ होता है। मनुष्य लोक मे जो कुबडे, लंगडे, लूल्हे, वामन बहरे, काणे तथा गूंगे हैं, ये तमाम विरूप हिंसा के कारण से ही होते हैं। रोग, व्याधि, चिन्ता और अल्पायु तथा अकाल मरण हिंसा के ही दुष्परिणाम हैं। हिंसा से ही जीव निर्बल, कुरूप और सुख सौभाग्यहीन होता है। इस प्रकार हिंसा के कुफल वीर प्रभु ने बताये हैं।

दूसरे अधर्म द्वार में झूठ का वर्णन पाच प्रकार से है। प्रथम झूठ का स्वरूप और फिर उसके ३० नाम हैं। क्रोध, लोभ, भय और हास्य से झूठ बोलनेवाले चोर आदि २७ करीब व्यावहारिक पुरुष गिना कर फिर एकान्तवादियों का परिचय दिया गया है। नास्तिकवादी आदि उनमे प्रधान है। कुछ लोक काल स्वभाव या भवितव्यता को ही कर्ता मानते हैं तो कोई कर्म या ईश्वर को ही कर्ता धर्ता हर्ता मानते हैं। ये सभी एकान्त वचन शास्त्र मे मिथ्या कहे गये हैं। व्यवहारवाद, निश्चयवाद और ज्ञानवाद एव क्रियावाद को भी ऐसा ही समझना चाहिए। निन्दा, पैशुन्य के अतिरिक्त कन्यालीक, अर्थालीक, भूम्यलीक तथा गवालीक को बड़ा झूठ और

करने वालों का परिचय दिया गया है। जैसे-४ जाति के देव, मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च इसका सामान्य रूपसे आसेवन करने वाले हैं। अत्यन्त शुभ लक्षणों से विराजमान और छः खण्ड की विशाल राज्य लक्ष्मी के भोक्ता बनकर भी चक्रवर्ती भोगों से अतृप्त ही रह जाते हैं।

मैथुन संज्ञा मे आसक्त मनुष्य परस्पर लड़ते हैं। वैभव नाश और स्वजन नाश को प्राप्त करते हैं। इस मैथुन के आचरण से मित्र भी शत्रु बन जाते हैं, और चरित्र का नाश होता है। इस दुराचार के द्वारा कीर्तिमान् भी अकीर्ति के अधिकारी होते, सर्वथा स्वस्थ भी दीर्घरोगी बन जाते। कुशील से उभय लोक बिगडते है। मैथुन के निमित्त से जनसंहारकारी बडे २ सग्राम हुए हैं। यह लोकोक्ति ख्यात है कि—"वैर-तरु की स्त्रिया ही जड हैं। इन हुए सग्रामो मे सीता, द्रौपदी, पद्मावती आदि ८-१० के नामों का उल्लेख किया गया है। चतुर्गतिक ससार मे सुदीर्घ काल तक भटकना इस विकट कुशील सेवन का बुरा फल है। लोकशास्त्र दोनो से निन्दित है। धर्मशास्त्र तो निषेध करता ही है। साथ ही नीति भी इसे गर्हित कहती है। पचम अध्ययन मे परिग्रह का वर्णन है। ममता के साथ वस्तुओं के सग्रह करने को परिग्रह कहते हैं। इसका मूल है तृष्णा और काम भोग है फलफूल। वृक्ष के रूपक से बता कर प्रकृत सूत्र मे इसके ३० नाम कहे हैं। चारो जाति के देव इसको अपनाते हैं और विशालतम धनराशि को पाकर भी सन्तुष्ट नहीं होते। चक्रवर्ती से लेकर साधारण धनपति और मन्त्री ये सब परिग्रह का संचय करते हुए दुःखमय ससार गर्त में डूबते हैं। इसी परिग्रह के लिये विविध कलाकलाप की कल्पना और उसकी आराधना की जाती है। इसी के लिये सकाम कष्टकारी तपस्यायें, समुद्र लंघन, सुदूर प्रयाण भयङ्कर युद्ध आदि किये जाते हैं। इस विषय को कह कर तदुत्तर अन्तरङ्ग परिग्रह के रूप से दण्ड शल्य, कषाय और लेश्या आदि दुर्वासनायें प्रदर्शित की गई हैं। परिग्रह रूप ग्राह से ग्रसित प्राणी चतुर्गतिक ससार सागर में ऊगता, डूबता और भटकता है। यह परिग्रह रूप विष वृक्ष का विषमय कटु फल है।

उपसंहार मे आस्रवो के फलों का दिग्दर्शन कराने के बाद कहा गया है कि हिसा आदि पाच आस्रवो को छोडकर जो अहिंसादि संवरो का पालन करते हैं। वे ही सब प्रकार के कर्मो को क्षयकर क्षीणकर्मा अक्षय सुखास्पद सिद्धपद के भागी बनते हैं।

छट्ठे अध्ययनमे अहिंसाका वर्णन है,जो मृदुमधुर मनोहर व हृदयङ्गमकरने योग्य है

यह सूत्र के उत्तर खण्ड का पहला अध्ययन है। स्पष्ट कहा गया है कि ये अहिंसादि पञ्च महाव्रत अविश्रान्त चिरसञ्चित कर्मरजों का प्रमार्जन कर भय-मय भव प्रपञ्च से जीवको पृथक् कर देते है और भव भ्रमण को समूल मिटा देते है। महा महिमशाली इन पञ्च महाव्रतो मे अहिंसा का प्रथम स्थान है, यह भव सागर मे द्वीप के समान है। अहिंसा के ६० नाम बताकर इसकी महिमा दर्शाई गई है, जैसे— यह त्रिलोकी पूजित तीर्थङ्करो से कथित है। वैसे ही बड़े ज्ञानी, विपुलध्यानी, तपशाली, लब्धिधारी और क्रियाधिकारी सन्तो से पाली गई है। इसकी रक्षा के लिये मुनिगण भिक्षा के विभिन्न दोपो को टालते है। सब जीवो की रक्षा रूप दयाके लिये भगवान ने यह प्रवचन कहा है। इसको रक्षा के लिये पाच भावनाये कही गई हैं जो बहुत माननीय है।

दूसरा व्रत सत्य है-इसको जगत् का आधार-धर्म का मूल और भगवान् पदसे भापित किया है। सिद्धियो का स्थान और इन्द्रो से भी पूजित है। इसके महत्त्व मे शास्त्र का उल्लेख मनन पूर्वक पढ़ने योग्य है, सत्यव्रती के लिये अपनी थाप (आत्म-प्रशंसा) और पर निन्दा निपिद्ध है। सत्य वचन की पूर्णता के लिये व्याकरणज्ञान से शब्द शुद्धि की आवश्यकता दिखलाई गई है। असत्य वचन से आत्मरक्षाके लिये भगवान ने यह प्रवचन कहा है। इसकी पांच भावनायें, विस्तार पूर्वक कही गई हैं। जो ध्यान से पठनीय हैं।

तीसरे संवर मे अदत्ता दान विरमण व्रत का कथन है। अल्प या बहुत, छोटा या बडा, सचित्त अथवा अचित्त कोई भी द्रव्य चाहे गाव मे हो या अरण्य में, पड़ा हुआ, गिरा हुआ एवं खोया गया हो बिना दिये न लेना, यह अचौर्य व्रत रूप है। इसीलिये पञ्च महाव्रतिओ को प्रति दिन अनुज्ञा लेना कहा है। निन्दा करना दूसरे के नाम से लाभ उठाना और दान मे अन्तराय एव दान का लोप करना, एक प्रकार की चोरी है। अत: अचौर्य व्रत मे वैसे अप्रीतिकारी व्यवहारो का निपेध है। जो पाई हुई चीजो का अपने परिवारो मे संविभाग नहीं करता हो वैर विरोध और असमाधि करने वाला हो वह इस व्रत की आराधना नहीं कर सकता। अचौर्य व्रत साधक को यह आवश्यक है कि वह शक्ति पूर्वक बाल, वृद्ध एव रोगी की सेवा करे। दूसरे के लिए जो अप्रीतिकारक हो वैसा कोई भी आचरण नहीं करे। आदि। इसकी पञ्चम भावना स्वधर्मिओ मे विनय करना है। यहा के सभी विचार पूर्ण मननीय हैं।

चतुर्थ संवर ब्रह्मचर्य है। तप, नियम, एवं ज्ञान, दर्शन चारित्र का यह मूल है। इस एक आराधना मे सब की आराधना है। शील विनयादि गुण और यशःकीर्ति आदि सभी इस पर प्रतिष्ठित है। इसकी ३२ उपमायें है। इसकी शुद्ध आराधना करनेवाला ही श्रमण ब्राह्मण या सुसाधु है। ब्रह्मचर्य के साधक को राग द्वेप और मोह वढ़ानेवाले विभूपा आदि शोभावर्द्धक व्यवहार निपिद्ध है। उसकी जीवनचर्या और भावनाओ का विचार हृदयग्राही परम गभीर है। पंचम सवर में अपरिग्रह का वर्णन है। योगशास्त्र के शब्दो मे जिसे यम कहा है, जैन शास्त्र की भापा मे वह सवर है। कर्मों के अणु को भी अन्त.करण मे नही आने देना यही संवर का निष्कर्प है।

अपरिग्रही साधु आरम्भ परिग्रह से दूर और क्रोध मान माया लोभ से विरत होते हैं। एक विध असयम से लेकर ३३ आशातना तक के सव भावो पर शका, काक्षा छोड कर व्रती सम्यक् श्रद्धा करता है। फिर अपरिग्रह का वृत्त के रूपक से निदर्शन किया है। सवथा परिग्रहत्यागी मुनि हिरण्य सुवर्णादि बहुमूल्य और दूसरे को ललचानेवाली वस्तुओ को ग्रहण नही करते। फल फूल और विविध प्रकार के धान्य औपध के निमित्त भी सम्पूर्ण परिग्रह त्यागी मुनि ग्रहण नही करे। इसको सयुक्तिक समझाया है। कल्पनीय भोजन आदि का भी मुनि को सग्रह नहीं करना चाहिए। इसके बाद भिक्षा ग्रहण करने की विधि बताई गई है। रोगादि कारण की स्थिति मे भी औपध और आहार पानी का रात्रि मे सग्रह निषिद्ध कहा गया है। आवश्यकता से गृहीत भण्डोपकरण भी सयम रक्षा के लिये राग द्वेष रहित धारण करना चाहिए। अपरिग्रहव्रती का स्वरूप और विविध उपमाओ से उसके गुण वताये गये है। फिर पाच भावनाओ के साथ अध्ययन की समाप्ति की गई है।

अन्त मे शास्त्र का उपसंहार और वाचन विधि के साथ शास्त्र की समाप्ति की गई है।

विविध संस्करण और हमारा प्रयत्न—

यह सत्य है कि विविध शास्त्रो की तरह प्रश्न व्याकरण के भी कई संस्करण निकल चुके हैं, जिसमे सर्व प्रथम राय धनपतिसिंह बहादुर मकसुदावाद का सटीक। दूसरा आगमोदय समिति सूरत से प्रकाशित सटीक। तीसरा ज्ञान विमल टीका सहित मुक्ति विमलजी जैन ग्रन्थमाला अहमदावाद। चौथा पूज्य अमोलख ऋषिजी महाराज कृत भापानुवाद सहित और पाचवा गुजराती भाषान्तरवाला इन पांच

के अलावे रतलाम से प्रकाशित केवल अनुवाद और आगम मन्दिर का मूल संस्करण भी विद्यमान है, किन्तु हिन्दी भाषा के पाठको को शुद्ध पाठ के साथ भाव का पूर्ण बोध इनसे प्राप्त नही होता, क्योकि इनमे तीन तो संस्कृत रहे और एक हिन्दी व एक गुजराती पदार्थ मात्र ही। अतएव पाठको को सुलभता से बोध प्राप्त होने के साथ मूल पाठ भी शुद्ध मिले एतदर्थं हमारा यह प्रयत्न है। पाठ शुद्धि के लिये ४ हस्त लिखित १ सटीक और १ आगम मन्दिर पालीताणा से प्रकाशित मूल इस प्रकार ६ प्रतिओ का उपयोग किया गया है। अशुद्ध और भिन्न पाठो के संशोधन मे टीका का आधार लिया है, और पाठान्तर सूची मे प्रत्यन्तर के उपयुक्त पाठ भेद भी बतला दिये है।

हमारे ध्यान से प्रश्न व्याकरण जितनी संशोधन मे जटिलता अन्यत्र क्वचित् ही हो। आगम मन्दिर जैसी प्रामाणिक प्रति जो शिलापट्ट और ताम्र पत्र पर अङ्कित हो चुकी है, वह भी अशुद्धि से दूषित देखी गई है। इसके लिये १७ पाठों की एक तालिका बनाई गई जिनमे कुछ तो ऐसे है जिनकी अर्थतः संगति नही बैठती और कुछ है स्खलनास्थल। गीतार्थ एवं तज्ज्ञ विद्वान् इसमे कुछ मार्ग प्रदर्शन करें ऐसी आशा से पांच स्थान पर तालिका भेजी गई। १ व्यवस्थापक आगम मन्दिर पालीताणा। २ पुण्य विजयजी महाराज जैसलमेर। ३ भेरोदानजी सेठिया बीकानेर। ४ जिनागम प्रकाशक समिति और उपा० श्री अमर मुनि व्यावर। ५ सम्यग् दर्शन मे प्रकाशनार्थ सैलाना। पांच मे से ३ की ओर से पहुँच के अतिरिक्त कोई उत्तर प्राप्त नही हुआ। पुण्य विजयजी म० ने पीछे उत्तर देने को लिखा किन्तु पत्र देने पर भी कोई उत्तर नही मिला। आगम मन्दिर से तो पत्र की पहुँच भी नहीं। अस्तु। पाठो की तालिका सम्यग् दर्शन (सैलाना) प्रथम वर्ष के ११ वे अंक मे देख सकते है।

इस प्रकार साधन और सहाय हीन दशामे हमने जो यह महान् प्रय ' किया, वह केवल आगम सेवा की भावना से ही।

कृतज्ञता प्रदर्शन

सर्व प्रथम जैनाचार्य पूज्य जैन धर्म दिवाकर आत्मारामजी म० जिनका कि समय २ पर हमे सहयोग मिलता रहा उपकार मानना आवश्यक है। उपाध्याय कवि श्री० अमरचन्दजी म० ने दिल्ली विराजते समय प्रश्नव्याकरण के कुछ पत्र देखे और सुझाव प्रस्तुत किये।

इसके उपरान्त आगम सेवामें लिखनेका परिश्रम उठाने वाले विद्वान् और सहायक सत जिनकी सेवा के सहयोग से यह कार्य पूर्ण हो सका है तथा जिन २ ग्रन्थो से सहयोग लिया है उन सभी ग्रन्थ कर्ताओ के और सहायको के प्रति मै हृदय से कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ। संशोधन और पदार्थ को सुलभ करने मे यावत्-शक्य प्रयत्न किया गया है।

इस सूत्र के सपादन मे जो कुछ पुण्य सञ्चय हुआ हो उसके फल स्वरूप भव-भवान्तर मे हमे आगम सेवा सुलभ हो तथा भव्य जन सम्यग् ज्ञान का लाभ प्राप्त करें यही सदिच्छा है।

समय की अल्पता और साधन की दुर्लभता से अनार्य देश आदि पर चाहते हुए भी कुछ आवश्यक विचार नहीं कर पाया। अस्तु, इसमे विवशतासे जो त्रुटि रह गई हो उनके लिये "मिच्छामि दुक्कड" देता हूँ।

अन्तिम अभ्यर्थना है—

अशेषज्ञो नैको मतिरतिचला चचलतर
मनश्चाप्तोपज्ञाऽपरिचित समा प्राकृतगवी
नवीनो दीनोऽयं दुरधिगम जैनाऽऽगमनिधौ
त्रुटि क्षन्तुं योग्या कृतकर पुटोवच्मिविनयात्

निवेदको मुनिव्रती
हस्तिमल्लः
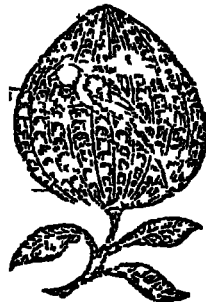
संशोधन सम्पादन में प्रयुक्त ग्रन्थों का परिचय।

१ प्रश्न-व्याकरण सूत्र-अभयदेव सूरिकृत टीका-आगमोदय समिति प्रकाशित।
२ " " " -ज्ञानविमल सूरिकृत टीका-मुक्ति विमल जैन ग्रंथमाला, अहमदाबाद
३ " " " -मूल-शिलाङ्कित का-प्रतीक-आगम मन्दिर पालीताना।
४ " " " -हस्त लिखित टब्बा-प्राचीन मुनियों द्वारा लिखित।
५ अभिधान राजेन्द्र कोष-राजेन्द्र सूरि—रतलाम से प्रकाशित।
६ सृष्टिवाद और ईश्वर-भारतरत्न प० मुनि श्री रत्नचन्द्रजी महाराज
७ मनुस्मृति -भाषाटीका।
८ समवायांग -अभयदेव सूरिकृत टीका।
९ पन्नवणा -गुजराती अनुवाद अहमदाबाद से प्रकाशित।
१० षट्-खंडागम -धवला टीका १।१।१-हीरालाल जैन-अमरावती प्रकाशित।
११ सूयगडांग -सटीक आगम० समिति प्रकाशित।
१२ कल्याण -महाभारत अङ्क गीता प्रेस गोरखपुर।
१३ जीवाभिगम सूत्र -सटीक-समिति से प्रकाशित।
१४ बोल संग्रह -भैरोदानजी सेठिया-बीकानेर से प्रकाशित।

श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र की विषयानुक्रमणिका

आवश्यक निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशन मे समय की शीघ्रता तथा संशोधक की कार्यकालीन शारीरिक एवं मानसिक अस्वस्थता के कारण त्रुटियां कुछ अधिक मात्रा मे रह गयी जिनके लिए शुद्धि पत्र ही प्रमाण है। इसके साथ ही पुरातनशीशकाक्षरानुद्ट कन दोष से भी कतिपय स्थानो मे मात्रा, अनुस्वार और रेफ की त्रुटियां खटकनेवाली है, पाठक ऐसे प्रसंगो पर विवेक बुद्धि से काम लेगे। उदाहरण के तौरपर मात्रा त्रुटि के आत्मरूप, छया, पक्षा, किंत, सरांश, अदि, भर्या, जल्दा, कठाण, प्ररणा, शारीरिक आदि को आत्मारूप, छाया, पक्षी, किंते, सारांश, आदि भार्या, जल्दी, कुठाण, प्रेरणा और शारीरिक समझना चाहिए, ऐसे ही अनुस्वार के सम्बन्ध मे सश्रितान, मच, एव, बहुल, खडित, चचल, भाव, मूल, वश तथा चौर्य की जगह संश्रितान, मंच, एवं, बहुलं, खंडित, चचल, भावं, मूलं, वंश तथा चौर्यं पढ़ना चाहिए। रेफ दोष से निमलै., रपश, गभ, प्राथनीय, पूव, सहसै:, धम, अथ, दृष्टि तथा आसव की जगह निर्मलै. स्पर्श, गर्भ, प्रार्थनीय, पूर्व, सहस्त्रैः, धर्म, अर्थ, दृष्टि तथा आस्रव समझना चाहिए। पाठक ऐसे स्थलो पर विषय स्थिति को समझ लेगे। इसके अतिरिक्त खड्ग की जगह खड्ग तथा स्निग्ध की जगह स्निग्ध और प्रकार की जगह प्रकार एवं ससान, ससाप्त की जगह समान और समाप्त तथा पराङ्ग की जगह पराङ्ग एवं सहा की जगह महा समझेगे।

प्रार्थी--

प्रबन्धक

शुद्धि पत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धि	शुद्धि
१	८	कॅर	करें
२	से लेकर ४३ तक सूत्र और प्रकरण का नाम छूटा		
३	१३	संपडि	संपरि
,,	१६	जज्ज	अज्ज
,,	२६	संषत्तेणं	संपत्तेणं
५	१२	परिणाम	परिमाण
६	१७	प्राणि	प्राण
८	१४	हुआ	है
,,	२८	एम	एष
९	१३	(इमानि)	ये
१०	१	मच्छू	मच्छू
१५	१७	क्षुधा	क्षुधा
१५	२३	शारिरिक	शारीरिक
१५	२६	डेष	द्वेष
२१	५	तालंयट	तालयंट
२२	५	समूद्द	समूह
२४	१७	गन्धक	गन्ध
२४	१८	पाउनडर	पाउडर
२६	१५	हेसं	दुस्सहेसुय
२७	२	शौकारिका	शौकरिका
२९	१	के	से
३३	२८	माञ्चकारी	रोमाञ्चकारी
३४	२३	लटको	लटका
३५	८	दोह	देहि
३६	१२	केद्दत्थ	केहद्द

पृ०	पं०	अशुद्धि	शुद्धि
३८	५	यमाकयिका	यमकायिका
३८	२७	सरदू	रसदूभीम
३९	१	णग	वक्ण
३९	१५	दना	वदना
४२	२१	हुए	हुए
४६	२३	फासि	फारिस
५१	४	अणतकलं	अनन्तकालं
५५	१५	ममन्त्य	ममत्यय
५५	१६	पर	परम
६३	२८	युक्ता	युक्त
६४	५	भदेक	भेदक
६४	१३	कतोपां	कपोतां
६४	१७	हंश	हंस
६५	२३	वदन्ति:	वदन्ति
६६	७	गासी	गामा
६६	७	लकडी	लडकी
७१	२७	त्मन्त्र	मन्त्र
७२	२१	परिज	परिजन
७३	२०	स्नवन	स्नपन
७४	११	जिविक	जीविक
७७	१४	तसय	तस्सय
७७	२४	वज्ज्यि	वज्जिा
७८	८	भंय	भयं
७८	१२	(त्तिवेमि) दारं	त्तिवेमि
७९	२	विब	वीर
७९	३	कथंचि	कथंचिम्मति
७९	६	कारकं	कारकं

पृ०	पं०	अशुद्धि	शुद्धि
७६	७	दुन्रतं	दुरन्तं
७६	७	व्रविमी	प्रवीमि
७६	६	फप	फल
७६	१६	रहीत	रहित
८०	१२	अमनो राम	अमनोरमं
८०	१४	पर्यंतन	पर्यन्त
८०	२३	संवन्वी	सम्बन्धी
८१	२४	सूख	सुख
८२	१७	द्दोष	द्दोस
८२	२१	शंसित्त	सश्रितम्
८२	२३	बहुमत्त	बहुमतम्
८३	१	द्वितीय	तृतीय
८३	१६	विषस	विषम
८३	२०	दाप	द्दोस
८४	३	अप्रिति	अप्रीति
८४	३	तस्य	तस्स
८४	६	लोकिक्कं	लोलिक्कं
८५	१६	अक्खेर्वो	अक्खेवो
८५	२८	अपरच्छतिविय	अपरच्छत्तिविय
८६	१३	गात्था	गत्था
८६	१६	आवलिका	ओवीलका
८६	२१	कए	एक
८७	११	स्वके	स्वके च
८७	२७	संपता	संपउत्ता
८८	२०	आथात्	अर्थात्
८९	११	विज्जुजल	विज्जुज्जलं
८९	१६	हय हासय	हय हेसिय'

पृ०	पं०	अशुद्धि	शुद्धि
९०	२३	नि.बल	निरवलवं
९१	५	केहि	त.केहि
९२	१८	मां=कृष्ट	मीरकृ।
९२	२७	।चत)	चिल्लत)
९३	३	न्धाकार	न्धकार
९३	८	म।ग.मृगि	ग।गरमृर्गि
९३	१०	गुए रदुन्छलरनर।ावर्त	गु'रदुन्छलरनरावर्त
९३	२५	ग्रह्णाति	गृह्णन्ति
९४	१०	डेव	इव
९५	४	मण्ड गात्र स्वर्ग	मण्ड ।ग्र खड्ग
९५	४	फै	फेंक
९५	५	गहु	हुग
९५	१६	चग्गतर तुग	दग्गत तुरग
९८	२२	सनुद्रा	समुद्राय
९९	३	निवतिन	निवतित
९९	६	घुग्	घुग् घुग्
९९	१७	सायत्रिक	सायात्रिक
१००	१	मडव	मडय
१००	११	णिक्रिपा	णिक्रिया
१०१	२६	काले	वाले
१०२	२	सैनिक	सेना
१०३	२४	दृडालउर	दंडलउर
१०५	७	सयणस्य	सयणस्स
१०५	१२	च्छलनाना	च्छलना
१०५	१६	वरत्र	यरत्र
१०६	२	मोटित.	मोटिता
१०६	१४	धाड्यमाना प्रेर्य	धाड्यमाना.-प्रेर्यया-

पृ०	पं०	अशुद्धि	शुद्धि
१०६	१८	मूर्द्धजा	मूर्द्धजाः
१०७	१८	गलुच्छलुल्लच्छणा	गलुच्छल्लुच्छल्लणा
१०८	२२	०	मोडना
१०६	११	वेतश्रो	वेतकी
१०६	२१	०	मे
१ ०	१३	प्रणालि	प्रणाली
११३	१४	वर्णण	वर्णन
११५	१	अपत्ति	अपतिट्ठाण
११६	२३	मुप्य	गुप्य
११६	२४	समाहित	समाहृत
११६	२७	वेध	वेद्य
११७	४	कराणा	कारणा
११७	२०	सुष्ठुपि	सुष्ठ्वपि
११७	२६	राज	रज.
११८	१८	अनार्य	आर्य
११६	७	वंध बन्धन	वध बन्धन
११६	२०	पिवासा	पिपासा
११९	२१	कलशे	कलश
१२०	३	०द्य	मद्य
१२०	११	ःख	दु ख
१२१	११	निवा	निवास
१२५	४	०	एक खण्ड वाक्य छूटा है
१२६	१	तिल्लोक्क	तिलोक्क
१२८	६	महारेग	महोरग
१२८	२२	नखत्त	नक्खत्त
१२६	१६	सागतं	सागरंतं
१२६	२२	ज्वलण	ज्वलन

पृ०	पं०	अशुद्धि	शुद्धि
१३३	२६	उज्ञवल	उज्ज्वल
१३४	२०	०	रस
१३५	१६	चंड	चन्द्र
१३७	१	ऽऽ०	ऽऽश्रम
१३७	२५	लजित	ललित
१३८	१०	तृप्त	अतृप्त
१३८	२४	सास	सस्स
१३८	२६	कर्बड	कर्बट
१३६	१३	गम्भीरध्व	मधुरध्व
१४२	१	सुप	सुप्प
१४३	२१	०	चक्कपाणिलेहा
१४६	८	सरित्च्छ	सरिच्छ
१४६	२२	सहता	संहताऽङ्गुलीका
१४६	२७	घ कनक	वर कनक
१४८	१८	पार्श्वा	पार्श्वाः
१५०	६	गति	गती
१५०	११	निरुवले	निरुवलेवा
१५०	२४	झषोदरा	झषोदर
१६०	२६	गधा	गवा
१६२	२	पुथणिज्जं	पत्थणिज्जं
१७२	२४	भूमिभू	भूमिसु
१७७	२१	होतो है	होते है
१७६	२६	कहेगा	कहेंगे
१६०	२२	कुष्ठ	कोष्ठ
१६०	२५	च्दिप्त	उत्दिप्त
१६२	११	श्लेष्ममेलदी	श्लेष्म और मेलही
१६६	२१	मणुद्दिट्ठं	मणुद्दिट्ठं

पृ०	प०	अशुद्धि	शुद्धि
१६६	६	कुहम	कुहत्र
२०१	११	समं	सम्म
२०१	२४	गवेसियग्रच्च'	गवेसियव्वं
२०१	टिप्पण	संवलिट्ठं	सकलिट्ठ
२०४	२०	पापतेणं	पावतेण
२०४	२७	र्मक	कर्म
२०५	६	एपणाए	एसणाया
२०६	२६	वाहन	वहन
२०६	२४	अक्खोव	अक्खो
२०६	२१	जणाणु	वजणाणु
२०७	१६	अकलुप्सो	अकलुसो
२०८	१७	परिक्खणट्ट	परिरक्खणट्ट
२०६	७	आमरणात	आमरणंतच
२१३	६	पद्देशकं	पथदेशकं
२१७	१६	गधामादणाओ	गंधमादणाओ
२२१	१५	तत्थरस	वत्थस्स
२२३	९	कीर्तयेत्	कीर्तये व,
२२५	१४	होज	होज्ज (दो बार)
२२५	२०	असकलिट्ठो	असंकिलिट्ठ
२३५	११	मणुष्य	मनुष्य
२३६	२५	चरेद्धर्म	चरेद्धर्मम्
२३६	२०	पञ्चओ	पच्चओ

प्रश्नव्याकरणे प्रशस्तिश्लोकाः

आर्यावर्ते वर्त्तते धन्वभूमि–र्दृष्टे रम्या नैव सर्वं सहेयम् ।
धर्माऽऽधारा धार्मिकैराधृतापि सन्धत्ते तु प्रासुकी भावमुच्चैः ॥ १ ॥

अस्य चोणितलस्य निर्मलगुणान् संवीक्ष्य जैनो मुनि-
र्भ्यम्यन्नत्र समागतः समयतः शिष्यप्रशिष्यैर्युतः
वर्षावासमनेकमत्र शमतोऽनैषीत्स्वसङ्घौघत-
स्तस्माज्जैनजनानुगो जनपदो धन्वाभिधानोह्यभूत् ॥ २ ॥

सद्धर्मोऽत्र समेधते समयते सद्धर्मशीलो जनः
स्थेमानं स्थितितोऽधितिष्ठति जने श्रामण्यभाजोऽनुगः
पार्थक्यं पृथुलं न चेज्जनपदे द्वात्रिंशता सङ्घके
स्वाधीनं जनतन्त्रशासनमियाज्जैनस्य हस्ते स्थितम् ॥३॥

श्रमणः स च योऽत्रजने सततं यतते निजसंयम शुद्धिविधौ,
तदनु प्रतिपूर्ण जिनागमतत्त्व सुबोध्यतयाऽधिगमैकनिधौ ।
व्रत पालन मात्र निमित्ततया तनुगोपनकृत्यमतिं निदधौ
मनसा वचसा वपुषा समितः श्रमणः खलुसत्यतरः श्रमणः ॥४॥

अधि धन्वधरं श्रुतकेवलिकल्पसमाः श्रमणाः कतिचित्सुबभुः
समितैरधिपालित सङ्घगणे मुनिरत्न समाह्वयमत्र दधुः ।
कति पूज्यवराः कुशलप्रमुखा व्यहरन्–जनतार्तिनिराकरणाः
अधुना खलु पूज्यवरः सुचकास्ति चरित्रचणोऽत्र गजेन्द्रमुनिः॥५॥

पद वाक्यविधौ श्रमशीलनतोऽध्ययनं प्रतिपूर्णमवापदयं
प्रमितावयतिष्ट सदेष्ट विधावपठत्कठिनं गुरुशास्त्रचयम् ।
यतमान इहाध्ययने पदवी समियान्निज सङ्घजनावधृता
नयते नियतां श्रमणैः सहतां प्रगतौ यमसंयमतःसहिताम् ॥ ६ ॥

निजतन्त्र चयेऽपरतन्त्रतथा सहजैकसुबोधविधेः सुप्रतिष्ठा,
पटुता वचने मनसो दमने प्रभुतादिगुणैर्विततासागमनिष्ठा ॥
गुणतो मुनिमानस तोषणतोऽवहदेव विशेष जनेषु प्रतीतिं
श्रमणानुगतां श्रमणाभिमतां परिपालयते निजतन्त्रविभूतिम्॥७॥

इह यत्र यदीय परिश्रमणं विहितं खलु तत्रतदीय विधानं
भवतीति जगन्ति विदन्तिततोऽधृतपूज्यवरो निजशास्त्रनिधानं
प्रथमं दशवै–पर–कालिकसूत्र मथोऽपर मङ्गल नन्द्यभिधानं
परसूक्ष्मदृशा परिशीलनतोऽररचत् सुविशुद्धि सुबुद्धि निदानम् ॥८॥

द्वितयं तदिदं कृत चन्दनसूत्रचये खलुमुद्रणतोऽनुगृहीतं
तृतयं कठिनार्थकप्रश्नपुरस्सर व्याकरणं दशमाङ्गपरीतम् ।
प्रतिपूर्णपुरातन पद्धतितः प्रतिपाठमयोजयदात्मसुनिष्ठं
कथयिष्यतिजैनबुधो गुणमन्दिर सुन्दरमेतदतीवनिविष्टम् ॥९॥

जनितेन जनेन यदाचरितं जगदेतदवस्यति सर्वमपूर्वं
प्रकृतिः स्वर्णरलसाऽनलसैः प्रणिधापयते कृतिनर्गमखर्वम् ।
विरलेन नरेण निधीयत आत्मसमुन्नतितुङ्गपथेऽपि पदीव,
कुशलैरिह शुद्धमनीषिवरैर्न निवीयत आत्महितार्थमवोघः ॥ १० ॥

विरतिः समितिः शुचिगुप्तिरथोऽनुपमापरमा सुचेकास्ति च यत्र,
न च दोपचये लवलेश इह प्रथते गुणशेवधिरात्मनि तत्र ।

सुसमीक्षित शास्त्र चयः स प्रतीक्ष्यवरः स्वसमः सुशमः स्वयमेष
प्रतिपालयते निजसङ्घमतन्द्र गजेन्द्रमुनिः सुगुणैः सविशेषः ॥११॥

प्रशास्ति सङ्घमात्मधुर्य धैर्य शौर्य योगतः
प्रतीक्ष्य हस्तिमल्ल साधुतल्लजो नियोगतः ।
प्रतीति-नीति शान्ति-कान्ति-रीति-कीर्ति-सद्धृति
व्रजैक सङ्गतिर्विराजतेऽत्र साधुता-नतिः ॥ १२ ॥

तत्पीपारपुरं सचापिजनकः श्रीकेवलेन्दुश्च सा,
धन्या मान्यगुणाऽजनिष्ट जननी रूपाऽनुरूपं सुतम् ।
ख्यातिं ख्यातगुणां सुसंयमधनां धत्ते स सत्तेजसा
निर्मानां च पिपर्ति पूज्यपदवीं श्रामण्यपुण्यौजसा ।१३।

चिरञ्जीवतु जीवातुरूपः षट्काय जीवने ।
पञ्चाननायमानोऽयमार्हताऽऽगम कानने ॥ १४ ॥

पूज्यः श्रीहस्तिमल्लोऽयं महामुनि शिरोमणिः ।
समेधतां लसत्तेजा यथाराकानिशामणिः ॥१५॥

भवतोऽभ्युदयाऽऽसक्त हार्द मानसलोचनः ।
श्लोकैःपञ्चदशैर्वक्ति द्विजन्मा दुःखमोचन ॥ १६ ॥

प्रार्थी-अभ्युदयाभिलाषी
दुःखमोचन झा, "मैथिल"

श्री प्रश्नव्याकरणसूत्रस्य

पंच आस्रव द्वाराणि

श्रीः

अथ प्रश्नव्याकरणसूत्रं सच्छायं भाषा-टीका-सहितम्।

मूल—जंबू! इणमो अण्हय-संवर-विणिच्छयं पवयणस्स
निस्संदं। वोच्छामि णिच्छयत्थं, सुहासियत्थं महेसीहिं ॥१॥

छाया—(हे) जम्बू! इदमास्रव संवर-विनिश्चयं प्रवचनस्य निस्यन्दं।
वक्ष्ये निश्चयार्थं सुभाषिताऽर्थं महर्षिभिः॥ १ ॥

अथ मङ्गलाचरणम्

दोहा—केवल श्री-किरणावली, आलोकित सब लोक।
करें हमारे केवली, मानसतल निश्शोक ॥१॥

कुण्डलिया—मानसतल निश्शोक बनाएं केवल ज्ञानी,
महावीर गम्भीर दया सागर हितवाणी।
निष्प्रमाद अवधान धीर होवे मेरी धी,
साध्य साधिका सिद्धि दायिनी हो केवल श्री॥ १॥

भाषानुवाद—हे जम्बू! (इणमो) इस (अण्हयसं०) आस्रव और संवर का निश्चय अर्थात् ज्ञान कराने वाले, (पव-) प्रवचन के (निस्सं-) सार को (वोच्छा-)

कहूंगा, (जो) महेसीहिं तीर्थङ्कर गणधरों के द्वारा (णिच्छ) निश्चय के लिये (सुद्दा-) कहे हुए अर्थ वाला है।

दूसरी प्रति में इससे पहले निम्नलिखित उपोद्घात ग्रन्थ मिलता है, उस काल मे अर्थात् सुधर्मा स्वामी के समय मे चम्पा नामक नगरी थी, उसमे पूर्णभद्र चैत्य, वनखड, अशोकवरवृक्ष, और पृथ्वीशिलाका पट्ट था। उस चम्पानगरी में कौणिक नाम का राजा था, धारिणी नामकी उनकी महारागी थो। उसी समय में श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी—शिष्य आर्य सुधर्म नामके स्थविर, जो जाति कुल अर्थात् मातृकुल व पितृकुल से निर्मल थे बलवान्, सुरूप और विनयशील थे। तथा विनय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, लज्जा और लाघव धर्म से युक्त थे। फिर ओजस्वी तेजस्वी, वर्चस्वी एवं यशस्वी थे। क्रोध, मान, माया, लोभ और निद्रापर जिन्होने विजय प्राप्त की थी, एव जितेन्द्रिय, जित परीषह थे तथा जीवन की आशा और मरण के भय से भी रहित थे। तपस्या, गुण, मुक्ति, विद्या, मन्त्र, ब्रह्मचर्यव्रत, नय, नियम और सत्य, शौच, ज्ञान, दर्शन तथा चारित्रगुण की जिनमें प्रधानता थी, और जो चौदह पूर्वी व चार ज्ञान के धारक थे। ऐसे महा प्रभावी श्री सुधर्मा स्वामी पांचसौ साधुओं के साथ पूर्वानुपूर्वी चलते हुए एक गांव से दूसरे गांव मे होते हुए, क्रमशः जहाँ चम्पा नगरी है, वहाँ पहुचे। और साधु के योग्य अवग्रह[1] को ग्रहण कर सयम व तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। उस समय आर्य सुधर्म स्वामी के शिष्य आर्य जम्बू नाम के मुनि, जो काश्यप गोत्री एव सात हाथ जितने ऊँचे थे। यावत् विस्तीर्ण तेजोलेश्या को सक्षिप्त करके रक्खे हुए थे। आर्य सुधर्म स्थविर के पास योग्य सीमा में ऊर्द्ध्व जानु आदि प्रकार से ध्यान मग्न थे। सयम व तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे। किसी समय आर्य जम्बू को श्रद्धा के साथ तात्त्विक संशय एवं कुतूहल हुआ, फिर श्रद्धा, सशय और कुतूहल प्रकट तथा विकशित रूप में उत्पन्न हुए। श्रद्धा संशय व कुतूहल से युक्त वे उत्थान से उठे और उठकर जहाँ आर्य सुधर्म स्थविर थे, वहाँ आए। और आर्य सुधर्म स्थविर को तीनवार दक्षिण बाजू से प्रदक्षिणा करके वन्दन व नमस्कार किया, फिर न अतिशय समीप और न अधिक दूर इस प्रकार योग्य आसन से उचित स्थान मे बैठकर विनय पूर्वक हाथ जोड़कर सेवा करते हुए इस प्रकार बोले-

---

१—स्थान आदि को।

हे भगवान् ! जब श्रमण भगवान् महावीर यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने नवमें अनुत्तरौपपातिक दशाङ्ग का पूर्वोक्त भाव वर्णन किया है। तब दशवें प्रश्न व्याकरण अङ्ग के, श्रमण भगवान् यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर ने, क्या भाव फरमाये है ?

दूसरी प्रति में निम्नलिखित पाठ अधिक मिलता है। (टीका)

"तेणं कालेणं तेणं समएणं चम्पा नाम नगरी होत्था, पुण्णभद्दे चेइए, वणसंडे, असोगवरपायवे पुढविसिला पट्टए, तत्थणं चम्पाए नयरीए कोणिए नाम राया होत्था, धारिणी देवी, तेणं कालेणं, २ समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्जसुहम्मे नाम थेरे जाइ-सपन्ने कुल-संपन्ने बलसंपन्ने रूवसंपन्ने विणयसपन्ने नाणसंपन्ने दंसणसंपन्ने चरित्तसंपन्ने लज्जासंपन्ने लाघवसंपन्ने ओयंसी तेयंसी वच्चसी जससी जियकोहे जियमाणे जियमाए जियलोभे जियनिद्दे जियइंदिए जियपरीसहे जीवियास मरणभय विप्पमुक्के तवप्पहाणे गुणप्पहाणे मुत्तिप्पहाणे विज्जाप्पहाणे मंतप्पहाणे बंभप्पहाणे वयप्पहाणे नयप्पहाणे नियमप्पहाणे सच्चप्पहाणे सोयप्पहाणे नाणप्पहाणे दंसणप्पहाणे चरित्तप्पहाणे चोद्दसपुव्वी चउनाणोवगए पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपडिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव चंपा नगरी तेणेव उवागच्छइ, जाव अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति। तेणं कालेण तेणं समएणं अज्ज सुहम्मस्स अंतेवासी अज्जजंबू नामं अणगारे कासवगोत्तेणं सत्तुस्सेह जाव संखित्त-विपुलतेयलेस्से अज्ज सुहम्मस्स थेरस्स अदूर सामंते उड्ढं जाणू जाव संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तएण से अज्जजंबू जायसड्ढे जायसंसए जायकोउहल्ले, उप्पन्नसड्ढे २ संजायसड्ढे ३ समुप्पन्नसड्ढे ३ उट्ठाए उट्ठेइ २ त्ता जेणेव अज्ज सुहम्मे थेरे तेणेव उवागच्छइ २ अज्ज सुहम्मं थेरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ २ वंदइ नमंसइ, [illegible] विणएण पंजलिपुडे पज्जुवासमाणे एवं वयासी-'जइणं भंते ! समणेणं [illegible] संपत्तेणं णवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइय दसाणं अयमट्ठे प० दसमस्स णं [illegible] णाया समणेणं जावसंपत्तेणं के अट्ठे प० ? जंबू ! दसमस्स अंगस्स [illegible] दो सुयक्खंधा पण्णत्ता—आसवदारा य संवरदारा य, पढमस्स णं भंते ! [illegible] जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता, ? जंबू ! पढमस्सणं [illegible] संपत्तेणं पंच अज्झयणा पण्णत्ता, दोच्चस्स णं भंते। सुय० [illegible] संवराणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? ततेणं [illegible] रेण एवं वुत्ते समाणे जंबू अणगारं एवं वयासी " [illegible] ॥

उत्तर—हे जम्बू ! श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने दशमें अङ्ग के दो श्रुतस्कन्ध कहे हैं। जैसे—आस्रव द्वार और सवर द्वार।

प्रश्न—हे पूज्य ! प्रथम श्रुतस्कन्ध के श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त ने कितने अध्ययन कहे हैं ?

उत्तर—हे जम्बू ! प्रथम श्रुतस्कन्ध के श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त ने पांच अध्ययन फरमाए हैं।

प्रश्न—हे पूज्य ! दूसरे श्रुतस्कन्ध के कितने अध्ययन हैं ?

उत्तर—इसके भी पांच अध्ययन हैं।

प्रश्न—हे गुरुदेव ! इन आस्रव और संवरों का श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त ने क्या स्वरूप कहा है ? इसके बाद जम्बू नाम के मुनि से पूछे गए स्थविर आर्य सुधर्म स्वामी जम्बू मुनि को उत्तर में इस प्रकार बोले—"जम्बू इणमो-इत्यादि।"

विवेचन—सुधर्मस्वामी कहते हैं—हे जबू ? आस्रव और संवर का निर्णय कराने वाले इस शास्त्र को कहूंगा, जो द्वादशाङ्ग रूप जिन प्रवचन का सार है।

यहाँ आत्मरूप तालाव में जिन २ कारणों से प्राणातिपात आदि कर्म प्रवाह आता हो, उसे आस्रव समझना चाहिए।

तथा आत्मरूप तालाब में आता हुआ वही कर्म जल जिन अहिंसा आदि साधनों से रुकता हो अर्थात् जिनसे कर्म प्रवाह का प्रतिरोध हो उनको संवर कहते हैं।

कर्म बन्ध और कर्म-अवरोध के हेतुओं—कारणों को समझना ही जिन प्रवचन का सार है। क्यों कि इस शास्त्र में आस्रव और संवरों के त्याग व आसेवन का विधान किया गया है।

चरण रूप होने से वह प्रवचन का सार है। कहा गया है कि "—सामायिक से लेकर बिन्दुसार, पर्यन्त श्रुत ज्ञान है। उस श्रुत ज्ञान का सार चरण-चरित्र है और चरित्र का सार मोक्ष है।

शास्त्र का अभिधेय कह कर अब प्रयोजन बताते हैं-प्रयोजन कथन,—प्र०'-प्रस्तुत शास्त्र क्यों कहते हैं?उ० "आस्रव आदि का निश्चय करने तथा कर्म बन्ध से मुक्त होने के लिये प्रस्तुत शास्त्र कहा जाता है। प्रामाणिकता दिखाते हैं—"सर्वज्ञ और तीर्थ प्रवर्तक महान् ऐसे ऋषिओं से याने तीर्थङ्करों से कहा हुआ है, अतएव

(एवं) यह राग द्वेष और संशय विपर्यय आदि दोषों से रहित होने से सुभाषितार्थ है। इस गाथा में सूत्रकारने सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन रूप तीन बातों का विचार किया है।

सम्बन्ध—'नवमें अङ्ग में ऊंची साधुता की आराधना करने वालों के लिये अनुत्तर गति कही गई हैं और वह ऊंची साधुता, आस्रव के निरोध व संवर के पूर्ण आराधनसे प्राप्त होती है। इस लिये दशमें अङ्गमें आस्रव व सबर का वर्णन किया जाता है।

ऊपर की गाथा में कहा गया है कि आस्रव और संवर का निश्चय कराने वाले प्रवचन के सार को कहूंगा, इस प्रतिज्ञा वाक्य में पहले आस्रव का उद्देश-कथन किया है। एक सामान्य नियम है कि उद्देश के अनुसार ही निर्देश-वर्णन करना चाहिए। इस लिये यहां पहले आस्रवों पर विचार किया जाता है।

आस्रव के परिणाम और नाम—

गाथा—"पंच विहो पराणत्तो, जिणेहिं इह अराहओ अणादीओ
हिंसा मोस मदत्तं, अब्बंभ परिग्गहं चेव ॥२॥

छाया—' पञ्चविधः प्रज्ञप्तो, जिनै-रिहास्र (स्र) वोऽनादिकः।
हिंसा मृषाऽदत्त-मब्रह्म परिग्रहश्चैव ॥२॥

अन्वयार्थ—" (जणेहिं) राग द्वेष आदि पर विजय पाने वाले श्री जिनेन्द्र देव-तीर्थङ्करोंने (इह) यहां-इस आगममें अथवा इस लोकमें (अण्हो) आस्रव (पंच विहो) पांच प्रकार का (पन्नत्तो) कहा है, जो (अणाइओ) अनादि याने प्रवाह रूप से सदा रहने वाला अर्थात् आदि रहित है। उसके पांच भेद हैं जैसे-(हिंसा मोसमदत्त) हिंसा १ झूठ २ अदत्त का ग्रहण ३ (चेव) और इसी प्रकार (अबंभ परिग्गह) अब्रह्म विषय-सेवन ४ परिग्रह ५ ये आस्रव के पांच भेद होते हैं।

विवेचन— वीत राग प्रभु ने आस्रव पांच प्रकार का बताया है ! प्रवाह रूप से इसका हर समय में सद्भाव रहता है। इसलिये सामान्य रूप से यह अनादि है। सब जीवों की अपेक्षा से इसका कभी अन्त नहीं होता है। इसलिये आस्रव को अनन्त भी समझना चाहिए। एक जीव की अपेक्षा यह अनादि सान्त और जीव राशि की अपेक्षा अनादि अनन्त है। टीका कारने अनादिक पद को ऋणावीव और

अणादि रूप से भी माना है। उन्होंने अण पद का अर्थ पाप किया है और मिथ्यात्व आदि पाप आस्रव का आदि कारण है इसलिये आस्रव को अणादि भी कहा है। हिंसा १ झूठ २ चोरी ३ मैथुन ४ और परिग्रह ५ ये पांच भेद आस्रव के हैं। दूसरी जगह आस्रव के ४२ भेद भी किये हैं जो पांच इन्द्रिय ४ कषाय ५ अविरति-हिंसा झूठ आदि, २५ क्रिया और तीन योग मिलकर ४२ होते हैं।

आस्रव का स्वरूप और उसके हिंसा आदि पांच प्रकारों का वर्णन किया गया, अब पांचों आस्रवोंको क्रमशः वर्णन करने की इच्छा से शास्त्रकार प्रथम प्राणातिपात आस्रव को कहते हैं।

हर एक आस्रव द्वार पर कैसा १ क्या नाम २ और किस प्रकार किया जाता तथा क्या फल देता है ३-४, और कौन उसको करते हैं? ५, इस प्रकार पॉच बातों का विचार किया गया है। इन में से प्राणातिपात का पांच प्रकार से वर्णन करने के लिये सूत्रकार कहते हैं:—

मूल-'१ जारिसओ २जंनामा ३जहय कओ ४जारिसं फलं देंति।
५ जेविय करेंति पावा, पाणवहं तं निसामेह ॥३॥

छया—यादृशको यन्नामा, यथा च कृतो यादृशं फल ददाति।
येऽपिच कुर्वन्ति पापाः, प्राणवध न निशामेयत ॥३॥

अन्व—"प्राणिवध रूप पहला आस्रव (जारिस ओ) जैसा है (जनामा) जिस नाम वाला है और प्राणिओं के द्वारा (जहयं कओ) जिस प्रकार किया गया है (जारिसं फलं देंति) दुर्गति में गिराने रूप जैसे वह फल को देता है (य) और (जेविकरेंतिपावा) जो भी पापी जीव उसको करते हैं (तं पाणवह) उस हिंसा रूप आस्रव को हे शिष्य ! तुम सब श्रवण करो ॥३॥

वि०—"सुधर्म स्वामी महाराज अपने शिष्य जंबू से कहते हैं कि हिंसा रूप प्रथम आस्रव द्वार कैसा है ? उसके क्या नाम हैं ? और किस प्रकार वह किया जाता है दुर्गतिरूप कैसा कटुफल देता है, तथा कैसे लोग उसको करते हैं, यह सब मैं कहूंगा हे शिष्य तुम उसको सुनो।

एक नियम है कि तत्त्वभेद व पर्यायों से व्याख्या होती है। इसके अनुसार यादृशक, इस पद से यहाँ हिंसा के स्वरूप याने तत्त्व को कहने की प्रतिज्ञा की गई और 'यन्नामा, इस पद से पर्यायों का व्याख्यान किया गया है, बाकी के तीन द्वारों से

आस्रव के भेद बताये गये हैं, इस प्रकार आस्रव प्रवृत्ति रूप, क्रिया और कारण व फल आदि के भेद से पांच प्रकार की कही गई है।

उपरोक्त पाच विषयों में से प्रथम प्राणिवध-हिंसा का स्वरूप कहते हैं—

मूल—"पाणवहो नाम एस निच्चं जिणेहिं भणिओ—"पावो चंडो रुद्दो खुद्दो साहसिओ अणारिओ णिग्घिणो णिस्संसो महब्भओ पइभओ १० अतिभओ बीहणओ तासणओ अणज्जो उव्वेयणओ य णिरवयक्खो णिद्धम्मो णिप्पिवासो णिक्कलुणो णिरयवासगमणनिधणो २० मोहमहब्भय पयट्टओ, मरणावेमणस्सो २२ ॥ पढमं अधम्म-दारं ॥ (सू० १)

छाया—"प्राणवधोनाम एष नित्य जिनैर्भणितः-पापः, चण्डः, रुद्रः, क्षुद्रः, साहसिकः, अनार्यः, निर्घृणः; नृशसः, महाभयः, प्रतिभयः, १० अतिभयः, भापनकः, त्रासनकः, अन्याय्यः, उद्वेजनकश्च, निरपेक्षः, निर्द्धर्मः, निष्पिपासः, निष्करुणः निरयवासगमननिधनः, २०मोहमहाभय प्रवर्तकः, मरणवैमनस्य' ॥ प्रथममधर्म-द्वारम् ॥ ॥ सू० १ ॥

अन्वयार्थ—(पाणवहोनाम) प्राण बध याने हिंसा नामका (एस) यह प्रत्यक्ष कहा जाने वाला आस्रव (जिणेहिं) तीर्थङ्करो ने (निच्चं) सदा नीचे के विशेषणों से युक्त (भणिओ) कहा है,—(पावो) पाप कर्म के बन्ध का कारण होने से यह पाप है (चंडो) कषाय से उद्धत बने हुए प्राणियो से किया जाता है, इसलिये चण्ड है, (रुद्दो) हिंसा करते समय मनुष्य रौद्ररस में लीन होता है अतः रौद्र है, (खुद्दो) आत्मिक भाव की अपेक्षा नीच होने से और नीच, ज्ञान से तथा दुष्ट प्राणियों से सेवित होने के कारण यह क्षुद्र है, (साहसिओ) हिंसा करते समय प्राणी अच्छे बुरे का भाव छोडकर दुस्साहसी होता है, इसलिए हिंसा साहसिक है, (अणारिओ) पाप रहित कर्म को आर्य कहते हैं, उससे विपरीत होने से अथवा अनार्य लोकों से की गई होने से हिसा अनार्य, है (णिग्घिणो) हिंसा करते समय पाप से घृणा-दुर्भावना नहीं होती इसलिये यह 'निर्घृण, है, (णिस्संसो) निर्दयता का कार्य होने से अथवा प्रशंसा करने योग्य नहीं होने से हिंसा 'नृशस' है, (महब्भओ) बडे भय का कारण होने से यह (भयङ्कर) 'महाभय' है, (पइभओ) प्रत्येक प्राणी से हिंसक को भय रहता है, अतएव हिंसा को 'प्रतिभय' कहते हैं, (अइभओ)

हिंसा के समय हिंसक इस लोक व परलोक के भय को भूल जाता है,'इसलिये हिंसा 'अतिभय' भयको भुलाने वाली है (वीहणओ) प्राणी को हिंसा भयभीत करने वाली है (तासणओ) दूसरे को कम्प व मन में क्षोभ पैदा करने से यह हिंसा 'त्रासनक, है, (अणज्जो) हिंसा न्याय युक्त नहीं होने से 'अन्याय्य कहाती है (उव्वेयणओ) चित्तमें उद्वेग को करने वाली है (य) और (निरवयक्खो) हिंसा में दूसरे के प्राणों को व परलोक की अपेक्षा नहीं रहने पाती वास्ते हिंसा 'निरपेक्ष है। (निधम्मो) श्रुत व चारित्र धर्म से हिंसा बहिर्भूत है, अर्थात् धर्म शून्य है, (निप्पिवासो) दूसरों के जीवन की प्यास इच्छा नहीं होने से 'निष्पिपास, है,(निक्कलुणो) करुणाभाव के चले जाने से हिंसा 'निष्करुण, है, (निरयवास गमण-निधणो) नरक वास में जाने के आखिर परिणाम वाली हिंसा है, (मोहमहब्भयपयट्टओ) मोह-मूर्खता ओर वडे भय को प्रवृत्त करने वाली तथा अज्ञान व भय को बढाने वाली भी हिंसा है, (मरणावेमणस्सो) मरण के द्वारा यह जीवों की दीनता का कारण होती है॥

(पढ़मं अहम्मदारं) यह प्राण वध रूप पहला आस्रव अधर्म द्वार हुआ।

भाव—यहाँ प्राणातिपात को पाप चड रौद्र आदि २१ विशेषणों से बताया गया है; यह नरक गति का कारण और भय व अज्ञान को बढाने वाला है।

मृत्यु के द्वारा यह प्राणिओं को दीन बना देता है दूसरे द्वार में प्राण वध के नाम कहते हैं—इस प्रकार प्रथम अधर्म द्वार पूर्ण हुआ।

मूल—"तस्सय नामाणि इमाणि गोरणाणि होंति तीसं, तंजहा—पाणवहो १ उम्मूलणा सरीराओ २ अवीसंभो ३ ।हिंस विहिंसा ४ तहा अकिच्चं च ५ घायणा ६ मारणा य ७ वहणा ८ उद्दवणा ९ तिवायणा य १० आरंभ-समारंभो ११ आउय कम्मस्सुवद्दवो, भेयणिट्ठवण गालणा य संवट्टग संखेवो १२ मच्चू १३ असंजमो १४ कडगमद्दणं १५ वोरमणं १६ परभव संकाम कारओ १७ दुग्गतिप्पवाओ १८ पावकोवो य १९ पावलोभो २० छविच्छेओ २१ जीवियंत करणो २२ भयंकरो २३ अणकरो य २४ वज्जो २५ परितावण अण्हओ २६ विणासो २७ निज्जवणा २८ लुंपणा २९ गुणाणं विराहणात्ति ३० विय, तस्स एममादीणि

णामधेज्जाणि होंति तीसं पाणवहस्स कलुसस्स कडुय फल-देसगाइं ॥ सू० २ ॥

छाया– तस्य च नामानि इमानि गौणानि भवन्ति त्रिंशत् । तद्यथा–"प्राणवधः १ उन्मूलना शरीरात् २ अविश्रम्भः ३ हिंस्य-विहिंसा ४ तथा अकृत्यच ५ घातना ६ मारणा च ७ हननम् ८ उपद्रवणम् ९ त्रिपातनाच १० आरम्भ समारम्भः ११ आयुः कर्मणउपद्रवो, भेद-निष्ठापन-गालना च संवर्तकसक्षेपः १२ मृत्युः १३ असंयमः १४ कटक मर्दनम् १५ व्युपरमणम् १६ पर भव-संक्रमकारकः १७ दुर्गति प्रपातः १८ पाप---कोपश्च १९ पाप लोभः २० छवि च्छेदः २१ जीवितान्त करणः २२ भयङ्करः २३ ऋण करश्च २४ वर्ज्यः २५ परिदापनास्रवः २६ विनाशः २७ निर्यापना २८ लोपना २९ गुणानां विराधना ३० इत्यपिच,। तस्यैवमादीनि नामधेयानि भवन्ति त्रिंशत् प्राणवधस्य कलुषस्य कटु-फल देशकानि (सू०२)

अन्व–"(तस्सय) और पूर्वोक्त स्वरूप वाले उस प्राण वध के (नामाणि) नाम (इमाणि) (गोण्णाणि) गुणों से होने वाले (तीसं) तीस (होंति)हो ते हैं, (तजहा) जैसे कि वे-(पाणवह) प्राणों का हनन होने से इसको प्राण वध कहते हैं (उम्मूलणा सरीराओ) जीव कों शरीर से अलग कर देने से इसको उन्मूलन कहते हैं (अवीसभो) अविश्वास का कारण होने से इसे अविश्रम्भ कहते हैं, (थ आरंभ समारंभो) और जोवों का उप मर्द होने से अथवा पीडा पहुंचाने के साथ जीवों को मारने से इस को 'आरंभ समारंभ कहते हैं' । (हिंस्र विहिंसा) जींवों की हिंसा अथवा प्रमादी जीवों से विशेष रूप में होने के कारण इसे हिंस्रविहिंसा कहते हैं, (तहा अकिच्चं) इसी प्रकार नहीं करने योग्य होने से यह अकृत्य है (च घायणा) और प्राणों की घात करने से इसे घातना, व (मारणा) मरण उत्पन्न करने से 'मारणा' कहते हैं (य वहणा) और हनन करने से इसको 'वधन' भी कहते हैं (उद्दवणा) दूसरे को दुख. पहुँचाने के कारण इसको 'उपद्रवणा' कहते हैं, (तिवायणा) मन वाणी और कायका अथवा देह आयु और इन्द्रिय रूप प्राणों से जोव का पतन कराने से इसको 'त्रिपातना' कहते हैं (आउय कम्मस्सुवद्दवोभेयणिट्ठवण गालणाय सवट्टग सखेवो) आयु कर्म का उपद्रव, या उसी का भेद या उस आयु का अन्त करना और आयु को गालना, खुटाना व आयु को सक्षेप करना इन मे एक कोई या सब मिलकर प्राणि वध का

एक नाम होता है । क्योंकि आयु का छेदन करना सब में समान है । (मच्चू) मृत्यु (असजमो) संयम भाव से हिंसा नहीं होती वास्ते इस को 'असयम' कहा है ('कटगमद्दण) सैन्य की तरह आक्रमण करके प्राण वध किया जाता है, इसलिये इसको कटक मर्दन भी कहते है. (बोरमण) प्राणों से जीव को अलग करने के कारण यह व्युपरमण कहाता है, (परभव संकामकारओ) प्राण से छूट जाने पर ही जीव का पर भव में सक्रमण होता है, इसलिये इस को परभव मे सक्रमण करानें वाला कहा गया है (दुग्गति प्पवाओ) प्राणवध के कारण जीव दुर्गति मे पडता है इसलिये 'दुर्गति प्रपात, कहते हैं (पावकोवो य) और पाप कर्म को बढाने वाला व उत्तेजित करने के कारण यह 'पाप कोप' कहाता है । (पावलोभो) प्राणिओं को पाप मे लुभाता है इसलिये इसको 'पाप लोभ, कहते हैं. (छविच्छेओ) हिंसा में वर्तमान शरीर का छेदन होता है इसलिये इसको 'छविच्छेद' भी कहते हैं, (जीवियंतकरणो) जीवन का अन्त करने से वह 'जीवितान्त करण' कहाता है (भयकरो) भय उत्पन्न करने वाला है (अणकरोय) ऋणकर याने पाप रूप ऋण-कर्ज को करने वाला है (वज्जो) जीव को भारी बनाकर अधोगति-नीच गति मे ले जाने के कारण प्राणिवध को 'वज्र कहते हैं' विवेकिओं से वर्जित होने के कारण 'वर्ज्य' भी कहते है, पाठान्तर की अपेक्षा सावद्य नाम भी होता है (परितावण अण्हओ) इसको परितापनास्रव भी कहते हैं (विणासो) प्राणों को नष्ट कर देने से इसको 'विनाश कहते हैं ('निज्जवणा) प्राणों के जाने मे प्रेरक होने से इसको 'निर्यापना' भी कहते हैं (लुंपणा) प्राणों के लोप करने से इसे 'लुम्पना' कहते हैं (गुणाण विराहणत्ति) मरने व मारने वालों के गुणों का विघातक होने से हिंसा को गुणों का विराधक भी कहते हैं (विय, तस्स कलुसस्स पाणवहस्स) इस प्रकार उस मलिन कर्म रूप प्राण वध के (एवमादिणि णामधेज्जाणि) इत्यादिक नाम (तीसं) तीस (होंति) होते हैं, जो (कडुयफलदेसगाइं) कटु फल को देने वाले हैं ॥ सू० २ ॥

भाव—'प्राणवध के गुण सम्पन्न तीस नाम होते हैं, जैसे-प्राणवध, १, उन्मूलना २, अविश्रम्भ ३, हिंस्र (स्य) विहिंसा ४, अकृत्य ५, घातना ६, मारणा ७, वध ८, उपद्रवण ९ त्रिपातना १०, आरम्भ समारम्भ ११, आयुः कर्म-उपद्रव, भेद अन्त या गालन, सवर्तन अथवा सक्षेप करण १२, मृत्यु १३, असयम १४, कटक

सूईमुह-कविल-पिङ्गलक्खग-कारंडग-चक्कवाग-उक्कोस-गरुल पिंगुल-सुय-बरहिण-मयणसाल-नंदीमुह-नंदमाणग-कोरंग भिंगारग-कोणालग-जीवजीवक-तित्तिर-वट्टक-लावक-कपिंजलक कवोतककाग-पारेवयग-चिडिग-ढिंक-कुक्कुड-वेसर-मयूरग चउरग-हय-पोंडरीय-सालग-करक-चीरल्ल-सेणवायस-य विहंग भिणासि-चास-विग्गुलि-चम्मट्ठिल-विततपक्खि-खहयर विहाणाकते य एवमादी। जल थल खग चारिणो उ पंचिंदिए पसुगणे विय तिय चउरिंदिए य विविहे जीवे, पियजीविए, मरणदुक्ख पडिकूले वराए हणंति बहुसंकिलिट्ठकम्मा। इमेहिं विविहेहिं कारणेहिं किंते? चम्म वसा-मंस-मेय-सोणिय-जग-फिप्फिस मत्थुलिंग हितयंत पित्त-फोफस दंतट्ठा, अट्ठि मिंज-नह-नयण कंणण्हारुणि-नक्क-धमणि-सिंग-दाढि-पिच्छ-विस-विसाण वालहेउं, हिंसंति य भमर मधुकरिगणे रसेसु गिद्धा, तहेव तेंदिए सरीरोवकरणट्ठयाए, किवणे बेंदिए बहवे वत्थोहरपरिमंडणट्ठा, अण्णेहि य एवमाइएहिं बहूहिं कारणसतेहिं अबुहा इह हिंसंति तसे पाणे, इमे य एगिंदिए बहवे वराए तसे य अण्णे तदस्सिए चेव तणुसरीरे समारंभंति अत्ताणे असरणे अणाहे अबंधवे कम्मनियलबद्धे अकुसल परिणाम मंदबुद्धिजण दुव्विजाणए, पुढविमये पुढविसंसिए, जलमए जलगए, अणलाणिल तणवणस्सति गण निस्सिए य तम्मय तज्जिते चेव तदाहारे तप्परिणत-वण्ण-गंध-रस-फास बोंदिरूवे-अचक्खुसे चक्खुसे य तसकाइए असंखे, थावरकाए य सुहुम-बायर-पत्तेय-सरीर नाम साधारणे अणंते हणंति अविजाणओ य परिजाणओ य जीवे इमेहिं विविहहिं कारणेहिं, किंते? करिसण-पोक्खरणी वावि वप्पिणि कूव सर-तलाग-चिति-वेतिय-खातिय-आराम-विहार थूभ-पागार-दार-गोउर-अट्टालग-चरिया-सेतु-संकम-पासाय विकप्प-भवण-घर-सरण-लेण-आवण-चेतिय-देवकुल-चित्त-सभा पवा-आयतणावसह-भूमिघर-मंडवाण य कए, भायण भंडो

खर-करभ-खङ्ग-वानर—गवय-वृक-शृगाल-कोल—मार्जार क्रोडशुनक श्रीकन्दल-कावर्त-कोकन्तिक-गोकर्ण-मृग-महिष-व्याघ्र-छगल-द्वीपिक-श्वान तरक्षाऽच्छभल्ल-शार्दूल-सिंह चित्तल-चतुष्पद विधान कृतांश्चैवमादीन्, अजगर गोणस वराहि मुकलि काकोदर दर्भपुष्पाऽऽसालिक-महोरगोरग-विधानकृतांश्चैवमादीन् क्षीरल-शरम्ब-सेह—शल्यक गोधोन्दुर नकुल-शरट—जाहक-मुगुस-खाडहिला-वातोत्पत्तिका गृहकोकिलिका-सरीसृपगणांश्चैवमादीन्, कादम्बक-बक—बलाका- सारस—आडासेतीका—कुलल-वञ्जुल पारिप्लव-कोब—शकुन-दीपिक पिपीलिका हंस—धार्तराष्ट्रक—भास—कुटीक्रोश क्रौञ्च दकतुण्ड ढेणिकालक सूचीमुख कपिल पिङ्गलाक्षक कारण्डक चक्रवाक उत्क्रोश गरुड पिङ्गुल शुक बर्हि मदनशाल नन्दीमुख नन्दमानक कोरङ्ग भृङ्गारक कोणालक जीवजीवक तित्तिर वर्तक लावक कपिञ्जलक कपोतक पारापतक चिटिका ढिङ्क कुक्कुट वेसर मयूरक चकोरक ह्रदपुण्डरीक करक चीरल्ल श्येन वायस विहङ्ग भेनाशित चाप वल्गुली चर्मास्थिल विततपक्षिण. खचरविधानककृतांश्चैवमादीन्, जलस्थलखचारिणश्च पञ्चेन्द्रियान् पशुगणान् द्वित्रिचतुरिन्द्रियान् विविधान् जीवान् प्रियजीवितान् मरण दुःख प्रतिकूलान् वराकान् घ्नन्ति बहुसंक्लिष्ट-कर्माण एभिर्विविधै. कारणै. किन्तत् ? चम वसा-मांस-मेद-शोणित—यकृत्-फिप्फिस-मस्तुलिङ्ग-हृदयान्त्र-पित्त—फोफस दन्ताऽर्थम्, अस्थि मज्ज नख नयन कर्ण स्नायु नासिका-धमनी शृङ्ग-दंष्ट्रा-पिच्छ—विष-विषाण-बाल-हेतु । हिंसन्ति च भ्रमर मधुकरी गणान् रसेषु गृद्धा । तथैव त्रीन्द्रियान् शरीरोपकरणार्थम् ! कृपणान् द्वीन्द्रियान् बहून् वस्त्रोपगृहपरिमण्डनार्थम् । अन्यैश्चैवमादिभिर्बहुभि कारण शतैरबुधा इह हिंसन्ति त्रसान् प्राणान्, इमांश्चैकेन्द्रियान् बहून् वराकान्त्रसांश्चान्यान् तदाश्रितांश्चैव तनुशरीरान् समारभन्तेऽत्राणान् अशरणान् अनाथानबान्धवान् कर्मनिगडबद्धान् अकुशलपरिणाममन्दबुद्धिजनदुर्विज्ञेयान् पृथ्वीमयान् पृथ्वीसंश्रितान्—जलमयान् जलगतान् अनलाऽनिलतृणवनस्पतिगणनिसृतांश्च, तन्मयतज्जीवान्-चैव तदाधारान् तत्परिणत—वर्ण-गन्ध रस स्पर्श बोन्दिरूपान्, अचाक्षुषान् चाक्षुषांश्च त्रसकायिकान् असंख्यान्. स्थावरकायान् सूक्ष्मबादर प्रत्येक शरीरनामसाधारणान् अनन्तान् घ्नन्ति, अविजानतश्च परिजानतश्च जीवान्, एतैर्विविधै कारणै, किन्तत् ? कर्षण पुष्करिणी वापी वप्रिणी (केदार) कूप सरस्तडाग-चिति-वेदिका-खातिकाऽऽराम-विहार स्तूप प्राकार द्वार गोपुराऽट्टालिका, रिका-सेतु-सङ्क्रम-प्रासाद-विकल्प-भवन गृह-शरण—लयनाऽऽपण चैत्य देवकुल चित्र

छोटे मत्स्य खलमत्स्य युगमत्स्य आदि, विविध जाति के मेढक (दुविहक्च्छभ) दो प्रकार के कच्छप मांसकच्छप और अस्थिकच्छप (णक्क मगर दुविह गाहा) नक्र, मकर-मगर-सुडामगर वमत्स्य मगर के भेद से दो तरह के होते हैं, । ग्राह जलजन्तु विशेष (दिलिवेढय मदुयसीमागार पुलुय) दिलिवेष्ट मन्दुक, सीमाकार, और पुलक ये सब ग्राहके भेद हैं (सुसुमार बहुप्पगारा जलयर विहाणा कते) सुसुमार, और अनेक प्रकार के जलचर के भेदो को करने वाले (एवमाइ्री) इसप्रकार के पाठीन आदि जीवों को, तथा (कुरग रूरु-सरभ-चमर-सवर दुरम्भ-ससय-पसय-गोणस रोहिय-) मृग रुरु -मृगविशेष सरभ-बडो देह वाले जंगलो पशुविशेष जो परासर नाम से भी कहे जाते है और वे हाथी को भी पीठपर उठा लेते हैं, चमर चमरी गाय, संवर-सांभर, उरभ्र-मेष-ऊनवाले भेड मेढरू, शशा, प्रशय-दो खुर वाले जगली पशुओं का भेद, गोण-गायें, रोहित-चौपाए जन्तु विशेष (हय गय खर करभ खग्ग बानर गवय विग सियाल-) घोडा, हाथो, गधा, ऊट, खड्ग-इसके दोनों बाजू पांख की तरह चमड़े लटकते हैं और शिर पर एक सींग होता है, बानर, गवय नीलीगाय था रोज, वृक-हिंसक जीव, शृगाल-सियाल, और (कोलमज्जार कोल सुणग सिरिय दलगावत्त कोकतिय गोकण्ण मिय महिस विग्ध छगल दोविया साण तरच्छ अच्छ भल्ल सद्दल सीह चिल्लल चउप्पय विहाणाकए) कोल उ दिर जैसा जन्तु, मार्जार, कोल सुणग बडा सूअर, अथवा कोड सूअर और शुनक-कुत्ता श्रीकन्दलक आवर्तक ये दोनों एक खुर वाले जन्तु है, कोकतिक लोमडी अथवा कौ कौ करके रात मे बोलने वाला जीव विशेष, गोकर्ण दो खुर वाला चतुष्पद विशेष, मृग-सामान्यहरिण, पहले कहे हुए कुरग आदि सींग व वर्ण के भेदविशेषण से समझने चाहिए, महिष-भैंस, व्याघ्र, छगल- बकरे की जाति, द्वीपिक-चीता, श्वान-जगली कुत्ते, तरक्षु, अक्षभल्ल औरशार्दूल, सिंह-केसरो-सिंह, चित्ताल-नख वालो पशु विशेप अथवा चित्रल-हरिण को आकृति-वाला द्विखुर पशुविशेप-कुरग आदि जिन विशेषणों से चतुष्पदो के भेद किये गए हैं उनको (य) और (एव माइ्री) इस प्रकार के अन्य चतुष्पद जीवों को फिर (अयगर) अजगर -बडा सांप, (गोणस) विना फण के साप, (वराहि) दृष्टि विष सर्प जो फण करने मे दक्ष होते है, (मउलि) मुकुली-फण वाले सर्प विशेष, (काउदर) काकोदर-एक जाति के सर्प, (दब्भपुप्फ) दर्भ पुष्प-एक जाति का दर्वीकर सर्प (आसालिय) आसालिक-आसालिया,[1] (महोरग[2]) बहुत बडा सर्प, (उरग विहाणक कए) उरग जाति के भेद को करने वाले इन जीवों को (य) और (एवमाइ्री)

इस प्रकार के दूसरे उरपरिसर्प–छाती के बल चलने वाले जीवों को तथा (छीरल-सरंब-सेह-सेल्लग–) क्षीरल और शरम्ब बाहु के बल पर चलने वाले जीव विशेष, सेह -तीखेकांटों से भरे हुए शरीर वाला जीव जो शेला नाम से प्रसिद्ध है, शल्यक- जीव विशेष, (गोधुंदर णउल-सरड –) गोधा गोह, उंदिर चूहा, नोला और शरट–कृकलास नामका जीव, (जाहग मुगुस खाडहिल वाउप्पिय घी रोलिय सिरोसिवगणे) जाहक–कांटे से ढके हुए शरीर वाला जीव, मुगुस मुंगूस, खाडहिला-टिलोडी-गिल्होरी, वातोत्पत्तिका-लोकरूढि से समझे" घोरोलिय–गृहकोकिलिका–घर में रहने वाली गोह, हाथ से सरक कर चलने वाले जीवों के भेद करने वाले इन जीवों को (य) और (एवमादी) इस प्रकार के अन्य भी भुजपरिसर्प जीवों को तथा (कादंवक) हंस विशेष (वक) बगुला (वलाका) बिसकण्ठिका, (सारस) सारस नाम के प्रसिद्ध पक्षी, (आडासेतीय) आडासेतीक जिसको आड कहते हैं (कुलल) कुलल, (वंजुल) वंजुल (परिप्पव कीव सउण-दीविय (पीपीलिय) हंस–) पारिप्लव–खदिर चञ्चु, कीव शकुन-और दीपिक ये पक्षि-विशेष हैं, पी पी बोलने वाले पक्षी को पीपीलिक कहते हैं, हंस-श्वेतहंस (धत्तरिट्ठग भास कुलीकोस कुंच दगतुंड ढेणियालग) धार्तराष्ट्र-कृष्ण मुख व चरण वाले हंस, भास और कुटीक्रोश–पक्षि विशेष, क्रौंच, उदकतुंड, ढेणिकालक (सूईमुह कविल पिंगलक्खग कारडग) सूचीमुख, कपिल, पिंगलाक्षक और कारडक-अप्रसिद्ध पक्षी विशेष (चक्कवाग उक्कोस गरुल पिंगुल सुय वरहिण मयणसाल) चक्रवाक, उत्क्रोश, कुरर, गरुड पिंगल-अप्रसिद्ध, शुक पोपट, बर्ही-पांखवाले मयूर-मोर, मदनशाला–मैना, (नंदीमुह-नंदमाणग–कोरग भिंगारग कोणालग) नंदीमुख, नन्दमानक कोरक और भृङ्गारक-अप्रसिद्ध पक्षी विशेष, भृंगारिका रात में झंझ बोलने वाला छोटा पक्षिविशेष, कोणालक-पक्षिविशेष, (जीव जीवक तित्तिर वट्टक लावक कपिंजलक कवोयक पारेवयग चिडिग ढिंक कुक्कुड वेसर) जीव जीवक–चकोर, तित्तिर, वत्तक वर्तक-जिसको बतक कहते हैं

---

१ आसालिया इसका शरीर उत्कृष्ट १२ योजन तक लम्बा होता है और यह चक्रवर्ती के समय बड़े नगर आदि की भूमि के नीचे उत्पन्न होता है।

२ महोरग-यह मनुष्य क्षेत्र के बाहर होता है, तथा इसका शरीर उत्कृष्ट में हजार योजन तक लम्बा होता है।

लावक-लवा नाम का पक्षि विशेष, कपिंजलक, कपोत-कबूतर पारावत-कबूतर का ही एक भेद, चिटिका-कलंविका-चोडी विशेष, ढिक-पक्षिविशेष, कुर्कुट-मुर्गी, वेसर-अप्रसिद्धपक्षी (मयूरग-चउरग-हय—पोंडरीय—करक—वीरल्ल-सेण-वायसय विहग भिणासि-चास-वग्गुलि—चम्मट्ठिल—विततपक्खि—खहयर—विहाणाकए) मयूरक-कलाप रहित मोर, चकोर, हद पुंडरीक और शालक या करक तथा वीरल्ल ये कोई अप्रसिद्ध पक्षिविशेष हैं, श्येन-बाज, वायसविहङ्ग-काकपक्षा, भेनाशित-पक्षीविशेष, अथवा कहीं वायस और विहंग भेद नाशित ऐसे नाम मिलते हैं। चाषपक्षी, वल्गुली-वागलपक्षी चर्मास्थिल-चमगीदड या चर्म चिडी वितत पक्षी-यह मनुष्य क्षेत्र के बाहर होता है, खचर के भेद करने वाले इन पक्षिओं को (य) और (एवमादी) ऐसे कादम्बक आदि पक्षिओंको, पूर्वोक्तजीवों को संग्रह वचन से कहते हैं-(जल थल-खगचारिणो उ पचिदिए) जल स्थल-भूमि और आकाश मार्ग से चलने वाले पञ्चेन्द्रिय (पसु गणे) पशु जाति के प्राणियों को तथा (बिय तिय चउरिंदिए) दो तीन और चार इन्द्रिय वाले (विविहे जीवे) अनेक प्रकार के जीव (पिय जीविए) प्रिय जीवन वाले व (मरण दुक्ख पडिकू ले) मृत्यु के दु ख को नहीं चाहने वाले (वराए) बेचारे क्षुद्र जीवों को (बहुसंकिलिट्ठकम्मा) बहुत क्लेशयुक्त कर्मों को करने वाले हिंसक (हणंति) मारते हैं। अब हिंसा के कारण कहते हैं (एमेहिं) इन (विविहेहिं) आगे कहे जाने वाले अनेक (कारणेहिं) कारणों से (किन्ते ?) वे कौनसे प्रयोजन हैं ? चम्म-वसा-मस-मेय-सोणिय-जग-फिप्फिस-) चमड़ा, वसा-चरबी, मांस, मेद-देह का धातु विशेष शोणित-रक्त, यकृत्-पेट के दाहिने बाजू मे रहने वाली मासग्रन्थि, फिप्फिस-फेफडा, (मत्थुलु ग-हिंतयत-पित्त-फोफस-दतट्ठा-) मस्तुलिङ्ग-कपाल का भेजा, हृदय-हिये का मांस, अन्त्र-आंत, पित्त-शरीर का एक दोष, फोफस और दांत के लिये, तथा-(अट्ठि-मिंज-नह-नयण-कण्ण-ण्हारुणि-नक्क-धमणि सिंग—दाढि-पिच्छ-विस-विसाण—वाल हेउ) अस्थि-हड्डी, मज्जा, नख नेत्र, कान, स्नायु-नसें, नाक, धमनी-नाडी, सींग, दाढ, पिच्छ-पूछ पख, विष-सर्प आदिका, विषाण-हाथी का दांत और वाल—केश, इन सब के निमित्त मारते हैं (य) और (हिंसति) मारते हैं (भमर मधुकरी गणे) भमर और भमरिओं के समूह को (रसेसुगिद्धा) मधु आदि रस में गृद्ध-लालची जीव, (तहेव) इसी तरह (तेंदिए) तीन इन्द्रिय वाले-जू आदि जीवों को (सदीरोवकरणट्ठयाए)

शरीर के उपकरणों के लिये (किवणे) दया के पात्र-बेचारों को मारते हैं (बहवे) बहुत से (बेंदिए) दो इन्द्रिय वाले—लट आदि जीवों को, (वत्थोहर-परिमण्डणत्था) वस्त्र व घर की शोभा के लिये तथा वस्त्र के लिये घर के लिये व शोभा के लिये मारते हैं (अण्णेहि य) और दूसरे (एवमाइएहिं) इत्यादि पूर्व कहे केश आदि (बहूहिं) बहुत से (कारणसतेहिं) सैकड़ों कारणों से (अबुहा इह) इस संसार में अज्ञानी जीव (तसे पाणे) त्रस प्राणियों को (हिंसंति) मारते हैं (इमे य) और इन (एगेंदिए) एकेन्द्रिय-स्थावर जीवों को, तथा (बहवे वराए) बहुत से बेचारे (तसे) त्रस जीव (य) और (अण्णे) अन्य (तदस्सिए) उनके आश्रित रहने वाले (तणुसरीरे चेव) जो सूक्ष्म शरीर धारी हैं तथा (अत्ताणे) जिनके कोई रक्षक नही हैं, वैसे त्राण रहित (असरणे) हितैषी नहीं होने से जो अशरण हैं, (अणाहे) नाथ[1] नहीं होने से अनाथ (अबधवे) बान्धव रहित (कम्मनिगलबद्धे) कर्म के बन्धन में बन्धे हुए (अकुसल परिणाम मदबुद्धिजणदुव्विजाणए) अशुभ परिणाम के उदय से जो मन्द बुद्धि हैं ऐसे प्राणिओं के लिये दुर्विज्ञेय—कठिन से जानने योग्य हैं, उन जीवों का (समारभंति) हनन करते हैं, फिर (पुढविमये) पृथ्वी कायिक (पुढवीसस्सिए) पृथ्वी के आश्रित-अलसिया आदि त्रस जीवों को (जलमए) अपकाय के जीव (जल गए) जल में रहे हुए कीडे व सेवाल आदि त्रस स्थावर जीव (अणला णिल तण वण-स्सतिगण निस्सिए) अग्नि वायु व तृण वनस्पति गण के आश्रयमें रहे हुए जीव (य) और (तम्मय तज्जिते) अग्निकायिक वायुकायिक और वनस्पति कायिक तथा उन योनिओं के जीव जो (तदाहारेच्चेव) पृथ्वी आदि के आधार वाले हैं या पृथ्वीआदिकाही आहार करने वाले हैं (तप्परिणत वण्ण गंध रस फास बोंदिरूवे) उन पृथ्वी आदि के वर्ण-गन्ध रस और स्पर्श से परिणत—बने हुए देहाकार वाले अर्थात् जिन का शरीर पृथ्वी आदि के समान ही वर्ण आदि वाला है। (अचक्खुसे) अचाक्षुष नजर में नहीं आनेवाले (य) और (चक्खुसे) दृष्टि मे आने वाले-चाक्षुष (असंखे तसकाइए) इस प्रकार असख्य त्रसकायिक जीव (य) और (थावर काए) स्थावर कायके (सुहुम वायर पत्तेय सरीर नाम

---

१ अनाथ अलब्ध वस्तु का लाभ रूप योग और लब्ध वस्तु की रक्षा रूप क्षेम, इन दोनों योग क्षेमों को करने वाले नाथ कहे जाते हैं, जिसके वे नहीं हैं वह अनाथ है।

साधारणे अणंते) सूक्ष्म, बादर-स्थूल, प्रत्येक शरीरी[1] और साधारण[2] अनन्त जीवों को (हणंति) मारते हैं (अविजाणओ) अपने वध को नहीं जानने वाले (य) और (परिजाणओ) सुख दुःख आदि से मरण का अनुभव करने वाले (जीवे),जीवों को (इमेहिं) इन नीचे कहे जाने वाले (विविहेहिं) अनेक प्रकार के (कारणेहिं) कारणो से (किंते ?) वह प्रयोजन कौनसा है ? (करिसण पोक्खरणी वावि वप्पिणि कूव सर तलाग चिति वेतिय खातिय आराम विहार थूभ पागार दार गोचर अट्टालग चरिया सेतु सकम पासाय विकप्प भवण घर सरण लेण आवण चेतिय देव कुल चित्त सभा पवा आयतणावसह भूमिघर मडवाणयकए) खेती के लिये पुष्करिणी-कमल वाली या चौकोण वावडी, वापी-गोल या विना कमल के बावडी, वप्रिणी-केदार, कूआ, सरोवर, तालाब, चिति—भीत आदिका चयन-बनाना या मृतक को जलाने के लिये बनाई गई चिता, वेदिका-चबूतरा, खातिका-खाई, आराम-बगीचा, विहार—बौद्ध आदिका मठ, स्तूप-स्मृति चिन्ह विशेष, प्राकार—कोट, द्वार-दरवाजा, गोपुर-नगर का मुख्य द्वार, अट्टालक-कोट के ऊपर की अटारी, चरिका—नगर और उसके कोट के बीच का ८ हाथ लम्बा मार्ग, सेतु-पाल या पुलिया, सक्रम—विषम स्थान से उतरने का मार्ग, प्रासाद—महल—राजाओं के भवन, विकल्प—प्रासाद के भेद भवन चोशाल आदि, गृह—सामान्य घर, शरण—तृण—घास के घर, लयन-पर्वत में खोद कर बनाए घर, आपण-दुकान, चैत्य-मूर्तियाँ अथवा चितास्थान पर बना हुआ स्मारक, देवकुल-शिखर युक्त देवमन्दिर, चित्रसभा-सचित्र मण्डप, प्रपा-पानी की प्याऊ, आयतन-देवस्थान, आवसथ-परिव्राजकोंका आश्रम, भूमिगृह-तलघर और मण्डप-छाया वगैरह के लिये बनाया गया कपडे का मण्डप, इन सबके लिये (य) और (भायण भडोवगरणस्स विविहस्स अट्ठाए) सोने आदि के भाजन और मिट्टी के भाण्ड अथवा किरार्णे—लवणादि व उपकरण ऊखल आदि के और विविध-वस्तुओं के लिये (पुढविं) पृथ्वी कायिक जीव की (हिंसति) हिंसा करते हैं, (मंदबुद्धिया) कम बुद्धि वाले लोग (जलच) और जल काय के जीवों की

---

१ एक शरीर में एक जीव हो उसको प्रत्येक शरीरी कहते हैं।

२ एक औदारिक शरीर में साधारण रूपसे रहने वाले अनेकों जीव वाली वनस्पति को साधारण कहते है।

(मज्जणय-पाण-भोयण-वत्थ-धोयण—सोयमादिएहिं) स्नान मज्जन जलपान भोजन और वस्त्रों को धोने हाथ पैर धोने, शुचि करने आदि कारणों से हिंसा करते हैं (पयण पयावण जलावण विदंसणेहिं अगणिं) पचन पाचन रसोई बनाने—सिझाने, चावल सिझवाने जलावन खुद या दूसरे से आग को सुलगाने विदर्शन दीपक जलाना आदि कारणों से अग्नि को (सुप्प-वियण-तालयंट—पेहुण मुह-करयल-सागपत्त-वत्थमादिएहिं) सूप सूपड़ा, व्यजन—बीजन तालवृन्त-पंखा-पेहुण—मोर पीछा; मुख, करतल—हाथ, शाकपत्र—सागके पत्ते और वस्त्र आदि से (अणिलं) वायुकायिक जीवों को हिंसा करते हैं, (अगार परियार भक्ख भोयण-सयणासण-फलक-मुसल-उखल-तत विततातोज्ज—वहण—वाहण—मंडप-विविहभवण—तोरण—विडंग-देवकुल—) घर, परिचार वृत्ति या तलवार आदि की म्यान, भक्ष्य मोदक आदि, भोजन-रोटी आदि, शयन-शय्या, आसन—बिछौना, फलक-पीठ व कुर्सी आदि, मूसल, ऊखल, तत-वीणा आदि वितत पटह-ढोल आदि, आतोद्य—बाजे, वहन-नौका आदि, वाहन—शकट गाडी आदि, मण्डप, विविध भवन—अनेक प्रकार के चोशाले आदिभवन, तोरण, विटङ्क-कबूतरों के लिये बनाये हुए घर-कपोत पाली, देवकुल-देवल (जालयद्ध चंद निज्जूग-चंद सालिय वेतिय णिस्सेणि दोणि-चंगेरि-खील-मेढक-सभा—पवा—वसह—गंध मल्लाणुलेवण-अंबर-जुय-नंगल-मइय-कुलिय-संदण-सीया-रह—सगड-जाण-जोग्ग अट्टालग-चरिअ दार—गोपुर-फलिहा-जंत-सूलिय-लउड-मुसंढि—सतग्घि बहुपहरणावरणुवक्खरण कए) जालक-जालियाँ, अर्द्धचन्द्र-सोपान या सौध विशेष, निर्यूहक—दरवाजे पर घोडे के मुह-की आकृतिवाली निकली हुई लकड़ियां, चन्द्रशालिका-प्रासाद के ऊपर की शाला वेदिका, निस्सरणी-चढने व उतरने की माळ, द्रोणी-छोटी नौका, चंगेरी-फूल डाली या वाद्य विशेष, कील-खीलें, मेढक-खुंटे, सभा, पवा-प्याऊ, आवसथ-परिव्राजकों का आश्रय, गंध—पावडर आदि, माल्य—फूल माला, अनुलेपन—विलेपन, अम्बर—कपडे यूप-युग, लांगल—हल, मतिक—जमीन जोतने के बाद ढेला फोडने के लिये लम्बा काष्ठ, जिससे भूमि बराबर की जाय कुलिक—एक प्रकार का हल, स्यन्दन-युद्ध और देव यात्रा में जाने के लिये दो प्रकार के रथ, शिविका—बडी पालकी, रथ, शकट—गाडी, यान-यानविशेष, युग्य-वेदिकायुक्त दो हाथ का लपान विशेष, अट्टालक-अट्टालिका, चरिका-शहर और कोट के बीच में आठ हाथ का चौडा मार्ग, द्वार, गोपुर-नगर का मुख्य द्वार, परिघा-आगल, यंत्र-अरहट,

आदि, शूलिका-शूली-वींधने का अस्त्र वा शलक-कीलाविशेप, लकुट, मुशुंढि--प्रहरण-विशेष, शतघ्नी वडी लाठी या तोप आदि और बहुत से प्रहरण—करवत आदि व आवरण अस्त्र विशेष उपकर—घर के उपकरण मच आदि, इन सबके लिये (अण्णेहिय) और अन्य-इत्यादि (बहुहि कारणसएहिं) बहुत से सैकडो कारणों से (हिंसति ते तरुगणे) वे अल्पज्ञ जीव वृक्ष समूह-वनस्पति की हिंसा करते हैं (भणिताभ०) ऊपर की गणना मे कहे गए व विना कहे (एवमादी) इत्यादि इस प्रकार के (सत्ते) जीवों को (सत्तपरिवज्जिया) जो सत्त्व--बल से रहित हैं, वैसो को (उवहणंति) मारते हैं, (दढमूढा) दृढमूढ-पक्के मूर्ख और (दारुणमती) क्रूर बुद्धिवाले (कोहा) क्रोध से (माणा) मान-अहङ्कार से (माया) कपट से (लोभा) लोभ से (हस्स रती अरती) हास्य—मजाक, रति अरति-राग या ग्लानिसे (सोय वेदत्थी) शोक और वेदानुष्ठान के लिये, (जीय कामत्थ धम्महेउ) जीत—जीवन या मर्यादा, धर्म, अर्थ और काम-विपय के हेतु उपरोक्त हिंसा करते हैं, (सवसा) अपनी इच्छा से या (अवसा) कई पराधीनपने से (अट्ठा) प्रयोजन से (अणट्ठाय) और विना प्रयोजन से (तसपाणे) त्रस प्राणी (थावरेय) और स्थावर—स्थिति शील पृथ्वी आदि के जीवों को (हिंसति मन्द बुद्धि) मन्द बुद्धि वाले लोग मारते हैं। इसी बात को स्पष्ट करके कहते हैं—(सवसा हणति) अपनी इच्छा से कई मारते हैं (अवसा हणति) परतन्त्र होकर कुछ मारते हैं (सवसा अवसा दुहओ हणति) स्वाधीन और पराधीन दोनों तरह से हिंसा करते है। (अट्ठा हणति) अर्थ से याने प्रयोजन से मारते हैं। (अणट्ठा हणति) निष्प्रयोजन हिंसा करते हैं (अट्ठा अणट्ठा दुहओ हणति) सप्रयोजन व निष्प्रयोजन दोनो तरह से वध करते हैं (हस्सा हणति) हास्य से मारते हैं, (वेरा हणति) वैर से मारते हैं, तथा (रतीय हणति) रति-अनुराग से मारते हैं (हस्स वेरा रतीय-हणति) हास्य वैर व खुशी से मारते हैं (कुद्धा हणति) क्रोध वश मारते हैं (लुद्धा हणति) लोभ के वश मारते हैं (मुद्धा हणति) मोह वश मारते हैं (कुद्धा लुद्धा मुद्धा हणंति) क्रोध वश लोभ वश व मोह वश वध करते हैं (अत्था हणति) धन के लिये वध करते हैं (धम्मा हणति) धर्म के लिये कई हिंसा करते हैं, (कामा हणति) विषय के कारण हिंसा करते हैं (अत्था धम्मा कामा हणति) धन धर्म और सासारिक विपय साधन के लिये हिसा करते हैं। सू० ३॥

भाव उपरोक्त तीसरे सूत्र में यह बताया गया है कि इस प्राण बध को कौन करते हैं व क्यों करते हैं तथा किन जीवों का वध करते हैं ? इन सन्देहों का समाधान इस प्रकार है--"जो जीव संयम और विरति से रहित व अशान्त हैं जिन के विचार तथा आचरण बुरे हैं, वे ही दूसरे को दुःख देते हैं और इसमें खुद खुशी मनाते हैं। वे लोग ही इस भयङ्कर हिंसा-कार्य को अनेक प्रकार से करते हैं, निम्नलिखित त्रस स्थावर जीवों पर वे द्वेष रखते या अप्रीति वाले होते हैं, वे जीव ये हैं-'पाठोन मत्स्य आदि अनेक प्रकार के जलचर जीव मृग महिष आदि अनेक प्रकार के भूमिचर पशु जीव और अजगर सर्प व आशालिक आदि उरपरिसर्प—पेट के बल चलने वाले जीव, क्षीरल गोह उ दिर (चूहे) आदि भुजासे सरककर चलने वाले भुजपरिसर्प जीव, और हंस काक आदि आकाश गामी-खेचर पक्षि जीव, इस प्रकार जल स्थल, और आकाश मार्ग से चलने वाले पञ्चेन्द्रिय तिर्यग् जीव, इन में बहुत से नाम अप्रसिद्ध हैं जो रूढि से समझने चाहिये। दो तीन तथा चार इन्द्रिय वाले अन्य विविध जीव जिन्हें कि निज जाति समुचित जीवन परम प्रिय है और जो मरणे से बहुत डरते हैं, हिंसा रसिक उन जीवों को अनेक कारणों से हिंसा करते हैं। वे हिंसा के ये कारण हैं- चमडा १ चर्वी २ मांस ३ मेद ४ रक्त ५ यकृत् ६ फेफसा ७ भेजा ८ हृदय ९ आंतें १० पित्त ११ फोफस १२ और दांत १३ हड्डी १४ मज्जा १५, नख १६, आंख १७, कान १८, स्नायु १९, नस २० नाक २१ धमनी नाडी २२, सींग २३, दाढ २४, पूंछ-पंख २५, काल कूट आदि विष २६, हाथी दांत २७ और बाल इन सब वस्तुओं के लिये हिंसा करते हैं। ऐसे ही रसमें गृद्ध (लालची) लोग भंवरे व मधु मक्खी को मारते हैं, शरीर व वस्त्र आदि के लिये जूं आदि त्रीन्द्रियों का वध करते हैं। रेशमी आदि वस्त्रों के लिये और कीडे और घर की शोभा के लिये शख आदि के चूने मे सीप व शख आदि की हिंसा करते हैं। इनके सिवाय अन्य बहुत से कारणों से मूर्ख लोग त्रस जीव तथा बेचारे एकेन्द्रिय जीवों को हनन करते हैं, त्रसों को मारते व त्रसों के आश्रय में रहने वाले अनेक सूक्ष्म शरीरी जीवों को मारते हैं। जो अनिष्ट के निवारण में व इष्ट के साधन मे असमर्थ हैं। जो अनाथ हैं, बन्धु विहीन हैं। तथा कर्म बन्धन मे जकडे हुए हैं और जो अशुभ विचार वाले मन्द बुद्धिओं से नहीं जाने जाते और जैसे बहुत से लोक इनको आज भी जीव नहीं मानते हैं। पृथ्वी कायिक तथा उनके आश्रित अन्य जीव, अपूकायिक व जल में रहने वाले अन्य जीव, ऐसे अग्नि वायु और वनस्पति के

मूल जीव तथा उनके आश्रय में रहकर उन्हीं का आहार करने वाले जो त्रस जीव हैं, पृथ्वी आदि आश्रय के अनुरुप ही जिनके रंगरूप होते हैं। जैसे हरे घास पर हरे कीडे और सूखे पर पीले होते हैं, कुछ जीव दिखने वाले और कुछ नहीं दिखने वाले है। ऐसे असख्य त्रस और सूक्ष्म बादर, प्रत्येक व साधारण भेदवाले अनन्त स्थावर जीव को मारते हैं। वे ज्ञान विशेष से हीन होकर भी सुख दु'ख का अनुभव करने वाले हैं। स्थावर जीवों की हिंसा के कारण निम्नोक्त हैं-''खेती, कूंआ, वावडी, तालाव, तथा सरोवर, चिता-वेदिका खाई, वाग, मठ, स्तूप, कोट. द्वार, नगर का मुख्य द्वार, अट्टालिका, सडक, पुल, संक्रम, अनेक प्रकार के भवन, साधारण घर, चैत्य—मन्दिर,—स्मारक सभा और तलघर व मण्डप आदि के लिये धातु व मिट्टी के पात्र और अन्य विविध उपकरणों के लिये, मन्द वुद्धि लोग पृथ्वी को हिंसा करते हैं। नहाने धोने, और पीने तथा भोजन व शरीर आदि की शुद्धि के लिये जल—अप् कायिक जीवों की हिंसा करते हैं। पकाने जलाने और रोशनी आदि कारण से अग्नि कायिक जीवों की हिंसा करते हैं। सूप, वाजने, पंखे और हाथ, मुख व वस्त्र आदि से वायु कायिक जीवों की हिंसा करते हैं। घर परिचार भोजन, शयन, आसन, पीठ ऊखल, मूसल, अनेक प्रकार के वाद्य नौका, गाडी आदि वाहन, मडप, विविध भवन, तोरण, कबूतर खाना, देवल, जाली, सीढी, दरवाजे के आगे घोडले, वेदिका, निसरणी, छोटी नौका, चगेरी, कील, सभा, प्याऊ, मठ, गधक-पाउनडर, फूलमाला, विलेपन. वस्त्र, यूप, हल, खेत फोडने की लकडी, सामान्य हल, स्यन्दन—सांग्रामिकरथ, पालकी, गाडी-साधारण रथ, यान, युग्म, अट्टालिका, चरिका-नगर व कोट के बीच का मार्ग, द्वार, गोपुर, परिघा, जल यत्र—रेंट, शूली, लाठी भुशुण्डी—बन्दूक, तोप की तरह का शस्त्र विशेष, अन्य प्रहरण, तथा घर के उपकरण—आदि के लिये ऐसे बहुतेरे अन्य कारणों से वृक्षों को काटते हैं। कहे हुए से अन्य भी बलहीन प्राणिओं को मूढ मति व दारुण विचार वाले लोग मारते हैं। अन्तरङ्ग कारण भी कुछ हैं—जैसे कि क्रोध मान—माया लोभ, हास्य और रति अरति, तथा शोक व वेद विहित अनुष्ठान के लिये। सक्षेप मे कहा जाय तो जीवन मर्यादा तथा धर्म व धन और काम के लिये हिंसा होती है। स्ववश या पर वश, प्रयोजन से या निष्प्रयोजन भी—मन्द वुद्धि लोग त्रस जीव तथा स्थावर जीवों को मारते हैं। व्यक्ति गत विचार से कई स्ववश मारते। कई परवश होकर मारते हैं। और कई दोनों तरह से। कोई अर्थ—प्रयोजन से मारते हैं, दूसरा निष्प्रयोजन

और कोई दोनों प्रकार से मारते हैं। कोई हास्यवश, कई वैर वश और कोई एक रतिवश मारते हैं, कई इन तीनों के चलते मारते। कई क्रुद्ध होकर हिंसा करते, कई लुब्ध होकर तो अन्य मोहसे मुग्ध होकर मारते हैं, कितने ही क्रोध, लोभ व मोह तीनों के वश हिंसा करते हैं। धन पाने के लिये हिंसा करते, धर्म के लिये हिंसा करते और कितने ही कामुक बनकर मारते। दूसरे कितने ही अर्थ धर्म व काम वश हिंसा करते हैं ॥ सूत्र ३ ॥

इस प्रकार अर्थ धर्म और काम इनमें से किसी भी हेतु से इच्छा पूर्वक हिंसा करना मदबुद्धि पन कहा गया है। प्राण वध का स्वरूप, उसके नाम और जैसे वह किया जाता है, ये तीन द्वार कहे गए। चौथे द्वार में प्रतिज्ञा के अनुसार हिंसा का फल कहना चाहिए। किन्तु कर्ता के अधीन में क्रिया होती है और दूसरे इस का वक्तव्यभी अल्प है, इस लिये प्रधानतासे पहले प्राण वध को करने वाले 'कर्तृ द्वार' का विचार करते हैं—"

मूल—"कयरे ते ? जे ते सोयरिया, मच्छबंधा, साउणिया, वाहा, कूरकम्मा, वाउरिया, दीवितबंधणप्पओगतप्पगल जाल वीरल्लगायसीदब्भ वग्गुरा कूड छेलिहत्था, हरिएसा, साउणिया य, वीदंसग पासहत्था, वणचरगा, लुद्धय-महुघात पोतघाया, एणीयारा, सर-दह-दीहिअ-तलाग-पल्लल-परिगालण-मलण-सोत्त-बंधण सलिलासयसोसगा, विसगरस्स य दायगा, उत्तण-वल्लर-दवग्गि—णिद्दय पलीवका कूरकम्मकारी, इमे य बहवे मिलक्खु-जाती, केते ? सक-जवण-सवर-बब्बर-गाय-मुरुंडो-दभडग-तित्तिय-पक्कणिय-कुलक्ख- गोंड-सीहल-पारस कोंचंध-दविल-बिल्लल-पुलिंद—अरोसडोंब- पोक्कण- गंधहारग पहलीय—जल्ल—रोम—मासव उस मलया-चुंचुया य-चूलिया कोंकणगा-मेत्त—पण्हव-मालव- महुर—आभासिया—अणक्क चीणल्हासिय—खस—खासिया—नेहुर-मरहट्ठ-मुट्ठिय—आरब डोंबिलग-कुहण-केकय-हूण-रोमग-रुरु-मरुगा-चिलाय विसय-वासी य पावमतिणो। जलयर थलयर सणप्फतोरग-खहचर संडास-तोंड-जीवोवघायजीवी, सण्णी य असण्णिणो य पज्जत्ता असुभलेस्सपरिणामा, एते अण्णे य एवमादी करेंति पाणाति-

वाय करणं, पावा—पावाभिगमा-पावरुई पाणवहकयरती पाण-
वहरूवाणुट्ठाणा पाणवहकहासु अभिरमंता, तुट्ठा पावं करेत्तु
होंति य बहुप्पगारं । तस्स य पावस्स फलविवागं अयाणमाणा
वड्ढंति महब्भयं अविस्सामवेयणं दीहकालबहुदुक्खसंकडं
नरय तिरिक्ख जोणिं, इओ आउक्खए चुया असुभकम्मबहुला
उववज्जंति नरएसु, हुलितं महालएसु वयरामयकुड्डरुद्द निस्सं-
धिद्दार विरहिय निम्मद्दव भूमितल खरामरिस विसम णिरय घर
चारएसुं, महोसिण सयावतत्त दुग्गंधविस्सउव्वेयजणगेसु
बीभच्छ दरिसणिज्जेसु निच्चं हिमपडलसीयलेसु कालोभासेसु
य भीम गंभीर लोमहरिसणेसु णिराभिरामेसु निप्पडियारवाहि
रोग जरापीलिएसु अतीवनिच्चंधकारातिमिस्सेसु पतिभएसु व-
वगय गह चंद सूरणक्खत्त जोइसेसु मेयवसामंस पडल पोच्चड
पूयरुहिरुक्किण्ण विलीणचिक्कणरासियावावण्ण कुहियचिक्खल्ल
कद्दमेसु कुकूलानलपलित्तजालमुम्मुर—असिक्खुर करवत्त
धारासु निसित-विच्छुयडंकनिवातोवम्म—फरिस अतिदुस्सहेसु
य अत्ताणासरण-कडुय—दुक्ख परितावणेसु अणुबद्ध निरंतर
वेयणेसु जमपुरिससंकुलेसु, तत्थ य अंतोमुहुत्तलद्धि भव-
पच्चएणं निव्वत्तेंति उ ते सरीरं, हुंडं बीभच्छदरिसणिज्ज बीहणगं
अट्ठिण्हारुणहरोमवज्जियं असुभ दुक्खविसहं, ततो य पज्जत्ति-
मुवगया इंदिएहिं पंचहिं वेदेंति असुभाए वेयणाए उज्जल बल
विउल उक्कड क्खर फरुस पयंड घोर बीहणग दारुणाए, किंते ?
कंदु महाकुंभिय पयण पउलण तवग तलण भट्ठ भज्जणाणि
य, लोहकडाहुक्कड्ढणाणि य, कोट्टबलिकरण कोट्टणाणि य, सामलि
तिक्खग्ग लोह कंटक अभिसरण पसारणाणि, फालण विदाल-
णाणि य, अवकोडक बंधणाणि, लट्ठिसय तालणाणि य, गलग
बलुल्लंबणाणि सूलग्गभेयणाणि य, आएसपवंचणाणि, खिंसण-
विमाणणाणि, विघुट्ठपणिज्जणाणि, वज्झसयमातिकाति य
एवं ते ॥ सू० ॥ ४ ॥

छाया—"कनरेते ? (कृष्णादिकारणैः प्राणिनो घ्नन्तीति) प्रश्न उत्तर माह,— येते शौकरिका, मत्स्यबन्धाः, शाकुनिका, व्याधाः, क्रूरकर्माणो, वागुरिकाः द्वीपिक बन्धन प्रयोग-तप्र गल जाल वीरल्लकाऽऽयसी दर्भवागुरा-कूटच्छेलिका हस्ताः, हरिकेशाः, शाकुनिकाश्च विदंशक पाश हस्ता, वन चरकाः, लुब्धक-मधुघात पोतघाताः, एणीचाराः, प्रेणोचाराः सरोह्रद-दीर्घिका तडाग—पल्वल-परिगा लन-मलन-स्रोतोवन्धन सलिलाऽऽशयशोषकाः, विषगरलस्य च दायकाः, उत्तृण-वल्लर-दावाग्नि निर्दय प्रदीपकाः, क्रूरकर्मकारिण इमे ये बहवो म्लेच्छजातीयाः, केते ? शक-यवन—शवर—बर्बर-काय—मुरुण्ड-उद्र—भडक-तित्तिक-पक्कणिक-कुलाक्ष-गौड-सिंहल-पारस-क्रौञ्च-अन्ध- (आन्ध्र) द्राविड-बिल्वल-पुलिन्द—अरोप-डोंब-पोक्कण—गन्धहारक—बहलीक-जल्ल-रोम-माष—बकुश मलयाः चुञ्चुकाश्च, चूलिकाः, कोंकणकाः मेद-पह्नव-मालव-महुर—आभाषिक अणक्क-चीन—ल्हासिक-खस—खासिकाः, नेहर-महाराष्ट्र-मौष्टिक-आरब, डोबिलक कुहण-केकय-हूण-रोमक-रुरु-मरुकाः, चिलात विषयवासिनश्च पापमतयः, जलचर स्थलचर सनख पदोरग खेचर सन्दंश तुण्ड जीवोपघातजीविनः, सज्ञिनश्च असंज्ञिनश्च पर्याप्ता अशुभ लेश्या परिणामा एतेऽन्येचैवमादयः कुर्वन्ति प्राणाति पात करणं पापा. पापाभिगमा. पापरुचयः प्राणवधकृतरतिकाः प्राणवधरूपाऽनुष्ठाना. प्राणवधक कथासु अभिरममाणाः तुष्टाः पापं कृत्वा भवन्ति । बहुप्रकारम् ।

तस्य च पापस्य फल विपाकमजानन्तो वर्द्धयन्ति महाभयामविश्रामवेदनाम्, दीर्घकाल बहु दुःखसंकटां नरकतिर्यग्योनिम्, इत आयुःक्षये च्युता अशुभ कर्म बहुला उपपद्यन्ते नरकेषु लघुकं - शीघ्रं महालयेषु वज्रमय कुड्य रुद्ध निःसन्धि द्वार विरहित निर्मार्दव भूमितल खरामर्श विषम निरयगृह चारकेषु महोष्ण सदा प्रतप्त दुर्गन्ध विश्रोद्वेगजनकेषु बीभत्सदर्शनीयेषु नित्य हिमपटलशीतलेषु कालाऽवभासेषु च भीमगम्भीरलोमहर्षणेषु निरभिरामेषु निष्प्रतीकारव्याधिरोगजरा पीडितेषु अतीव नित्यान्धकारतमिस्रेषु प्रतिभयेषु व्यपगत ग्रहचन्द्र सूर्य नक्षत्र ज्योतिष्केषु, मेदोवसा मांस-पटलातिनिविड पोच्चर पूय रुधिरोत्कीर्ण विलीन चिक्कण रसिका व्यापन्न कुथित चिक्खल्ल कर्दमेषु, कुकूलाऽनल प्रदीप्त ज्वालमुर्मुराऽसि क्षुर कर पत्रधारासु निशित वृश्चिक डङ्क निपातौपम्य स्पर्शातिदुस्सहेषु च, अत्राणाऽशरण कटुक दुःख परितापनेषु अनुबद्ध निरन्तरवेदनेषु यमपुरुषसङ्कुलेषु तत्राऽन्तर्मुहूर्तलब्धि-भवप्रत्ययेन निर्वर्तयन्ति तु ते शरीरं हुण्ड, बीभत्सदर्शनीयं

भीजनकम् अस्थिस्नायुनख रोम विर्जितम्, अशुभ दुःख विपहम् । ततश्च पर्याप्तिमुप-गता इन्द्रियैः पञ्चभिर्वेदयन्ति–अशुभया वेदनया–उज्ज्वल बल विपुलोत्कट खर परुष प्रचण्ड घोर भोजनक दारुणया । किन्तत् ? कन्दु महा कुम्भी पचन प्रलोलन तवक तलन भ्राष्ट्रभजनानि च, लोह कटाहोत्काथनानिच, क्रीडा कोट्ट बलिकरण कोडन-कानिच शाल्मलि तीक्ष्णाग्र लोह कण्ट काऽभिसरणाऽपसरणानि, स्फाटन विदारणानि, अवकोटकबन्धनानि, यष्टिशत ताडनानिच, गलकबलोल्लम्बनानि, शूलाग्र भेद-नानिच, आदेश प्रवञ्चनानि, खिंसन विमाननानि विघुष्टप्रणयनानि वध्यशत मातृकाणि चैवते ॥ सू० ४ । ३ ॥

अन्वयार्थ—"(कयरे ते) वे हिंसा करने वाले कौन हैं ?

उत्तर–(जे) जो (ते) वे (सोयरिया) सूअरों के द्वारा शिकार करने वाले–शौ-करिक (मच्छ बंध) मत्स्य बन्ध—मच्छो पकडने वाले (साउणिया) पक्षिओं की शिकार करने वाले—शाकुनिक–पारधी, (वाहा) व्याध, (कूर कम्मा) क्रूर कर्म करने वाले (वाउरिया) जाल लेकर घूमने वाले, वागुरिक, तथा (दीविद बधण प्प ओग तेप्प गल जाल वीरल्लगायसोदब्भ वग्गुरा कूड छेलिहत्था) जो मृग मारने के लिये चीता, बन्धन प्रयोग–पकडने का उपाय, तप्र–मछली पकडने के लिये छोटी नौका, गल–मच्छीपकडने के लिये काटे पर आटा या मास जाल—मच्छी फसाने की जाल, वीरल्लक–श्येन, बाज, आयसो लोहमयजाल, दभवागुरा -दर्भ की या डोरी की जाल, कूट–पाश और बकरी अथवा चीता आदि छल से पकडने के लिये पाशमे रक्खी हुई बकरी, इन सब साधनों को हाथ में लिये हुए हैं । फिर–(हरिएसा) चाण्डाल (साउणिया य) और पारधी (दूसरे पाठ से सेवक) (वीदसग पास हत्था) श्येन आदि और पाशको हाथ मे रखने वाले, (वण चरगा) जगल में घूमने वाले-शबरभिल्ल, (लुद्धय महु घाय पोत घाया) लुब्धक–व्याध, मधु लेने वाले कुरेरो, व पक्षिओं के बच्चे मारने वाले (एणीयारा) मृग पकडने के लिये हरिणी को लेकर घूमने वाले (पएणीयारा) विशेष रूप से हरिणिओं को लेकर फिरने वाले (सर–दह–दीहिअ–तलाग–पल्लल–परिगालण–मलण–सोत्तवधण–सलिलासय—सोस-गा) सरोवर, ह्रद वावडी, तालाव, पल्वल—छोटा जलाशय इन सब को मत्स्य शख, आदि लेने के लिये बाहर जल निकालने से, मसलने से, और पानी के मार्ग को रोकने से जलाशय को सुखाने वाले (विसगरस्स य दायगा) और जो विष और गरल—अन्य वस्तु मे मिले हुए विप को देने वाले हैं । (उत्तण–वल्लर दवग्गि–णिद्-

थपलोवका) ऊगे हुए तृण और खेतों को दवाग्नि के निर्दयता पूर्वक जलाने वाले (कूर-कम्मकारी इमे य बहवे मिलक्खु जातो) और क्रूर कर्म को करने वाली ये बहुतसी म्लेच्छ जातियों हैं, (के ते ?) वे कौनसी जातीयों हैं ?

उत्तर—(सक-जवण-सवर-वव्वर-गाय-मुरुडोद—भडग - तित्तिय—पक्कणि-य—कुलक्ख-गोड—सीहल—पारस-कौंचध-दविल-बिल्लल-पुलिंद—अरोस डोव) शक १ यवन २ शबर-भिल्ल ३ बर्बर ४ गाय-काय ५ मुरुंड ६ उद ७ भडक ८ तित्तिक ९ पक्कणिक १० कुलाक्ष ११ गौड १२ सिंहल १३ पारस १४, क्रौंच १५ अध १६ द्राविड १७ विल्वल १८ पुलिंद १९ अरोष २०, डोब २१ (पोक्कण-गधहारग-बहली-य-जल्ल-रोम-मास-वउस-मलया) पोक्कण २२ गन्ध हारक २३ बहलीक २४ जल्ल २५ रोम २६ साष २७ बकुश २८ और मलय २९ (चुचुया य चूलिया) चुचुक ३० और चूलिक ३१ (कोंकणगा) कोकणक ३२ (मेय—पण्हव-मालव-महुर—आभासिया) मेद ३३ पन्हव ३४ मालव ३५ महुर ३६ आभाषिक ३७ (अणक्क -चीण—ल्हासि-य-खस—खासिया) अणक्क ३८ चीन ३९ ल्हासिक ४० खस ४१ खासिक ४२ (नेहुर-मरहट्ठ—मुट्ठिअ—आरव—डोविलग-कुहण) नेहर ४३ मरहट्ठ-मराठा ४४ मूढ या मौष्टिक ४५ आरब ४६ डोबिलक ४७ कुहण ४८ (केकय-हूण-रोमग-रुरु-मरुगा) केकय ४९ हूण ५० रोम ५१ रुरु ५२ मरुक ५३ और (चिलाय विसयवासी) चिला-त देश के रहने वाले ५४ (पाव मतिणो) जो पाप बुद्धि वाले हैं (जलयर-थलय-र-सणप्फतोरगखहचर-संडास—तोंड-जीवोवग्घाय जीवो) जलचर स्थलचर तथा नख युक्त चरण वाले सिंह आदि व उरग और खचर, संडास की आकृति के मुख वाले पक्षी और जीवो की हिंसा करके जीने वाले । ये कैसे हैं ? तो—(सन्नी) समनस्क-सज्ञी (य) और (असण्णिणो) असज्ञी-विना मन के जीव (य और (पज्जत्ता) पर्याप्त-जीवनोपयोगी शक्तिओं को पूर्ण रूप से पाये हुए, (असुभलेस्सपरिणामा) अशुभ लेश्या के परिणाम वाले, (एते) पहले—ऊपर कहे हुए ये सब (अण्णे य) और दूसरे (एवमादी) इस प्रकार के जीव (करेंति) करते हैं (पाणाति वाय करण) प्राण वध रूप कार्य को (पावा) पापी (पावाभि गमा) पाप कोही उपादेयमानने वाले (पावरुई) पाप में रुचि रखने वाले और (पाणवहकयरती) प्राण वध करके खुश होने वाले (पाणवहरूवाणुट्ठाणा) प्राणवधही जिनका अनुष्ठान-नियत कर्म है ऐसे (पाणवह कहासु अभिरमता)

हिंसा की कथाओं में रमने वाले (पावं करेत्तु) वे हिंसारूप पाप को करके (वहुप्पगारं तुट्ठा होंति य) वहुत प्रकार से सन्तुष्ट होते हैं।

जो प्राण वध करने वाले हैं वे कहे गए, अब प्राण वध से जो फल मिलता है उसे कहते हैं—(तस्स य पावस्स) और उस प्राण वध रूप पाप के (फल विवाग) फल के समान विपाक—परिणाम को (अयाणमाणा) नहीं जानते हुए घातक जीव (महब्भय) महाभय वाली (अविस्सामवेयणं) विश्रान्तिरहित-निरन्तर वेदनावाली (दीह काल बहुदुक्ख संकड) चिरकालतक शरीरिक मानसिक आदि अनेक प्रकार के दुःखों से व्याप्त ऐसी (नरय तिरिक्खजोणिं) नरक और तिर्यञ्चयोनि को (वड्ढंति) बढाते हैं' फिर (इओ) यहाँ मनुष्य भवसे (आउ क्खए) आयु के क्षय होने पर (चुया) मरे हुए (असुभकम्मबहुला) अशुभ कर्म की अधिकतावाले (उववज्जवि नरएसु) नरक स्थानों मे उत्पन्न होते है, (हुलित) शीघ्र। कैसे नरकों में उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर—(महालएसु) क्षेत्र परिमाण से व स्थिति काल के प्रमाण से बडे तथा (वयरामय कुड्ड रुद्द निस्सधि दार विरहिय निम्मद्दव-भूमितल खरामरिस विसम-णिरय—घर-चारएसुं) वज्रमयभीतवाले, विस्तीर्ण-विस्तार वाले, सन्धि और द्वार रहित अर्थात् जो विना सुराख और द्वार वाले हैं, कोमलतारहित-कठोर-भूमितल वाले तथा कर्कश स्पर्शवाले विषम—ऊचे नीचे ऐसे नरक घर के जो चारक-उत्पत्तिस्थान हैं उनमें, फिर (महोसिण-सयापतत्त-दुग्गंध-विस्स उव्वेय-जणगेसु) अत्यन्त ऊष्ण सदा जलते हुए दुर्गन्ध और सडी हुई गन्ध के कारण जो उद्वेग पैदा करने वाले हैं (बीभच्छदरिसणिज्जेसु) बीभत्स-भयङ्कर—दृश्यवाले तथा (निच्चं हिमपडल सीयलेसु) सदा हिमबर्फ के पटल की तरह शीतल (कालो भासेसु य) और काले रग की कान्तिवाले (भीम गंभीर लोम हरिसणेसु) भयङ्कर—अतिशय गम्भीर होने से रोमाञ्चकारी (निरभिरामेसु) सुन्दरता रहित होने से मन को पसद नहीं आने वाले (निप्पडियार-वाहि-रोग-जरा-पीलिएसु) चिकित्सा के अयोग्य भयकर व्याधि रोग और जरा से पीडित (अतीव निच्चंधकार तिमिस्सेसु) सघन अन्धकार से जो सदा तिमिस्रगुहा को तरह अन्धकार पूर्ण हैं (पतिभएसु) प्रत्येक वस्तु में भय उत्पन्न करने वाले, (ववगय-चन्द-सूर—णक्खत्त जोइसेसु) चन्द्र सूर्य और नक्षत्र व तारक रूप ज्योतिष्कों की प्रभा से हीन हैं

१—(तस्स य से वड्ढंति) पर्यन्त का पाठ किसी किसी प्रति में ही देखा जाता है। टीका-

अर्थात् जहां चन्द्र आदि की प्रभा भी नहीं पडती (मेय वसा मंस पडल पोच्चंड पूय रुहिरुक्किण्ण-विलीण-चिक्कण रसिया वावण्ण कुहिय चिक्खल्ल कद्दमेसु) मेद, चर्बी और मांस के पटल—समूह तथा अत्यन्त गाढ पीप व रुधिर से मिश्रित घृणाजनक और चिकना रसी से विनष्ट स्वरूपवाला इसीलिये सडा हुआ या फूला हुआ. कीचड और गाढ कीचड हैं जिनमें ऐसे (कुकूलानल-पलित्त-जाल-मुम्मुर-असिक्खुर-करवत्त—धारा-सुनिसित-विच्छुयडंक-निवातोवम्म-फरिस—अतिदुस्स-हेसु य) और कोयले की अग्नि, प्रदीप्त ज्वाला, मुमुर—अग्निके कण, तलवार तथा अस्तूरा व करवत की अतिशय तीखी धारा एव विच्छू के डंक का देह पर गिरना, इन सबके समान जो अत्यन्त दुस्सह स्पर्श वाले है (अत्ताणासरण कडुय दुक्ख परितावणेसु) अनर्थ की निवृत्ति और इष्ट की प्राप्ति कराने वाले सहायक से हीन वे जीव जहाँ दारुण दु.खों से सताये जाते हैं (अणुबद्ध निरंतर वेयणेसु) अत्यन्त निरन्तर वेदना वाले (जमपुरिससंकुलेसु) अम्ब आदि असुर जाति के यमों से जो स्थान संकुल-व्याप्त हैं (तत्थय) और वहाँ-नरकावासों में उत्पन्न होकर (अंतोमुहुत्तलद्धिभवपच्चएण) अन्तमुहूर्त काल वैक्रियलब्धि और नरक गति में जन्मरूप कारण से (निव्वत्तेति उ ते सरीर) वे जीव शरीर को बनाते हैं, जो शरीर (हुंड) सब प्रकार से योग्य संस्थान रहित और (बीभच्छ दरिसणि-ज्जं) भयङ्कर व देखने में बुरा (बीहणग) भय पैदा करने वाला तथा (अट्ठिण्हारु णह रोम वज्जिय) हड्डी, स्नायु, नख और रोम से रहित (असुभ दुक्ख विसह) अशुभ गन्धयुक्त और दुःख को सहने वाला होता है (ततोय पज्जत्तिमुवगया) शरीर बनने के बाद फिर इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास और भाषा मन रूप पर्याप्तिओ से पूर्ण बने हुए वे जीव (इंदिएहि पचहिं वेदेंति) पांच इन्द्रियों से दु'ख को वेदन करते-भोगते हैं (असुभाए वेयणाए) अशुभ वेदना के द्वारा जो (उज्जल) सुखरूप विपक्ष के लेश से भी अकलङ्कित होने से उज्ज्वल-उजली (बल विउल)-हटाना शक्य नहीं होने से बलवती और शरीर मात्र व्यापी होने से वह विपुल है (उक्कड) उत्कट—आखिरी सीमा तक पहुंची हुई (खर फरुस) खर-शिला आदि के समान कठोर पदार्थ के गिरने से होने वाली, परुष—कुष्माण्डी के पत्ते के समान कर्कश स्पर्शवाले पदार्थ से होने वाली-अति कठोर (पयड घोर बीह-णगदारुणाए) प्रचण्ड—जल्दी से शरीर में फैलने वाली और-शीघ्रही औदारिक शरीर युक्त जीवन का क्षय करने वाली या दूसरे के जीवन की अपेक्षा नहीं करने

वाली तथा भयानक ऐसी दारुणवेदना से दु:ख का अनुभव करते हैं, (किंते ?) वह कौनसा दु:ख है ? (कंदु महाकुंभिपयण) कन्दु—लोही और महाकुंभी—बड़ी कुम्भी इन मे भात की तरह पकाना (पउलण-तवगतलण-भट्ठभज्जणाणि) चूड़ा आदि को तरह पकाना, तवे पर पूड़ी की तरह तलना, तथा भाड मे चणे की तरह भूंजना (य) और (लोहकडाहुकड्ढणाणि) लोह के कड़ाहों मे इक्षुरस के समान उकालना फिर (कोट्टवलि करण कोट्टणाणि) क्रीडा से चण्डिका आदि के सामने वस्त्र वगैरह की तरह पशु आदि की तरह भेंट धरना अथवा कोट्ट—। प्रकार के लिये बलिदेना व कुटिल बनाना (य) और (सामलि तिक्खग्ग लोह कंटग अभिसरण पसारणाणि) शाल्मली वृक्ष के जो लोह के काटे की तरह तीखे अग्रभाग उन पर अपेक्षा से जाना और पोछे फिरना उससे (फालण विदालणाणि) फाड़ना और अनेक प्रकार से देह का विदारण करना (य) और (अव कोडक बंधणाणि) बाहु और शिरको पीछे से समेट कर बांधना (लट्ठिसयतालणाणि) सैकड़ों लाठी के प्रहार करना (य) और (गलग बलुल्लुंवणाणि) गलकबलोल्लवन—गले में बांध कर बल पूर्वक शाखा पर लटका देना (सूलग्ग भेयणाणि) शूलके अग्रभाग से भेदन करना, और (आएसपवचणाणि) झूठी आज्ञा से ठगाना (खिंसण विमाणणाणि) खिसलाना निंदा करना अपमान करना (विघुट्ठपणिज्जणाणि) ये पापी अपने किये हुए फलों को पाते हैं इस प्रकार बोलते हुए वध योग्य जीव को वध्य भूमि मे लेजाना (वज्झसय मातिकाविय) और सैकड़ो वध्य जीव जिन दु:खों के मातृस्थान—उत्पत्तिस्थान हैं (एवते) इस प्रकार वे जीव प्राणवध के कटु फल को भोगते हैं ।

स्पष्टीकरण—"हिंसा कौन करते हैं ?, इसका उत्तर यह है कि जो लोग सूअरों से शिकार करने वाले, मच्छी पकड़ने वाले, पारधी और व्याध के समान क्रूर कर्म करने वाले हैं। तथा जाल लेकर घूमने वाले व मृग आदि को पकड़ने के लिये चीता, जाल, फास, छोटी नौका, कांटा आटा, जाल, बाज, लोह और मूज की जाल, कूटपाश व बकरी इन सब को साथ में लेकर जो फिरते रहते हैं वे पारधो, शिकारी तथा चाण्डाल व शबर लोग और इन्हीं के समान हिंसारसिक व हिंसोपजीवी जीव हिंसा मे कूट कपट को जानने वाले तथा जलाशयों को सुखा देने वाले दूसरों को विष खिलाने वाले एव खेत आदि को निर्दयता पूर्वक जलाने वाले, ऐसे ऐसे क्रूर कर्मों को करने वालों की प्रधान जातियों निम्नलिखित हैं-"शक १ यवन २

शवर ३ बर्बर ४ गाय ५, मुरु'ड ६, उद्द ७ भटक ८ तित्तिक ९ (भित्तिक) पकणि १० कुलाक्ष ११ गौड' १२ सिंहल १३ पारस १४ क्रौंच १५ अंध (आन्ध्र)-१६ द्राविड १७ विल्लव १८ पुलिन्द्र १९ अरोष २० डोंब २१ पोक्कग २२ गन्ध हारक २३ बहलीक २४ जल्ल २५ रोम २६ माष २७ वकुश २८ और मलय २९ चुंचुक ३०, चूलिक ३१ कोंकणक ३२ मेद ३३ पन्हव ३४ मालव ३५ महुर ३६, आभषिक ३७ अणक ३८ चीन ३९ ल्हासिक ४०, खस ४१ खासिक ४२ नेहर ४३ मर हठ्ठ ४४ मूढ–मौष्टिक ४५ आरब ४६ डोविलक ४७ कुहण ४८ केकय ४९ हूण ५० रोम ५१ रुरु ५२ मरुक ५३ और चिलात देश वासी ये ५४ जाति के लोग हिंसा करते हैं। दूसरे जलचर, थलचर तथा नख वाले सिंह आदि जानवर, उरग–सर्प और खचर, सडास के जैसे मुख वाले पक्षी इत्यादि जीव भी हिंसा करने वाले हैं, हिंसा करने वालों में कई मन वाले–सज्ञी और कई असज्ञी तथा अपने योग्य पर्याप्तियों से पूर्ण और अशुभ लेश्या के परिणाम वाले होते हैं। इस प्रकार ऊपर कहे हुए और इसी तरह के अन्य क्रूर जीव भी प्राण वध करते हैं। ये सब पाप की प्रधानता वाले, पाप को ही उपादेय मानने वाले तथा पाप क्रिया में श्रद्धा रखने वाले हैं। ऐसे जीव प्राण वध करके खुशी मनाते ओर प्राण वध को ही मुख्य कर्तव्य मानते हैं तथा ये हिंसाकी कथाओं कोही कहते सुनते और हिंसा के कार्यों को करके सन्तुष्ट होते हैं। इस प्रकार घातक जीवों का स्वरूप बताया गया,

अब प्राण वध के फलों को दिखाते हैं—"वृक्ष की तरह उस हिंसा के फल को नहीं जानते हुए हिंसक जीव अपने लिये नरक व तिर्यञ्च योनिको बढाते हैं, वे योनियाँ महाभय देने वाली तथा निरन्तर वेदनाओं से युक्त और चिर काल तक शरीरिक मानसिक आदि विविध दुःखों से भरी होती हैं। वहाँ से आयुक्षय होने पर मरे हुए जीव अशुभ कर्म की अधिकता से शीघ्र नरक में उत्पन्न होते हैं। वे नरक स्थान इस प्रकार के हैं—'क्षेत्र और स्थिति से जो विशाल हैं, वज्रमय दिवाल युक्त बडे और बिना सन्धि व द्वार के हैं, जहाँ कठोर भूमितल वाले कर्कश स्पर्शयुक्त और विषम–ऊंचे नीचे अनेक चारक–नरक घर हैं, बहुत ऊष्ण सदा तपते हुए तथा दुर्गन्ध और सडान के कारण जो उद्वेग जनक हैं, दिखने में भयङ्कर है, सदा वर्फ के ढेर की तरह ठंडे और काली कान्ति वाले हैं, भयङ्कर गहरे होन से भाव्वकारी मनके प्रतिकूल और प्रतीकार नहीं करने लायक व्याधि

१—बंगाल से दक्षिण की ओर समुद्र के पास है।

रोग तथा जरासे पीड़ा पहुंचाने वाले हैं। जहाँ सघन अन्धकार होने से प्रत्येक वस्तु में भय का प्रदर्शन होता है। चन्द्र सूर्य नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की वहाँ प्रभा नहीं पहुचती और मेद चर्बी और[1] रुधिर मांस पीप आदि की अधिकतासे जहाँ कीचड सा मचा रहता है। वहाँ का स्पर्श कोयले की अग्नि मुमु॑र, धधकती ज्वाला और तलवार, अस्तूरे आदि की तीखो धार व विच्छू के डक लगने जैसा अत्यन्त दुस्सह है। वहाँ कोई इष्ट की प्राप्ति कराने वाले और अनर्थ को निवृत्ति कराने वाले सहायक नहीं हैं। वहां सिर्फ भयङ्कर दु:खों से जीव पीड़ित किये जाते हैं। निरन्तर अत्यन्त वेदना और यमलोकोंसे वे स्थान पूर्ण रहते हैं। नरकावास मे उत्पन्न होकर अन्तमुहूर्त जैसे स्वल्पकाल मे वैक्रियलब्धि व नारक जन्म के कारण से वे जीव शरीर को बनाते हैं, जो योग्य आकृतिसे हीन और दिखने में भयङ्कर होता है, हाड मांस स्नायु नख व रोम के विना वह नारक शरीर भयानक तथा अशुभ और दु ख सहने वाला होता है। शरीर बनने के बाद फिर इन्द्रिय श्वास आदि सभी पर्याप्तियाँ पूर्ण कर वे जोव पाचों इन्द्रियों से दु.ख का अनुभव करते हैं। असातारूप अशुभ वेदना से दु.ख भोगते हैं। वह वेदना साता के लेश से भी शून्य है। तथा नहीं हटाने लायक है और शरीर भर मे फैलने वाली होती है। जो बहुत उत्कट, कठोर, परुष और प्रचण्ड स्वरूप वाली व दूसरे के प्राणों की अपेक्षा नहीं करने से घोर और भय उत्पन्न करने वाली दारुण है। वहां के दु:ख कौन से हैं ? कुम्भी आदि में पकाना चूल्हा आदि की तरह सेकना और तलना भू जना तथा लोह के कडाह में उकालना एव देवी आदि के सामने मास की तरह बलि चढाना, देहको पीस देना या शाल्मलीके तीखे अग्रभाग पर ले जाना व फिराना, देह का चीर फाड करना हाथों को व शिरको पीठ की ओर खींच कर बाध देना, सैकडों लाठी के प्रहार मारना, गले में बाधकर वृक्ष को शाखाओं में लटका देना, शूल मे वींधना, झूठी आज्ञा देकर ठगना, निन्दा और अपमान करना उनको वध्य भूमि पर लेजाना इन सब दु.खों के वे नारकी जीव माता के समान उत्पादक हैं। इस प्रकार वे नारक जीव जैसे दु खों को भोगते है उन्ही दु:खों को आगे कहते हैं।

१—औदारिक शरीर की तरह उनका शरीर लोहू मास का नहीं होता, इसलिये यहा रक्त मास आदि का उल्लेख उस प्रकार से परिणत वैक्रिय पुद्गलों के लिये समझना चाहिए।

मूल—"पुव्वकम्मकय संचयोवतत्ता निरयग्गि-महग्गि-संपलित्ता, गाढदुक्खं महब्भयं कक्कसं असायं सारीरं मानसंच तिव्वं दुविहं वेदेंति वेयणं, पावकम्मकारी बहूणि पलिओवम-सागरोवमाणि कलुणं पालेंति ते अहाउयं जमकातियतासिता य सद्दं करेंति भीया। किंते ?, अविभाय, सामिभाय, बप्पताय जितवं, मुय मे मरामि दुब्बलो वाहिपीलिओऽहं, किं दाणिऽसि ?, एवं दारुणोणिद्दय मादेहि मे पहारे, उस्सासेतं (एयं) मुहुत्तयं मे देह, पसायं करेहि, मारुस वीसमामि गेविज्जं मुयह मे मरामि, गाढं तण्हातिओ अहं देह पाणीयं, हंता पिय इमं जलं विमलं सीयलंति घेत्तूण य नरयपाला तवियं तउयं से देंति कलसेण अंजलीसु, दट्ठूण य तं पवेपि (वि) यंगोवंगा अंसुप-गलंतपप्पुयच्छालिणा तण्हाइयरुह कलुणाणि जंपमाणा, विप्पेक्खंता दिसोदिसिं अत्ताणा असरणा अणाहा अबंधवा बंधुविप्पहूणा विपलायंति य मिगा इव वेगेण भयुव्विग्गा, घेत्तूण बला पलायमाणाणं निरणुकंपा मुहं विहाडेत्तुं लोहदंडेहिं कलकलएहं वयणंसि छुभंति, केइ जमकाइया हसंता, तेण दड्ढा संतो रसंति य भीमाइं विस्सराइं, रुवंतिय कलुणगाइं पारेवतगाव, एवं पलवितविलाय कलुणाकंदिय बहुरुन्न रुदियसद्दो परिवे(दे) वित रुद्ध बद्ध य नारकारव संकुलो णीसट्ठो रसिय भणियकुवि-उक्कूइय निरयपालतज्जिय गेण्हक्कम, पहर, छिंद, भिंद, उप्पा-डेहुक्खणाहि, कत्ताहि, विकत्ताहि य भुज्जोहण, विहण, वि-च्छुभोच्छुब्भ, आकड्ढ, विकड्ढ, किंण जंपसि ? सराहि पाव कम्माइ दुकयाइं एव वयण महप्पगब्भो पडिसुया सद्दसंकुलो तासओ सया निरयगोयराण महाणगर डज्झमाण-सरिसो नि-

ग्घोसो सुचए अणिट्ठो तहिय नेरइयाण जाइज्जंताण जाय-णाहिं। किंते ? असिवण-दब्भवण-जत-पत्थर-सूइ-तलक्खार वावि कलकलंत वेयरणि कलंब वालुयाजालिय गुह निरुंभण उसिणोसिण कटइल्ल दुग्गम रहजोयण तत्तलोह मग्ग गमण वाहणाणि इमेहिं विविहेहिं आयुहेहिं, किंते ? मोग्गर-मुसुंढि-करकय-सत्ति-हल-गय-मुसल चक्क-कोंत-तोमर-सूल-लउल-भिंडि माल-सद्द (द्ध) ल-पट्टिस-चम्मेट्ठ-दुहण मुट्ठिय-असि, खेडग खग्ग-चाव नाराय-कणक-कप्पणि-वासि-परसु-टंकातिक्ख निम्मल अण्णेहिय एवमादिएहिं असुभेहिं वेउव्विएहिं पहरणसतेहिं अणुबद्ध तिव्ववेरा परोप्पर वेयणा उदीरेंति अभिहणाता, तत्थ य मोग्गर पहार चुण्णिय मुसुंढि संभग्ग महित देहा जतोवपीलण फुरत कप्पिया केइत्थ सचम्मका विगत्ता णिम्मू (लु) ल्लूण कण्णोट्ठणासिका छिण्णहत्थपादा असिकरकयातिक्ख कोंत परसुप्पहार फालियवासी सतच्छितंगमगा कलकलमाण खार परिसित्तगाढ डज्झतगत्त कुंतग्ग भिण्ण जज्जरिय सव्वदेहा विलोलंति महीतले विसूणियगमंगा,तत्थ य विग-सुणग-सियाल काक—मज्जार-सरभ-दीविय—वियग्घ सद्दूल-सीह-दप्पिय खुहाभिभूतेहिं णिच्चकालमणसिएहिं घोरा रसमाण भीमरूवेहिं अक्कमित्ता दढ दाढा—गाढ डक्ककड्ढिय सुतिक्ख नह फालिय उद्धदेहा विच्छिप्पते समतओ विमुक्क साधि बंधणा वियगमगा कंक-कुरर-गिद्ध-घोर-कट्ठवायसगणेहि य पुणो खरथिर दढ णक्खलोह तुंडेहिं ओवतित्ता पक्खाहय तिक्खणक्ख विकिन्न जिब्भाछिय नयण निह (द्ध) ओलुग्ग विगत वयणा, उक्को-

मंता य उप्पयंता निपतंता भमंता पुव्वकम्मोदयोवगता पच्छाणुसएण डज्झमाणा, णिंदंता पुरेकडाइं कम्माइं पावगाइं तहिं २ तारिसाणि ओसन्नचिक्कणाइं दुक्खातिं अणुभवित्ता, ततो य आउक्खएणं उव्वट्टिया समाणा बहवे गच्छंति तिरियवसहिं दुक्खुत्तरं सुदारुणं जम्मण मरण जरा वाहि परियट्टणारहट्टं जल थल खहचर परोप्पर विहिंसणपवंचं इमं च जगपागडं वराका दुक्खं पावेंति दीहकालं। किंते?, सीउण्हतण्हाखुहवेयण अप्पईकार अडवि जम्मण णिच्च भउव्विग्ग वास जग्गण वह बंधण ताडणंकण निवायण अट्ठिभंजण नासाभेयप्पहार दूमण छविच्छेयण अभिओग पावणक संकुसार निवायदमणाणि वाहणाणि य मायापिति विप्पयोग सोय परिपीलणाणि य सत्थग्गि विसाविघाय गल गवल आवलण मारणाणि य गलजालुच्छिप्पणाणि पउलण विकप्पणाणिय जावज्जीविक बंधणाणि पंजरनिरोहणाणि य सयूह निद्धाडणाणि धमणाणि य, दाहणाणि य कुदंड गलबंधणाणि वाडगपरिवारणाणि य, पंक जल निमज्जणाणि, वारिप्पवेसणाणिय ओवायणि भंग विसमणि वडणदवग्गिजालदहणाई य, एवते दुक्खसय संपलित्ता नरगाउ आगया इह सावसेसकम्मा तिरिक्ख पचेंदिएसु पाविंति पावकारी कम्माणि पमाय–राग–दोस–बहुसंचियाइ अतीव अस्साय-कक्कसाइ ॥ सू० ५।४ ॥

छाया—"पूर्वकर्मकृत सञ्चयोपतप्ता निरयाग्नि महाग्नि सम्प्रदीप्ता गाढदुखा महाभयां कर्कशाम् असातां शारीरीं मानसीं च तीव्रां द्विविधा वेदयन्ति वेदनाम्. पापकर्मकारिणो बहूनि पल्योपम सागरोपमानि करुण पालयन्ति ते यथाऽऽयुष्क यमकायिकत्रासिताश्च शब्द कुर्वन्ति भीता, किन्तत्? (तद्यथा) हेमविभाव्य! हे स्वामिन्! हे भ्रात! हे पित! हे तात! हे जितवन्! मुञ्च माम्, म्रिये दुर्वलो व्याधि पीडितोऽहम् किमिदानीमसि एव दारुणो निर्दयो, मा देहि मह्य प्रहारान् उच्छ्वसनमेक मुहूर्त्तक मे देहि, प्रसाद कुरु, मा रु पस्व, विश्राम्यामि, ग्रैवेयकं मोचय मम, म्रिये, गाढ तृषाऽऽर्दितोऽह देहि पानीयम्, हन्त पिवेद जल विमल शीतलमेतदिति

जिह्व च्छिन्न नयननिर्दयावरुण विकृत्तना, उत्क्रोशन्तश्चोत्पतन्तश्च निपतन्तो भ्रमन्त पूर्वकर्मोदयोपगता . पश्चादनुशयेन दह्यमाना निन्दन्त . पुराकृतानि कर्माणि पापकानि तत्र तत्र तादृशानि—उत्सन्न चिक्कनानि दु खानि—अनुभूय ततश्चायु: क्षये—उद्वृत्ता सन्तो बहवो गच्छन्ति तिर्यग्वसतिम्, दु खोत्तारा सुदारुणा जन्म मरण जरा व्याधि परिवर्तनाऽऽरघट्टां जल स्थल खचर परस्पर विहिंसन प्रपञ्चाम् इदञ्चजगत्प्रकट वराका दु ख प्राप्नुवन्ति दीर्घकालम् । किन्ते ? तद्यथा-शीतोष्ण तृष्णा क्षुधा वेदनाऽप्रतीकाराऽटवो जन्म नित्य भ‌‌ोद्विग्नवास जागरण वध बन्धन ताडनाऽङ्कन निपातनाऽस्थिभञ्जन नासा भेद प्रहार दवन-च्छविच्छेदनाऽभियोग प्रापणकशाऽङ्कुशाऽऽरा निपात दमनानि, वाहनानि च मातां पितृ वियोग स्रोत: परिपोडनानि च शस्त्राऽग्निविषाभिघात गल गवगाऽवलन मरणानिच, गल-जालो तक्षेपणानि, पचनविकल्पनानिच, यावज्जीवकबन्धननि, पञ्जरनिरोधनानिच, स्वयूथ निर्घाटनानि धमनानिच दोहनानिच, कुण्ड ा नबन्धनानि, वाटक परि वारणानिच, पङ्कजलनिमज्जनानि, वारिप्रवेशनानिच, अवपातानभङ्क विषम निपतन दवाग्नि ज्वालादहनादीनिच । एवते दुःखशतसम्प्रदीप्ता नरकादागता इह सावेशेषकर्माणस्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु प्राप्नुवन्ति पापकारिण: कर्माणि प्रमादरागदोष बहुसञ्चितानि—अतीवाऽऽसातकर्कशानि ।

अन्वयार्थ—"(पुव्व कम्म कय सचोयावतत्ता) पूर्व कृतकर्म के सचय से सन्ताप पाये हुए (निरयाग्ग महग्गि सपलित्ता) भयङ्कर अग्नि को तरह निरयस्थान को अग्नि से जले हुए वे जीव (गाढदुक्ख) अत्यन्त दु:ख युक्त (महब्भय) महा भयङ्कर (कक्कस) कठोर इसीलिये (असाय) असात वेदनोय के उदय से होने वाली (सारोर) शरीर सम्बन्धो (मानसच) और मानसिक ऐसे (दुविह) दो प्रकार की (तिव्व) तीव्र (वेयण) वेदना को (वेदेंति) अनुभव करते हैं । (पावकम्मकारो) पाप कम करने वाले वे जीव (बहूणि) बहुत से (पलिओवम-सागरोवमाणि) पल्योपम और सागरोपमतक (करुण) दया जनक दशा को (पालेंति) पूर्ण करते हैं, फिर (ते) वे (अहाउय) बांधी हुई आयु के अनुसार (जमकातियतासिया य) अब आदि नाम वाले वहां के यमों से त्रास पाये हुए (सद्द करेंतिभीया) भय भीत होकर शब्द—आर्तनाद करते हैं । (किंते ?) वह आर्तस्वर कैसा है ? (अविभाय, सामि, भाय, वप्प, ताय जिनव ! मुय मे) हे अविभाव्य—समझ मे नहो आने लायक बन्धु ! हे स्वामिन् ? हे भाई ! अरे

करने से जो करुणा जनकहै, तथा आक्रन्दन अतिशय अश्रुमोचन और रोने के शब्द वाला है, (परि वेवित रुद्ध बद्धय नारकारवसंकुलो) धूजते हुए रोके गए और नरक पालों के द्वारा बधे हुए नारको से व उनके आरवोसे संकुल है। णी-सट्ठो)जो निर्घोष नारक जीवों से छोडा गया (रसिय भणिय कुविउकूइय निरय-पाल तज्जिय-) शब्द युक्त भणित--- अव्यक्त वचन वाले और क्रोध युक्त तथा अव्यक्त महाध्वनि को करने वाले निरयपालों के तर्जित-रे पापो ! अब समझेगा ! इस प्रकार की तर्जना युक्त, (गेण्ह) धरो पकडो (कम्म) आक्रमण करो (पहर) मारो (छिंद) काटो (भिंद) भेदन करो (उप्पाडे हु क्खणाहि) जमीन से उठाओ याने ऊपर फेंको आंख की पुतली या बाहु आदि उखाड फेंको (कत्ताहि) नाक आदि कतरो-काटो (विकत्ताहि) टुकडी २ करो (य भुज्जो) और फिर किसी समय मर्दन करो (हण) मारो (विहण) विशेष ताडन करो, (विच्छुभोच्छुभ) मुख में सीसा डालो व अधिकता से डालो, (आकड्ढ) सामने खींचो (विकड्ढ) पीछे हटाओ (किंण जंपसि) क्यो नहीं बोलता है ? या नहीं जानता है ?, (सराहि) याद करो हे पापात्मन् ! (पाव कम्माइं दुकयाइं) अशुभ योग आदि से किये हुए दुष्कर्मों को (एव) इस प्रकार (वयण महप्पगब्भो) नरक पालों के बोलने से जो अति कर्कश है (पडिसुया सद्द सकुलो) प्रति शब्द की आवाज से व्याप्त (सया तासओ) सदा त्रास उत्पन्न करने वाला (निरयगोयराण) नरक स्थान वर्ती जीवो के लिये जो (महाणगर डज्झमाण सरिसो) जलते हुए बडे नगर के समान (तहिय) वहां (जाइज्जताणं जायणाहिं) अनेक प्रकार की यातनाओं से पीडित होते हुए (नेरइयाण) नारकीय जीवों का (अणिट्ठो निग्घोसो) अनिष्ट-बुरा निर्घोष शब्द (सुचए) सुना जाता है (किते ?) वे यातनायें कौनसी हैं ? उन्हें कहते हैं -(असिवण दब्भवण जत्त पत्थर सूइतल) असिवन खड्ग की आकृति वाले जिन मे पत्र है, दर्भवन-जहा डाभ को तरह तीखे अग्र भाग वाले घास हैं, वह दर्भवन, पाषाण का यन्त्र अथवा यन्त्र सें फेंके गये पत्थर, या यन्त्र व बडे पत्थर, सूई के अग्र भाग वाला भूमितल (क्खार वावि) खारे द्रव्य से भरी हुई वापी-बा-वडी (कल कलत वेयरणि) उकलते हुए सीसे आदि से भरी हुई वैतरणी नदी (फलब वालुया) कदम्ब फूल के आकार वाली वालू-रेत और (जलिय गुह निरुंभ ण) जलती हुई गुहा इन सब स्थानों मे रोक कर रखना (उसिणोसिण कंटइल्ल दुग्गम रह जोयण) अत्यन्त उष्ण कण्टक वाले और मुश्किल से चलने वाले ऐसे भारी

रथों में जोतना (तत्तलोह मग्ग गमण वाहणाणि) और तपे हुए लोह मय मार्ग में जाना या बैलों को तरह हांक कर-जबर्दस्ती ले जाना, इस प्रकार की अनेक यातनायें दी जाती हैं, (इमेहिं विविहेहिं) इन नीचे कहे जाने वाले विविधि (आयुहेहिं) आयुधों से, परस्पर वेदनाओंका उदीरण करते हैं (किते ?) वे कौन से आयुध हैं ?-(मोग्गर मुसुंढि) मुद्गर-लोहका घन, मुसुंढि-भुशुंडि (करकय) क्रकच-करवत (सत्ति) शक्ति-त्रिशूल, (हल) हल (गय) गदा-एक प्रकार की लाठी (मुसल) धान्य कूटने का मूशल, (चक्क) चक्र (कुंत) भाला (तोमर) बाण विशेष (सूल) शूल (लउड) लकुट—डंडा, (भिंडिमाल) भिंडिपाल-प्रहरण विशेष, (सब्बल) एक प्रकार का भाला (पट्टिस) पट्टिश-प्रहरण विशेष (चम्मेट्ठ) चमडे से मढा हुआ पत्थर विशेष, (दुहण) द्रुघण-वृक्षों को गिराने वाला मुद्गर (मुट्ठिय) मौष्टिक—मुष्टि प्रमाण का एक पत्थर, (असि खेडग) तलवार के साथ फलक, (खग्ग) तलवार (चाव) धनुष (नाराय) लोह का बाण (कणक) बाण का एक भेद (कप्पणि) कर्तिका एक प्रकार की कैंची (वासि) काष्ठ छिलनेका अस्त्र-वसूला, (परसु) परशु-(टंक तिक्ख निम्मल) पूर्वोक्त सब अस्त्र शस्त्र अग्र भाग पर तीखे और निर्मल हैं (अण्णेहिय) और दूसरे (एवमादिएहिं) इत्यादि अनेक (असुभेहिं) अशुभ कारक (वेउव्विएहिं) वैक्रिय (पहरणसतेहिं) सैकडों प्रकार के शस्त्रों से (अणुबद्धतिव्ववेरा) सदा उत्कट वैरभाव रखने वाले नारकीजीव (अभिहणता) एक दूसरे को मारते हुए (परोप्परवेयण) परस्पर[1] मे दुःख रूप वेदना को (उदीरेंति) उत्पन्न करते है। (तत्थय) और वहाँ नरक स्थानों मे परस्पर के प्रहार मे (मोग्गर पहार चुण्णिय—मुसुंढि संभग्ग महित देहा) मुद्गर के प्रहार से चूर्ण विचूर्ण बने हुए तथा भुशुण्डी की मारसे टूटे हूए और मथे हुए जैसे देह वाले (जतोव पीलण फुरत कप्पिया) घाना आदि यन्त्रों मे पीलने से चमकते हुए और कटे हुए (के इत्थ) यहाँ नरक मे कई नारक जीव (सचम्मका) चमडे वाले (विगत्ता) चमडे से अलग किये गए (निम्मूलुल्लूण कण्णोट्ठ णासिका) मूल से कटे हुए कान ओठ व नासिका वाले (छिण्णहत्थपादा) और कटे हाथ पाव वाले (असि) तलवार (करकय) क्रकच (तिक्खकोंत) तीखा भाला और (परसुप्पहार फालिय वासी संतच्छितगमंगा) परशु—फरसों से फाडे गए और वसूलों से छीले गए अङ्गोपङ्ग वाले, (कलकलमाणखारपरिसित्ता) कल कल करते हुए

१—तीसरी पृथ्वी से आगे की नरक भूमिओं में ऐसा होता है। टीका०

उष्ण क्षार से सिक्त होने के कारण (गाढ डज्झन गत कुनाग भिण्ण जज्जरिय सव्वदेहा) अत्यन्त जलते हुए शरीर वाले और भाले के अग्रभाग से विदीर्ण होने के कारण जर्जर है सब देह जिनके ऐसे (विसूणियगमगा) सूजे हुए फूले हुए तथा क्षत शरीर वाले नारक जीव (महीतले) जमीन पर (विलोठति) लोटते हैं, (तत्थ य) और वहाँ (विग सुणग सियाल) विग—ओली नाहर, कुत्ते, शियाल (काक) कौए (मज्जार) बिल्ली (सरभ) सरभ (दीविय) चीता (वियग्घ) व्याघ्र के बच्चे (सद्दूल) शार्दूल-सिंह-व्याघ्र (सीह) सिंह (दप्पिय खुहाभिभूतेहिं) दर्प-मस्त और भूख से पीडित (णिच्चकालमणसिएहिं) सदा से भूखे हो उन तरह (घोरारसमाणभीमरूवेहिं) घोर शब्द व दारुण कर्म करने वाले और भयङ्कर रूप वाले ऐसे ये क्रूर हिंसक जीव नारक जीवों पर (अक्कमित्ता) आक्रमण करके (दढ दाढा गाढ डक कड्ढिय सुतिक्ख नह फालिय उद्धदेहा) मजबूत दाढों से गाढ डशे हुए और खींचे गये तथा अत्यन्त तीखे नखों से फाड दिया—विदारण कर दिया है ऊर्द्ध्व देह जिनका ऐसे नारकों को (विच्छिप्पते स तओ) चारों ओर फेंक देते—बिखेर देते हैं (विमुक्क सधिबधगावियगमगा) ढीली करदी गई है अङ्गों की सन्धियाँ जिनकी ऐसे तथा विकृत अङ्गोपाङ्ग वाले (पुणो) फिर (कक) कङ्क पक्षी (कुरर) कुरर-पक्षिविशेष (गिद्ध) गीध (घोरकट्ठवायसगणेहिय) घोर कष्ट देने वाले वायस-कौए इन सब के समूह (खर थिर दढ नक्ख लोह तुडेहिं) जो कठोर निश्चल और दृढ नख व लोहमय चोंच वाले हैं उनके द्वारा (ओवतित्ता) पास में आकर (पक्खाहय तिक्खणक्ख विकिण्ण) पांखों को मारसे आहत किये गये, तीखे नखों से नोंचे-बिखेरे गये (जिब्भंछिय नयण निद्दओलुग्ग विगत वयणा) जीभ खींची गई, आंखे निकाली गई, निर्दयता से मुंह बिगाडा गया और जिन्हें घायल किया गया है ऐसे वे नारक जीव (उक्कोसता) चिल्लाते हुए या रोते हुए (य) और (उप्पयता) उछलते (निपतता) गिरते (भमता) फिरते हुए (पुव्वकम्मोदयोवगता) पूर्व कृत कर्म के उदय वाले (पच्छाणुतवएण) पश्चात्ताप से (डज्झमाणा) जलते हुए (पुरे कडाइ कम्माइ) पूर्व-पहले किये हुए अशुभ कर्मों की (निंदता) निन्दा करते हुए (तहिं २) उस २ रत्नप्रभा आदि पृथ्वी में तथा उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावास में (तारिसाणि) वैसे—जन्मान्तर में मिलाये हुए परमाधार्मिक के चलते या परस्पर की उदीरणा से तथा क्षेत्र स्वभाव से होने वाले, (ओसन्न चिक्कणाइ) अधिकता से चिकने-दुःख से छूटने योग्य (दुक्खाति) दुःखों

को (अणुभवित्ता) अनुभव करके (ततो य) बाद फिर (ओउक्खएणं) आयु के क्षय-पूर्ण हो जाने से (उव्वट्टिया समाणा) ऊपर आए-निकले हुए (बहवे) बहुत से जीव (तिरिय वसहिं) तिर्यञ्च योनि रूप निवास में (गच्छंति) चले जाते हैं (दुक्खुत्तर) जो तिर्यग् योनि बहुत दुःख से छूटती है और (सुदारुण) बहुत भयङ्कर है (जम्मण मरण जरा वाहि परियट्टणारहट्ट) जन्म मरण वृद्धावस्था और व्याधि के बारबार परिवर्तन से जो रेंट अर्थात् अरहट की तरह चलती है (जल थल खहचर परोप्पर विहिंसणपवच) जलचर स्थलचर और खेचर जीवों के परस्पर हिंसा प्रति हिंसा का जिसमें विस्तार है, वैसी (इमच) और उस योनि मे आगे कहे जाने वाले (जग पागड) जग प्रसिद्ध (दुक्ख) दु ख को (वरागा) वेचारे हिंसक जीव (दीहकाल) लम्बे कालतक (पावेंति) पाते हैं, (किंते ?) वे दु ख कौन से हैं ?

उत्तर—(सीउण्ह) शीत उष्ण—ठढो गर्मी (तण्हा खुह) व तृषा और भूख से होने वाली (वेयणअप्पईकार) उपचार विना की वेदना प्रसूति कर्म आदि (अडविजम्मण) अटवी मे जन्म लेना, (निच्चं भउव्विग्गवास-) सदा भय से उद्विग्न रहकर वसना-रहना (जग्गण वह बधन ताडणकण) जागना, वध बधन लाठी आदि का ताडन और लोहमय शलाका आदि से चिन्ह करना (निवायण अट्ठि-भजण नासाभेय-प्पहार दूमण) खड्डे मे गिराना, हड्डी तोडना नाक मे बींधना, लाठी के प्रहार करना, जलाना (छविच्छेयण अभिओगपावण) चमडे को छेदना, कान आदि अवयवों को वींधना, जबर्दस्ती काम मे लगाना (कसकुसार निवाय दमणाणि) चाबुक, अंकुश, और आर लकडी के अग्र भाग में लगी हुई कील इन सबों से शरीर पर आघात करना व दमन करना, (वाहणाणि य) व भार उठवाना (मायापिति विप्पओग) माता पिता से वियुक्त-जुदाई होना (सोय परिपोलणाणि) नाक मुंह आदि इन्द्रियों को पीडा पहुंचाना अथवा शोक से पीडित करना (य) और (सत्थग्गि विसाभिघाय गल गवल आवल मारणाणि) शस्त्र अग्नि और विष से हनन करना, गले व सींग को मोडना, अथवा गले को दबाकर और सींग को मोड कर मारना (य) और (गल जालुच्छिप्पणाणि) मत्स्य वींधने के काटे और जाल से मछलियों को पानी से वाहर खींचना (पओउलण विकप्पणाणि) अङ्ग आदि को काटना और पकाना (य) और (जावज्जोवग वधणाणि) जीवन भर के लिये वांधना, (पजर निरोहणाणि) पींजरे मे रोक रखना, (य) और (सयूहनिद्धाडणाणि) अपने यूथ-समूह से अलग कर देना (धमणाणि) महिप

वगैरहमें वायु भर देना-यह 'फूका नाम का नृशंस कर्मआज भी सुना जाता है' (य) और (दोहणाणि) दूध दूहना (य) और (कुदंडगल बंधणाणि) कुदण्ड-बुरी लकडी से पीटना और वही गले में बांधना (वाडग परिवारणाणि) बाडे से हटाना (य) और (पकजल निमज्जणाणि) अधिक कीचडमय पानी में डुबोना, (वारिप्पवेसणाणि) पानी में डालना—गिराना, (य) और (ओवायणि भंग विसमणिवडण दवग्गि जालदहणाई य) खड्डे आदि में गिराने से अङ्ग आदि का टूटना, पर्वत के शिखर वगैरह से गिरना-ऊचे नीचे विषम प्रदेश में पडना और दावाग्नि से जलना इत्यादि (एवते) इस प्रकार वे हिंसक जीव (दुक्खसय सपलित्ता) सैकडों दु खों से जले हुए (नरगाउ आगया) नरक से आये हुए (इहं) यहाँ (सावसेसकम्मा) अवशेष वचे हुए वाकी कर्म वाले (तिरिक्ख पंचेदिएसु) तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों मे (पाव कारी) पाप कारी जोव (अतीवअसायकक्कसाइं) अत्यन्त कठोर दु खों को (पावति) पाते हैं, । जो दुःख-(कम्माणि) कर्म जन्य तथा (पमाय—राग—दोस—बहु सचियाइं) प्रमाद और रागद्वेषों से बहुत सञ्चित किए गए हैं । ५ । ४ ।

भाव—"इस प्रकारण का अर्थ सहज है , इसलिये अन्वयार्थ से ही समझ लेवें। केवल इसका साराश यहाँ दिया जाता है । पूर्व कृतकर्म के सञ्चय से तपे हुए जीव शरीरिक और मानसिक वेदना रूप भयङ्कर दु ख को भोगते हैं । आयु के अनुसार कई पल्योपम सागरोपम तक वे यमसे त्रास पाये हुए चिल्लाते रहते हैं। अरे वाप ! मैं मरता हू, छोडो मैं दुर्बल हूं, इस प्रकार निर्दय मत बनो, इत्यादि रूप से नारकीय जीवों के चिल्लाने पर और मैं प्यासा हू मुझे पानी दो ऐसा कहने पर नरकपाल गण उनको तपा-गला-हुआ सीसा लाकर अञ्जलिमे देते है, जिसको देखते ही देह से धूजते हुए और आंखो मे आंसू भर कर नारक जीव कहते हैं--महाराज ! हमारी प्यास मिटगई, अब हमे पानी नहीं चहिए, ऐसा कहते हुए चारों ओर भागने लगते हैं, तब उन्हें जवर्दस्ती पकडकर निर्दय यमदूत हसते हुए उकलता हुआ सीसा मुहमें ढाल देते हैं । उससे जलकर वे रोते हैं, भयङ्कर क्रन्दन करते हैं, नरक पाल व नारक जीवों के चिल्लाहट से नरकावास मे वडा अनिष्ट शोर होने लगता है । जैसे किसी बडे नगर के जलने से वहाँ हाहाकार होने लगता है और चारों ओर उद्विग्नता फैल जातो है वैसे अनेक प्रकार की यातनाओं से पीडित नारको का कोलाहल उद्वेजक हो जाता है । असिवन और वैतरणी आदि नरक के दुःख दायी

स्थानों में वे नारक जीव रोके जाते हैं। अत्यन्त उष्ण व कांटे युक्त रथमें जोते जाते, मुद्‌गर आदि अनेक वैक्रिय आयुधों से वे परस्पर भी प्रहार करते और दुःख उत्पन्न करते हैं, छिन्न भिन्न और अङ्गो के क्षत विक्षत हो जाने से जर्जरित देह होकर वे भूमितल पर लोटते हैं। इतने पर भी खैर नहीं, वृक कुत्ता और व्याघ्र आदि हिंसक पशु पक्षिओं से विविध तरह से मारे और पीडित किये जाते हैं बेहाल बने हुए नारक जीव चिल्लाते, उछलते और नीचे गिरते, एव भँवरी की तरह चक्कर काटते हैं,। पश्चात्ताप के चलते जलते एव अपने दुष्कर्मों की निन्दा करने लगते हैं,। वहां नरकावास में अधिकता से चिकने कर्मो को भोगकर आयु के पूर्ण हो जाने से वे मरकर तिर्यञ्चयोनि में जाते हैं। जो बहुत दुस्तर व दारुण है, जन्म जरा मरण और व्याधिओं के अनेक चक्र वाली तथा जल चर आदि जन्तुओं के रूप से परस्पर हिंसा के प्रपञ्च वाली है। पशुगति का दु.ख जग प्रसिद्ध है। यह हिंसक जीव दीर्घकाल तक उसको भोगता रहता है,। पशुगति के दु.ख—ठंढी, गर्मी, भूख, प्यास, तथा पराधीनता से होने वाले अनेक प्रकार के बध बन्धन, ताडन, अङ्कन, अङ्गादि-छेदन, भेदन, अस्थि मोडन आदि हैं जो सुगम है, ऐसे नरक से आये हुए जीव, कर्म बचे रहने से तथा हार्दिक वर्तमान राग द्वेष से सञ्चित सैकडों दु.खों को तिर्यञ्च योनिमें पाते हैं। जो अत्यन्त कठोर होते हैं। सू० ५।४।

मूल—"भमर मसगमच्छिमाइएसु य जाइकुल कोडिसय सहस्सेहिं नवहिं चउरिंदियाण तहिं तहिं चेव जम्मण मरणाणि अणुभवंता कालं संखेज्जकं भमंति नेरइअसमाण तिव्वदुक्खा फरिस रसण घाण चक्खुसहिया, तहेव तेइंदिएसु कुंथु पिप्पी-लिका अवधिकादिकेसु य जातिकुल कोडि सयसहस्सेहिं अट्ठहिं अणूणएहिं तेइंदियाण तहिं तहिं चेव जम्मण मरणाणि अणुह-वंता कालं संखेज्जकं भमंति नेरइयसमाणतिव्वदुक्खा फरिस रसण घाण संपउत्ता, (तहेव बेइंदिएसु) गंडूलय जलूय किमिय चंदणगमादिएसु य जातिकुल कोडिसयसहस्सेहिं सत्तहिं अणू-णएहिं बेइंदियाण तहिं २ चेव जम्मणमरणाणि अणुहवंता कालं संखिज्जक भमंति नेरइयसमाणतिव्वदुक्खा फारिसरसण संप-उत्ता, पत्ता एगिंदियत्तणपिय पुढवि जल जलण मारुयवणप्फति

सुहुमवायरं च पज्जत्तमपज्जत्तं पत्तेयसरीरणामसाहारणं च, पत्तेय सरीरजीविएसु य, तत्थवि कालमसंखेज्जगं भमंति अणंत कालं च अणंतकाए फासिंदिय भाव संपउत्ता दुक्खसमुदय इमं अणिट्ठं पाविंति पुणो २ तहिं २ चेव परभव तरुगणगणे (गहणे) कोद्दालकुलिय दालण सलिल मलण खुंभण रुंभण अणलाणिल विविह सत्थघट्टण, परोप्परा भिहणण मारण विराहणाणिय अकामकाइं परप्पओगो दीरणाहिय कज्जप्पओयणेहिय पेस्स-पसु निमित्तं ओसहाहारमाइएहिं उक्खणण उक्कत्थण पयणकोट्टण पीसण पिट्टण भज्जण गालण आमोडण सडण फुरण भञ्जण छेयण तच्छण विलुंचण, पत्तज्झोडण अग्गिदहणाइयाति, एवं ते भवपरंपरादुक्खसमणुवद्धा अडंति, संसारबीहणकरे जीवा पाणाइवायनिरया अणंतकाल। जेविय इह माणुसत्तणं आगया कहंचि (कहिंवि) नरगा उव्वट्टिया अधन्ना तेविय दीसंति पायसो विकयविगल रूवा खुज्जा वडभा य वामणा य, बहिरा काणा कुंटा पंगुला विउला य मूका य मंमणा य अंधयगा एग-चक्खू विणिहयसचिल्लया वाहिरोग पीलिय अप्पाउय सत्थ वज्झबाला कुलक्खणुक्किन्नदेहा दुव्वल, कुसंघयण कुप्पमाण कुसंठिया कुरूवा किविणा य हीणा हीणसत्ता निच्चं सोक्खपरि-वज्जिया असुह दुक्ख भाग (गा) णरगाओ उव्वट्टिया, इहं सावसेसकम्मा, एवं णरगं तिरिक्खजोणिं कुमाणुसत्तं च हिंड-माणा पावंति अणंताइं दुक्खाइं पावकारी। एसो सो पाणव-हस्स फलविवागो इहलोइओ पारलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भयो बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्से-हिं मुच्चती, नय अवेदयित्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति एवमाहंसु, नायकुलनंदणो महप्पा जिणो उ वीरवर नामधेज्जो कहेसीय (कहइसीह) पाणवहस्स फलविवाय। एसो सो--पाणवहो चंडो रुद्दो खुद्दो अणारिओ निग्घिणो निस्संसो महब्भओ बीहणओ तासणओ अणज्जो उव्वेयणओ य णिरवयक्खो निद्धम्मो निप्पि-

वासो निक्कलुणो निरयवासगमण निधणो मोह महब्भय पव-ड्ढओ मरणवेमणस्सो। पढमं अहम्मदारं समत्त त्ति वेमि॥ सू० १।४॥

छाया-"भ्रमर मशक मक्षिकादिषुच जाति कुल कोटि शत सहस्रै र्नवभिश्चतुरिन्द्रियाणाम्, तत्र तत्र चैव जन्ममरणानि—अनुभवन्त. कालं सख्यातक भ्रमन्ति नैरयिकसमानतीऽदु:खाः स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु सहिता. । तथैव त्रीन्द्रियेषु कुन्थु पिपीलिकाऽवधिकादिषु च जाति कुल कोटिशतसहस्रैरष्टभिरन्यूनकैस्त्रीन्द्रियाणाम् तत्र तत्र चैव जन्म मरणान्यनुभवन्त काल सख्येयक भ्रमन्ति नैरयिक समान तीव्र दु.खाः स्पर्श रसन घ्राण सम्प्रयुक्ताः (तथैव द्वीन्द्रियेषु) गण्डलक–जलौक–कृमिक–चन्दन कादिकेषु च जाति कुल कोटिशत सहस्रै. सप्तभिरन्यूनै द्वीन्द्रियाणां तत्र २ चैव जन्म मरणान्यनुभवन्तः काल सख्येयक भ्रमन्ति नैरयिकसमान तीव्र दु.खाः स्पर्शन रसन सम्प्रयुक्ताः। प्राप्ता एकेन्द्रियत्वमपिच पृथिवी-जल-ज्वलन-मारुत–वनस्पति सूक्ष्मं बादरं च पर्याप्तमपर्याप्त प्रत्येक शरीर नाम साधारण च प्रत्येक शरीर जीवितेषु च तत्रापि कालमसख्येय भ्रमन्ति, अनन्तकाल चानन्तकाये स्पर्शन्द्रिय भाव सम्प्रयुक्ता. दु:ख समुदाय मिममनिष्ट प्राप्नुवन्ति, पुन. २ तत्र तत्र चैव परभव तरुगणगहने कोद्दाल कुलिक दारणं, सलिल मलन क्षोभण रोधनम्, अनलाऽनिल विविध शस्त्र घट्टण परस्पराभिहनन मारण विराधनानिच, अकामकानि पर प्रयोगोदीरणाभिश्च कार्य प्रयोजनाभिश्च, प्रेष्य पशु निमित्तमौषधाऽऽहारादिकै.–उत्खननो त्कथन पचन कुट्टन प्रेषण पिट्टन भर्जन गालनाऽऽमोटन शटन स्फुटनाऽऽमर्दन च्छेदन तक्षण विलुञ्चन पत्र ज्झोडनाग्नि दाहनादीनि, एवन्ते भवपरम्परा दु.खसमणुबद्धा अटन्ति ससारे भयङ्करे जीवा प्राणाति पात निरता अनन्त कालम्। येऽपिच इह मानुषत्वमागता. कथञ्चिन्नरका दुद्धृता अधन्यास्तेऽपिच दृश्यन्ते प्रायो विकृतविकलरूपा. कुब्जा वटभाश्च वामनाश्च बधिराः, काणाः, कुण्टा, पङ्गुला, विकलाश्च, मूकाश्च, मन्मना अन्धका एकचक्षुर्विनिहताः, सर्वाऽपचक्षुष, व्याधिरोगपीडिता अल्पायुषः शस्त्रवध्या बालिशाः (बाला) कुलक्षणोत्कीर्णदेहा दुर्बल कुसहनन कुप्रमाण कुसस्थाना (सस्थिता) कुरूपा' कृपणाश्च, हीना हीनसत्वा नित्य सौख्यपरिवर्जिता अशुभ दु:ख भाजो नरकादिह सावशेषकर्म्माणः। एव नरक तिर्यग्योनिं कुमानुषताच हिण्डमानाः प्राप्नुवन्ति–अनन्तानि दु:खानि पाप कर्म कारिणः। एष स प्राणवधस्य फलविपाक ऐहलौकिक. पारलौकिकोऽल्पसुखो बहुदु.खो महाभयो बहुरज.प्रगाढो दारुणः कर्क-

शोऽसातो वर्षसहस्रैमु च्यते । नचाऽवेदयित्वा अस्ति हि मोक्ष इति आख्यातवान् ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा जिनस्तु वीरवरनामधेयः कथितवान् प्राणवधस्य फल-विपाकम् । एष स प्राणवधश्चण्डो रुद्रः क्षुद्रोऽनार्यो निर्घृणो नृशसो महाभयो भयानक-त्रासनकोऽन्याय्य (नार्य.) उद्वेजनकश्च निरवकांक्षो निर्द्धर्मो निष्पिपासो निष्करुणो निरय वास गमन निधनो मोहमहाभय प्रवर्धकः-प्रवर्तकः मरण वैमनस्य· । प्रथम मधर्म द्वार समाप्तमिति ब्रवीमि ॥ सू० ४ क ॥

प्रथममधर्मद्वारं समाप्तम् ॥

अन्व-(य) और (चउरिंदियाण) चतुरिन्द्रिओंके (भमर मसग मच्छिमाइ-एसु) भौंरे, मशक, मच्छर तथा मक्खी आदि में (नवहिं जाइकुल कोडि सय सहस्सेहिं) नव लक्ष-लाख जाति की कुल कोटिसे (तहि तहि चेव) चतुरिन्द्रियों के उन उन स्थानों में ही (जम्मण मरणाणि) जन्म मरणों को (अणुभवता) अनुभव करते हुए (सखेज्जकं काल) संख्येय कालतक (भमति) परि भ्रमण करते हैं, वे (नेरइयसमाणतिव्वदुक्खा) नैरयिक के समान तीव्र दु.ख वाले (फरिस रस घाण चक्खु सहिया) स्पर्शन, रसन, घ्राण और चक्षु इन ४ इन्द्रियो से सहित हैं, (तहेव) चउरिन्द्रिय के समान ही (ते इंदिएसु) त्रीन्द्रिय-तीन इन्द्रिय वाली जाति में (कुथु पिप्पीलिका अवधिकादिकेसु य) कुथु पिपीलिका कीडी और अवधिका आदिकमें (अट्ठाहिं जातिकुलकोडिसयसहस्सेहिं) जाति कुल कोडि से जो आठ लाख हैं (तेइ दियाण) तीन इन्द्रियों के (तहि २) उन उन स्थानों मे (चेव) ही (जम्मण मरणाणि) जन्म मरणो को (अणुहवता) अनुभव करते हुए (सखेज्जककाल) सख्येयकालतक (भमति) परिभ्रमण करते हैं, ये भी (नेरइय समाण तिव्वदुक्खा) नैरयिक के समान तीव्र दु.ख वाले और (फरिस रसण घाण सपउत्ता) स्पर्शन रसन व घ्राण रूप तीन इन्द्रियों से युक्त हैं । (य) फिर (गडूलय जलूय किमिय चंदणगमादिएसु) गिंडोला, जलूका, कृमि-कीडे और चदनक-कौडी आदि में (अणूणएहिं सत्तहि जाति कुल कोडि-सयसहस्सेहि) पूरी सात लाख जाति की कुल कोडि से, (वे इ दियाण) वे इन्द्रिय जीवों के (तहि २) उन उन स्थानों में (चेव) ही (जम्मण मरणाणि) जन्म मरणों को (अणु हवता) अनुभव करते हुए (संखिज्जंकालं) संख्येय कालतक (भमति) भटकते हैं, वे-(नेरइय समाणदुक्खा) नारकीय जीवों के समान तीव्र दु खवाले (फरिस रसण सपउत्ता) स्पर्संनव रसन रूप २ इन्द्रियों से युक्त होते हैं,

(य) फिर (एगिंदियत्तणपि) एकेन्द्रियपन को भी (पत्ता) पाकर (पुढविजल जलण मारुयवणप्फति) पृथ्वी काय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय सम्बन्धी (सुहुम बायर) सूक्ष्म और बादर नाम कर्म के उदय से होने वाले (च) और (पज्जत्तमपज्जत्त) पर्याप्त तथा अपर्याप्त दशा (पत्तेय सरीरणाम) प्रत्येक शरीर नाम कर्म (सहारणच) और साधारण नाम कर्म के उदय से साधारण पन को पाते हैं (य) और (पत्तेयसरीरजीविएसु) एक शरीर में एक जीव रूप से जीने वाले-प्रत्येक-भिन्न जीवियों में (तत्थवि) वहाँ पर भी (कालमसखेज्ज) असख्य कालतक (भमति) परि भ्रमण करते हैं (च) और (अणतकाए) अनन्त काय-निगोद आदि में (अणत काल) अनन्त काल तक भ्रमण करते हैं (फासिंदिय भाव सपउत्ता) स्पर्शेन्द्रिय के भाव से युक्त जीव, वहा-(इम अणिट्ठ) कहे जाने वाले इस अनिष्ट (दुक्खसमुदय) दुःख समूह को (पुणो २) बारबार (पाविंति) पाते हैं (तहिं २ चेव) उन २ प्रत्येक आदि स्थानों में ही (परभव तरुगण गहणे) उत्कृष्ट स्थिति युक्त वृक्ष समूह के भव वाले अथवा परभव रूप वृक्ष समूह से गहन ऐसे एकेन्द्रिय पन में (कोद्दाल कुलिय दालण सलिल मलण खुभण रुभण) कुदाल और कुलिक एक प्रकार के भूमिखनने का अस्त्र व हल उनसे विदारण करना व पानी को मर्दन करना क्षुब्ध करना तथा रोक रखना "इस अंश से पृथ्वी वनस्पति और अप् कायके दुःख कहे गये हैं" (अणला णिल विविह सत्थ घट्टण परोप्पराभि हणण मारण विराहणाणिय) अग्निकाय और वायुकाय को अनेक प्रकार के पृथ्वी जल आदि शस्त्रों से घट्टन करना तथा परस्पर के अभिघात से मारना, व पीडा पहुचाना (अकामकाइ) इस प्रकार नहीं चाहने योग्य दुःख होते हैं, (परप्पओगोदीरणाहिय) दूसरे के प्रयोग से दुःख का उत्पादन और (कज्जपओयणाहिय) कार्य के प्रयोजनों से जो (पेस्सपसुनिमित्तओसहाहारमाइएहि) सेवक जन और पशु आदि के लिये औषध व आहार आदि कारण से (उक्खणण) उखेडना (उक्कत्थण) त्वचा हटना—छीलना (पयण कोट्टण) पकाना कूटना-टुकडे करना (पीसण-पिट्टण) चक्की आदि मे पीसना, पीटना या ऊखल आदि मे कूटना (भज्जण गालण) भट्टी मे पकाना, गलाना या कपडे मे छानना (आमोडन सडन) थोडा मोडना, खुद बिखर जाना, (फुडण भज्जण) फूटना—दो भाग होना भङ्ग होना (छेयण तच्छण) छेदना व वसूले आदि से छीलना (विलुचण-पत्तज्झोडण) रोम आदि हटाना, नोचना, पत्ते गिराना (अग्गिदहणाइयाति) अग्नि दहन इत्यादिक इके-

न्द्रिय जीव के लिये ये सब दुःख के कारण होते हैं। (एवं ते) इस प्रकार वे (भव परंपरा दुक्खसमणुबद्धा) भव परम्परा—अनेक जन्मो में निरन्तर दुःखवाले (जीवा) एकेन्द्रिय जीव (संसारबीहणकरे) भयङ्कर संसार में (पाणाइवाय-निरया) प्राणातिपात-हिंसा में निरत (अणतकाल) अनन्त काल तक (अडंति) भटकते हैं (जेविय) और जीभा (कहिवि) किसी तरह (नरगाउव्वट्टिया) नरक से निकले हुए (इह) यहाँ-मनुष्य लोक में (मणुस्सत्तण) मनुष्यपन—नरभव को (आगया) प्राप्त किये (तेवि अधन्ना) वेभी अधन्य-मन्दपुण्यवाले (य) और (पायसो) प्रायः (विकयविगलरूवा) विकृत व विकल रूप वाले (दीसति) दिखते हैं, इसी बात को स्पष्ट कहते हैं, (खुज्जा वडभा य) कुब्ज—कूबडे वटभ-ऊपर से वक्र-बांके देह वाले और (वामणा) वामन-बहुत छोटे (य) और (वहिरा) वहरे (काणा) काणे (कुटा) विकृत हाथ वाले (पगुला) पगु-चलने मे असमर्थ (विउला य) और विकल अङ्ग वाले (मूका) गूगे (य) और (ममणा) मन्मन रूप से-अस्पष्ट रूप से बोलने वाले (अंधिल्लगा) अंधे (एगचक्खू) एक आख वाले (विणिहय सचेल्लया) जिनकी एक आंख नष्ट हो गई है ऐसे एकाक्ष, तथा—पिशाचबाधा से पीडित (वाहि रोग पीलिय अप्पाउय सत्थवज्झ वाला) व्याधि कुष्ठ आदि, रोग—ज्वरादि इन सबो से पीडित और अल्प आयु वाले, व शस्त्र से मारे गए तथा मूर्ख (कुलक्खणु'किन्नदेहा) अशुभ लक्षणो से आकीर्ण-पूर्ण-देहवाले (दुब्बल कुसघयण-कुप्पमाण कुसंठिया) दुर्बल, उत्तम-सहनन व शरीर रचना से हीन अधिक बडे या अधिक छोटे आकार वाले (कुरूवा) कुरूप) किवणा य) और कृपण अर्थात् रङ्क, (हीणा) जाति आदि से हीन (हीणसत्ता) अल्पसत्त्व वाले (निच्चं सोक्खपरिवज्जया) सदा सुख से रहित (इह) यहाँ (असुह दुक्ख भाग णरगाओ) नरक से निकले हुए अशुभ दुःख के भागी (सावसेसकम्मा) अशुभ कर्म जिनके अवशेष हैं, ऐसे वे दिखते हैं, (एव) इस प्रकार (णरग) नरक (तिरिक्खजोणि) तिर्यग्योनि (कुमाणुसत्तच) और कुमनुष्य जन्म मे (हिंडमाणा) फीडते हुए (पावकारी) हिंसक लोग (अणंताइ दुक्खाइ) अनन्त दुःखों को (पावति) पाते हैं, (एसोसो) वह है यह (पाणवहस्स) जीव हिंसा का (फलविवागो) फलरूप विपाक जो (इहलोइओ) इस मनुष्य लोक सम्बन्धी, और (परलोइओ) अन्य तीन लोक सम्बन्धी (अप्पसुहो) अल्प सुख वाला (बहुदुक्खो) बहु दुःख वाला (महब्भओ) महाभय रूप (बहुरयप्पगाढा)

अधिक कर्म रज के कारण अतिगाढा (दारुणो) रौद्र तथा (कक्कसो) कठोर (असाओ) असातवेदनोय कर्म के उदय से दु खरूप (वाससहस्सेहि) हजारों वर्षों से प्राणी उस दुःख से (मुच्चइ) छूटता है (अवेदयिन्ता) विना भोगे (नय अत्थिहु मोक्खोत्ति) कर्म से छूटना नहीं होता, (एवमाहसु) ऐसा तीर्थङ्करने कहा है जो (नाय कुलणदणो) ज्ञात कुल के नन्दन (महप्पा) महात्मा (जिणोव) और वीतराग (वीरवरनामधेज्जो) वीरवर-महावीर नाम वाले तीर्थङ्करने (सीह कहेसी पाणवहस्स) सिंह के समान क्रूर ऐसे प्राण वध के (फलविवाग) फलरूप विपाक को (कहइ) कहा है। उपसहार--(एसोसो) यह पूर्व कथित स्वरूप वाला (पाणवहो) प्रणवध (चड) क्रूर-कुपित करने वाला (रुद्दो) रौद्र-भयङ्कर (खुद्दो) नीच जनों से सेवित (अणारिओ) अनार्य कर्म (निग्घिणो) घृणा-रहित (निससो) दया रहित (महब्भओ) महाभय पैदा करने वाला (बीहणओ) डराने वाला और (तासणओ) त्रास देने वाला (अणज्जो) न्याय से बहिर्भूत तथा (उव्वेयणओ) उद्वेग करने वाला (य) और (णिरवयक्खो) दूसरे के प्राण की अपेक्षा रहित, (निद्धम्मो) धर्म से शून्य (निप्पिवासो) पर प्राणी के प्रति स्नेह रहित (निक्कलुणो) करुणा रहित है, इसलिये (निरय वास गमण निधणो) नरक गतिमें गमन रूप अन्त वाला है, (मोहमहब्भयपवड्ढओ) मोह तथा भय को बढाने वाला और (मरणवेमणस्सो) मरण से प्राणिओं के चित्त मे वैमनस्य - दीनता पैदा करने वाला है (त्तिवेमि) ऐसा मैं कहताहूं। यहाँ प्रथम अधर्म द्वार समाप्त हुआ।

विवेचन—अर्थ सहजही है। इसलिये मात्र इसका सरांश लिखते हैं—'पञ्चेन्द्रियकी तरह हिंसक जीव चउरिंदिय के नो लाख कुल कोडिमे भ्रमर आदि रूप से जन्म मरण करते हैं, वहां स्पर्शन, रसन घ्राण और चक्षुरूप चार इन्द्रियों से युक्त होते हैं, ऐसे त्रीन्द्रिय के ८ आठ लाख कुल कोडी मे कुंथु पिपोलिका आदि रूप से भी जन्म मरणों का अनुभव करते हैं। ये त्रीन्द्रिय जीव स्पर्शन रसन और घ्राण इन तीन इन्द्रियों से युक्त होते है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय-बे इन्द्रिय के पूरे सात लाख कुल कोडिओं मे गिंडोला जलुका आदि रूप से जन्म मरण करते हैं। स्पर्श और रसन ये दो इन्द्रियाँ द्वीन्द्रिय जीवों को होती हैं। इन तीनों स्थनों मे नारक जीवो के समान तीव्र दु ख भोगते और प्रत्येक के उन स्थानों मे भ्रमण करता हुआ उत्कृष्ट सख्येय काल याने हजारों वर्ष पूर्ण कर देता है। फिर एकेन्द्रिय पन को पाकर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति भेद से सूक्ष्म बादर, पर्याप्त अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर और

"द्वितीयास्रवद्वारमधर्माख्यमारभ्यते"

अथ द्वितीय—आस्रवद्वार

प्रकरण सम्बन्ध—

प्राणवध के बाद दूसरा आस्रव—मृषावाद है। इसमें मृषावाद—असत्य का वर्णन किया जाता है। हिंसा करनेवालों को झूठ भी बोलना पड़ता है अत झूठ वाचिक-वचन सम्बन्धी-हिंसा बन जाती है। अत. अब प्रस्तुत अध्ययन में पांच द्वारों से मृषावाद की प्ररूपणा की जाती है। श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामीसे इस प्रकार फरमाते हैं—"

मूल—"जम्बू! बितियं च अलियवयण, लहुसगलहु चवल भणियं भयंकरं दुहकर अयसकरं वेरकरगं अरतिरति राग दोस मणसंकिलेसावियरणं, अलिय नियडि साति जोय बहुल नीयजण—निसेवियं, निस्संस, अप्पच्चय कारक, परम साहुगरहणिज्ज परपीलाकारक, परमकिण्हलेस्ससहियं, दुग्गइविणिवाय वड्ढणं, भवपुणब्भवकरं चिरपरिचियमणुगतं, दुरंतं, कित्तितं बितितं अधम्मदारं ॥ ५ ॥

छाया—"हे जम्बू! द्वितीयञ्चालीकवचनम्। लघु स्वकलघु चपलभणितं, भयङ्कर, दुःखकरमयशस्करं वैरकरमरतिरतिरागद्वेषमनः सक्लेशवितरणम्, अलीक निकृति स्वाति—निर्विश्रम्भ योग बहुलं नीचजन निषेवितं, नृशंसमप्रत्यय कारक, परमसाधुगर्हणीय परपीडाकारकं परकृष्णलेश्यासहित, दुर्गति विनिपातवर्द्धन. भवपुनर्भवकरं चिरपरिचितमनुगत दुरन्त, कीर्तितं द्वितीयमधर्मद्वारम्। १ सूत्र ५॥

अन्वयार्थ—"(जंबू !) हे जम्बू ? (अलिय) अलीक वचन-झूठ (वितियं) दूसरा आस्रव है (च) और स्वरूप से वह-(लहुसगलहुचवलभणिय) गुण गौरव से रहित लघु-तुच्छ लोगों से भी हल्का और चपल मनुष्यों से बोला गया (भयंकर) भयङ्कर (दुक्करं) दुःखदायी (अयसकर) अयश करने वाला (वेरकरग) द्वेष कारक (अरति रति राग दोस मण संकिलेस वियरण) अरति, रति, राग, द्वेष रूप मानसिक सङ्क्लेश को देने वाला है (अलिय) निष्फल (नियडि सातिजोय वहुल) कपट और अविश्वास जनक वचन के व्यापार की अधिकता वाला (नीयजण निसेविय) और जो नीच जनों से सेवित है (निस्ससं) कृपा या श्लाघा से रहित (अप्पचय कारक) विश्वास को नाश करने वाला (परमसाहु गरहणिज्ज) उत्तम साधुओं से निन्दनीय, (निन्दित) (पर पीला कारक) दूसरे को पीडा देनेवाला (परमकिण्हलेस्ससहिय) परमकृष्णलेश्यावाला (दुग्गइ विणिवाय वड्ढण) दुर्गति व अधःपात को बढाने वाला, (भव पुण भवकरं) जन्म जन्मान्तर को करने वाला (चिरपरिच्चियमणुगत) अनेक जन्मों का परिचित होने से साथ रहने वाला (दुरतं, कित्तित) दुःख से अन्त है जिसका, वैसा कहा गया है यह (वितित अधम्म-दार) दूसरा अधर्म द्वार है । १ । सू० ५ ।

विवेचन—सूत्र का अर्थ स्पष्ट है । इस सूत्र में लघु आदि अनेक विशेषणों से मृषा वचन का स्वरूप दिखाया गया, अब छट्ठे सूत्र से इस मृषावाद के गुण निष्पन्न तीस नाम दिखाते हैं—"

मूल—"तस्स य णामाणि गोण्णाणि होंति तीसं, तंजहा—अलियं १, सढं २, अणज्जं ३, मायामोसो ४, असंतक ५, कूड कवडमवत्थुगं च ६, निरत्थयमवत्थयं च ७, विद्देसगरहणिज्जं ८, अणुज्जुक ९, ककणाय १०, वंचणाय ११, मिच्छापच्छा कडंच १२, सातीउ १३, उच्छन्नं १४, उक्कूलंच १५, अट्टं १६, अब्भ-क्खाणं च १७, किव्विस १८, वलयं १९, गहण च २०, मम्मणं च २१, नूमं २२, नियर्यी (डी) २३, अप्पचओ २४, असमओ २५, असच संधत्तणं २६, विवक्खो २७, अवहीयं २८, उवाहिअ सुद्धं २९, अवलोवोत्ति ३०, अविय तस्स एयाणि एवमादीणि नामधेज्जाणि होंति तीसं, सावज्जस्स अलियस्स वइजोगस्स अणेगाइ ॥ सू० । २ । ६ ॥

छाया—"तस्य च नामानि गौणानि भवन्ति त्रिंशत्। तानि यथा-'अलीकम् १, शठम् २, अनार्यम् ३, मायामृषा ४, असत्कम् ५, कूट कपटाऽवस्तुकञ्च ६, निरर्थकापार्थकञ्च ७, विद्वेष गर्हणीयम् ८, अनृजुकम् ९, कल्कना १०, वञ्चनाच ११. मिथ्या पश्चात्कृतम् १२, च सातिस्तु (अविश्रम्भम्) १३, अपच्छन्नम् १४, उत्कूलञ्च १५, आर्तम् १६, अभ्याख्यानञ्च १७, किल्विषम् १८, वलयम् १९, गहनञ्च २०, मन्मनञ्च २१, नूम-(प्रच्छादनम्) २२, निकृतिः २३, अप्रत्यय. २४ असमयः २५, असत्य सन्धत्वम् २६, विपक्षः २७; अपधीकम्-(आज्ञातिगम्) २८, उपध्यशुद्धम् २९, अवलोप इति ३०, अपिच तस्यैतान्येवमादीनि नामधेयानि भवन्ति त्रिंशत्, सावद्यस्यालीकस्य वाग्योगस्यानेकानि ॥ २ ॥ ६ ॥

अन्व०—'(तस्स य) और उस मृषा वादके (गौण्णाणि) गुणनिष्पन्न (तीसं) तीस (णामाणि) नाम (होंति) होते हैं, (तंजहा) जैसे कि-वे निम्न लिखित हैं—'(अलिय १' अलीक झूठ १, (सढं) मायावियों से किये जाने से शठ है २ (अणज्ज) अनार्यों के वचन होने से अनार्य है ३, (माया मोसो ४) माया रूप कषायसे सहित होने और मृषा होने से मायामृषा है ४, (असंतक ५ असद् वस्तु को कहता है इसलिये असत्क है, (कूडकवडमवत्थुगच) दूसरों को ठगने से कूट भाषा विपर्यय होने से कपट मौजूद नहीं होने से अवस्तु. इन तीनों पदों में किसी तरह समानता होने से यह सम्मिलित 'कूट कपट अवस्तु' एक ही छट्ठा नाम है ६, (निरत्थयमवत्थयच ७) निष्प्रजोजन होने से तथा सत्यहीन होने से 'निरर्थकापार्थक है ७' (विद्देस गरहणिज्ज) विद्वेष व निन्दा इन दोनों का कारण होने से विद्वेष गर्हणीय है ८, (अणुज्जुक) कुटिल होने से अनृजुक है ९, (ककणाय) मायामय होने से कल्कना १० (वचणाय) ठगने का कारण होने से वञ्चना है ११, (मिच्छापच्छाकडंच) झूठा समझ कर न्यायवादियों से पीछा कर दिया जाता है, इसलिये यह मिथ्या पश्चात्कृत है १२ (सातीउ) अविश्वास कारक होने से इसको 'साति' कहते हैं १३ (उच्छन्न) अपने दोष को व परगुणों को ढक देने से यह 'अपच्छन्न' है १४, (उक्कूलंच) सन्मार्ग से अथवा न्याय नदी के तट से गिरादेने के कारण यह 'उत्कूल' है १५ (अट्ट) पाप पीडितों का वचन होने से 'आर्त' १६. (अब्भक्खाणं) अविद्यमान दोषों को कहने से यह 'अभ्याख्यान' कहाता है १७,

(किब्बिसं) पाप) कारण होने से 'किल्विष है १८, (वलय) वलय की तरह अन्तर शून्य और टेढा होने से इसको 'बलय' कहते हैं १९ (गहणंच) झूठे के अभिप्राय का पता नहीं चलने से यह सघन वन की तरह 'गहन' है २०, (मम्मणच) साफ नहीं होने से 'मन्मन' है २१ (नूम) सत्य को ढक देता है इसलिये 'नूम' प्रच्छादन है २२, (नियथो) माया को ढकने का वचन होने से यह 'निकृति' है २३ (अप्प-चओ) विश्वास का कारण नहीं होने से 'अप्रत्यय' है २४ (असमओ) सम्यक् आचार से हीन होने से 'असमय' है २५ (असच्चसंघत्तणं) झूठी प्रतीज्ञा का कारण होने से 'असत्य सन्धत्व है २६, (विवक्खो) सत्य और धर्म के विरोधी होने से 'विपक्ष' है २७ (अवहीयं) निन्दित बुद्धि वाला होने से यह 'अपधीक' कहाता है (आणाइय)-जिन भगवान् की आज्ञा का उल्लघन करने से यह 'आज्ञातिग' है) २८ (उवहि असुद्ध) उपधि—माया से अशुद्ध होने के कारण 'उपध्यशुद्ध' है २९ (अवलोवोत्ति) वस्तु के सद्भाव का लोप करने से 'अवलोप' कहाता है ३०, (अविय तस्स०) और उस मृषावाद के इत्यादि इस प्रकार के ये तीस नाम हैं, जो मृषावाद सावद्य सपाप और अलीक है तथा वचन का व्यापार है उसके ऐसे अनेक नाम हैं ।

भाव –अर्थ स्पष्ट है, । मतलब यह कि इन मृषावाद के पूर्वोक्त तीस नाम हैं ही किन्तु इस प्रकार और भी अनेक नाम हो सकते हैं । इस तरह इस मृषावाद का यन्नाम द्वार कहा गया । २ ।सू० ६ ।

अब झूट बोलने वाले जीवों को कहते हैं—

मूल—"तंच पुण वदंति केई अलिय पावा असंजया अवि-रया कवड कुडिल कडुय चडुलभावा, कुद्धा लुद्धा भया य हस्स-ट्ठिया य सक्खी चोर चार भडा, खंडरक्खा, जियजूईकरा य, गहियगहणा, कक्ककुरुग कारगा, कुलिंगी, उवहिया, वाणियगा य, कूडतुल कूडमाणी. कुडकाहावणोवजीवी, पडगार कलाय

कारुइज्जा, वंचणपरा, चारिय चाडु यार नगर गोत्तिय परिचारगा, दुट्ठवायि सूयक अणबल भणिया य, पुव्वकालियवयणदच्छा साहसिका, लहुस्सगा, असच्चा, गारविया, असच्चट्ठावणाहिचित्ता उच्चच्छंदा, अणिग्गहा, अणियता, छंदेण मुक्कवाता भवंति अलियाहिं जे अविरया। अवरे नत्थिकवादिणो वामलोकवादी भणंति-नत्थिजीवो न जाइ इह परे वा लोए, न य किंचिविफुसति पुन्नपाव, नत्थिफलं सुकय दुक्कयाण, पंच महाभूतियं सरीरं भासंति हे! वातजोगजुत्तं पंच य खंधे भणंति। केई मणं च मणजीविकावदंति। वाउजीवोत्ति एवमाहंसु, सरीरं सादियं सनिधणं इहभवे एगे भवे तस्स विप्पणासंमि सव्वनासोत्ति, एवं जंपंति मुसावादी, तम्हा दाण वय पोसहाणं तव संजम बंभचेरकल्लाणमाइयाण नत्थि फल, नवि य पाणवहे अलियवयणं, न चेव चोरिक्क करण परदारसेवणा वा सपरिग्गह-पाव-कम्म-करणं पि नत्थि किं चि न नेरइयातिरिय मणुयाण जोणी, न देवलोको वा अत्थि, न य अत्थि सिद्धिगमण अम्मापियरो नत्थि, नवि अत्थि पुरिसकारो, पच्चक्खाणमवि नत्थि, नवि अत्थि कालमच्चूय अरिहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा नत्थि, नेवत्थि के वि (इ) रिसओ धम्माधम्म फल च, नवि अत्थि किंचिबहुयं च थोवकंवा, तम्हा एवं विजाणिऊण जहा सुबहु इंदियाणुकूलेसु सव्व विसएसु वट्टह। णत्थि काइ किरिया वा अकिरिया वा एवं भणंति नत्थिकवादिणो वामलोगवादी। इमं पि वितीयं कुदंसणं असब्भावचाइणो पण्णवेंति मूढा—संभूतो अंडकाओ लोको, सयंभुणा सयंच निम्मिओ, एवं एयं अलियं-पयावइणा इस्सरेण य कयंनिकेति। एवं विण्हुमयं कसिणमेव य जगंति केई। एवमेके वदंति मोसं। एको आया अकारको वेदको य सुकयस्स दुक्कयस्स य करणाणि कारणाणि सव्वहा सव्वहिं च निच्चोय निक्किओ निग्गुणो य अणुवलेवओत्ति विय। एवमाहंसु असब्भावं,

जंपि इहं किंचि जीवलोके दीसइ सुकयंवा दुक्कयंवा एयं जदिच्छाए वा, सहावेण वावि दइवतप्पभावओ वावि भवति, नत्थेत्थ किंचि कयकं तत्तं लक्खणाविहाण नियती एकारियं, एवं केइ जपंति इड्ढिरससातगारवपरा, बहवे करणालसा परूवेंति धम्मवीमंसएण मोसं। अवरे अहम्मओ रायदुट्ठं अब्भक्खाणं भणेंति-अलियं चोरोत्ति अचोरयं करेंतं, डामरिउत्तिविय, एमेव उदासीण दुस्सीलोत्ति य परदारं गच्छतित्ति मइलिंति सील-कलियं, अयंपिगुरुतप्पओ, अण्णे एमेव भणंति उवाहणंता मित्तकलत्ताइं सेवाते, अयंपिलुत्तधम्मो, इमोवि विस्संभवाइओ, पावकम्मकारी अगम्मगामी अयं दुरप्पा बहुएसु य पावगेसु-जुत्तोत्ति एव जपति मच्छरा। भद्दके वा गुणकित्तिनेहपरलोग निप्पिवासा, एवते अलियवयणदच्छा परदोसुप्पायणप्पसत्ता वेढेंति अक्खातिय बीएण अप्पाणं, कम्मबंधणेण मुहरी असमिक्खियप्पलावा निक्खेवे अवहराति, परस्स अत्थमि गढियगिद्धा अभिजुजंति य परं असंतएहिं, लुद्धाय करेंति कूडसक्खित्तणं, असच्चा अत्थालियं च कन्नालियं च भोमालिय च तह गवालियं च गरुयं भणाति, अहरगतिगमणं, अन्नपि य जातिरूवकुलसील पच्चय मायाणिगुणं, चवलपिसुणं, परमट्ठभेदकमसक, विद्देसमणत्थकारकं, पावकम्मूलं, दुद्दिट्ठं दुस्सुयं, अमुणियं निल्लज्जं लोकगरहणिज्जं वहबंध परिकिलेसबहुल जरा मरण दुक्खसोयनिम्मं असुद्ध परिणामसंकिलिट्ठं भणंति अलियाहि संधिसंनिविट्ठा, असंतगुणुदीरका य संतगुणनासका य हिंसाभूतोवघातितं अलियसंपउत्ता वयणं सावज्जमकुसलं साहुगरहणिज्जं अधम्मजणणं भणंति, अणभिगय पुन्नपावा, पुणोवि अधिकरण-

किरियापवत्तका बहुविहं अणत्थं, अवमद्दं, अप्पणो परस्स य करेंति, एमेव जंपमाणा महिससूकरे य साहिंते घायगाणं, ससय पसय रोहिए य साहिंति-वागुराणं, तित्तिर वट्टक लावके य कविंजलकवोयके य साहिंति साउणीणं, झस मगर कच्छभे य साहिंति मच्छियाणं, संखंक खुल्लए य साहिंति मगराणं, अयगर गोणस मंडलिदव्वीकरे मउली य साहिंति वालवीणं, गोहा सेहग सल्लग सरडगे य साहिंति लुद्धगाणं, गयकुल वानर-कुले य साहिंति पासियाणं, सुकवरहिण मयणसाल कोइल हंस कुले सारसे य साहिंति पोसगाणं. वध बंध जायणं च साहिंति गोम्मियाणं, धण धन्न गवेलए य साहिंति तक्कराणं, गामागर नगर पट्टणे य साहिंति चारियाणं. पारघाइय पंथघातियाओ साहिंति य गंठिभेयाणं. कयं च चोरियं नगरगोत्तियाणं, लंछण निल्लंछण धमण दुहण पोसण वणण दवण वाहणादियाइं साहिंति बहूणि गोमियाणं, धातुमणि सिलप्पवाल रयणागरे य साहिंति आगरीणं, पुप्फविहिं फलविहिं च साहिंति मालियाणं, अग्घ-महुकोसए य साहिंति वणचराणं, जंताइं विसाइं मूलकम्मं आहे-वण आविंधण आभिओग मंतोसहिप्पओगे चोरियपरदारगमण-बहुपावकम्मकरणं उक्खंधे गामघातियाओ वण दहण तलागभे-यणाणि बुद्धि विसविणासणाणि वसीकरणमादियाइं भयमरण किलेस दोसजणणाणि भाव बहुसंकिलिट्ठ मलिणाणि भूतघातो-वघातियाइं, सच्चाइपि ताइं हिंसकाइं वयणाइं उदाहरंति-पुट्ठावा अपुट्ठावा परतत्तिवावडा य असमिक्खियभासिणो उव-दिसंति, सहसा उट्ठा गोणा गवया दमंतु, परिणयवया अस्सा हत्थी गवेलगकुक्कुडा य किज्जंतु, किणावेध य, विक्केह, पयह य सयणस्स देह पियय, दासिदास भयक भाइल्लका य सिस्सा य पेसकजणो कम्मकरा य किंकरा य एए सयण परिजणो य कीस अच्छंति ? भारिया भे करित्तु कम्मं, गहणाइं वणाइं खेत्तखिल भूमिवल्लराइं उत्तण घण संकडाइं डज्झतु, सूडिज्जंतु य रुक्खा,

भिज्जंतु जंत भंडाइयस्स उवहिस्स कारणाए बहुविहस्सय अट्ठाए उच्छू दुज्जतु, पीलिज्जतु य तिला, पयावेह य इट्टकाउ मम घरट्ठयाए; खेत्ताइं कसह, कसावेह य लहुं, 'गाम आगर नगर खेड कव्वडे निवेसेह अडवीदेसेसु, विपुलसीमे पुप्फाणिय फला-णिय कंदमूलाइ कालपत्ताइ गेण्हेह, करेह संचयं परिजणट्ठयाए, साली वीही जवा य लुच्चंतु मलिज्जंतु उप्पणिज्जंतु य, लहुं च पविसंतु य कोट्ठागारं, अप्प मह उक्कोसगा य हंमंतु पोयसत्था, सेणा णिज्जाउ जाउ डमरं, घोरा वहंतु य संगामा, पवहंतु य सगड वाहणाइं, उवणयणं चोलगं विवाहो जन्नो अमुगम्मिउ होउ दिवसेसु करणेसु, मुहुत्तेसु, नक्खत्तेसु, तिहिसु य, अज्ज होउ ण्हवणं सुदितं, बहुखज्जपिज्जकलियं कोतुकं विण्हावणकं संतिकम्माणि कुणह, ससिर विगहोव राग विसमेसु सज्जण परियणस्स य नियकस्स य जीवियस्स परिरक्खणट्ठयाए पडि-सीसकाइं च देह, देह य सीसोवहारे, विविहोसहि मज्ज मंस-भक्खन्नपाण मल्लाणुलेवण पईवजलिउज्जलसुगंधिधूवावकार-पुप्फफल समिद्धे पायच्छित्ते करेह, पाणाइवायकरणेणं बहुविहेणं, विवरीउप्पायदुस्सुमिण पावसउणअ सोमग्गह चरिय अमंगल-निमित्त पडिघायहेउं, वित्तिच्छेयं करेह, मा देह किंचिदाणं, सुट्ठुहओ (२) सुट्ठुछिन्नो, भिन्नत्ति उवदिसंता, एवंविहं करेंति अलियं मणेण वायाए कम्मुणा य, अकुसला अणज्जा, अलियाणा, अलियधम्मणिरया, अलियासु कहासु अभिरमंता तुट्ठा अलियं करेत्तु होंति य बहुप्पयारं ॥ सू० ३ । ७ ॥

छाया—'तत्र पुनर्वदन्ति केचिदलीक पापा असयता अविरता कपट कुटिल-कटुक-चटुल-स्वभावा, क्रुद्धा लुब्धा भय भाताश्च, हास्यार्थिकाश्च, साक्षिण चौर—चारभटा., खण्डरक्षका, जितद्यूतकाराश्च, गृहीतग्रहणका कल्क गुरुक कारकाः, कुलिङ्गिन, औपधिका, वाणिजकाश्च, कूटतुला कूटमानिन, कूटकार्षापणोपजीविन., पटकार—कलाद—कारुकीया वञ्चनपराश्चारिक चाटुकार नगर गोप्तृक परिचारका', दुष्टवादि सूचकर्णनलभणिताश्च, पूर्वकालिकवचनदक्षा., साहसिका, लघुस्वका,

असत्या गौरविका, असत्य स्थापनाधिचित्ता, उच्चच्छन्दा, अनिग्रहा, अनियताइच्छन्देन मुक्तवाचो भवन्त्यलीकाद् येऽविरताः। अपरे नास्तिकवादिनो वामलोकवादिनो भणन्ति—"नास्ति जीवो न याति इह परत्र वा लोके, नच किञ्चिदपि स्पृशति पुण्य-पापम्, नास्ति फलं सुकृत दुष्कृतानाम्, पञ्चमहाभौतिक शरीरं भाषन्ते हि वातयोग-युक्तम्। पञ्च च स्कन्धान् भणन्ति केचित् (रूप, वेदना, विज्ञान, सञ्ज्ञा, संस्कार-रूपान्) मनश्चैव मनोजीविका वदन्ति। वायुर्जीव इत्येवमाख्यान्ति,। शरीर सादिकं सनिधनम्, इह भव एको भव.। तस्य विप्रणाशे सर्वनाश इति। एव जल्पन्ति मृषा-वादिन। तस्मद्दानव्रतपौषधानां तप सयमब्रह्मचर्यकल्याणादीनां नास्ति फलम्। नापि च प्राणवध', अलीक वचन, नचैव चौर्यकरण परदारसेवन वा, सपरिग्रहपाप-कर्म करणमपि नास्ति, काचिन्न नैरयिकतिर्यङ्मनुष्याणां योनि.। न देवलोको वास्ति, न चास्ति सिद्धिगमनम्। मातापितरौ न स्त.। नाप्यस्ति पुरुषकार', प्रत्या-ख्यानमपि नास्ति, नैवास्ति कालो मृत्युश्च। अर्हन्तश्चक्रवर्तिनो बलदेवा वासुदेवा न सन्ति, नैव सन्ति केऽपि ऋषय धर्माऽधर्म फल च नाप्यस्ति किञ्चिद् बहुक चस्तोक वा, तस्मादेव विज्ञाय यथा सुबह्विन्द्रियानुकूलेषु सर्वविषयेषु वतध्व। नास्ति काचित् क्रिया वाऽक्रिया वा, एव भणन्ति नास्तिकवादिनो वामलोकवादिन। इदमपि द्वितीय कुदर्शनमसद्भाववादिन प्रज्ञपयन्ति मूढा.—"सम्भूतोऽण्डकाल्लोकः स्वयम्भुवा स्वयञ्च निर्मितः। एवमेतदलीकम्—प्रजापतिना चेश्वरेण कृतमिति केचिद्वदन्ति। एव विष्णुमय कृत्स्नमेव च जगदिति केचित्, एवमेके वदन्ति मृषान्-' एक आत्माऽकारको वेदकोऽपि च सुकृतस्य दुष्कृतस्य च करणानि कारणाणि सर्वत्र सर्वथा च नित्यश्च निष्क्रियो निर्गुणश्च अनुपलेपक इत्यपि च। एव वदन्त्यसद्भावम्। यदपीह किञ्चिज्जीवलोके दृश्यते सुकृतवा दुष्कृतवा एतद् यदृच्छयावा, स्वभावेन वापि दैवत-प्रभावा द्वापि भवति। नास्त्यत्र किमपि कृतक तत्त्वम् लक्षणविधान नियत्या कारितम् एव केऽपि जल्पन्ति। ऋद्धि रस सात गौरवपरा बहव करणालसा प्ररूपयन्ति धर्मविमर्शकेन मृषाम्। अपरेऽ-धर्मता राजदुष्ट मभ्याख्यान भणन्ति—अलीकम्—चौर इत्यचौर्यं कुर्वन्त, डामरिक इत्यपिच वैरमकुर्वाणञ्च। एवमेवादासीन दुश्शील इतिच परदार गच्छतीति मलिनयन्ति शीलकलितम्—अयमपि गुरुतल्पग। अन्य एवमेव भणन्ति—उपहन्तो मित्र कलत्राणि सेवन्ते। अयमपि लुप्तधर्मा इमेऽपि विश्रम्भघातिन पाप कर्म कारिणाऽ गम्यागामिन'। अय दुरात्मा बहुकेषु पापकेषु युक्ता इति, एव जल्पन्ति मत्सरिणो भद्रकेषु गुण कीर्तिस्नेह परलोकनिष्पिपासा.। एवतेऽलीक वचन दक्षा परदोषो-

त्पादन प्रसक्ता वेष्टयन्ति अक्षितिक बीजेनाऽऽत्मान कर्मबन्धनेन मुखरिणोऽसमोक्षित-प्रलापाः। निक्षेपानपहरन्ति परस्यार्थे ग्रथित गृद्धा। अभियुञ्जते च परमसद्‌भिर्दोषैः, कुर्वन्ति कूटसाक्षित्वम्, असत्या अर्थालीकच, कन्यालीकच, भूम्यलीकञ्च तथा गवालीकञ्च, गुरुक भणन्ति-अधरगतिगमनम्। अन्यदपि च जाति रूप कुल शील प्रत्यय माया निर्गुण चपल पिशुन परमार्थभेदकमसत्कम्, विद्वेषमनर्थकारक पाप कर्ममूल दुर्दृष्टं दुश्रुतममनोज्ञम्, अनुचित निर्लज्ज लोकगर्हणीय वधबन्ध परिक्लेश-बहुल जरा मरण दुःखशोक मूल-(नेमम्) अशुद्ध परिणाम संक्लिष्ट भणन्ति, अलीका अलीकाऽभिसन्धि सन्निविष्टा, असद्गुणोदीरकाश्च सद्गुणनाशकाश्च हिंसाभूतोप घातकम् अलीकसम्प्रयुक्ता वचन सावद्यमकुशल साधु गर्हणीयमधर्मजनन भणन्ति, अनभिगत पुण्यपापा। पुनरप्यधिकरण-क्रिया प्रवर्तका बहु विधमनर्थमपमर्दमात्मनः परस्यच कुर्वन्ति, एवमेव जल्पन्तो महिष शूकरौच साधयन्ति घातकानाम्। शश प्रशय रोहितांश्च साधयन्ति वागुरिकाणाम्। तित्तिर वर्तक लावकांश्च कपिञ्जलक-पोतांश्च साधयन्ति शाकुनिकानाम्। झषमकर कच्छ (क्ष) पाश्च साधयन्ति मात्स्यि-कानाम्, शङ्खाङ्कौ क्षुल्लकाश्च साधयन्ति मकराणाम्। अजगर गोनस मण्डलि दर्वीक-रांश्च मुकुलिनश्च साधयन्ति व्यालपानाम्। गोधान् सेहक शल्यक शरटकांश्च साध-यन्ति लुब्धकानाम्। गजकुल वानरकुलानिच साधयन्ति पाशिकानाम् शुकबर्हि मदनशाला कोकिल हंसकुलानि सारसश्च साधयन्ति पोषकाणाम्। वध बन्ध यातनांच साधयन्ति गौल्मिकानाम्। धन धान्य गवेलकांश्च साधयन्ति तस्करा-णाम्। ग्रामाकर नगर पत्तनानिच साधयन्ति चारिकाणाम्। पार घातिक पथि घातिकौ साधयन्ति च ग्रन्थिभेदकानाम्। कृतांच चौरिका नगर गुप्तिकानाम्। लाञ्छन निर्लाञ्छन ध्मान दोहन पोषण वञ्चन दवन वाहनादिकानि साधयन्ति बहूनि गोमि-कानाम्। धातु मणि शिला प्रवाल रत्नाकरांश्च साधयन्ति-आकरिणाम्। पुष्प विधि फलविधिंच साधयन्ति मालिकानाम्। अर्घ्यं मधु कोशाश्च साधयन्ति वनेचराणाम्। यन्त्राणि विषाणि मूलकर्माऽऽक्षेपणा वेधनाऽभियोग मन्त्रौषधिप्रयोगान् चोरिक परदार गमन बहु पाप-कर्म करणम्-अवस्कन्दान् ग्राम घातिका वन दहन तडाग भेदनानि, बुद्धि विषय विनाशनानि, वशीकरणादिकानि, भय मरण क्लेश दोष जन-कानि भावबहु संक्लिष्ट मलिनानि भूत घातोपघातकानि सत्यान्यपि तानि हिंसकानि वचनान्युदाहरन्ति पृष्टा वा अपृष्टा वा परतप्तिव्यापृताश्च, असमोक्षितभाषिण उपदि-शन्ति-सहसा-उष्ट्रा गावो गवया दम्यन्ताम्। परिणत वयसोऽश्वाहस्तिनो गवेलकक-

कुटीश्च क्रीणीत, क्रापयत, विक्रीणीत पचत च, स्वजनाय दत्त पिबत, । दासीदास-भृतकभागहारिणः शिष्याश्च प्रेष्यजन. कर्मकराश्च किंकराश्च एते स्वजन परिज-नाश्च कस्मादासते ? भर्या भवतः कुरुत कर्म (कुर्वन्तु कर्माणि) गहनानि वनानि क्षेत्र खिलभूमिवल्लराणि उत्तृण घनसङ्कटानि दह्यन्तो सूयन्तां च, वृक्षा भिद्यन्ताम्, यन्त्र भाण्डादिकस्योपधे' कारणाय बहु विधस्य चार्थाय, इक्षवो दूयन्ताम्, पीड्यन्तां च तिलाः, पाच्यन्तां चेष्टका मम गृहार्थाय, क्षेत्राणि कृषत, कर्षयत च लघु, ग्रामाऽऽकर नगर खेट कवटानि निवेशयत, अटवीदेशेषु विपुलसीमानि ,पुष्पाणि च फलानि च कन्द-मूलानि कालप्राप्तानि गृह्णीत, कुरुत सञ्चयम् । परिजनार्थाय शालयो व्रीहयो यवाश्च लूयन्ताम्, मर्द्यन्तां च, उत्पूयन्ता—(उपनीयन्ता) श्च, लघुच प्रविशन्तु कोष्ठागारम् । अल्पमहोत्कर्षकाश्च हन्यन्ता पोतसार्थाः । सेना निर्यातु डमरम्, घोरा वर्तन्तां च सग्रामा', प्रवहन्तु च शकटवाहनानि । उपनयन, चूडाकर्म, विवाहो, यज्ञोऽमुष्मिन् भवन्तु (तु) दिवसे, करणे, मुहूर्ते, नक्षत्रे, तिथौच । अद्य भवतु स्नपन मुदितं, बहु खाद्यपेयकलितम् । कोतुक, विस्नापनकं, शान्तिकर्माणि कुरुत, शशि रवि ग्रहोप-राग विषमेषु स्वजन परिजनस्य च निजकस्य च जीवितस्य परिरक्षणार्थाय प्रतिशीर्षकाणि च दत्त, दत्त च शीर्षोपहारान्, विविधौषधिमद्यमांस भक्ष्यान्नपानमाल्यानुलेपन प्रदीपज्वलितोज्ज्वल सुगन्धि धूपापचार (पापकार) पुष्प फल समृद्धानि प्रायश्चित्ता-नि कुरुत, प्राणातिपातकरणेन बहुविधेन, विपरीतोत्पात दुस्वप्न पाप शकुनाऽसोम्य ग्रह चरिताऽमङ्गलनिमित्तप्रतिघातहेतोर्वृत्तिच्छेदं कुरुत, मादत्त किञ्चिद्दानम् सुष्ठु हत २, सुष्ठु छिन्त, भिन्त इत्युपदिशन्ति एवंविध कुर्वन्त्यलीकम् । मनसा वचसा कर्मणा च अकुशला अनार्या अलीकाज्ञा अलीकधर्मनिरताः । अलीकासु कथास्व-भिरममाणास्तुष्टा अलीक कृत्वा भवन्ति च बहुप्रकारम् । ।। सू० । २ । ७ ।

अब असत्य बोलनेवालोंका परिचय देते हैं—

अन्वयार्थ—"(तंचपुण) और फिर उस (अलियं) असत्य वचनको (वदतिः) बोलते है (केई) कई (पावा) पापी लोग जो (अस्संजया) असंयमशील(अवि०) विरति रहित हैं (कवडकुडिलकडुयचटुलभावा) कपट के कारण कुटिल और परिणाम से दारुण व चचल मन वाले (य)और (कुद्धा लुद्धा भया) क्रोधी लोभी और दूसरों को डराने वाले, तथा स्वय डरने वाले (हस्सट्ठिया) हसी मजाक के अर्थी (सक्खी) साक्षी देने वाले (चोर चार भडा) चोर, गुप्तदूत व सैनिक (खंडरक्खा) सायर के हासिल लेने वाले (जिय जूई करा य) और जूआ मे हारकर

फिर जूआ खेलने वाले (गहियगहणा) गिरवी रखने वाले (कक्क कुरुग कारगा) माया-कपट करने वाले (कुलिंगी) कुतिर्थी-या वेषधारी, (उवहिया) ठग (वाणियगा) व्यापार करने वाले-वणिक् लोग, (कूड तोल कूडमानी) खोटे तोल माप करने वाले (कुडकाहावणोपजीवी) नकली मुद्रा बनाने वाले (पडगार कलायकारु इज्ज) वस्त्र बुनने वाले, गहना-अलङ्कार बनाने वाले व शिल्पी लोग-छींपे आदि (वंचण परा) दिन रात ठगाई करने वाले (चारिय-चाटुयार-नगर गोत्तियपरिचारगा) खोज निकालने मे लगे हुए, खुशामद करने वाले और नगर को रक्षा करने वाले, व व्यभिचार में मदत देने वाले (दुट्ठवायि सूयक अणबल भणिया य) और खराबपक्ष लेने वाले, चुगली करने वाले, और सदा कर्जदार कहाने वाले (पुव्वकालियवयणदच्छा) बोलने वाले के अभिप्राय को जानकार उसके पहले बोलने मे चतुर अथवा अतिशय और आगमज्ञान से विकल होने के कारण पूर्व कालिक अर्थ को बोलने मे जो अदक्ष हैं, वैसे (साहसिका) विना विचारे बोलने वाले (लहुस्सगा) आत्मबलसे हीन (असच्चा) सज्जनों के लिये अहितकारक (गारविया) ऋद्धि आदि गौरव से युक्त (असच्चट्ठावणाहिचित्ता) असत्य की स्थापना मे चित्त वाले (उच्चछंदा) आत्मोत्कर्ष के विचार वाले (अणिग्गहा) स्वच्छन्द (अणियता) नियम रहित—अव्यवस्थित जीवन वाले (छंदेण मुक्कवाता) इच्छानुसार वचन का प्रयोग करने वाले (जे अलियाहि) जो झूठ वचनों से (अविरया) अविरत—अनिवृत्त (भवंति) होते हैं। वे अपनी इच्छानुसार झूठ बोलते हैं। अब दार्शनिक असत्यवादी कहे जाते हैं (अवरे) लौकिक झूठ बोलने वालों की अपेक्षा से दूसरे (नत्थिकवादिणो) नास्तिक वादी-लोकायतिक (वाम लोक वादी) लोक को विपरीत रूप से कहने वाले (भणंति) बोलते हैं कि—(नत्थिजीवो) जीव नहीं है, (न जाइ इह परे वा लोए) मनुष्य आदि वर्तमान गति के जन्म मे या परलोक मे नहीं जाता (नय किंचिवि फुसति पुन्नपाव) और पुण्य अथवा पापका किञ्चित् भी स्पर्श नहीं करता है (नत्थि फल सुकय दुक्कयाण) सुकृत व दुष्कृतों का कुछ भी फल नहीं है (पंच महाभूतिय सरीर भासंति) पञ्च महाभूत—पृथ्वी, जल, वह्नि, वायु आकाश, इन से बना यह शरीर ही आत्मा भाषित होता है (वात जोग जुत्त) प्राण वायु के योग से क्रिया मे लगा हुआ है, (केई) और कई-बौद्धाचार्य (पंच य खंधे) पांच [रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार—नामके] स्कन्धों को आत्मा (भणंति) कहते हैं (च) और कुछ बौद्ध विशेष (मण जीविका) मनको ही जीव

मानने वाले (मणं) मण को आत्मा (वदति) कहते हैं, (वाउजीवोत्ति) (उच्छ्वास आदि लक्षण वाला जीव है, (एवम'हसु) इस प्रकार कई कहते हैं. (सरीर सादियं सनिधन) शरीर पैदा होने से आदि वाला और मरने से अन्त वाला है (इहभवे) इस ससर मे प्रत्यक्ष दिख पडने वाला भवही (एगेभवे) एक भव—जन्म है (तस्स विप्पणासमि) इसके विनाश हो जाने पर (सव्वनासोत्ति) सर्व नाश हो जाता है अर्थात् आत्मा पुण्य पाप आदि कुछ नहीं रहता (एव) इस प्रकार (मुसा वादी) झूठ बोलने वाले (जपति) बोलते हैं (तम्हा) शरीर के साथ सबका नाश होता है, इसलिये (दाण वय पोसहाण) दान, व्रत, पौषधोंका (तव-सजम बभचेर कल्लाणमाइयाण) तप, सयम, ब्रह्मचर्य रूप कल्याण मार्ग तथा सम्य-ग्दर्शनादि सत्कर्मों का (नत्थिफल) कोई फल नहीं है (नवि य) और न (पाणवहे) प्राणवध—हिंसा, (अलियवयण) झुठबोलना (चोरिक्ककरण) चोरी करना (वा) अथवा (परदार सेवण) पर स्त्री गमन करना (सपरिग्गहपावकम्मकरण) परिग्रहों के साथ पाप क्रिया का सेवन करना (पि) भी अशुभ फल का कारण (नत्थि) नहीं है (किंचि) कुछ भी (नेरइयतिरियमणुयाण) नरक तिर्यक् मनुष्यों को (जोणी) योनि—जन्मस्थान (न) नहीं है (वा) अथवा (देवलोको न अत्थि) देव लोक नहीं है (नय अत्थि सिद्धिगमण) और सिद्ध गति मे गमन नहीं है (अम्मा पियरो) माता पिता (नत्थि) नहीं है, (नवि अत्थि पुरिसकारो) और पुरुषार्थ भी नहीं है (पच्चक्खाणमवि नत्थि) प्रत्याख्यान—धर्म साधन रूप से त्याग भी नहीं है. (नवि अत्थि काल मच्चू य) और काल व मृत्यु भी नहीं है (अरिहता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा) अरिहन्त चक्रवर्ती बलदेव और वासु-देव (नत्थि) नहीं है (नेवत्थि केवि रिसओ), और कोई ऋषि—महर्षि भी कुछ नहीं हैं (धम्माधम्म फल च नवि अत्थि) तथा धर्मअधर्मों का फल भी कुछ नहीं है । किंचि) कुछ (बहुय) बहुत (वा) अथवा (थोवक) थोडा पुण्य पाप का परिणाम नहीं है । (तम्हा) इसलिये (एव) जीव को धर्माधर्म का फल नहीं मिलता ऐसा (विजाणिऊण) जान कर (जहासुरहु) जिस प्रकार बहुत अनुकूल हों वैसे (इदियाणुकूलेसु) इन्द्रियों के अनुकूल (सव्वविसएसु) सब विषयों मे (वट्टह) वर्तन करो—प्रवृत्ति करो (णाइ किरिया) कोई क्रिया—प्रशस्त कार्य (वा अकिरिया) या अक्रिया अर्थात् पापक्रिया (णत्थि) नहीं है. (एव) इस प्रकार (नत्थिकवादिणो) नास्तिक मतवाले (भणंति) बोलते है (वामलोगवादी)

फिर जूआ खेलने वाले (गहियगहणा) गिरवी रखने वाले (कक्क कुरुग कारगा) माया-कपट करने वाले (कुलिंगी) कुतिर्थी-या वेषधारी, (उवहिया) ठग (वाणियगा) व्यापार करने वाले-वणिक् लोग, (कूड तोल कूडमानी) खोटे तोल माप करने वाले (कुडकाहावणोपजीवी) नकली मुद्रा बनाने वाले (पडगार कलायकारु इज्ज) वस्त्र बुनने वाले, गहना-अलङ्कार बनाने वाले व शिल्पी लोग-छींपे आदि (वचण परा) दिन रात ठगाई करने वाले (चारिय-चाटुयार-नगर गोत्तिय-परिचारगा) खोज निकालने मे लगे हुए, खुशामद करने वाले और नगर को रक्षा करने वाले, व व्यभिचार में मदत देने वाले (दुट्ठवायि सूयक अणबल भणिया य) और खराबपक्ष लेने वाले, चुगली करने वाले, और सदा कर्जदार कहाने वाले (पुव्वकालियवयणदच्छा) बोलने वाले के अभिप्राय को जानकार उसके पहले बोलने मे चतुर अथवा अतिशय और आगमज्ञान से विकल होने के कारण पूर्व कालिक अर्थ को बोलने मे जो अदक्ष हैं, वैसे (साहसिका) विना विचारे बोलने वाले (लहुस्सगा) आत्मबलसे हीन (असचा) सज्जनों के लिये अहितकारक (गारविया) ऋद्धि आदि गौरव से युक्त (असच्चट्ठावणाहिचित्ता) असत्य की स्थापना मे चित्त वाले (उच्चछदा) आत्मोत्कर्ष के विचार वाले (अणिग्गहा) स्वच्छन्द (अणियता) नियम रहित—अव्यवस्थित जीवन वाले (छदेण मुक्कवाता) इच्छानुसार वचन का प्रयोग करने वाले (जे अलियाहि) जो झूठ वचनों से (अविरया) अविरत—अनिवृत्त (भवति) होते हैं। वे अपनी इच्छानुसार झूठ बोलते हैं। अब दार्शनिक असत्यवादी कहे जाते हैं (अवरे) लौकिक झूठ बोलने वालों की अपेक्षा से दूसरे (नत्थिकवादिणो) नास्तिक वादी-लौकायतिक (वाम लोक वादी) लोक को विपरीत रूप से कहने वाले (भणति) बोलते है कि—(नत्थिजीवो) जीव नहीं है, (न जाइ इह परे वा लोए) मनुष्य आदि वतमान गति के जन्म मे या परलोक मे नहीं जाता (नय किंचिवि फुसति पुन्नपाव) और पुण्य अथवा पापका किञ्चित् भो स्पर्श नहीं करता है (नत्थि फल सुकय दुक्कयाण) सुकृत व दुष्कृतों का कुछ भो फल नहीं है (पच महाभूतिय सरीर भासति) पञ्च महाभूत—पृथ्वी, जल, वह्नि, वायु आकाश, इन से बना यह शरीर ही आत्मा भाषित होता है (वात जोग जुत्त) प्राण वायु के योग से क्रिया मे लगा हुआ है, (केई) और कई-बौद्धाचार्य (पच य खधे) पाच [रूप, वेदना, विज्ञान, सज्ञा और सस्कार---नामके] स्कन्धों को आत्मा (भणंति) कहते हैं (च) और कुछ बौद्ध विशेष (मण जीविका) मनको ही जीव

गमन करता है इस प्रकार (अयपि) यह भी (गुरुतप्पओ) गुरु पत्नी गामी है, 'ऐसा कहकर' (सील कलिय) शील युक्त को (मइलिंति) मलिन बनाते हैं (एमेव) इसी प्रकार (अन्ने) दूसरे (उवाहणंता) दूसरों की कीर्ति को मिटाते हुए (भणंति) मृषा बोलते हैं, जैसे कि-(मित्त कलत्ताइं) मित्र स्त्री में (सेवंति) गमन करते हैं (अयंपि) 'केवल वे नहीं किंतु' यह भी (लुत्त धम्मो) धर्म रहित है (इमेवि) यह भी (विस्सभ घाइओ) विश्वास घाती (पावकम्मकारी) पाप करने वाला तथा (अगम्म गामी) अगम्या-लकड़ी बहन आदि में गमन करने वाला है, (अयं) यह (दुरप्पा) दुष्ट आत्मा (बहुएसु पावगेसु) बहुत से पाप कार्यों में (जुत्तोत्ति) युक्त है (एव) इस प्रकार (मच्छरी) मत्सरी लोग (जंपंति) बोलते हैं (वा) अथवा (भद्दके) गुणी व निर्दोष पुरुष के विषय में (गुण कित्ति नेह पर लोग निप्पिवासा) गुण, कीर्ति, स्नेह और परलोक की इच्छा से रहित होकर मृषा बोलते हैं, (एव) इस प्रकार (अलिय वयण दच्छा) झूठ बोलने में निपुण तथा (परदोसुप्पायणप्पसत्ता) दूसरों के दोष उत्पादन में तत्पर (ते) वे मृषावादी (अक्खातियबीएण) अक्षय दुःख के कारण भूत (कम्म बंधणेण) कर्म बन्ध से (अप्पाणं) अपनी आत्मा को (वेढेंति) घेर लेते हैं (मुहरी) अनर्थ कारी होने से जिनका मुख ही शत्रु है, वे मुखारि वैसे (असमिक्खियप्पलावा) बिना विचारे बोलने वाले (परस्स) दूसरे के (अत्थंमि) द्रव्य में (गढिय गिद्धा) अत्यन्त लोभ वाले (निक्खेवे) रखी हुई ठेव को (अव हरंति) अपहरण कर लेते हैं (य) और (पर) दूसरे को (असतएहिं) अविद्यमान दोषों से (अभिजुंजंति) जोड़ते हैं अर्थात् झूठे आक्षेप करते हैं (लुद्धाय) और लोभी मनुष्य (कूड सक्खित्तणं) झूठी साक्षी देने के कार्य को (करेंति) करते हैं (य) और (असच्चा) अहित कारी लोग (अत्थालिय) धन सम्बन्धी झूठ (कन्नालिय) और कन्या सम्बन्धी झूठ (तह) तथा (भोमालिय) भूमि सम्बन्धी झूठ (च) और (गवालिय) गाआदि पशु सम्बन्धी झूठ (गरुय) स्वपर को पीड़ा कारी होने से भारी ऐसे झूठ को (भणंति) बोलते हैं, जो झूठ-(अहरगति गमण) नीचगति का कारण है (अन्नं पिय) और कहे हुए के सिवाय अन्य भी (जातिरूव कुलसील पच्चय) जाति, रूप, कुल और शील-आचार के कारण वाला (माया णिगुणं) माया का गुण वाला या माया से निपुण (चवल पिसुण) विचार आदि से चपल व पिशुन लोग (परमट्ठ भेदक) जो वचन मोक्ष रूप परमार्थ का घातक (असत) अविद्यमान अर्थ वाला

विपरीत लोक को कहने वाले (इमंपि वितीय कुदसणं) दूसरे इस कुदर्शन को भी (असब्भाववाइणो) कुभावों को–असद्भाव को बोलने वाले (मूढा) मूढ मति लोग (पण्णवेंति) प्ररूपण करते हैं जैसे (अंडकाओ) अण्डे से (लोको) यह संसार (सभूतो) पैदा हुआ है, (सयंभुणा) स्वयम्भू ब्रह्माने (सय) खुद (निम्मिओ) बनाया है (एवं) इस प्रकार (एय) यह (अलिय) मृषावद है (के ति)कईवादी(पयावइणा)प्रजा पतिने (ईसरेणय) और ईश्वर ने (कयति) बनाया 'ऐसाकहते हैं' (एव) इस प्रकार (केई) कई वादी (विण्हुमय कसिणमेव जगति) समस्त जगत् ही विष्णुमय है 'ऐसा कहते हैं' (एवमेके) इस प्रकार कई एक वादी (मोस वदति) मिथ्या बोलते हैं, (एको आया अकारको वेदकोय) आत्मा एक तथा अकर्ता और भोक्ता है (सुकयस्स) सुकृत के (य) और (दुक्कयस्स) दुष्कृत के (करणाणि) इन्द्रियों (कारणाणि) हेतु (सव्वहा) सब प्रकार से (सव्वहिंच) और सब जगह 'है' (निच्चोय) और यह आत्मा नित्य (निक्किओ) निष्क्रिय तथा (निग्गुणो) निर्गुण अर्थात् सत्व रज-स्तम इन तीन गुणों से रहित है (य) और (अणुवलेव ओत्ति विय) कर्म बन्ध से अलिप्त-रहित—है (एवमाहसु—असब्भाव) इस प्रकार असद् भाव को कहते हैं (इह जीव लोए) इस ससार मे (जपि) जोभी(किंचि) कुछ (दीसइ) दिखता है (सुकय) सुकृत (वा) या (दुकय) दुष्कृत (एय) यह (जदिच्छाए) यदृच्छा से (वा) अथवा (सहावेण) स्वभाव से (दइवत्तप्पभावओ वावि) अथवा देवता-विधि या भाग्य के प्रभाव से (भवति) होता है, (नत्थेत्थ किंचि कयक तत्त) यहाँ शुभ अशुभ कुछ भी पुरुषार्थ से किया हुआ तत्त्व–सत्य नहीं है, (लक्खण विहाण नियतीए) लक्षणों से विधान–भेद और स्वभाव से (कारिय) किया हुआ है, (एव केई जपति) इस प्रकार कई वादी बोलते हैं (इड्ढिरससातागारव परा) ऋद्धि, रस और साता के आदर वाले याने गर्व वाले (बहवे) बहुत से (करणा-लसा) क्रिया में आलसी लोग (धम्म वीमसएण) धर्म के विचार से (मोसं) मृषा का (परूवेंति) प्ररूपण करते हैं (अवरे) दूसरे कई (अहम्मओ) अधर्म को अङ्गीकार करके (रायदुट्ठं) राज दुष्ट अर्थात् राज विरोधी (अब्भक्खाण) दोष कथन रूप (अलिय) झूठ (भणति) बोलते है, जैसे (अचोरय) चोरी नहीं (करेंत) करने वाले को (चोरोत्ति) चोर ऐसा (य) और (डामरिउत्तिवि) शान्त को भी लडाई करने वाला (एमेव) इसी प्रकार (उदासीण) उदासीन को (दुस्सीलोत्ति) दुश्शील–दुराचारी (य) और (परदार) परस्त्री मे (गच्छतित्ति)

गमन करता है इस प्रकार (अयपि) यह भी (गुरुतप्पओ) गुरु पत्नी गामी है, 'ऐसा कहकर' (सील कलिय) शील युक्त को (मइलिंति) मलिन बनाते हैं (एमेव) इसी प्रकार (अन्ने) दूसरे (उवाहणना) दूसरों की कीर्ति को मिटाते हुए (भणंति) मृषा बोलते हैं, जैसे कि-(मित्त कलत्ताइ) मित्र स्त्री में (सेव ति) गमन करते हैं (अयंपि) 'केवल वे नहीं किंतु' यह भी (लुत्त धम्मो) धर्म रहित है (इमेवि) यह भी (विस्संभ वाइओ) विश्वास घाती (पावकम्मकारी) पाप करने वाला तथा (अगम्म गामी) अगम्या-लकड़ी बहन आदि में गमन करने वाला है, (अयं) यह (दुरप्पा) दुष्ट आत्मा (बहुएसु पावगेसु) बहुत से पाप कार्यों में (जुत्तोत्ति) युक्त है (एव) इस प्रकार (मच्छरी) मत्सरी लोग (जंपंति) बोलते हैं (वा) अथवा (भद्दके) गुणों व निर्दोष पुरुष के विषय में (गुण क्रित्ति नेह पर लोग निप्पिवासा) गुण, कीर्ति, स्नेह और परलोक की इच्छा से रहित होकर मृषा बोलते हैं, (एवं) इस प्रकार (अलिय वयण दच्छा) झूठ बोलने में निपुण तथा (परदोसुप्पायणप्पसत्ता) दूसरों के दोष उत्पादन में तत्पर (ते) वे मृषावादी (अक्खातियबोएण) अक्षय दुःख के कारण भूत (कम्म वंधणेण) कर्म बन्ध से (अप्पाण) अपनी आत्मा को (वेढेंति) घेर लेते हैं (मुहरी) अनर्थ कारी होने से जिनका मुख ही शत्रु है, वे मुखारि वैसे (असमिक्खियप्पलावा) बिना विचारे बोलने वाले (परस्स) दूसरे के (अत्थमि) द्रव्य मे (गढिय गिद्धा) अत्यन्त लोभ वाले (निक्खेवे) रखी हुई ठेव को (अव हरंति) अपहरण कर लेते हैं (य) और (पर) दूसरे को (असतएहि) अविद्यमान द्वारा से (अभिजुजंति) जोड़ते हैं अर्थात् झूठे आक्षेप करते हैं (लुद्धाय) और लोभी मनुष्य (कूड सक्खि वनण) झूठी साक्षी देने के कार्य को (करेंति) करते हैं (च) और (असच्चा) अहित कारी लोग (अत्थालिय) धन सम्बन्धी झूठ (कन्नालिय) और कन्या सम्बन्धी झूठ (तह) तथा (भोमालिय) भूमि सम्बन्धी झूठ (च) और (गवालिय) गाय आदि पशु सम्बन्धी झूठ (गरुय) स्वपर को पीडा कारी होने से भारी ऐसे झूठ को' (भणंति) बोलते हैं, जो झूठ-(अहरगति गमण) नीचगति का कारण है (अन्न पिय) और कहे हुए के सिवाय अन्य भी (जातिरूव कुलसील पच्चय) जाति, रूप, कुल और शील-आचार के कारण वाला (माया णिगुण) माया का गुण वाला या माया से निपुण (चवल पिसुण) विचार आदि से चपल व पिशुन लोग (परमट्ट भेदकं) जो वचन मोक्ष रूप परमार्थका घातक (असत्त) अविद्यमान अर्थ वाला

आ–'असंतगं' सत्त्व रहित (विद्देसमणत्थकारगं) अप्रिय और अनर्थ कारक है (पाव कम्म मूलं) पाप कर्म का मूल (दुदिट्ठं) दुष्ट–मिथ्या दृष्टि वाला, (दुस्सुय मिथ्या श्रुत युक्त (असुणिय) ज्ञान रहित और (निल्लज्ज) लज्जा से हीन (लोक गरहणिज्ज) लोक में निन्दनीय है (वह बंध परिकिलेस बहुल) वध बन्ध और क्लेश की अधिकता वाला (जरा मरण दुक्ख सोय निम्मं) जरा–वृद्धावस्था मरण, दुःख तथा शोक का जो मूल है, वैसे (असुद्ध परिणाम संकिलिट्ठं) अशुद्ध परिणाम से संक्लेश युक्त 'ऐसे असत्य वचन को' (भणति) बोलते हैं, जो (अलियाहि सधि सनिविट्ठा) झूठे अभिप्राय में लगे हुए (य) और (असंत गुण दीरका) असत् गुण की उदीरणा करने वाले याने झूठे गुण कहने वाले (य) और (संत गुण नासगा) विद्यमान गुण को नष्ट करने वाले अर्थात् छिपाने वाले (हिंसा भूतोव-घातित) हिंसा से प्राणिओं का उपघात हो वैसे (सावज्ज मकुसल) पाप सहित और जीवों के लिये अकुशल कारक (साहुगरहणिज्ज) साधुओं से निन्दित (अहम्म-जणण) अधर्म जनक (वयणं) वचन को (भणति) कहते हैं (अलिय सपउत्ता) जो झूठ के प्रयोग करने वाले हैं (अणभिगय पुन्नपावा) पुण्य और पाप के हेतुओं से अनजान होते हैं (पुणोवि) और (अधिकरण किरिया पवत्तका) अज्ञान के वाद शस्त्र आदि अधिकरण बनाने व जोडने की क्रिया को करने वाले (बहुविह) बहुत प्रकार के (अणत्थ) अनर्थ का कारण रूप (अप्पणो) अपने (य) और (परस्स) पर के (अवमद्दं) अपमर्द्--हानि को (करेंति) करते हैं, (एमेव) इसी प्रकार–बुद्धि के विना (जंपमाणा) बोलते हुए (घायगाणं) हिंसकों के लिये (महिससूकरेय) भैंसे और सूअर को (साहिंति) बताते हैं (य) और (ससय पसय रोहिए) शश, प्रशय व रोहित—पशु विशेष (वागुराणं) वागुरी को (साहिंति) बताते हैं, (तित्तर वट्टक लावके) तीतर वर्तक–बतक तथा लावक–लवे (य) और (कविंजल कवोय-केय) कपिंजल व कबूतरों को (साउणीणं) पक्षी मारने वाले शिकारिओं को (साहिंति) बताते हैं (झस मगर कच्छभेय) झस, मगर और कच्छप आदि जलचर जन्तु (मच्छियाण) मच्छीमारों को (साहिंति) बताते हैं। (सखके) शङ्ख व अङ्क—जल जीव विशेष (य) और (खुल्लए) क्षुल्लक—कौडी के जीव (मगराणं) धीवर लोगों को (साहिति) बताते हैं (अयगर गोणस मंडलि दव्वीकरे) अजगर, गोणस, मडली और दर्वीकर जाति के सर्प (मउलीय) और मुकुली—फणा रहित सर्प ये सब (वालवीण) व्यालप–सर्पपकडने वालोंको (साहिंति बताते हैं

(गोहा सेहग सल्लग सरडकेय) और गोधा, सेह, शल्लकी और सरट (लुद्धगाणं) लुब्धकों को (साहिंति) बताते हैं (य) और (गयकुल वानर कुले) गजकुल और वानर कुलों को (पासियाण) पाश वालों के लिये (साहिंति) बताते हैं (सुक बा-रहिण मयण साल कोइल हंस कुले) तोता, मयूर, मैना कोकिला और हंस के कुल (सारसेय) और सारस पक्षी (पोसगाण) पालने वालों को (साहिंति) कहते हैं (च) और (गोम्मियाणं) गुप्ति पालकों को (वधबधजायण) वध बंध और यातना (साहिंति) बताते हैं (य) और (तक्कराणं) चोरों को (धणधन्न गवेलए) धन धान्य तथा पशु (साहिंति) बताते हैं (चारियाण) चारिक—गुप्तचरों को (गामा-गर नगर पट्टणे य) ग्राम. आकर, नगर और पत्तन (सहिंति) बातते हैं (य) और (गंठिभेयाण) ग्रन्थि छेदन करने वालों को (पार घातिय पथघातियाओ) मार्ग के अन्त में याबीच में मारने—लूटने-की क्रियायें (सहिंति) कहते हैं (च) और (नगर गोत्तियाणं) नगर रक्षक-कोटवाल आदि को (कयं चोरिय) की हुई चोरी 'बताते हैं' (गोमियाण) गो आदि पशु वालों को (लछण निल्लंछण धमण दुहण पोसण) लांछन—कान आदि कतरना या निशान बनाना, निर्लांछन—बाधिया करना याने कसी करना ध्मान-भैंस आदि के देह में हवा भरना, दोहन—दुहना, पोषण यव आदि देकर पुष्ट करना (वण्ण दवण वाहणा दियाइ) बछड़े को दूसरी गौ में लगाकर दूसरी गौ को धोखा देना अर्थात् यह बच्चा मेरा ही है ऐसा धोखा देना, दुवन—पीडा देना वाहन—गाडी आदि में जोतना इत्यादि (बहूणि) बहुत से कार्य (साहिंति) कहते हैं (य) और (आगरीण) खान वालों को (धातु मणि सिल प्पवाल रयणागरे) गैरिक आदि धातु, मणि-चन्द्रकान्त आदि, शिला-पत्थर, प्रवाल-विद्रुम—मूंगे और रत्नों की खानें (साहिंति) कहते हैं (मालियणं) मालिओं को (पुप्फवि-हिं) पुष्प के प्रकार (च) और (फलविहि) फल के प्रकार (साहिंति) बताते हैं (य) और (वणचराण) भील आदि जंगलिओं को (अग्घमहुकोसए, कीमत और मधु के छाते (साहिंति) बताते हैं (जताइं) यन्त्र-लिखे हुए अक्षरों की रचना विशेष अथवा जलयन्त्र आदि (विसाइं) अनेक प्रकार के विष (मूलकम्मं) मूलकर्म-गर्भपात या गर्भाधान (आहेवण आविंधणा आभिओग मंतोसहिप्पओगे) आक्षेप-नगर में क्षोभ उत्पन्न करना, आव्यधन—क्षन्त्रप्रयोग, आभियोग्य-वशीकरण आदि प्रयोग, मन्त्र और औषधिओं के प्रयोगों को (चारिय परदार गमण बहु पाव कम्म करण) चोरी, परस्त्रीगमन और अधिक पाप वध के व्यापार करना (उक्खंधे)

कपट से दूसरेके बलका उपमर्दन करना, (गाम घातियाओ) ग्राम घातक (वण दहण तलाग भेयणाणि) वन जलाना और तलाव फोडना (बुद्धि विस विणासणाणि) बुद्धि के विषय को नष्ट करना (वसीकरणमादियाइ) वशीकरण इत्यादि । भयमरण किलेस दोस जणणाणि) भय, मरण, क्लेश और द्वेष को उत्पन्न करने वाले (भाव बहुसंकिलिट्ठ मलिणाणि) जो अध्यवसाय-भाव से बहुत दु खप्रद और मलिन हैं (भूतघातोवघातियाइ) प्राणिओं के घात और उप घात वाले (सच्चाइ पि) सत्य भी (ताइं) ऐसे उन (हिंसकाइ) हिंसक (वयणाइ) वचनोंको (उदाहरति) बोलते हैं (पुट्ठावा) पूछे गये या (अपुट्ठावा) विना पूछे गये (परतत्तियं वावडा) दूसरेके कार्योंको सोचने विचारने में लगे हुए (य) और (असमिक्खियभासिणो) विना विचारे बोलने वाले (सहसा) अकस्मात् (उवदिसति) उपदेश करते हैं (उट्ठा) ऊंट (गोणा) गाय बैल, (गवया) गवय-रोझ जगली गाएं को (दमंतु) दमन करो अर्थात् इनको शिक्षित बनाओ (परिणयवया) प्रौढवय वाले-जवान (अस्सा) घोडे (हत्थी) हाथी (गवेलग कुक्कुडाय) और बकरे व मुर्गों को (किज्जंतु) खरीदो (किणावेध) खरीद कराओ (य) और (विक्केह) वेचो (य) और (पयह) पकाने योग्य वस्तुओं को पकाओ (सयणस्स) स्वजन को (देह) देओ (पियय) मदिरा आदि पेय वस्तु को पिओ (दासीदास भयक भाइल्लकाय) और दासी, दास-नोकर भृतक-भोजन देकर पाले गए सेवक और भागीदार (सिस्सा) शिष्य (य) और (पेनकजणो) काम पर भेजने योग्य आदमी (य) और (कम्मकरा) कर्म करने वाले अर्थात् नियत समय तक आज्ञा पालने वाले (य किंकरा) और किंकर-पूछ२ कर काम करने वाले (एए) ये (सम सयणपरि जणोय) और स्वजन परिज(कीस)किसलिये (अच्छति) वैठे हैं (भारिया) भरण करने योग्य हैं अर्थात् इनको वेतन चुका देना चाहिए ये (भे) आपके (कम्म) कामको (करितु`करें, (गहणाइ) गहन-सघन (वणाइ) वन (खेत्तखिलभूमिवल्लराइ) खेत, खिलभूमि-विना जोती गई भूमि और वल्लर-खेत विशेष (उत्तण घण सकडाइ) जो ऊगे हुए घासों से अत्यन्त भरे हैं उनको (डज्झतु) जलाओ (य) और (सूडिज्जतु) घास कटाओ या उखडाओ (जत भडाइयस्स) तिलयन्त्र - घानी और भांड-कुडे आदि भाजन वगैरह (उवहिस्स) उपकरण के (कारणाए) निमित्त (अ) और (बहुविहस्स अट्ठाए) बहुत प्रकार के प्रयोजन से (रुक्खा) वृक्षों को (भिज्जतु) कटाओ (उच्छू) इक्षु को (दुज्जतु) कटाओ (य) और (तिल) तिलों को (पीलिज्ज`तु')

पीलो-उनका तेल निकालो (य) और (इट्टकाउ) इटों को (पयावेह) पकाओ (मम घरट्ठयाए) मेरे घर के लिये (खेत्ताइ) खेतो का (कसह) कर्षण करो (कसावेह) कर्षण कराओ, (य) और (लहु) शीघ्र (गाम आगर नगर खेड कव्वडे) गांव, आकर-खान, नगर, खेडा और कर्बट-कुनगर इन सब को (निवेसेह) बसाओ (अडवी देसेसु) अटवी के प्रदेश मे (विउलसीमे) विपुल सीमा वाले 'गांव आदि बसाओं' (य) और (पुप्फाणि) पुष्प (य) और (फलाणि) फलों को तथा (काल पत्ताइ) प्राप्त काल— लेने के समय पर पहुंचे हुए (कंद मूलाइं) कन्द मूल को (गेण्हेह) ग्रहण करो (परिजणट्ठयाए) परिजनो के लिये (सचयं) उनका सचय (करेह) करो (साली) साल-धान्य (वीही) व्रीहि (य) और (जवा) जौको (लुच तु) काटो, (मलिज्जतु) मलो—मसलो (उप्पणिज्जतु) हवा से साफ करो (लहुच) और शीघ्र (कोट्ठागारं) कोठार में (पविसतु) डालो (अप्पमहउक्कोसगाय) और छोटे, उसकी अपेक्षा मध्यम व उत्तम (पोतसत्था) नौकाके समूह—नौका व्यापारी (हम्मतु) चलो या लूटो (सेणा) सेना (णिज्जाउ) निकले (डमरं) सग्राम भूमि में (जाउ) जावे (य) और (घोरा) भयङ्कर (सगामा) सग्राम (वट्टंतु) प्रवृत्त होवे (य) और (सगडवाहणाइ) गाडा व नौका आदि वाहन (पवहंतु) चले (उवणायणं) उपनयन सस्कार (चोलग) बालकका प्रथम मुडन (विवाहो) विवाह सम्बन्ध (जन्नो) यज्ञ (अमुगम्मिच) 'ये सब कार्य' अमुक (दिवसेसु) दिनों मे (करणेसु) बालव आदि करणो में (मुहुत्तेसु) अमृत सिद्धि आदि मुहूर्तों मे (नक्खत्तेसु) अश्विनी आदि नक्षत्रो मे (य) और (तिहिसु) नन्दा आदि तिथिओं में (होउ) हो—होना चाहिए (अज्ज) आज (ण्हवण) स्नान—सौभाग्य आदि के लिये स्नान (होउ) हो (मुदित) प्रमाद युक्त (बहुखज्जपिज्जकलिय) मद्य मांस आदि बहुत से पेय भक्ष्य वाला (कोतुक) रक्षा या क्रीडा आदि (विण्हावणक) विविध मन्त्र मूल आदि के द्वारा सस्कृत जल से स्नान कराना (ससिरवि गहोवरागविसमेसु) चन्द्र और सूर्य का राहु से उपराग-ग्रहण होना और विषम दुष्ट स्वप्न-अमङ्गल आदि मे (सति कम्माणि) शान्ति कर्म (कुणह) करो (सजणपरियणस्स) स्वजन और परिजन (य) और (नियकस्स) अपने (जीवियस्स) जीवन की (परिरक्खणट्ठयाए) रक्षा करने के लिये (पडिसीसगाइ) अपने मस्तक की पीठ—आटे आदि से बनी हुई आकृति (देह) देओ—दो (च) और (सीसोवहारे) पशु आदि के शिर को

मिथ्या मान मिलाने के लिये भी झूठ बोला जाता है। अपने आपको बडे मानने वाले स्वच्छन्दचारी व अनियमित जीवी लोग भी अधिकांश झूठ बोलते हैं। कई दार्शनिक भी लोकोत्तर मृषावादी होते हैं। जैसे नास्तिक लोग लोक के स्वरूप को विपरीत रूप से कहते हैं और तत्त्वों का असत् प्रतिपादन करते हैं। वामलोक वादी कहते हैं कि जीव नहीं है, और न वह परभव मे ही जाता है। जीव न पुण्य पाप का बन्ध करता है और न उसको शुभ अशुभ फल ही भोगना पडता है। पञ्चभूतों का यह शरीर प्राण वायु से युक्त ऐसा भासित होता है। कई एक बौद्ध आचार्य-विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार और रूप ऐसे पाच स्कन्धो को कहते हैं। इनके विचारानुसार आत्मा यह कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। कितनेक मतवादी मन को ही आत्मा मानते है। दूसरे वायु-प्राण वायु को ही जीव कहते है। इनके मत से शरीर सादि सान्त है और वर्तमान जन्म ही एक भव है, क्योंकि शरीर के नाश होने के साथ ही सबका नाश हो जाता है। इस प्रकार ये सब मिथ्या बोलते हैं। शरीर के साथ सब का नाश हो जाता है इसलिये दान व्रत आदि सत्कर्मों का फल भी नही होता। हिंसा, झूठ, चोरी, परदार गमन और परिग्रह रूप पापबध का कोई कारण नही है। नरक, तिर्यञ्च और मनुष्य योनि, देवलोक तथा सिद्धिगति भी नहीं है। पुरुषार्थ, प्रत्याख्यान और काल मृत्यु भी नही हैं। माता पिता ऋषि और तीर्थङ्कर चक्रवर्ती आदि भी नहीं है धर्म व अधर्म का थोडा बहुत फल भी नहीं मिलता। इसलिये इन्द्रिय के अनुकूल सब विषयों मे प्रवृत्त रहना चाहिए। क्रिया वा अक्रिया कुछ नहीं है, इस प्रकार नास्तिक वादी मिथ्या कहते हैं। दूसरा कुदर्शन कर्तृत्ववादी का है, वे कहते हैं कि-लोक अण्डे से उत्पन्न हुआ और स्वय ब्रह्मा ने इसको बनाया है। कई सम्पूर्ण जगत् को ही विष्णुमय कहते हैं, आदि। कई साख्याचार्य इस प्रकार मृषा बोलते हैं—'आत्मा एक, अकर्ता और भोक्ता है। सुकृत और दुष्कृतो का कारण इन्द्रियाँ हैं आत्मा तो सब प्रकार से और सब जगह नित्य, निष्क्रिय तथा सत्त्वादिगुणों से रहित व कर्म बन्ध से निर्लेप है-इस प्रकार असत्य बोलते हैं। इनके विचार से जो कुछ भी ससार मे सुकृत दुष्कृत या इनके शुभाशुभ फल दिखते हैं ये स्वभाव प्रकृति-से या दैवत-विधि के प्रभाव से होते हैं, यहाँ कोई भी कृतक तत्त्व नहीं है इत्यादि कई कहते हैं, ऋद्धि, रस व साता के अहङ्कारी बहुत से आलसी लोग धर्म के विचार से झूठ बोलते हैं। दूसरे अधर्म से राजदुष्ट झूठा आरोप लगाते हैं-चोरी नहीं करने वाले को चोर और शीलवान् को भी दुश्शील तथा अगम्या गामी कहते

हैं। भद्र पुरुष में मत्सरी लोग गुण कीर्ति आदि की अपेक्षा नहीं रखते हुए झूठे दोष लगाते हैं। इस प्रकार वे झूठ बोलने वाले दूसरों के दोष निकालने मे तत्पर अपनी आत्मा को गाढ कर्म बन्ध से बांध लेते हैं। दूसरे के धन में आसक्त होकर निक्षेप-ठेव का अपहरण करते हैं और दूसरों के ऊपर असत्य कारणों से अभियोग करते हैं, लोभ वश झूठो साक्षी देते हैं। असत्य के मुख्य प्रकार---'अर्थालीक-धन सम्बन्धी झूठ १ कन्यालीक-लडके लडकी व स्त्री पुरुष के बावत बोला जाने वाला झूठ २ भूम्यलीक भूमि के विषय में बोला गया ३ गवालीक और पशुओं के लिये बोला गया झूठ ४ इस प्रकार महा अनर्थ के कारण व नीच गति मे पहुचाने वाले मृषावाद को बोलते हैं। जाति, रूप, कुल और शील के कारण झूठ बोला जाता है, यह परमार्थ का भेदक और द्वेष व अनर्थ का कारण है। यावत् जरा मरण दुःख और शोक का मूल तथा अशुद्ध परिणाम से मलिन है। झूठे लोग असत्य गुण को कहने वाले व सद्गुण को छिपाने वाले हिंसाकारी सावद्य-वचन को बोलते हैं। जो साधु पुरुषों से निन्दित और अधर्म का जनक है। पुण्य पाप के अनजान व असत्य वादी फिर बहुत तरह की शस्त्र क्रिया के प्रवर्तक कई तरह के अनर्थ और स्वपर का अपमर्द करते हैं। ये लोक निर्दयता से शिकार करने वाले शिकारियों को उनकी शिकार-पशु, पक्षी या मच्छी आदि बताते हैं। तथा शिकारी को उत्तेजित करते हैं। हिंसक लोग भय मरण और क्लेश को उत्पन्न करने वाले मलिन भावों से युक्त सत्य को भी हिंसा मय बनाकर बोलते हैं। फिर वे दूसरों के कार्यों को विचारने वाले और बिना विचारे बोलने वाले सहसा निम्न प्रकार से उपदेश करते हैं-ऊंट बैल आदि का दमन करो। जवान हाथी घोडे आदि खरीदो, और खरीद कराओ, वेचो, अमुक चीज पकाओ, स्वजनों को दो, मद्य आदि का पान करो, ये दासी दास आदि क्यो बैठे हैं? इनका पालन करो, ये आपका काम करें, गहन वन तथा खेत आदि जलाये जाँय। यन्त्र या भाजन आदि के लिये वृक्षों को काटो, इक्षु को काटो, और तिलों से तेल निकालो, रस निकालो। मेरे घर के लिये ईंटें पकाओ, खेत जोतों, तथा दूसरों से जुतवाओ। इस अटवी के मैदान मे बडे गाव नगर आदि बसाओ, पके हुए फूल फल और कन्द मूल आदि को ग्रहण करो, तथा सचय करो, शाल आदि धान्यों को काटो, खला बनाओ, मर्दन करो और हवा में उडाकर साफ करो तथा शीघ्र कोठे में भरो। छोटे बडे जहाज चलाये जाय, सेना प्रयाण करे व युद्ध भूमि में जाय भयङ्कर संग्राम चालू हो, गाडी या नौका आदि वाहन चलाये जाँय। अमुक

शुभतिथि, दिन, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में उपनयन आदि संस्कार किये जांय, यज्ञ किया जाय। आज वधू का सौभाग्य सूचक स्नान हो, बहुत प्रकार के खान पान वाला उत्सव किया जाय, और अभिषेक हो। चन्द्र सूर्य के ग्रहण और अमाङ्गलिक शकुन आदि की शान्ति की जाय। स्वजन परिजन और अपने जोवन की रक्षा के लिये बनावटी शिर चढाओ। पशुओं के शिर चढाओ जो विविध ओषधि व मद्य मांस फल फूल आदि से पूर्ण हो। उत्पात व अशुभ स्वप्न आदि के निवारणार्थ बहुत प्रकार के हिंसा युक्त कार्यों से प्रायश्चित करो। इसकी वृत्ति बद करदो कुछ भी दान मत दो। यह अच्छा काटा गया, मारा गया इस प्रकार सावद्य उपदेश करते हुए मन वचन तथा कर्म से मृषा कार्य करते हैं। ये लोग भाषा ज्ञान में अकुशल अनार्य और झूठे सिद्धान्त वाले हैं. मिथ्या धर्म में तत्पर होने से झूठी कथाओं मे रमण करते हुए बहुत प्रकार से झूठ बोल कर सन्तुष्ट होते हैं॥ सू०। २। ७॥

अब झूठ बोलने का फलदिखाते हैं—

मूल—तस्सय अलियस्स फलविवागं अयाणमाणा वड्ढेति महब्भयं अविस्सामवेयणं दीहकालं बहुदुक्ख संकडं नरय तिरियजोणिं। तेणय अलिएणसमणुबद्धा आइद्धा पुणब्भवंधकारे भमंति भीमे दुग्गतिवसहिमुवगया। तेय दीसंतिह दुग्गया दुरंता परवसा अत्थभोगपरिवज्जिया असुहिता फुडियच्छविबीभच्छविवन्ना खरफरुसविरत्तज्झामज्झुसिरा निच्छाया लल्लविफलवाया असक्कतमसक्कया अगंधा अचेयणा दुभगा अकंता काकस्सरा हीणभिन्नघोसा विहिंसा जडबहिरन्धया य मम्मणा अकंतविकय करणाणीया णीयजण निसेविणो लोग गरहणिज्जा भिच्चा असरिसजणस्स पेस्सा, दुम्मेहा लोक वेद अज्झप्प समय सुतिवज्जियानराधम्मबुद्धि वियला अलिएण य तेणं पडज्झमाणा असंतएण य अवमाणण पट्ठिमंस। हिक्खेव पिसुणभेयण गुरुबंधव–सयण-मित्तवक्खारणादियाइं अब्भक्खाणाइं बहुविहाइं पावेंति, अणुवमाणि (मणोरमाइ) हिययमण दूमकाइं, जावज्जीवं दुरुद्धराइ। अणिट्ठखर फरुस वयण तज्जण निब्भच्छण

दीणवदण विमणा कुभोयणा कुवाससा कुवसहीसु किलिस्संता नेव सुहं, नेव निव्वुईं उवलभंति। अच्चंत विपुलदुक्खसयसंपलित्ता। एसो सो आलियवयणस्स फलविवाओ इहलोइओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्से हिं मुच्चइ। न य अवेदयित्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति एवमाहंसु नायकुलनंदणो महप्पाजिणोउ वीरवरनामधेज्जो कहेसी य अलिय वयणस्स फल विवागं। एयंतं वितीयंपि अलियवयण लहुसगलहु चवल भणियं भयकरं दुहकर अयसकरं वेरकरगं अरति रति राग दोस मण संकिलेस वियरणं अलियणियडि सादिजोग बहुलं णीयजण निसेवियं निस्संसं अप्पच्चयकारकं परमसाहुगरहणिज्जं परपीलाकारकं परमकण्हलेससहियं दुग्गतिविनिवायवड्ढणं पुणब्भवकर चिरपरिचिय मणुगय दुरतं (त्तिबेमि) दारं वितियं अधम्मदारं समत्तं॥ ४॥ सू० ८॥

छाया—"तस्य चालीकस्य फलविपाक मजानन्तो वर्द्धयन्ति महाभयामविश्राम वेदना दीर्घ काल बहु दुःख सङ्कटां नारक तिर्यग्योनिम्। तेन चालीकेन समनुबद्धा आदिग्धाः पुनर्भवान्धकारे भ्रमन्ति भीमे दुर्गतिवसतिमुपगताः। तेच दृश्यन्ते दुर्गता दुरन्ता परवशा अर्थभोगपरिवर्जिता असुखिताः स्फुटितच्छवि बीभत्सविवर्णाः खर परुष विरक्त ध्याम सुषिरा निच्छाया लल्लविफलवाच, असंस्कृताऽसत्कृता अगन्धा अचेतना दुर्भगा अकान्ताः काकस्वरा हीनभिन्नघोषा विहिंसा जडबधिराऽन्धकाश्च मम्मणा अकान्त विकृत करणा नीचा नीच जन निषेविणो लोकगर्हणीया भृत्या असदृशजनस्य प्रेष्या दुर्मेधसः लोकवेदाध्यात्म समय-श्रुति-विवर्जिता नरा धर्मबुद्धि विकला, अलीकेन च तेन प्रदह्यमाना अशान्तकेन च अवमानन-पृष्ठमांसाधिक्षेप पिशुन भेदन गुरुबान्धव स्वजन मित्रा पक्षारणादिकानि-अभ्याख्यानानि बहुविधानि प्राप्नुवन्ति। अमनोरमाणि हृदयमनोद्रावकानि यावज्जीव दुरुद्धराणि। अनिष्ट खर परुष वचन तर्जन निभर्त्सन दीन वदन विमनसः कुभोजना कुवाससः कुवसतिषु क्लिश्यन्तो नैव सुख नैव निर्वृतिमुपलभन्तेऽत्यन्त विपुल दुःखशतसम्प्रदीप्ताः। एष सोऽलीकवचनस्य फल विपाक ऐहलौकिक पारलौकिकोऽल्पसुखो बहुदुःखो महाभयो

बहुरजः प्रगाढो दारुणः कर्कशोऽसातो वर्षसहस्रैर्मुच्यते, नचाऽवेदयित्वाऽस्ति हि मोक्ष इति । एवमाख्यातवान् ज्ञातकुल नन्दनो महात्मा जिनस्तु वीव वर नाम धेयः कथ यियाति चालीकवचनस्य फल विपाकम् । एतत्तद्वितीयमपि अलीक वचन लघु स्वक लघुचपलभणित भयङ्कर दु खकरमयशस्कर वैर कारकम् अरति रतिरागदोष-मनः सक्लेश विरचनम् अलीक निकृतिमाति योग बहुलं नीच जननिषेवित नृशसम-प्रत्ययकारक परमसाधु गर्हणीय पर पीडा क रक परम कृष्णलेश्या सहितं दुर्गति विनिपातवर्द्धन पुनर्भवकर चिरपरिचया (चिता,) ऽनुगतं दुन्रन (दुरुक्त) इति ब्रविमी द्वितीयम धर्मद्वारसमाप्तम् ।। २ ।' सूत्र ४ । ८ ।।

अन्व—"(तस्सय) और उस (अलियस्स) झूठ के (फलविवागं) फपरूप परिणाम को (अयाण माणा) नहीं जानते हुए (महब्भय) भयङ्कर (अविस्सामवे-यण) अविश्रान्त वेदना वाली (दीहकाल) दीर्घ काल की स्थितियुक्त (बहु दुक्ख संकड) बहुत दु खों से पूर्ण-ऐसे (नरय तिरिय जोणि) नरक और तिर्यग्योनि को (बड्ढे ति) बढाते हैं, (तेणय अलिएण) और उस झूठ से (समणुबद्धा) अच्छी तरह बधे हुए (आइद्धा) अच्छी तरह से बढे हुए (भीमे) भयङ्कर (पुणब्भवध कारे) पुनर्भव-जन्म न्तर रूप अन्धकार मे (दुग्गति वसहि मुवगया) दुर्गतिवास को प्राप्त हुए (भमंति) भटकते हैं (तेय) और वे-मृषावादी (दीसतिह) इस ससार में ऐसे दिखते हैं (दुग्गया) बुरी हालत वाले (दुरता) दुःख मय अन्त वाले (परवसा) पराधीन (अत्थभोगपरिवज्जिया) धन और धनोपभोग से हीन (असुहिया) सुख से या मित्र से रहीत (फुडियच्छवि बीभच्छविवन्ना) फटी हुई चमडी वाले, विकार युक्त रूप और खराब वर्ण वाले हैं (खर फरुस विरत्तज्झाम ज्झुसिरा) अत्यन्त कर्कश स्पर्श वाले, निरानन्द, कान्तिहीन और सारहीन शरीर वाले (निच्छाया) शोभा रहित (लल्ल विफलवाया) अव्यक्त व सफलता से रहित वाणी वाले (असक्क मसक्कया) संस्कार और सत्कार से रहित हैं (अगधा) बदबूदार देह वाले-दुर्गन्ध (अचेयणा) विशिष्ट चेतना से हीन (दुभगा) दुर्भगय कमनसीब (अकता) अशोभन (काकस्सरा) काक के समान रूक्ष स्वर वाले (हीण भिन्न घोसा) धीमी और अस्फुट-फटे हुए स्वर यानी आवाज वाले (विहिंसा) विशेष हिंसा वाले (य) और (जड बहिरंधया) गूंगे बहरे तथा अन्धे व (मम्मणा) अव्यक्त बोलने वाले होते हैं (अकत विकयकरणा) सुन्दरता रहित विकृत इन्द्रिय वाले (णीया) नीच (नीयजण निसेविणो) नीच जनों की सेवा करने वाले(लोग

गरहणिज्जा) लोक में निन्दनीय (भिच्चा) भृत्य (असरिस जणस्स पेस्सा) असमान शील वाले लोगों के नोकर या द्वेषपात्र होते हैं (दुम्मेहा) दुष्ट बुद्धि (लोक वेद अज्झप्प समयसुतिवज्जिया) लोकशास्त्र-भारत आदि, वेद-ऋक् साम आदि, अध्यात्म शास्त्र-मनो विजय का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र और समय-जैन बौद्ध आदि सिद्धान्तशास्त्र इन सबोंसे परिवर्जित अर्थात् शास्त्र ज्ञान से शून्य (धम्म बुद्धि वियला) धर्म बुद्धि से विकल ऐसे (नरा) नर (अलिएण य तेणं) उस पूर्व कथित अलीक भाषण रूप पाप से (पडज्झमाणा) जलते हुए (असतएणय) और अनुप शान्त मृषावाद रूप पाप से (अवमाणणपिट्ठमसा हिक्खेव पिसुण भेयण गुरु बधव सयण मित्त वक्खारणादियाइं) अपमान, परोक्ष मे दूषण प्रकट करना-निन्दा और चुगल खोरो से परस्पर का प्रेम भङ्गऔर गुरु, बान्धव, स्वजन तथा मित्र जनों के तिरस्कार वचन इत्यादिक (बहु विहाइ) बहुत प्रकार के (अब्भक्खाणाइ) झूठे आरोपों को (पावेंति) प्राप्त करते हैं. जो (अमणो रमाइं) अमनो राम (हियय-मणदूमकाइं) हृदय और मन को जलाने वाले-उपताप करने वाले तथा (जाव-ज्जीव) जीवन पर्यंतन (दुरुद्धराइ) दुःख से पार करने योग्य होते हैं। (अणिट्ठ-खर फरुस वयण तज्जन निब्भच्छणा दीण वदण विमणा) अनिष्ट और अत्यन्त कठोर वचन से तर्जना व निर्भर्त्सना पाने के सबब कारण जो दीन वदन और उदा क्षमन वाले हैं (कुभोयणा कुवाससा) मांस आदि कुत्सित भोजन और खराब वस्त्र वाले हैं (कुवसहीसु किलिस्सता) कुग्रामों मे क्लेश पाते हुए (नेवसुह) न शारीरिक सुख को और (नेव निव्वुइ) न मानस सन्तोष को ही (उवलभंति) पाते हैं, (अच्चंत विपुल दुक्खसय सपलित्ता) अत्यन्त विशाल सैकड़ों दुःखों से ये जीव जलते रहते हैं। (अलियवयणस्स) झूठ बोलने का (एसोसो) यह ऊपर कहा हुआ वह (फल विवागो) फल रूप परिणाम (इहलो इओ पर लोइओ) इस लोक सम्बन्धी तथा परलोक सम्बन्धी (अप्पसुहो बहु दुक्खो) अल्पसुख व अधिक दुःख वाला है (महब्भओ महाभय का कारण (बहुरयप्पगाढो) कर्म रज की अधिकता से अत्यन्त गाढ (दारुणो) हृदय को विदारण करने वाला (कक्कसो) कठोर (असाओ) दुःख रूप (वाससहस्से०) हजारों वर्षों से (मुच्चइ) छूटता है (नय अवेदित्ता) किन्तु बिना भोगे (अत्थिहु मोंक्खोत्ति) मोक्ष-उसकर्म से मुक्ति नहीं होती है (नाय कुल नंदणो) ज्ञात कुल नन्दन (जिणो) जिनवर (वीर वर नाम धेज्जो) महावीर नाम वाले (महप्पा) महात्मा ने (एवमा हंसु) ऐसा कहा है (य) और (अलियवंय-

गास्स) झूठ बोलने के (एयं) इस (फल विवागं) फल रूप विपाक को (कहेंसी) भविष्य में भी कहेंगे । (त) वह (वितीयपि) दूसरा भी (अलिय वयणं) मृषावाद रूप आस्रव (लहुस गलहु चवलभ०) छोटे से छोटे और चञ्चल मनुष्यों से कहा गया तथा (भयकर) भयङ्कर (दुहकर) दु ख कारक (अयसकरं) अकीर्ति करने वाला (वेर करग) वैर का कारण (अरतिरति राग दोस मण संकिलेस वियरण) अरति रति और राग द्वेष रूप मन के सक्लेश को करने वाला (अलिय नियडि साहि जाग बहुल। झूठ निष्फल कपट और अविश्वास वृत्ति की प्रधानता वाला है (नीयजण॰ निसेवियं) नीच जनों से सेवित (निम्सस) घृणा व दया रहित (अपचय कारकं) अविश्वास कारक (परमसाहु गरहणिज्ज) परम साधुओं से निन्दनीय (पर पीला-कारकं) दूसरों को पोडा देने वाला (परम कण्ह लेस सहियं) परम कृष्ण लेश्या वाला (दुग्गति विनिवाय वड्डण) दुर्गति पतन को बढाने वाला (पुणब्भवकर) पुनर्भव जन्मान्तर का कारण (चिर परिचिय मणुगय) चिर काल का परिचित होने से पाछे रहने वाला तथा (दुरत) दु ख से अन्त वाला है। ऐसा मैं कहता हूं। (वितिय अधम्म०) दूसरा अधम द्वार समाप्त हुआ, । २ । सूत्र । ४ । ८ ॥

भावार्थ—'उपरोक्त सूत्र में कहा गया है कि असत्य वचन के कटु फलों को नहीं जानते हुए भूठे लोग लवे काल के लिये भयङ्कर नरक व तिर्यग् योनि को बढाते हैं। असत्य से युक्त प्राणी पुनर्भव रूप अन्धकार मय कोठे में दुर्गति भोगते हुए भटकते हैं। मनुष्य होकर भी वे परवश बने हुए साधन हीनता की दशा में बुरी स्थिति का अनुभव करते हैं। शरीर से भी वे लोगों में बुरे दिखते हैं क्यों कि वे गूंगे बहरे व अन्धे होते हैं। लौकिक या लोकोत्तर शास्त्र से तथा ज्ञान व बुद्धि से भी वे विकल होते हैं। झूठ रूप पाप के प्रभाव से वे अपमान और तिरस्कार पाते हैं। भूठे आरोप में पडते हैं जो यावज्जीवन के लिये दुरुद्धर होते हैं, इससे दीन बने हुए वे लोग बुरे खान पान रहन सहन और कुमास में क्लेश के अनुभव करते हैं, कभी भी शारीरिक सुख व शान्ति नहीं पाते। प्रत्युत सैकडों तरह को दु खाग्नि में जलते रहते हैं। झूठ बोलने के ऐसे उभय लोक सम्बन्धी कुफलों को ज्ञात कुल नन्दन महात्मा भगवान् महावोर ने फरमाया है जो बहुत भयङ्कर है व हजारों वर्ष तक भोगने पर ही छूटता है। बिना भोगे इससे मुक्ति नहीं होती। यह दूसरा अधर्मद्वार अर्थात् मृषावाद झूठे हलके और चपल लोगोंसे कहा गया है। अन्य उपसहार

गरहणिज्जा) लोक में निन्दनीय (भिच्चा) भृत्य (असरिस जणस्स पेस्सा) असमान शील वाले लोगों के नोकर या द्वेषपात्र होते हैं (दुम्मेहा) दुष्ट बुद्धि (लोक वेद अज्झप्प समयसुतिवज्जिया) लोकशास्त्र–भारत आदि, वेद–ऋक् साम आदि, अध्यात्म शास्त्र–मनो विजय का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र और समय–जैन बौद्ध आदि सिद्धान्तशास्त्र इन सबोंसे परिवर्जित अर्थात् शास्त्र ज्ञान से शून्य (धम्म बुद्धि वियला) धर्म बुद्धि से विकल ऐसे (नरा) नर (अलिएण य तेणं) उस पूर्व कथित अलीक भाषण रूप पाप से (पडज्झमाणा) जलते हुए (असनएणय) और अनुप शान्त मृषावाद रूप पाप से (अवमाणणपिट्ठिमसा हिक्खेव पिसुण भेयण गुरु बधव सयण मित्त वक्खारणादियाइं) अपमान, परोक्ष मे दूषण प्रकट करना–निन्दा और चुगल खोरी से परस्पर का प्रेम भङ्ग और गुरु, बान्धव, स्वजन तथा मित्र जनों के तिरस्कार वचन इत्यादिक (बहु विहाइ) बहुत प्रकार के (अब्भक्खाणाइ) झूठे आरोपों को (पावेंति) प्राप्त करते हैं. जो (अमणो रमाइं) अमनो राम (हियय-मणदूमकाइं) हृदय और मन को जलाने वाले–उपताप करने वाले तथा (जाव-ज्जीव) जीवन पर्यंतन (दुरुद्धराइ) दुःख से पार करने योग्य होते हैं। (अणिट्ठ-खर फरुस वयण तज्जन निब्भच्छण दीण वदण विमणा) अनिष्ट और अत्यन्त कठोर वचन से तर्जना व निर्भर्त्सना पाने के सबब कारण जो दीन वदन और उदा समन वाले हैं (कुभोयणा कुवाससा) मांस आदि कुत्सित भोजन और खराब वस्त्र वाले हैं (कुवसहीसु किलिस्संता) कुग्रामों में क्लेश पाते हुए (नेवसुह) न शारीरिक सुख को और (नेव निव्वुइ) न मानस सन्तोष को ही (उवलभंति) पाते हैं, (अच्चंत विपुल दुक्खसय संपलिता) अत्यन्त विशाल सैकडों दुःखों से ये जीव जलते रहते हैं। (अलियवयणस्स) झूठ बोलने का (एसोसो) यह ऊपर कहा हुआ वह (फल विवागो) फल रूप परिणाम (इहलो इओ पर लोइओ) इस लोक सम्बन्धी तथा परलोक सम्बन्धी (अप्पसुहो बहु दुक्खो) अल्पसुख व अधिक दुःख वाला है (महब्भओ महाभय का कारण (बहुरयप्पगाढो) कर्म रज की अधिकता से अत्यन्त गाढ (दारुणो) हृदय को विदारण करने वाला (कक्कसो) कठोर (असाओ) दुःख रूप (वाससहस्से०) हजारों वर्षों से (मुचइ) छूटता है (नय अवेदित्ता) किन्तु विना भोगे (अत्थिहु मोक्खोत्ति) मोक्ष–उसकर्म से मुक्ति नहीं होती है (नाय कुल नंदणो) ज्ञात कुल नन्दन (जिणो) जिनवर (वीर वर नाम धेज्जो) महावीर नाम वाले (महप्पा) महात्मा ने (एवमाहंसु) ऐसा कहा है (य) और (अलियवय-

णुस्स) झूठ बोलने के (एयं) इस (फल विवागं) फल रूप विपाक को (कहेंसी) भविष्य में भी कहेंगे । (तं) वह (बितीयपि) दूसरा भी (अलिय वयणं) मृषावाद रूप आस्रव (लहुस गलहु चवलभ०) छोटे से छोटे और चञ्चल मनुष्यों से कहा गया तथा (भयकर) भयङ्कर (दुहकर) दु ख कारक (अयसकर) अकीर्ति करने वाला (वेर करग) वैर का कारण (अरतिरति राग दोस मंगा संकिलेस वियरणं) अरति रति और राग द्वेष रूप मन के सक्लेश को करने वाला (अलिय नियडि साहि जाग बहुल) झूठ निष्फल कपट और अविश्वास वृत्ति की प्रधानता वाला है (नीयजण-निसेवियं) नीच जनों से सेवित (निम्सस) घृणा व दया रहित (अपच्चय कारकं) अविश्वास कारक (परमसाहु गरहणिज्ज) परम साधुओं से निन्दनीय (पर पीला-कारकं) दूसरों को पीडा देने वाला (परम कण्ह लेस सहियं) परम कृष्ण लेश्या वाला (दुग्गति विनिवाय वड्डण) दुर्गति पतन को बढाने वाला (पुणब्भवकर) पुनर्भव जन्मान्तर का कारण (चिर परिचिय मणुगय) चिर काल का परिचित होने से पीछे रहने वाला तथा (दुरत) दु ख से अन्त वाला है। ऐसा मैं कहता हूं। (वितिय अधम्म०) दूसरा अधम द्वार समाप्त हुआ, । २ । सूत्र । ४ । ८ ॥

भावार्थ—' उपरोक्त सूत्र में कहा गया है कि असत्य वचन के कटु फलों को नहीं जानते हुए झूठे लोग लम्बे काल के लिये भयङ्कर नरक व तिर्यग् योनि को बढाते हैं। असत्य से युक्त प्राणी पुनर्भव रूप अन्धकार मय कोठे में दुर्गति भोगते हुए भटकते हैं। मनुष्य होकर भी वे परवश बने हुए साधन हीनता की दशा में बुरी स्थिति का अनुभव करते हैं। शरीर से भी वे लोगों में बुरे दिखते हैं क्यों कि वे गूगे बहरे व अन्धे होते हैं। लौकिक या लोकोत्तर शास्त्र से तथा ज्ञान व बुद्धि से भी वे विकल होते हैं। झूठ रूप पाप के प्रभाव से वे अपमान और तिरस्कार पाते हैं। झूठे आरोप मे पडते हैं जो यावज्जीवन के लिये दुरुद्धर होते हैं, इससे दीन बने हुए वे लोग बुरे खान पान रहन सहन और कुग्राम में क्लेश के अनुभव करते हैं, कभी भी शारीरिक सुख व शान्ति नहीं पाते। प्रत्युत सैकडों तरह की दु खाग्नि में जलते रहते हैं। झूठ बोलने के ऐसे उभय लोक सम्बन्धी कुफलों को ज्ञात कुल नन्दन महात्मा भगवान् महावीर ने फरमाया है जो बहुत भयङ्कर है व हजारों वर्ष तक भोगने पर ही छूटता है। बिना भोगे इससे मुक्ति नहीं होती। यह दूसरा अधर्मद्वार अर्थात् मृषावाद झूठे हलके और चपल लोकोंसे कहा गया है। अन्य उपसहार

गरहणिज्जा) लोक में निन्दनीय (भिच्चा) भृत्य (असरिस जणस्स पेस्सा) असमान शील वाले लोगों के नोकर या द्वेषपात्र होते हैं (दुम्मेहा) दुष्ट बुद्धि (लोक वेद अज्झप्प समयसुतिवज्जिया) लोकशास्त्र-भारत आदि, वेद-ऋक् साम आदि, अध्यात्म शास्त्र-मनो विजय का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र और समय-जैन बौद्ध आदि सिद्धान्तशास्त्र इन सबोंसे परिवर्जित अर्थात् शास्त्र ज्ञान से शून्य (धम्म बुद्धि वियला) धर्म बुद्धि से विकल ऐसे (नरा) नर (अलिएण य तेण) उस पूर्व कथित अलीक भाषण रूप पाप से (पडज्झमाणा) जलते हुए (असतएणय) और अनुप शान्त मृषावाद रूप पाप से (अवमाणणपिट्ठमंसा हिक्खेव पिसुण भेयण गुरु बधव सयण मित्त वक्खारणादियाइं) अपमान, परोक्ष में दूषण प्रकट करना-निन्दा और चुगल खोरो से परस्पर का प्रेम भङ्गऔर गुरु, बान्धव, स्वजन तथा मित्र जनों के तिरस्कार वचन इत्यादिक (बहु विहाइ) बहुत प्रकार के (अब्भक्खाणाइ) झूठे आरोपों को (पार्वेति) प्राप्त करते हैं. जो (अमणो रमाइं) असनो राम (हियय-मणदूमकाइं) हृदय और मन को जलाने वाले-उपताप करने वाले तथा (जाव-ज्जीव) जीवन पर्यंतन (दुरुद्धराइ) दुःख से पार करने योग्य होते हैं। (अणिट्ठ-खर फरुस वयण तज्जन निब्भच्छण दीण वदण विमणा) अनिष्ट और अत्यन्त कठोर वचन से तर्जना व निर्भर्त्सना पाने के सबब कारण जो दीन वदन और उदा समन वाले हैं (कुभोयणा कुवाससा) मांस आदि कुत्सित भोजन और खराब वस्त्र वाले हैं (कुवसहीसु किलिस्संता) कुग्रामों में क्लेश पाते हुए (नेवसुह) न शारीरिक सुख को और (नेव निव्वुइं) न मानस सन्तोष को ही (उवलभंति) पाते हैं, (अच्चंत विपुल दुक्खसय सपलित्ता) अत्यन्त विशाल सैकडों दु.खों से ये जीव जलते रहते हैं। (अलियवयणस्स) झूठ बोलने का (एसोसो) यह ऊपर कहा हुआ वह (फल विवागो) फल रूप परिणाम (इहलो इओ पर लोइओ) इस लोक सम्बन्धी तथा परलोक सम्बन्धी (अप्पसुहो बहु दुक्खो) अल्पसुख व अधिक दुःख वाला है (महब्भओ महाभय का कारण (बहुरयप्पगाढो) कर्म रज की अधिकता से अत्यन्त गाढ (दारुणो) हृदय को विदारण करने वाला (कक्कसो) कठोर (असाओ) दु ख रूप (वाससहस्से०) हजारों वर्षों से (मुचइ) छूटता है (नय अवेदित्ता) किन्तु विना भोगे (अत्थिहु मोक्खोत्ति) मोक्ष-उसकर्म से मुक्ति नहीं होतो है (नाय कुल नंदणो) ज्ञात कुल नन्दन (जिणो) जिनवर (वीर वर नाम धेज्जो) महावीर नाम वाले (महप्पा) महात्मा ने (एवमाहंसु) ऐसा कहा है (य) और (अलियवंय-

णास) झूठ बोलने के (एयं) इस (फल विवागं) फल रूप विपाक को (कहेसी) भविष्य मे भी कहेंगे। (तं) वह (वितीयपि) दूसरा भी (अलिय वयणं) मृषावाद रूप आस्रव (लहुस गलहु चवलभ०) छोटे से छोटे और चञ्चल मनुष्यों से कहा गया तथा (भयकर) भयङ्कर (दुहकर) दु ख कारक (अयसकर) अकीर्ति करने वाला (वेर करगं) वैर का कारण (अरतिरति राग दोस मण संकिलेस विरयणं) अरति रति और राग द्वेष रूप मन के सक्लेश को करने वाला (अलिय नियडि साद्दि जाग बहुल) झूठ निष्फल कपट और अविश्वास वृत्ति की प्रधानता वाला है (नीयजण-निसेविये) नीच जनों से सेवित (निम्सस) घृणा व दया रहित (अपचय कारकं) अविश्वास कारक (परमसाहु गरहणिज्ज) परम साधुओं से निन्दनीय (पर पीला-कारक) दूसरों को पोडा देने वाला (परम कण्ह लेस सहियं) परम कृष्ण लेश्या वाला (दुग्गति विनिवाय वड्डण) दुगति पतन को बढाने वाला (पुणब्भवकर) पुनभव जन्मान्तर का कारण (चिर परिचिय मणुगय) चिर काल का परिचित होने से पोछे रहने वाला तथा (दुरत) दु ख से अन्त वाला है। ऐसा मैं कहता हूं। (वितिय अधम्म०) दूसरा अधम द्वार समाप्त हुआ, । २ । सूत्र । ४ । ८ ॥

भावार्थ—'उपरोक्त सूत्र मे कहा गया है कि असत्य वचन के कटु फलों को नहीं जानते हुए झूठे लोग लवे काल के लिये भयङ्कर नरक व तिर्यग् योनि को बढाते हैं। असत्य से युक्त प्राणी पुनर्भव रूप अन्धकार मय कोठे में दुर्गति भोगते हुए भटकते हैं। मनुष्य होकर भी वे परवश बने हुए साधन हीनता की दशा में बुरी स्थिति का अनुभव करते हैं। शरीर से भी वे लोगों में बुरे दिखते हैं क्यों कि वे गूगे बहरे व अन्धे होते हैं। लौकिक या लोकोत्तर शास्त्र से तथा ज्ञान व बुद्धि से भी वे विकल होते हैं। झूठ रूप पाप के प्रभाव से वे अपमान और तिरस्कार पाते हैं। झूठे आरोप मे पडते हैं जो यावज्जीवन के लिये दुरुद्धर होते हैं, इससे दीन बने हुए वे लोग बुरे खान पान रहन सहन और कुग्राम में क्लेश के अनुभव करते हैं, कभी भी शारीरिक सुख व शान्ति नहीं पाते। प्रत्युत सैकडों तरह की दुःखाग्नि में जलते रहते हैं। झूठ बोलने के ऐसे उभय लोक सम्बन्धी कुफलों को ज्ञात कुल नन्दन महात्मा भगवान् महावीर ने फरमाया है जो बहुत भयङ्कर है व हजारों वर्ष तक भोगने पर ही छूटता है। बिना भोगे इससे मुक्ति नहीं होती। यह दूसरा अधर्मद्वार अर्थात् मृषावाद झूठे हलके और चचल लोकोंसे कहा गया है। अन्य उपसंहार

गरहणिज्जा) लोक में निन्दनीय (भिच्चा) भृत्य (असरिस जणस्स पेस्सा) असमान शील वाले लोगों के नोकर या द्वेषपात्र होते हैं (दुम्मेहा) दुष्ट बुद्धि (लोक वेद अज्झप्प समयसुतिवज्जिया) लोकशास्त्र-भारत आदि, वेद-ऋक् साम आदि, अध्यात्म शास्त्र-मनो विजय का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र और समय-जैन बौद्ध आदि सिद्धान्तशास्त्र इन सबोंसे परिवर्जित अर्थात् शास्त्र ज्ञान से शून्य (धम्म बुद्धि वियला) धर्म बुद्धि से विकल ऐसे (नरा) नर (अलिएण य तेणं) उस पूर्व कथित अलीक भाषण रूप पाप से (पडज्झमाणा) जलते हुए (असतएणय) और अनुप शान्त मृषावाद रूप पाप से (अवमाणणपिट्ठिमसा हिक्खेव पिसुण भेयण गुरु बधव सयण मित्त वक्खारणादियाइं) अपमान, परोक्ष में दूषण प्रकट करना-निन्दा और चुगल खोरी से परस्पर का प्रेम भङ्ग और गुरु, बान्धव, स्वजन तथा मित्र जनों के तिरस्कार वचन इत्यादिक (बहु विहाइ) बहुत प्रकार के (अब्भक्खाणाइ) झूठे आरोपों को (पावेंति) प्राप्त करते हैं. जो (अमणो रमाइं) अमनो राम (हियय-मणदूमकाइं) हृदय और मन को जलाने वाले-उपताप करने वाले तथा (जाव-ज्जीव) जीवन पर्यंतन (दुरुद्धराइ) दुःख से पार करने योग्य होते हैं। (अणिट्ठ-खर फरुस वयण तज्जन निब्भच्छण दीण वदण विमणा) अनिष्ट और अत्यन्त कठोर वचन से तर्जना व निर्भर्त्सना पाने के सबब कारण जो दीन वदन और उदा समन वाले हैं (कुभोयणा कुवाससा) मांस आदि कुत्सित भोजन और खराब वस्त्र वाले हैं (कुवसहीसु किलिस्सता) कुमार्गों मे क्लेश पाते हुए (नेवसुह) न शारीरिक सुख को और (नेव निव्वुइ) न मानस सन्तोष को ही (उवलभंति) पाते हैं, (अच्चंत विपुल दुक्खसय सपलित्ता) अत्यन्त विशाल सैकडों दुःखों से ये जीव जलते रहते हैं। (अलियवयणस्स) झूठ बोलने का (एसोसो) यह ऊपर कहा हुआ वह (फल विवागो) फल रूप परिणाम (इहलो इओ पर लोइओ) इस लोक सम्बन्धी तथा परलोक सम्बन्धी (अप्पसुहो बहु दुक्खो) अल्पसुख व अधिक दुःख वाला है (महब्भओ महाभय का कारण (बहुरयप्पगाढो) कर्म रज की अधिकता से अत्यन्त गाढ (दारुणो) हृदय को विदारण करने वाला (कक्कसो) कठोर (असाओ) दुःख रूप (वाससहस्से०) हजारों वर्षों से (मुच्चइ) छूटता है (नय अवेदित्ता) किन्तु बिना भोगे (अत्थिहु मोक्खोत्ति) मोक्ष-उसकर्म से मुक्ति नहीं होती है (नाय कुल नंदणो) ज्ञात कुल नन्दन (जिणो) जिनवर (वीर वर नाम धेज्जो) महावीर नाम वाले (महप्पा) महात्मा ने (एवमा हसु) ऐसा कहा है (य) और (अलियवंय-

गस्स) झूठ बोलने के (एयं) इस (फल विवागं) फल रूप विपाक को (कहेसी) भविष्य मे भी कहेंगे। (तं) वह (वितीयपि) दूसरा भी (अलिय वयणं) मृषावाद रूप आस्रव (लहुस गलहु चवलभ०) छोटे से छोटे और चञ्चल मनुष्यों से कहा गया तथा (भयकर) भयङ्कर (दुहकर) दु ख कारक (अयसकर) अकीर्ति करने वाला (वेर करग) वैर का कारण (अरतिरति राग दोस मण संकिलेस विरयणं) अरति रति और राग द्वेष रूप मन के सक्लेश को करने वाला (अलिय नियडि साहि जाग बहुल) झूठ निष्फल कपट और अविश्वास वृत्ति की प्रधानता वाला है (नीयजण-निसेविये) नीच जनों से सेवित (निम्सस) घृणा व दया रहित (अपचय कारकं) अविश्वास कारक (परमसाहु गरहणिज्ज) परम साधुओं से निन्दनीय (' पर पीला-कारक) दूसरों को पोडा देने वाला (परम कण्ह लेस सहियं) परम कृष्ण लेश्या वाला (दुग्गति विनिवाय वड्ढण) दुगति पतन को बढाने वाला (पुणब्भवकरं) पुनर्भव जन्मान्तर का कारण (चिर परिचिय मणुगय) चिर काल का परिचित होने से पीछे रहने वाला तथा (दुरत) दु ख से अन्त वाला है। ऐसा मैं कहता हूं। (वितिय अधम्म०) दूसरा अधम द्वार समाप्त हुआ, । २ । सूत्र । ४ । ८ ॥

भावार्थ—' उपरोक्त सूत्र में कहा गया है कि असत्य वचन के कटु फलों को नहीं जानते हुए झूठे लोग लबे काल के लिये भयङ्कर नरक व तिर्यग् योनि को बढाते हैं। असत्य से युक्त प्राणी पुनर्भव रूप अन्धकार मय कोठे में दुर्गति भोगते हुए भटकते हैं। मनुष्य होकर भी वे परवश बने हुए साधन हीनता की दशा में बुरी स्थिति का अनुभव करते हैं। शरीर से भी वे लोगों में बुरे दिखते हैं क्यों कि वे गूगे बहरे व अन्धे होते हैं। लौकिक या लोकोत्तर शास्त्र से तथा ज्ञान व बुद्धि से भी वे विकल होते हैं। झूठ रूप पाप के प्रभाव से वे अपमान और तिरस्कार पाते हैं। झूठे आरोप मे पडते हैं जो यावज्जीवन के लिये दुरुद्धर होते हैं, इससे दीन बने हुए वे लोग बुरे खान पान रहन सहन और कुग्राम में क्लेश के अनुभव करते हैं, कभी भी शारीरिक सुख व शान्ति नहीं पाते। प्रत्युत सैकडों तरह की दुःखाग्नि में जलते रहते हैं। झूठ बोलने के ऐसे उभय लोक सम्बन्धी कुफलों को ज्ञात कुल नन्दन महात्मा भगवान् महावीर ने फरमाया है जो बहुत भयङ्कर है व हजारों वर्ष तक भोगने पर ही छूटता है। बिना भोगे इससे मुक्ति नहीं होती। यह दूसरा अधर्मद्वार अर्थात् मृषावाद झूठे हलके और चपल लोकोंसे कहा गया है। अन्य उपसहार

पूर्ववत् है। सार यह मृषावाद रूप महापाप नोचों से सेवित व अविश्वास कारक तथा दुर्गति में गिराने वाला और दुरन्त है॥ इति। २। ४। सू० ८॥

"अथ तीसरा अधर्मद्वार"

सम्बन्ध-दूसरे अध्ययन मे असत्य भाषण रूप आस्रव को कहा, अब इस तीसरे अध्ययन मे अदत्तादान—चोरी के तीसरे आस्रव को कहते हैं, क्यों कि चोरी करने वाले प्रायः झूठ बोलते हैं। दूसरी बात असत्य भाषी जीव धर्म, समाज और राज से निषिद्ध वचन बोलते हैं, तथा दूसरे से नहीं कही गई और न की गई बातें कहते हैं और पदार्थों के सत्य रूप को छिपाते हैं, जो एक प्रकार से चोरी होती है, इसलिये मृषावाद के अनन्तर तीसरे अध्ययन मे अदत्तादान को कहते है—

प्रथम सूत्रकार अदत्तादान-चोरी का स्वरूप कहते हैं-

मूल—"जंबू! तइयंच अदत्तादाणं हरदह मरण भय कलुस तासण पर संतिगऽभेज्ज लोभमूलं कालविसम संसियं अहो च्छिन्न तण्ह पत्थाणपत्थोइ मइयं अकित्तिकरणं अणज्जं छिद्दमंतर विधुर वसण मग्गण उस्सव मत्तप्पमत्त पसुत वंचणाक्खिवण-घायण-पराणिहुय-परिणाम-तक्करजण बहुमयं, अकलुण राय पुरिसरक्खियं, सया साहुगरहणिज्जं, पियजण-मित्तजण-भेद-विप्पीति कारकं, रागदोष बहुलं पुणोय उप्पूर-समर-संगाम-डमर-कलि-कलह-वेह करणं, दुग्गति विणिवाय वद्धणं, भवपुण भवकरं चिर परिचित मणुगयंदुरतं, तइयं अधम्मदारं सू०। १ ६॥

छाया—"जम्बू! तृतीयञ्च अदत्ताऽऽदान हर दह मरण भयकलुष त्रासन पर सत्काऽभिध्या लोभ मूल काल विषम शसित्तम् अधोऽच्छिन्न तृष्णा-प्रस्थान-प्रस्तोतृ मतिकम् अकीर्तिकरणम्, अनार्य छिद्रान्तर-विधुर व्यसन मार्गणोत्सव मत्त प्रमत्त प्रसुप्त वञ्चनाऽऽक्षेपण घातन पराऽनिभृत परिणाम तस्करजन बहुमतम् अकरुण राज-पुरुष रक्षित सदा साधुगर्हणीय प्रियजन-मित्रजन भेद विप्रीति कारक रागदोष बहुल पुनश्च उत्पूर समर सग्राम डमर कलिकलह वेध करण, दुर्गति विनिपात वर्द्धन, भव पुनर्भव करम्, चिर परिचितमनुगत दुरन्तं तृतीयमधर्मद्वारम्। १॥ सू० ९॥

अन्व०—"सुधर्म स्वामी कहते हैं-'(जंबू !) हे जम्बू ! (तइयच) आस्रव द्वारों मे तीसरा आस्रव द्वार (अदत्तादाण) अदत्त का ग्रहण करना- चौर्य कर्म है जो (हर दह मरण भय कलुस तासण-) अमुक के द्रव्य का हरण कर, तथा जला ऐसो प्ररणा करना अथवा हरण दहन और मरण व भयङ्कर पातक के त्रास उत्पन्न करने वाला (परिसतिगऽभेज्ज लोभ मूल दूसरे के धन मे रौद्र ध्यान युक्त लोभ-मूर्च्छा ही जिसका मूल है ऐसा (काल विसम संसिय) आधी रात आदि काल और पर्वत आदि विषम स्थान में जो आश्रित है (अहोऽच्छिन्न तण्ह पत्थाण पत्थोइ मइय) नीच गतिओं की ओर लोभिओ के प्रस्थान करने में प्रेरणा करने वाली बुद्धि को रखने वाला (अकित्ति करण) अकीर्ति करने वाला और (अणज्ज) अनार्य कर्म है (छिद्दमतर विधुर वसण मग्गण-उसव मत्तप्पमत्त पसुत्त वंचणक्खिवण घायग पराणि हुय परिणाम तक्करजण बहुमय) छिद्र-प्रवेश का मार्ग अन्तर-समय मौका तथा विधुर-नाश-दोष, व्यसन -राजादिसे होने वाला कष्ट इन को खोजना उत्सवों मे मस्त और प्रमादी बने हुए तथा सूते हुए का ठगना, चित्त को व्यग्र बना देना और मारना इन सब मे तत्पर और अनुप शान्त परिणाम वाला तथा चोरों से मान पाने वाला है [वाचनान्तर में-(छिद्द विसम पावग) छिद्र और विपन्न समय में होने वाला पाप (अणिहुय परिणाम) सङ्क्लेश युक्त परिणाम वाला] (अकलुण) करुणा रहित—निर्दय (राय पुरिसरक्खिय) राज पुरुषा से रक्षित अर्थात् राज-पुरुषों से रोका गया (सया) सदा (साहु गरहणिज्ज) साधु पुरुषों से गर्हा करने योग्य, निन्दित (पियजण मित्तजण भेद विप्पोति कारक) प्रियजन व मित्र जनों के भेद तथा अप्रीति का करने वाला (राग दोष बहुल) राग द्वेष को अधिकता वाला (पुणोय) और फिर (उप्पूर समर संगाम डमर कलि कलह वेह करण) अधिकता से जन संहारक जो संग्राम मोरचा डमर-भय के कारण रण से भागना विद्रूर-पाप युक्त कलह और पश्चात्ताप इन सब को बढाने वाला (दुग्गइ विणिवाय वड्ढण) दुर्गति में पतन को बढाने वाला (भवपुणब्भवकर) और संसार में वारवार जन्म कराने वाला तथा (चिर परिचिय मणुगय) चिर काल का परिचित होने से अनुगत-साथी और (दुरंत) दुःख से अन्त वाला ऐसा (तइय) तीसरा (अहम्मदार) अधर्म द्वार है ॥ सू० १।९॥

भावार्थ—इस सूत्र मे सुधर्म स्वामी ने अदत्तदान-चोरीका स्वरूप कहा है। यह

हरण आदि से त्रास पैदा करने वाला है। इसका मूल लोभ है। यह चोरी कर्म प्रायः विषम स्थान और कुसमय में किया जाता है। दुर्गति के अनुकूल समझ वाला अकीर्ति कारक और अनर्थ कर्म है। यावत् प्रेमी जनों में भेद और अप्रिति उत्पन्न करने वाला तथा राग द्वेष की प्रधानता वाला है। जनसंहारक सग्राम-लड़ाई तथा पश्चात्ताप का कारण है। दुर्गति में गिराने वाला और चिर काल तक ससार मे जन्म धारण करके भी दुःख से अन्त करने योग्य है। इस प्रकार उभय लोक मे अहित कारक यह चोरी कर्म तीसरा अधर्म द्वार है॥ १। ९॥

अब दूसरा नाम द्वार कहते हैं—

मूल—"तस्य य णामाणि गोन्नाणि होंति तीसं, तंजहा- चोरिक्कं १ परहडं २ अदत्तं ३ कूरिकडं ४ परलाभो ५ असंजमो ६ पर-घणंमिगेही ७ लोलिक्कं ८ तक्करत्तणंतिय ९ अवहारो १० हत्थल (हु) त्तणं ११ पावकम्मकरणं १२ तेणिक्कं १३ हरण विप्प-णासो १४ आदियणा १५ लुपणा धणाणं १६ अप्पच्चओ १७ ओवीलो १८ अक्खेवो १९ खेवो २० विक्खेवो २१ कूडया २२ कुलमसीय २३ कंखा २४ लालप्पण पत्थणाय २५ (आससणाय) वसणं २६ इच्छामुच्छाय २७ तण्हागेहि २८ नियडिकम्मं २९ अपरच्छंति ३० विय तस्स एयाणि एवमादीणि नामधेज्जाणि होंति तीसं अदिन्ना दाणस्स पाव कलिकलुस कम्मबहुलस्स अणेगाइं॥ सू० २। १०॥

छाया—"तस्य च नामानि गौणानि भवन्ति त्रिंशत्, तानि यथा—"चौरिक्यम् १ परहृतम् २ अदत्तम् ३ क्रूरिकृतम् ४ परलाभः ५ असंयम ६ परधने गृद्धिः ७ लौल्यम् ८ तस्करत्वमिति ९ अपहारः १० हस्तलघुत्वम् ११ पाप कर्म करणम् १२ तेनिका १३ हरण विप्रणाशः १४ आदानम् १५ लोपना धनानाम् १६ अप्रत्ययः १७ अपव्रोड १८ आक्षेपः १९ क्षेपः २० विक्षेपः २१ कूटता २२ कुलमषी च २३ कांक्षा २४ लालपन प्रार्थना च २५ आशसनाय व्यसनम् २६ इच्छमूर्च्छा च २७ तृष्णागृद्धिः २८ निकृति कर्म २९ अपरो (परा) क्षम् ३०। इत्यपिच तस्यैतानि एवमादीनि नामधेयानि भवन्ति त्रिंशत्,अदत्तादानस्य पाप कलिकलुष कर्म बहुलस्यानेकानि॥ सू० २। १०॥

अदत्तादान के नाम कहते हैं—

अन्वयार्थ—"(तस्सय) उस चौर्यकर्म के (गोण्णाणि) गुण-निष्पन्न (तीस) तीस (णामाणि) नाम (होंति) होते हैं (तजहा) वे इस प्रकार हैं (चोरिक्कं) चुरालेने से 'चोरिका' कहते हैं, (परहडं) दूसरे के पास से हरण करने से 'परहृत, कहाता है (अदत्तं) बिना दिया हुआ होने से 'अदत्त' (कूरिकड) और क्रूरचित्त वाले से किया जाने के कारण इसे' क्रूरिकृत' कहते हैं (परलाभो) दूसरे के श्रम और आश्रय का लिया जाता है इसलिये' परलाभ' (असंजओ) तथा उसमें संयम नहीं रहता, वास्ते यहअसंयम कहाता है (परधणंमिगेही) दूसरे के धन में लालच होने से चोरी की जाती है वास्ते इसे परधनगृद्धि (लोलिक्कं) और लौल्य कहते हैं (य) और (तक्करत्तणत्ति) चोर का कर्म होने से 'तस्करत्व' है (अवहारो) स्वामी की इच्छा बिना लिया जाता है इसलिये 'अपहार' कहते हैं (हत्थलहुत्तणं) दूसरे के धन को चुराने से जिसका हाथ कुत्सित हैउसका कार्य, अथवा हाथ की चा-लाकी के कारण इसको 'हस्तलघुत्व' कहते हैं (पावकम्मकरणं) इसे 'पाप कर्म करण' भी कहते हैं (तेणिक्क) चोर का कार्य होने से इसको 'स्तेनिका' कहते हैं (हरण विप्पणासो) चुरा के दूसरे के धन को नष्ट करने के कारण यह 'हरण-विप्रणाश' कहाता है (आदियणा) परधन का ग्रहण करने से इसको 'आदान' कहते हैं (लुंपणा धणाण) धन को लुप्त करने से 'धनलुम्पना' कहाता है (अप्पच्चओ) अविश्वास का कारण होने से इसे 'अप्रत्यय' कहते हैं (ओवीलो) दूसरों को पीड़ा करने से 'अवपीड' (अक्खेवों) पर द्रव्य को अलग रखने से 'आक्षेप' (खेवो) क्षेप और (विक्खेवो) 'विक्षेप भी कहते' हैं (कूडया) तराजू आदि को खोटा करना भी चोरी है इसलिये इसको 'कूटता' कहते हैं (कुलमसी) कुलको मलिन करने के कारण 'कुलमषी' (य) और (कंखा) तीव्र इच्छा के कारण यह 'कांक्षा' कहाता है (लालप्पणपत्थणा) निन्दित-लाभ की प्रार्थना करने से या दीन वचन युक्त प्रार्थना करने से 'लालपन-प्रार्थना' (य) और (वसणं) विपत्ति का कारण होने से 'व्यसन' कहाता है (इच्छामुच्छा) परधन मे इच्छा व आसक्ति होने से 'इच्छा मूर्च्छा' (य) और (तण्हागेही) प्राप्त द्रव्य का मोह व अप्राप्त की वाछा होने से 'तृष्णागृद्धि' कहते हैं (नियडि कम्म) कपट से यह कार्य किया जाना है इसलिये 'निकृति कर्म' कहते हैं (अपरच्छंतिंविय) और यह दूसरे की दृष्टि से छिपाके किया जाता है, वास्ते इसे 'अपराक्ष' भी कहते हैं। (तस्स आदि) उस

अदत्ता दान के (एयाणि) उपरोक्त्ये (तीसं) तीस (नाम धेज्जाणि) नाम (होंति) होते हैं और (एवमादोणि) इत्यादि (पाव-कलि कलुस-कम्म बहुलस्स) पाप और कलह से मलिन मित्र द्रोह आदि कर्म की अधिकता वाले अदत्तादान के (अणेगाइं) अनेक नाम हैं ॥ सू।२।१०॥

भावार्थ—"इस अदत्ता दान के तीस नाम हैं, जैसे-चोरिका १ परहृत २ अदत्त ३, क्रूरिकृत ४, परलाभ ५, असंयम ६, पर धन-गृद्धि-७, लौल्य ८,त स्करत्व ९, अपहार १०, हस्तलघुत्व ११, पापकर्मकरण १२, स्तैन्य १३, हरण विप्रणाश १४, आदान १५, धनलुम्पना १६, अप्रत्यय १७, अवपीडन १८, आक्षेप १९, क्षेप २०, विक्षेप २१ कूटता २२, कुलमषी २३, कांक्षा २४, लालपन प्रार्थना २५, व्यसन २६, इच्छामूर्छा २७, तृष्णा गृद्धि २८, निकृति कर्म २९ और अपराक्ष ३०, ये अदत्तादान के तीस नाम हैं। पाप और कलह से मलिन कर्म युक्त ऐसे उसके अनेक नाम होते हैं ॥ ३।१०॥

अब चौर्यकर्म करने वालों का वर्णन करते हैं—

इसमें चोरी कौन और कैसे करते यह बताया जायगा,

मूल—"तपुण करेंति चोरियं तक्करा परदव्वहरा छेया कय करण-लद्धलक्खा साहसिया लहुस्सगा अति-महिच्छ-लोभ गात्थी, ददर-ओवीलका य गेहिया अहिमरा अणभंजक-भग्ग संधिया रायदुट्ठ-कारीय विसयनिच्छूढ—लोकवज्झा, उद्दोहक-गासघायय-पुरघायग-पंथघायग-आलीवग-तित्थभेया लहुह-त्थसंपउत्ता जूइकरा खंडरक्खत्थीचोर—पुरिसचोर-संधिच्छेया य गंथिभेदग-परधणहरण-लोमावहार अक्खेवी, हडकारक निम्मद्दग-गूढचोरक-गोचोरग-अस्सचोरग। दासिचोराय, कए चोरा,—ओकड्ढक-संपदायक—उच्छिपक—सत्थघायक—बिले कोलीकारकाय निग्गाह—विप्पलुंपगा बहुविहतेणिक्कहरण बुद्धी, एते अन्नेय एवमादी परस्स दव्वाहि जे अविरया। विपुल बल-परिग्गहा य बहवे रायाणो परधणंमि गिद्धा सएव दव्वे असंतुट्ठा परविसए अहिहणंति, ते लुद्धा परधणस्स कज्जे चउ-रंग-विभत्त-बलसमग्गा निच्छिय-वरजोह-जुद्धसद्धिय-अहम

(१) लोम॰ (२) विंढचोरी कारका आ॰ स॰ (३) स एव, इति पाठेन भाव्यं

हाथिति दप्पिएहिं सेन्नेहिं संपरि-वुडा पउम-सगड-सूइ-चक्क-सागर गरुलवूहातिएहिं अणिएहिं उत्थरंता अभिभूय हरंति परधणाई

छाया—"तत्पुनः कुर्वन्ति चौर्यं तस्कराः परद्रव्यहराश्छेकाः कृत करणलब्धलक्ष्याः, साहसिकाः, लघुस्वका अतिमहेच्छलोभग्रस्ताः दर्दराऽपत्रीडकाश्च, गृद्धिकाश्चाऽभिमरा, ऋणभञ्जक-भग्नसन्धिका, राजदुष्टकारिणश्च, विषयनिर्घाटित लोकवाह्या, उद्रोहक-ग्रामघातक-पुरघातक-पथिघातकाऽऽदीपक-तीर्थभेदा लघुहस्तसम्प्रयुक्ताः, द्यूतकराः खण्डरक्षस्त्रीचौरकपुरुषचौर—सन्धिच्छेदकाः, ग्रन्थिभेदक—परधनहरण—लोमाप-हाराक्षेपिणः, हठकारकाः, निर्मर्दक—गूढ चौर-गोचौराऽश्वचौर—दासीचौराश्च; एक-चौराः, अपकर्षक—सम्प्रदायकाऽवच्छिम्पक-सार्थघातक-बिलकोलीकारकाश्च, निर्ग्राह-विप्रलोपका, बहुविधस्तेनकरणबुद्धयः, एतेऽन्ये चैवमादयः परस्य द्रव्याद् येऽवि-रताः। विपुलबलपरिग्रहाश्च बहवो राजानः परधनेषु गृद्धाः, स्वके द्रव्येऽसन्तुष्टाः; परविषयानभिघ्नन्ति, ते लुब्धाः परधनस्य कार्ये चतुरङ्ग—विभक्तबलसमग्रा निश्चित वरयोध-युद्धश्रद्धिताऽहमहमिकादर्पितैः सैन्यैः सम्परिवृताः पद्मशकट-सूची—चक्र-सागर-गरुड—व्यूहादिकैरनीकैरुत्तारन्तोऽभिभूय हरन्ति परधनानि। सू०। ३।१०॥

अन्वयार्थ—"(तंपुण) फिर उस (चोरियं) चोरी को (तक्करा) तस्कर (करेंति) करते हैं, जो (परदव्वहरा) पर द्रव्य का हरण करने वाले (छेया) कुशल (कय-करण लद्धलक्खा) बहुत वार चोरी कर्म को किये हुए और अवसर को जानने वाले हैं; (साहसिया) साहसिक (लहुस्सगा) तुच्छ आत्मा वाले (अतिमहिच्छलोभ-गत्था) बहुत बडी इच्छा वाले और लोभ से ग्रस्त (य) और (दद्दर ओवीलका) वचनों के आडम्बर से जो अपने आत्मस्वरूप को विशेष लजाने वाले या पीडा पहुचाने वाले हैं, (गेहिया) अतिलोभी (अहिमरा) सामने आए हुए को मारने वाले (अण भंजक भग्ग संधिया) ऋण को नहीं देने वाले और विरोध में सन्धि को तोडने वाले हैं (य) और (रायदुट्ठकारी) खजाना लूटना आदि राज विरुद्ध कार्य करने वाले (विसयनिच्छूढ—लोकवज्झा) विषय अर्थात् देश से निकाले हुए तथा लोक से बाहर निकाले गए (उद्दोहक गामघायय पुरघायग पथघायग आलि-वग तित्थभेया) घातक तथा ग्राम, नगर, और मार्ग में घात करने वाले-लूटने वाले, जलाने वाले तथा तीर्थ में भेद करने वाले (लहुहत्थ संपत्ता) हाथ की चालाकी से युक्त (जूईकरा) जुआरी (खंड रक्खत्थीचोर पुरिसचोर संधिच्छेया) चूंगी लेने-वाले या कोतवाल, स्त्री चोर-स्वय स्त्री को या स्त्री के पास से अथवा स्त्री रूप

बनकर चुराने वाले, पुरुष चोर-पुरुष को चुराने वाले और संधि छेदक-खात खोदने वाले (य) और (गंथिभेदग) ग्रन्थि काटने वाले (परधन हरण लोमावहार अक्खेवी) परधन हरने वाले, निर्दयता से या भय से दूसरों को मारकर चुराने वाले-लोमावहार, वशीकरण आदि के द्वारा आक्षेप करके चुराने वाले (हडकारगा हठसे चोरी करने वाले, (निम्मद्दग गूढचोरग गोचोरग अस्सचोरग दासिचोरा) सदा दूसरे का उपमर्द करने वाले, गुप्त चोर, गो चोर-गौ चुराने वाले, अश्व चुराने वाले और दासी चुराने वाले (य) और (एगचोरा) अकेले चोरी करने वाले (ओकड्ढक सपदायक उच्छिपक सत्थघायक बिलकोलीकारक) घरसे द्रव्य निकालने वाले या चोरों को बुलाकर दूसरों के घर चुराने वाले, अथवा चोरों को सहायता पहुंचाने वाले, सम्प्रदायक-चोरों को भोजन आदि देने वाले, उच्छिपक, सार्थ घातक समूह को लूटने वाले बिलकोली-दूसरे को धोखा देने के लिये बनावटी आवाज से बोलने वाले (य) और (निग्गाह विप्पलुंपगा) राजा से निगृहीत और छल से आज्ञा को लुप्त करने वाले, (बहुविह तेणिक्क हरण बुद्धी) बहुत प्रकार की चोरी से हरण करने की बुद्धिवाले (एते) ये (अन्नेय) और ऐसे ही दूसरे (एवमादी) इत्यादि (जे) जो (परस्स) दूसरे के (दव्वाइ) द्रव्य आदि में (अविरया) इच्छा से अनिवृत्त हैं अर्थात् परधन की लालच रखते हैं। (विपुलबलपरिग्गहा य) और अधिक बल व अधिक परिवार वाले (बहवे) बहुत से (रायाणो) राजा लोग (परधणंमि०) दूसरे के धन में गृद्ध-मूर्छावाले (सए व दव्वे) तथा अपने द्रव्य में (असतुट्ठा) सन्तोष नहीं रखने वाले (परविसए) दूसरे के देश पर (अभिह-णंति) आक्रमण करते हैं अर्थात् चढ़ाई करते हैं (ते लुद्धा) वे लोभी बने हुए (पर धणस्स कज्जे) दूसरे के धन के लिये (चउरंग-विभत्तबलसमग्गा) चार अङ्गों-हाथी, घोडे, रथ, व पैदल सेना-रूप भेदों से विभक्त-बटे हुए सैन्य बल से युक्त (निच्छिय वरजोह जुद्धसद्धिय अहमहमिति दप्पिएहिं) विश्वास पूर्ण उत्तम योद्धाओं के साथ युद्ध करने में श्रद्धावाले और आत्माभिमान से दर्प वाले (सेन्नेहिं) भृत्य या सैन्यों से (सपरिवुडा) घिरे हुए (पउम-सगड-सूइ-चक्क-सागर गरुलवूहा-तिएहिं) पद्मव्यूह, शकटव्यूह, सूचीव्यूह, चक्रव्यूह, सागरव्यूह और गरुडव्यूह इनसे रचे गए (अणिएहिं) सैन्यसमूहों से (उत्थरता) पर सैन्य को दबाते हुए (अभिभूय) उन्हें जीत कर (हरति परधणाई) पर धन को हरण करते हैं। सू० । ३ । १० ॥

मूल—"अवरे रणसीसलद्धलक्खा संगामंमि अतिवयंति सन्नद्ध—बद्धपरियर-उप्पीलियचिंधपट्टगहियाउहपहरणा, माढिवरवम्मगुंडिया, आविद्ध-जालिका, कवयकंकडइया उरसिर-मुहबद्धकंठतोणमाइतवरफलहरचितपहकर-सरहस खरचाव—करकरंछिय- सुनिसितसरवरिस—चडकरक—मुयंतघणचंडवेग-धारानिवायमग्गे, अणेगधणुमंडलग्गसंधिता—उच्छालिय-सत्ति-कणग-वामकरगहिय-खेडग- निम्मलनिक्किट्ठखग्ग—पहरंतकोंत तोमर-चक्क-गया-परसु मुसल-लंगल-सूललउल-भिंडमाला-सब्बल पट्टिस-चम्मेट्ठ-दुघण-मोट्ठिय -मोग्गर-वरफालिहजंतपत्थर-दुहण-तोण--कुवेणी--पीढकलिय-ईलीपहरण-मिलिमिलि मिलंत-खिप्पं-त—विज्जुजल-विरचित-समप्पहणभतले, फुडपहरणे महारण-संखभेरि—वरतूर —पउरपडुपडहाहय—णिणायगंभीरणंदित-पक्खुभियविपुलघोसे, हय-गय-रह--जोह-तुरितपसरितउद्धत तमंधकारबहुले, कातरनर-णयण-हिययवाउलकेर, विलुलिय-उक्कडवरमउड-तिरीड--कुंडलोडुदामाडोवियम्मि पागडपडाग-उसियज्झय-वेजयंति-चामरचलंत-छत्तधकारगंभीरे, हयहेसिय-हत्थिगुलुगुलाइय—रह-घणघणाइय-पाइक्क-हरहरहराइय अप्फो-डियसीहनाया, छेलियविघुट्ठुक्कुट्ठ—कंठगय--सद्दभीमगज्जिए, सयराह-हसंत—रुसंत-कलकलरवे, आसूणियवयणरुद्दे, भीम-दसणाधरोट्ठ-गाढदट्ठे, सप्पहरणुज्जयकरे, अमरिसवस-तिव्व-रत्त--निद्दारितच्छे, वेरदिट्ठिकुद्धचिट्ठिय-तिवली-कुडिल-भिउडि-कयनिलाडे, वहपरिणय—नरसहस्स—विक्कम—वियंभियबले, वग्गंततुरग—रहपहाविय -समरभडा, आवडिय-छेय—लाघव-पहारसाधिता, समूसवियबाहुजुयले, मुक्कट्टहास-पुक्कंतबोल-बहुले, फुरफलगावरण-गहिय—गयवर-पत्थित-दरिय-भडखल-परोप्पर-पलग्गजुद्ध-गव्वित-विउसित-वरासिरोसतुरियअभिमुह पहरंत-छिन्नकरिकराविभंगित करे, अवइद्ध-निसुद्ध-भिन्न-फालिय-

संकुलं बहुप्पाइयभूयं, विरचित बलिहोम धूवउवचार दिन्न रुधिरच्चणाकरण पयतजोगपयय चरियं, परियंत जुगंतकाल कप्पोवमं, दुरंतमहानई नईवइ महाभीमदरिसणिज्जं, दुरणुच्चरं, विसमप्पवेसं दुक्खुत्तारं दुरासयं लवणसलिल पुण्णं असिय सिय समूसियगेहिं दच्छ (हत्थ) केहिं वाहणेहिं अइवइत्ता समुद्दमज्झे हणंति गंतूण जणस्स पोते, परदव्वहरा नरा निरणुकंपा निरवयक्खा गामागर-नगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणा-समाणिगमजणवते य धणसमिद्धे हणंति, थिर-हियय-छिन्नलज्जावंदिगह गोग्गहेय गेण्हंति ॥ दारुणमती णिक्किवा णियं हणंति छिंदंति गेहसंधिं, निक्खित्ताणिय हरंति धणधन्न दव्वजायाणिजणवयकुलाणं णिग्घिणमती परस्स दव्वाहिं जे अविरया। तहेव केई अदिन्नादाणं गवेसमाणा कालाकालेसु संचरंता चियकापज्जलिय सरसदरदड्ढ कड्ढिय कलेवरे, रुहिर लित्तवयण अखतखातिय पीतडाइणि भमंत भयंकरं, जंबुयक्खिक्खियंते, घूयकय घोरसद्दे वेयालुट्ठिय निसुद्ध कह कहित-पहसित बीहणक निरभिरामे, अतिदुब्भिगंध बीभच्छदरिसणिज्जे, सुसाणवण सुन्नघर लेण अंतरावण गिरिकंदर विसम सावय समाकुलासु, वसहीसु, किलिस्संता सीतातव सो सियसरीरा दड्ढच्छवी, निरय तिरिय भवसंकड दुक्खसंभार वेयणिज्जाणि पावकम्माणि संचिणंता दुल्लहभक्खन्न पाण भोयणा, पिवासिया, झुंझिया, किलंता, मंसकुणिमकंद-मूल जंकिंचि कयाहारा, उव्विग्गा, उप्पुया, असरणा अडवीवासं उवेंति वालसत संकणिज्जं। अयसकरा तक्करा भयंकरा कास हरामोत्ति अज्जदव्वं इति सामत्थं करेंति गुज्झं। बहुयस्स जणस्स कज्जकरणेसु विग्घकरा मत्त-पमत्त-पसुत्त-वीसत्थ-छिद्दघाती,वसणब्भुदएसु हरणबुद्धी, विगव्व रुहिरमहिया परेंति नरवाति मज्जाय मतिक्कंता, सज्जणजणदुगुंछिया सकम्मेहिं पावकम्मकारी असुभ-

पगलिय-रुहिरकतभूमिकद्दम—चिलिचिल्लपहे, कुच्छिदालिय-
गलित-रुलंत-निभेल्लंत-फुरुफुरंतऽविगलमम्माहयविकय-
गाढदिन्नपहारमुच्छित—रुलंत-वेंभलविलावकलुणे, हय-जोह-
भमंततुरग—उद्दाममत्तकुंजर-परिसंकित-जणनिव्वुक-च्छिन्न
धयभग्गरहवरनट्ठसिर करि कलेवराकिन्न पतितपहरणविकिन्ना
भरणभूमिभागे, नच्चंतकबंधपउर—भयंकरवायस—परिलेंत
गिद्धमंडलभमंतच्छायंधकारगंभीरे, वसु—वसुह-विकंपितव्व-
पच्चक्खपिउवणं, परमरुद्दबीहणगं, दुप्पवेसतरगं अभिवयंति,
संगामसंकडं परधणं महंता, अवरे पाइक्कचोरसंघा सेणावति-
चोरवंदपागड्ढिकाय अडवीदेसदुग्गवासी, काल-हरित-रत्त-
पीत-सुक्किल्ल-अणेगसयचिंधपट्टबद्धा, परविसए अभिहणंति
लुद्धा, धणस्स कज्जे रयणागरसागरं उम्मीसहस्समालाउलाकुल
वितोय-पोतकलकलेंतकलियं, पायालसहस्स-वायवस-वेग
सलिल उद्धम्ममाण दगरयरयंधकारं, वरफेण पउर धवल पुलं
पुल समुट्ठियट्टहासं, मारुयविच्छुभमाण पाणियजल मालुप्पी-
लहुलियं, आविय समंतओ खुभिय-लुलिय-खोखुब्भमाण
पक्खलिय चलिय विपुलजल चक्कवाल महानई वेगतुरिय आपू-
रमाण गंभीर विपुल आवत्त चवल भममाण गुप्पमाणुच्छलंत
पच्चोणियत्त पाणिय पधाविय खर फरुस पयंडवाउलिय सलिल
फुट्टंतवीतिकल्लोल-संकुलं, महामगर मच्छकच्छभोहार गाह-
तिमि सुंसुमार सावय समाहय समुद्धायमाणक पूर घोरपउर
कायरजण हिययकंपणं, घोरमारसंतं महब्भयं भयंकर पतिभयं
उत्तासणग अणोरपारं आगासं चेव निरवलंबं उप्पाइय पवण
धणित नोल्लिय उवरुवरि तरंग दरिय अतिवेगवेग चक्खुपहमुच्छ-
रंतकच्छइ गंभीर विपुलगज्जिय गुंजिय निग्घाय गरुय निवातित
सुदीह नीहारि दूरसुव्वंत गंभीर धुगधुगंतसद्द, पडिपहरुंभंत
जक्खरक्खसकुहंड पिसाय रुसियतज्जाय उवसग्ग सहस्स

संकुलं बहुप्पाइयभूयं, विरचित बलिहोम धूवउवचार दिन्न रुधिरच्चणाकरण पयतजोगपयय चरियं, परियंत जुगंतकाल कप्पोवमं, दुरंतमहानई नईवइ महाभीमदरिसणिज्जं, दुरणुच्चरं, विसमप्पवेसं दुक्खुत्तारं दुरासयं लवणसलिल पुण्णं असिय सिय समूसियगेहिं दच्छ (हत्थ) केहिं वाहणेहिं अइवइत्ता समुद्दमज्झे हणंति गंतूण जणस्स पोते, परदव्वहरा नरा निरणुकंपा निरवयक्खा, गामागर-नगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणा-समाणिगमजणवते य धणसमिद्धे हणंति, थिर-हियय-छिन्नलज्जावंदिग्गह गोग्गहेय गेण्हंति, दारुणमती णिक्किवा णियं हणंति छिंदंति गेहसंधिं, निक्खित्ताणीय हरंति धणधन्न दव्वजायाणिजणवयकुलाणं णिग्घिणमती परस्स दव्वाहिं जे अविरया। तहेव केई अदिन्नादाणं गवेसमाणा कालाकालेसु संचरंता चियकापज्जलिय सरसदरदड्ढ कड्ढिय कलेवरे, रुहिर लित्तवयणा अखतखातिय पीतडाइणि भमंत भयंकरं, जंबुयक्खिक्खियंते, घूयकय घोरसद्दे वेयालुट्ठिय निसुद्ध कह काहित-पहसित बीहणक निरभिरामे, अतिदुब्भिगंध बीभच्छदरिसणिज्जे, सुसाणवण सुन्नघर लेण अंतरावण गिरिकंदर विसम सावय समाकुलासु, वसहीसु, किलिस्संता सीतातव सोसियसरीरा दड्ढच्छवी, निरय तिरिय भवसंकड दुक्खसंभार वेयणिज्जाणि पावकम्माणि संचिणंता दुल्लहभक्खन्न पाण भोयणा, पिवासिया, झुंझिया, किलंता, मंसकुणिमकंद-मूल जंकिंचि कयाहारा, उव्विग्गा, उप्पुया, असरणा अडवीवासं उवेंति वालसत संकणिज्जं। अयसकरा तक्करा भयंकरा कास हरामोत्ति अज्जदव्वं इति सामत्थं करेंति गुज्झं। बहुयस्स जणस्स कज्जकरणेसु विग्घकरा मत्त-पमत्त-पसुत्त-वीसत्थ-छिद्दघाती,वसणब्भुदएसु हरणबुद्धी, विगव्व रुहिरमाहिया परेंति नरवाति मज्जाय मतिक्कंता, सज्जणजणदुगुंछिया सकम्मेहिं पावकम्मकारी असुभ-

पगलिय–रुहिरकतभूमिकद्दम—चिलिचिल्लपहे, कुच्छिदालिय-गलित-रुलिंत-निभेल्लतंत—फुरुफुरंतऽविगलमम्माहयविकय-गाढदिन्नपहारमुच्छित—रुलंत—वेंभलाविलावकलुणे, हय—जोह-भमंततुरग—उद्दाममत्तकुंजर—परिसंकित–जणनिव्वुक–च्छिन्न धयभग्गरहवरनट्ठसिर करि-कलेवराकिन्न पतितपहरणविकिन्ना भरणभूमिभागे, नच्चंतकबंधपउर—भयंकरवायस—परिलेंत गिद्धमंडलाभमंतच्छायंधकारगंभीरे, वसु—वसुह–विकंपितव्व-पच्चक्खपिउवणं, परमरुद्दबीहणगं, दुप्पवेसतरगं अभिवयंति, संगामसंकडं परधणं महंता, अवरे पाइक्कचोरसंघा सेणावति-चोरबंदपागड्ढिकाय अडवीदेसदुग्गवासी, काल–हरित–रत्त-पीत–सुक्किल्ल–अणेगसयचिंधपट्टबद्धा, परविसए अभिहणंति लुद्धा, धणस्स कज्जे रयणागरसागरं उम्मीसहस्समालाउलाकुल वितोय–पोतकलकलेंतकलियं, पायालसहस्स–वायवस–वेग सलिल-उद्धम्ममाण दगरयरयंधकारं, वरफेण पउर धवल पुलं पुल समुट्ठियट्टहासं, मारुयविच्छुभमाण पाणियजल मालुप्पी-लहुलियं, अविय समंतओ खुभिय–लुलिय–खोखुब्भमाण पक्खलिय चलिय विपुलजल चक्कवाल महानईवेगतुरिय आपू-रमाण गंभीर विपुल आवत्त चवल भममाण गुप्पमाणुच्छलंत पच्चोणियत्त पाणिय पधाविय खर फरुस पयंडवाउलिय सलिल फुट्टंतवीतिकल्लोल–संकुलं, महामगर मच्छकच्छभोहार गाह-तिमि सुंसुमार सावय समाहय समुद्धायमाणक पूर घोरपउर कायरजण हियकंपणं, घोरभारसंतं महब्भयं भयंकरं पतिभयं उत्तासणग अणोरपारं आगासं चेव निरवलंबं उप्पाइय पवण धणित नोल्लिय उवरुवरि तरग दरिय अतिवेगवेग चक्खुपहमुच्छ-रंतकच्छइ गंभीर विपुलगज्जिय गुंजिय निग्घाय गरुय निवातित सुदीह नीहारि दूरसुव्वंत गंभीर धुगधुगंतसद्द, पडिपहरुभंत जक्खरक्खसकुहड पिसाय रुसियतज्जाय उवसग्ग सहस्स

संकुलं बहुप्पाइयभूयं, विरचित बलिहोम धूवउवचार दिन्न रुधिरच्चणाकरण पयतजोगपयय चरियं, परियंत जुगंतकाल कप्पोवमं, दुरंतमहानई नईवइ महाभीमदरिसणिज्जं, दुरणुच्चरं, विसमप्पवेसं दुक्खुत्तारं दुरासयं लवणसलिल पुण्णं असिय सिय समूसियगेहिं दच्छ (हत्थ) केहिं वाहणेहिं अइवइत्ता समुद्दमज्झे हणंति गंतूण जणस्स पोते, परदव्वहरा नरा निरणुकंपा निरवयक्खा गामागर-नगर-खेड-कव्वड-मडंब-दोणमुह-पट्टणा-समणिगमजणवते य धणसमिद्धे हणंति, थिर-हियय-छिन्नलज्जावंदिगह गोग्गहेय गेण्हंति, दारुणमती णिक्किवा णियं हणंति छिंदंति गेहसंधिं, निक्खित्ताणिय हरंति धणधन्न दव्वजायाणिजणवयकुलाणं णिग्घिणमती परस्स दव्वाहिं जे अविरया । तहेव केई अदिन्नादाणं गवेसमाणा कालाकालेसु संचरंता चियकापज्जलिय सरसदरदड्ढ कड्ढिय कलेवरे, रुहिर लित्तवयणा अखतखातिय पीतडाइणि भमंत भयंकरं, जंबुयक्खिक्खियंते, घूयकय घोरसद्दे वेयालुट्ठिय निसुद्ध कह काहित-पहसित बीहणक निरभिरामे, अतिदुब्भिगंध बीभच्छदरिसणिज्जे, सुसाणवण सुन्नघर लेण अंतरावण गिरिकंदर विसम सावय समाकुलासु, वसहीसु, किलिस्संता सीतातव सोसियसरीरा दड्ढच्छवी, निरय तिरिय भवसंकड दुक्खसंभार वेयणिज्जाणि पावकम्माणि संचिणता दुल्लहभक्खन्न पाण भोयणा, पिवासिया, झुंझिया, किलंता, मंसकुणिमकंद-मूल जकिंचि कयाहारा, उव्विग्गा, उप्पुया, असरणा अडवीवासं उवेंति वालसत संकणिज्जं । अयसकरा तक्करा भयकरा कास हरामोत्ति अज्जदव्वं इति सामत्थं करेंति गुज्झं । बहुयस्स जणस्स कज्जकरणेसु विग्घकरा मत्त-पमत्त-पसुत्त-वीसत्थ-छिद्दघाती, वसणब्भुदएसु हरणबुद्धी, विगव्व रुहिरमहिया परेंति नरवति मज्जाय मतिक्कंता, सज्जणजणदुगुंछिया सकम्मेहिं पावकम्मकारी असुभ-

पगालिय–रुहिरकतभूमिकद्दम—चिलिचिल्लपहे, कुच्छिदालिय-गलित–रुलिंत–निभेल्लतंत–फुरुफुरंतऽविगलमम्माहयविकय–गाढदिन्नपहारमुच्छित—रुलंत–वेंभलविलावकलुणे, हय–जोह-भमंततुरग—उद्दाममत्तकुंजर–परिसंकित–जणनिव्वुक–च्छिन्न धयभग्गरहवरनट्ठसिर करि कलेवराकिन्न पतितपहरणाविकिन्ना भरणभूमिभागे, नच्चंतकबंधपउर—भयंकरवायस—परिलेंत गिद्धमंडलभमंतच्छायंधकारगंभीरे, वसु—वसुह–विकंपितव्व-पच्चक्खपिउवणं, परमरुद्दबीहणगं, दुप्पवेसतरगं अभिवयंति, संगामसंकडं परधणं महंता, अवरे पाइक्कचोरसंघा सेणावति-चोरवंदपागड्ढिकाय अडवीदेसदुग्गवासी, काल–हरित–रत्त-पीत–सुक्किल्ल–अणेगसयचिंधपट्टबद्धा, परविसए अभिहणंति लुद्धा, धणस्स कज्जे रयणागरसागरं उम्मीसहस्समालाउलाकुल वितोय–पोतकलकलेंतकलियं, पायालसहस्स–वायवस–वेग सलिल उद्धम्ममाण दगरयरयंधकारं, वरफेण पउर धवल पुलंपुल समुट्ठियट्टहासं, मारुयविच्छुभमाण पाणियजल मालुप्पी-लहुलियं, अविय समंतओ खुभिय–लुलिय–खोखुब्भमाण पक्खलिय चलिय विपुलजल चक्कवाल महानई वेगतुरिय आपू-रमाण गंभीर विपुल आवत्त चवल भममाण गुप्पमाणुच्छलंत पच्चोणियत्त पाणिय पधाविय खर फरुस पयंडवाउलिय सलिल फुट्टंतवीतिकल्लोल–संकुलं, महामगर मच्छकच्छभोहार गाह-तिमि सुंसुमार सावय समाहय समुद्धायमाणक पूर घोरपउर कायरजण हियकंपणं, घोरमारसंतं महब्भयं भयंकर पतिभयं उत्तासणग अणोरपारं आगासं चेव निरवलंबं उप्पाइय पवण धणित नोल्लिय उवरुवरि तरग दरिय अतिवेगवेग चक्खुपहमुच्छ-रंतकच्छइ गंभीर विपुलगज्जिय गुंजिय निग्घाय गरुय निवतित सुदीह नीहारि दूरसुव्वंत गंभीर धुगधुगंतसद्द, पडिपहरुभंत जक्खरक्खसकुहंड पिसाय रुसियतज्जाय उवसग्ग सहस्स

संकुलं पहुप्पाइयभूयं, विरचित बलिहोम धूवउवचार दिन्न रुधिरच्चणाकरण पयतजोगपयय चरियं, परियंत जुगंतकाल कप्पोवमं, दुरंतमहानई नईवइ महाभीमदरिसणिज्जं, दुरणुच्चरं, विसमप्पवेसं दुक्खुत्तारं दुरासयं लवणसलिल पुण्णं असिय सिय समूसियगेहिं दच्छ (हत्थ) केहिं वाहणेहिं अइ वइत्ता समुद्दमज्झे हणंति गंतूण जणस्स पोते, परदव्वहरा नरा निरणुकंपा निरवयक्खा गामागर-नगर-खेड-कव्वड-मडंब-दोणमुह-पट्टणा-समणिगमजणवते य धणसमिद्धे हणंति, थिर-हियय-छिन्नलज्जाबंदिग्गह गोग्गहेय गेण्हंति, दारुणमती णिक्किवा णियं हणंति छिंदंति गेहसंधिं, निक्खित्ताणिय हरंति धणधन्न दव्वजायाणिजणवयकुलाणं णिग्घिणमती परस्स दव्वाहिं जे अविरया। तहेव केई अदिन्नादाणं गवेसमाणा कालाकालेसु संचरंता चियकापज्जलिय सरसदरदड्ढ कड्ढिय कलेवरे, रुहिर लित्तवयण अखतखातिय पीतडाइणि भमंत भयंकरं, जंबुयक्खिक्खियंते, घूयकय घोरसद्दे वेयालुट्ठिय निसुद्ध कह कहित-पहसित बीहणक निरभिरामे, अतिदुब्भिगंध बीभच्छदरिसणिज्जे, सुसाणवण सुन्नघर लेण अंतरावण गिरिकंदर विसम सावय समाकुलासु, वसहीसु, किलिस्संता सीतातव सो सियसरीरा दड्ढच्छवी, निरय तिरिय भवसंकड दुक्खसंभार वेयणिज्जाणि पावकम्माणि संचिणंता दुल्लहभक्खन्न पाण भोयणा, पिवासिया, झुंझिया, किलंता, मंसकुणिमकंद-मूल जकिंचि कयाहारा, उव्विग्गा, उप्पुया, असरणा अडवीवासं उवेंति वालसत संकणिज्जं। अयसकरा तक्करा भयंकरा कास हरामोत्ति अज्जदव्वं इति सामत्थं करेंति गुज्झं। बहुयस्स जणस्स कज्जकरणेसु विग्घकरा मत्त-पमत्त-पसुत्त-वीसत्थ-छिद्दघाती, वसणब्भुदएसु हरणबुद्धी, विगव्व रुहिरमहिया परेंति नरवति मज्जाय मतिक्कंता, सज्जणजणदुगुंछिया सकम्मेहिं पावकम्मकारी असुभ-

परिणया य दुक्खभागी, निच्चाइल दुहमनिव्वुइमणा इहलोके चेव किलिस्संता परदव्वहरानरा वसण सयसमावरणा ॥ सू० ४ । ११ ॥

छाया—"अपरे रणशीर्षलब्धलक्ष्याः सङ्ग्रामेऽतिपतन्ति, सन्नद्धबद्ध परिकरोत्पीडित-चिह्नपट्ट-गृहीताऽऽयुधप्रहरणा माढीवर-वर्मगुण्ठिता आविद्धजालिकाः कवच-कण्टकिता उर.शिरोमुखबद्धकण्ठतोण मायितवर (हस्तपाशितवर) फलक-रचित प्रहकर (समुदाय) सरभस खरचापकर करञ्छित-सुनिशितशर-वर्ष चटकरक मुच्यमान घनचण्डवेगधारानिपातमार्गे, अनेकधनुर्मण्डलाग्र—सन्धितोच्छलितशक्ति कनक वामकरगृहीत खेटक निर्मल निष्कृष्ट खड्गप्रहार प्रवृत्त (प्रहरत्) कुन्त-तोमर-चक्रगदा-परशु-मुशल लाङ्गल-शूल-लकुट-भिन्दिपाल (ण्डमाळ) शब्बल-पट्टिश-चर्मेष्ट दुघण-मौष्टिक-मुद्गर-वरपरिघ-यन्त्रप्रस्तर-द्रुहण-तोण-कुवेणी-पीठ—कलिते, इलोप्रहरण—चिकिचिक्कायमान (मिलिमिलिमिलत्) क्षिप्यमाण-विद्युज्ज्वल-विरचितसमप्रभनभस्तले, स्फुटप्रहरणे महारण शखभेरी-वरतुर्य-प्रचुर-पटुपटहाऽऽहत-निनादगम्भीर—नन्दितप्रक्षुब्ध-विपुलघोषे, हय—गज—रथ—योध-त्वरितप्रसृतोद्धत—तमोन्धकारबहुले, कातर—नर—नयन—हृदय—व्याकुलकरे, विलुलितोत्कटवरमुकुट—किरीट-कुण्डलोडुदामाटोपिके, प्रकटपताकोच्छ्रित-ध्वज-वैजयन्ती-चामर—चलच्छत्रान्धकारगम्भीरे, हयहेषित हस्ति—गुलगुलायित-रथघन-घनायित-पदातिहरहरायितास्फोटित्तसिंहनादे सीत्कृष्ट (सेंटित) विघुष्टोत्कृष्ट-कण्ठकृत- शब्द—भीमगर्जिते, सहेलहसद्रुष्यत्कलकलरवे, आशूनित—वदनरुद्रे, भीमदशनाधरोष्ठगाढदष्टे, सत्प्रहरणोद्यतकरे, आमर्षवश—तीव्ररक्तनिर्दारिताक्षे, वैरदृष्टि—क्रुद्धचेष्टित—त्रिवलीकुटिल—भ्रुकुटि—कृतललाटे, वधपरिणत—नरसहस्र-विक्रम-विजृम्भितबले, वल्गत्तुरङ्ग—रथ—प्रधावितसमरभटाः, आपतित –छेकलाघ-व- प्रहारसाधिताः समुच्छ्रितबाहुयुगल-मुक्ताट्टहास—पूत्कुर्वद् बोल (कोलाहल)-बहुले, स्फुरत्फलकावरणगृहीत—गजवर—प्रार्थ्यमान दृप्त—भट—खलपरस्परप्रलग्न-युद्धगर्वित—विकोशितवरासि—रोषत्वरिताभिमुख—प्रहरच्छिन्नकरिकर—व्यङ्गितकरे, अपविद्ध-निशुद्ध-भिन्न-स्फाटित-प्रगलित-रुधिरकृतभूमिकर्दम—प्रस्खलत् (चिलिचित्) पथे, कुक्षिदारितगलद्रुठद्—निर्भेलिताऽन्त्र फुरफुरायमाण-विकल-मर्माऽऽहत-विकृत गाढदत्तप्रहार मूर्च्छित-लुठद्विह्वलविलापकरुणे, हतयोध—भ्रमत्तुरगोद्दाम-

मत्त कुञ्जर-परिशङ्कितजन-निर्मूल (निवुक्क) छिन्नध्वज-भग्नरथवर-नष्टशिरः-करिकलेवराकीर्ण-पतितप्रहरण-विकीर्णाभरणभूमिभागे, नृत्यत्कबन्ध प्रचुर भयङ्कर-वायस परिलीयमान-गृद्धमण्डलभ्रमच्छायाऽन्धाकारगम्भीरे, वसुवसुधा-विकम्पितारइव प्रत्यक्षपितृवनं परमरुद्र दारुण भयानक दुष्प्रवेशतरकम्, अभिपतन्ति संग्रामसङ्कटं, परधन महान्तोऽपरे पदातिचौरसंघाः सेनापतयश्चौरवृन्द-प्रकर्षकाश्च, अटवीदेश दुर्गवासिनः कृष्ण-हरित-रक्त-पीत-शुक्लाऽनेकशत-चिह्नपट्ट-बद्धाः परविषयेऽभिघ्नन्ति। लुब्धा धनस्य कार्याय रत्नाकरसागर-मूमिसहस्रमालाऽ-कुलाकुलवितोय-पोत-कलकलायमानकलितम्, पातालसहस्र वातवश वेगसलिलो-द्धूयमानोदकरजोरजोऽन्धकार, वरफेणप्रचुरधवल निरन्तरसमुत्थिताट्टहास, मारुत-विक्षोभ्यमाण पानीय-जलमालोत्पलीहुलितम्, अपिच समन्ततः क्षुभित-लुलित-चोक्षुभ्यमाण-प्रस्खलित-चलित-विपुल-जलचक्रवाल-महानदीवेग-त्वरितापूर्यमाण-गम्भीर-विपुलावर्त-चपल-भ्रमद् गुण्यदुच्छ लत्प्रत्या वर्तमान पानीय-प्रधावित-खर-परुष-प्रचण्ड-व्याकुलित-सलिलस्फुटद्वीचिकल्लोलसङ्कुलम्, महामकर-मत्स्य कच्छपोऽहार प्रहतिमि-सुंसुमार-श्वापद—समाहत-समुद्धावत्पूरघारप्रचुरम्, कातर जन हृदय-कम्पनम्; घोरमारसन्तम्, महाभयम्-भयङ्करम्, प्रतिभयम्, उत्त्रासनकम् अनवाकूपा-रम्, आकाशमिव निरवलम्बम् औत्पातिक पवनात्यर्थ नोदितोपर्युपरितरङ्ग-दृप्तातिवेग-वेगचक्षुः पथाऽतृणवत्-क्वचिद्गम्भीर—विपुलगर्जितगुञ्जित—निर्घातगुरुकनिपतित-सुदीर्घनिर्ह्रादि—दूरश्रूयमाण—गम्भीरधुगधुगितिशब्दम्, प्रतिपथरुन्ध—यक्षराक्षस-कूष्माण्ड—पिशाचरुषित-तज्जातोपसर्गसहस्रसङ्कुलम्, बहूत्पातिकभूतम्, विरचित-बलिहोम—धूपोपचारदत्त-रुधिरार्चनाकरण प्रयतयोगप्रयतचरितम्, पर्यन्तयुगान्त-कालकल्पोपमम्, दुरन्तमहानदीनदीपति-महाभीमदर्शनीयम्, दुरणुचरम्, विषम-प्रवेशम् दुःखोत्तारम, दुराशयम् लवणसलिलपूर्णम्, असितसितसमुच्छ्रितकैः दक्ष-तरैः वाहनैरतिपत्य समुद्रमध्ये घ्नन्ति गत्वा जनस्य पोते। परद्रव्यहरा नरा निरनु-कम्पा निरवकांक्षा ग्रामागरनगर-खेट-कर्बट—मडम्ब-द्रोणमुख-पट्टणाश्रम-निगम-जनपदेच धनसमृद्धे घ्नन्ति, स्थिरहृदयछिन्नलज्जा वन्दिग्रहगोग्रहान् च गृह्णन्ति, दारुणमतयो निष्कृपा निजं घ्नन्ति, छिन्दन्ति गृहसन्धिम्; निक्षिप्तानिच हरन्ति, धन-धान्य द्रव्य-जातानि जनपदकुलाना, निर्घृणमतयः, परस्य द्रव्याद् ये ऽविरताः। तथैव-केऽपि अदत्तादानं गवेषयन्तः कालाऽकालयोः सञ्चरन्तः चितिका-प्रज्वलित सरस-दर-

दग्ध कुष्टकलेवरे, रुधिरलिप्तवदनाऽक्षतखादितपीतडाकिनीभ्रमणभयङ्करे जम्बुक-कृतखीखीविशब्दिते, घूकक्रतघोरशब्दे वेतालोत्थितनिशुद्ध (विशुद्ध) कहकहायमान-प्रहसितभयानकनिरभिरामे, अतिदुरभिगन्धबीभत्सदर्शनीये, श्मशान-वन-शून्य-गृह-लयनान्तरापण—गिरिकन्दराविषमश्वापदसमाकुलासु वसतिषु क्लिश्यन्तः, शीताऽ-तप शोषितशरीराः, दग्धच्छवयो निरयतिर्यग्भवसङ्कटदुःखसम्भारवेदनीयानि-पापकर्माणि सञ्चिन्वन्तो दुर्लभभक्ष्यान्न पानभोजनाः, पिपासिताः, भ्माताः क्लिद्य-मानाः, मांसकुणपकन्दमूलयत्किञ्चित्कृताहाराः, उद्विग्ना उत्सुका, अशरणा, अटवी-वासमुपयन्ति व्यालशतशङ्कनीयम्। अयशस्करास्तस्करा भयङ्कराः कस्य हरामोऽद्य-द्रव्यम्? इति सामर्थ्यं कुर्वन्तिगुह्यम्। बहुकस्य जनस्य कार्यं कारणयो र्विघ्नकराः, मत्त-प्रमत्त-प्रसुप्त-विश्वस्त छिद्रघातिनो व्यसनाभ्युदययोर्हरणबुद्धयो वृकाईव रुधिरमहिताः पर्यटन्ति, (पर्यन्ति) नरपतिमर्यादामतिक्रान्ताः, सज्जनजन जुगुप्सिताः, स्वक-र्मभिः पापकर्मकारिणोऽशुभपरिणताश्च दुःखभागिनो नित्याऽविलदुःखाऽनिर्वृत्त-मानसा इहलोके चैव क्लिश्यन्तः परद्रव्यहराः; नरा व्यसनशत समापन्नाः॥ सू० ४। ११॥

अन्वयार्थ—(अवरे) दूसरे-स्वयं लड़ने वाले राजा (रणसीसल द्धलक्खा) संग्राम के अग्रभाग में अपने लक्ष्य को पाने वाले (संगामंमि) संग्राम में (अतिवयति) खुद ही कूद पड़ते हैं (सन्नद्ध बद्ध परियर उप्पीलिय चिंधपट्ट गहियाउहपहरणा) तैयारी किये हुए, कवच बांधे हुए, चिह्न पट को मस्तक पर मजबूत बांध कर जो प्रहार करने के साधन—विविध आयुधों को ग्रहण किये हुए हैं, फिर (माढिवर वम्म गुडिया) बखतर व उत्तम वर्म शिरस्त्राण—से सुरक्षित रहने वाले (आविद्ध जालिका) लोह की जाली पहने हुए (कवय कंकडइया) कवच से कांठे युक्त शरीर वाले (उर खिर मुह बद्ध कंठ तोण माइतवरफलह रचित पहकर सरहस खर चाव कर करछिय सुनिसित सर वरिस चड करक मुयंत घण चडवेग धारा निवाय मग्गे) जिन्होंने छाती के साथ गले मे ऊंचे मुंह वाले तूणीर बांधे हैं तथा हाथ में लिये हुए प्रधान पाटियों से जिन्होने दूसरे के शस्त्र प्रहार को विफल करने केलिये समूह बना लिया है तथा वेग वाले या हर्षयुक्त एवं हाथ में कठोर धनुष को लिये हुए हैं और धनुर्धारियों से खींचेगये अतिशय तीक्ष्ण बाणों की मेघ के समान वेग से होने वाली धारा वृष्टि का जहाँ मार्ग है (अणेग धणुमंडलग्ग संधिताउच्छलियसत्ति—कणग—वाम कर गहिय

खेडग निम्गाल निक्किट्ठ खग्ग-पहरंत कोंत-तोमर चक्क-गया-परसु मुसल-लंगल सूल लउल भिंडमाला सव्वल-पट्टिस-चम्मेट्ठ-दुघण मोट्ठिय-मोग्गर-वर फलिह-जंत पत्थर-दुहण तोण-कुवेणी-पीढ-कलिय ईलो पहरण मिलि मिलि मिलंत खिप्पत विज्जुज्जल विर चित समप्पहणभतले) अनेक धनुष और मण्डलाग्रखड्ग विशेष, तथा फैंकने को निकली हुई तथा उछलती हुई शक्तियों त्रिशूल, और बाण तथा बायें हाथ मे लिये एहु पाटिये फलक, निकली हुई उज्जवल चमकदार खड्ग, प्रहार में प्रवृत्त कुन्त-भाले, तोमर-बाण चक्र, गदा, परसु-कुठारविशेष, मूशल, लांगल, हल, शूल और लकुट-दंडा, भिंड माल शस्त्रविशेष, शव्वल-भाला, पट्टिस-अस्त्रविशेष, चर्मेष्ट—चमडे में बधा पत्थर, दुघण—एक प्रकार का मुद्गर, मौष्टिक—मुष्टि मे आने लायक पत्थर, मुद्गर और बडी आगल—वर परिघा, यन्त्र प्रस्तर-गोफण आदि के पत्थर, द्रुहण-धक्का देकर वृक्ष गिराने का साधन, तोण-तूणीर, कुवेणी, पीठ-आसन इन प्रहरणों से युक्त रहने वाले, तथा ईलो-एक प्रकार के तलवार विशेष और फैंके जाते हुए चिक चिकाहट युक्त अन्य प्रहारों से उज्ज्वल विजली की प्रभा के समान बनी है दीप्ति जिसमे, ऐसे आकाश तल से युक्त तथा (फुड पहरणे) जहां प्रहरण शस्त्र खुले हुए हैं वैसे संग्राम में, फिर (महारण-संख-भेरि-वरतूर-पउर-पडुपडहाहय - णिणाय-गभीर णंदित पक्खुभिय विपुल घोसे) महारण सम्बन्धी शंख, भेरी और वरतूर्य के प्रचुर तथा स्पष्ट ध्वनिवाले बजाये गए पटह के गम्भीर निनाद-ध्वनि—से जो प्रसन्न और भयभीत लोकों के विस्तीर्ण घोष-कोला हल से युक्त है (हय गय रह जोह तुरित पसरित उद्धत तमधकार बहुले) घोडे, हाथी, रथ और योद्धाओं के गमनागमन से शीघ्र फैला हुआ रज ही जहाँ अतिशय प्रबल अन्धकार है वैसे (कातर नर णयण हियय वाउल करे) कायर मनुष्यो के नेत्र और हृदय को व्याकुल करने वाले (विलु लिय उक्कड-वर मउड-तिरीड - कुंडलोडु दामो डाविया) ढिलाई से चञ्चल और अधिक ऊचे जो उत्तम मुकुट तथा तिरीट-तीन शिखर वाला मुकुट विशेष और कुण्डल व नक्षत्र माला नामक आभरण विशेष उन से जो चमक और आटोप युक्त है, (पागड-पडाग-ऊसिय-ज्झय-वेजयंति चामर चलंत छत्तध-कार गभीरे) प्रकट की गई पताका तथा ऊची उठाई हुई ध्वजा और वैजयन्ती—विजय सूचक पता काये-और चलते हुए चामर व छत्रों के कारण जो अन्धकार से गम्भीर अर्थात् अति अन्धकार वाला है (हय हेसिय हत्थि—गुल गुलाइय रह घण घणाइय पाइक्क हर हराइय अप्फाडिय सीहनाया) घोडों का हिन हिनाना, हाथी का गुल गुलाना

दग्ध कुष्टकलेवरे, रुधिरलिप्तवदनाऽक्षतखादितपीतडाकिनीभ्रमणभयङ्करे जम्बुक-कृतखीखीतिशब्दिते, घूककृतघोरशब्दे वेतालोत्थितनिशुद्ध (विशुद्ध) कहकहायमान-प्रहसितभयानकनिरभिरामे, अतिदुरभिगन्धबीभत्सदर्शनीये, श्मशान-वन-शून्य-गृह-लयनान्तरापण--गिरिकन्दराविषमश्वापदसमाकुलासु वसतिषु क्लिश्यन्त., शीताऽ-तप शोषितशरीराः, दग्धच्छवयो निरयतिर्यग्भवसङ्कटदु.खसम्भारवेदनीयानि-पापकर्माणि सञ्चिन्वन्तो दुर्लभभक्ष्यान्न पानभोजनाः, पिपासिताः, ध्माताः क्लिश्य-मानाः, मांसकुणपकन्दमूलयत्किञ्चित्कृताहाराः, उद्विग्ना उत्प्लुता, अशरणा, अटवी-वासमुपयन्ति व्यालशतशङ्कनीयम् । अयशस्करास्तस्करा भयङ्कराः कस्य हरामोऽद्य-द्रव्यम् ? इति सामर्थ्यं कुर्वन्तिगुह्यम् । बहुकस्य जनस्य कार्य कारणयो र्विघ्नकराः, मत्त-प्रमत्त-प्रसुप्त-विश्वस्त छिद्रघातिनो व्यसनाभ्युदययोर्हरणबुद्धयो वृकाइव रुधिरमहिताः पर्यटन्ति, (पर्यन्ति) नरपतिमर्यादामतिक्रान्ताः, सज्जनजन जुगुप्सिताः, स्वक-र्मभिः पापकर्मकारिणोऽशुभपरिणताश्च दुःखभागिनो नित्याऽविलदुःखाऽनिर्वृत्त-मानसा इहलोके चैव क्लिश्यन्तः परद्रव्यहराः; नरा व्यसनशत समापन्नाः ॥ सू० ४ । ११ ॥

अन्वयार्थ---(अवरे) दूसरे--स्वयं लडने वाले राजा (रणसीसल द्धलक्खा) संग्राम के अग्रभाग में अपने लक्ष्य को पाने वाले (संगामंमि) संग्राम मे (अतिवयति) खुद ही कूद पडते हैं (सन्नद्ध बद्ध परियर उप्पीलिय चिंधपट्ट गहियाउहपहरणा) तैयारी किये हुए, कवच बांधे हुए, चिह्न पट को मस्तक पर मजबूत बांध कर जो प्रहार करने के साधन-विविध आयुधों को ग्रहण किये हुए हैं, फिर (माढिवर वम्म गुंडिया) बख्तर व उत्तम वर्म शिरस्त्राण-से सुरक्षित रहने वाले (आविद्ध जालिका) लोह की जाली पहने हुए (कवय कंकडइया) कवच से कांटे युक्त शरीर वाले (उर सिर मुह बद्ध कंठ तोण माइतवरफलह रचित पहकर सरहस खर चाव कर करछिय सुनिसित सर वरिस चड करक मुयत घण चंडवेग धारा निवाय मग्गे) जिन्होंने छाती के साथ गले मे ऊंचे मुंह वाले तूणीर बांधे हैं तथा हाथ में लिये हुए प्रधान पाटियों से जिन्होने दूसरे के शस्त्र प्रहार को विफल करने केलिये समूह बना लिया है तथा वेग वाले या हर्षयुक्त एवं हाथ में कठोर धनुष को लिये हुए हैं और धनुर्धारिओं से खींचेगये अतिशय तीक्ष्ण बाणों की मेघ के समान वेग से होने वाली धारा वृष्टि का जहाँ मार्ग है (अणेग धणुमंडलग्ग संधितावच्छलियसत्ति-कणग-वाम कर गहिय

खेडग निम्मल निक्किट्ठ खग्ग-पहरंत कोंत-तोमर चक्क-गया-परसु मुसल-लंगल सूल लउल भिंडमाला सब्बल-पट्टिस-चम्मेट्ठ-दुघण मोट्ठिय मोग्गर-वर फलिह-जंत पत्थर-दुहण तोण-कुवेणी-पीढ-कलिय ईली पहरण मिलि मिलि मिलंत खिप्पत विज्जुज्जल विर चित समप्पहणभतले) अनेक धनुष और मण्डलाग्रखड्ग विशेष, तथा फैंकने को निकली हुई तथा उछलती हुई शक्तियाँ त्रिशूल, और बाण तथा बांये हाथ मे लिये एहु पाटिये फलक, निकली हुई उज्जवल चमकदार खड्ग, प्रहार में प्रवृत्त कुन्त-भाले, तोमर-बाण चक्र, गदा, परसु-कुठारविशेष, मूशल, लांगल, हल, शूल और लकुट-दण्डा, भिंड माल शस्त्रविशेष, शब्वल-भाला, पट्टिस-अस्त्रविशेष, चर्मेष्ट—चमडे में बधा पत्थर, द्रुघण—एक प्रकार का मुद्गर, मौष्टिक—मुष्टि में आने लायक पत्थर, मुद्गर और बडी आगल—वर परिघा, यन्त्र प्रस्तर-गोफण आदि के पत्थर, द्रुहण-धक्का देकर वृक्ष गिराने का साधन, तोण-तूणीर, कुवेणी, पीठ-आसन इन प्रहरणों से युक्त रहने वाले, तथा ईली-एक प्रकार के तलवार विशेष और फैंके जाते हुए चिक चिकाहट युक्त अन्य प्रहारों से उज्ज्वल विजली की प्रभा के समान बनी है दीप्ति जिसमे, ऐसे आकाश तल से युक्त तथा (फुड पहरणे) जहा प्रहरण शस्त्र खुले हुए हैं वैसे सग्राम में, फिर (महारण-सख-भेरि-वरतूर-पउर-पडुपडहाहय – णिणाय-गभोर णदित पक्खुभिय विपुल घोसे) महारण सम्बन्धी शख, भेरी और वरतूर्य के प्रचुर तथा स्पष्ट ध्वनिवाले बजाये गए पटह के गम्भीर निनाद-ध्वनि—से जो प्रसन्न और भयभीत लोकों के विस्तीर्ण घोष-कोला हल से युक्त है (हय गय रह जोह तुरित पसरित उद्धत तमधकार बहुले) घोडे, हाथी, रथ और योद्धाओं के गमनागमन से शीघ्र फैला हुआ रज ही जहाँ अतिशय प्रबल अन्धकार है वैसे (कातर नर णयण हियय वाउल करे) कायर मनुष्यो के नेत्र और हृदय को व्याकुल करने वाले (विलु लिय उक्कड-वर मउड-तिरीड – कुण्डलोडु दामा डाविया) ढिलाई से चञ्चल और अधिक ऊचे जो उत्तम मुकुट तथा तिरीट-तीन शिखर वाला मुकुट विशेष और कुण्डल व नक्षत्र माला नामक आभरण विशेष उन से जो चमक और आटोप युक्त है, (पागड-पडाग-ऊसिय-ज्झय-वेजयति चामर चलत छत्तध-कार गभीरे) प्रकट की गई पताका तथा ऊ ची उठाई हुई ध्वजा और वैजयन्ती—विजय सूचक पता कायें-और चलते हुए चामर व छत्रों के कारण जो अन्धकार से गम्भीर अर्थात् अति अन्धकार वाला है (हय हेसिय हत्थि—गुल गुलाइय रह घण घणाइय पाइक्क हर हराइय अप्फाडिय सीहनाया) घोडों का हिन हिनाना, हाथी का गुल गुलाना

तथा रथों का घर घराना और पैदल सैनिकों का हर हर आदि शब्द करना ताल बजाना और सिंह नाद करना फिर (छेलिय विघुट्टकुट्ठ कंठ गय सद्द भीम गज्जिए) सेंटित सीत्कार करना, विरूप घोष करना तथा उत्कृष्ट-आनन्द की महा ध्वनि और कंठ से किया हुआ शब्द ये ही जहाँ मेघ की गर्जना है ऐसे, (सय राह हसत रुसत कल-कलरवे) एक हेला-एक समय-से, हंसते वा रुष्ट होते हुए लोकों के कल-कल शब्द से व्याप्त (आसूणिय-वयणरुद्दे) कुछ मोटे किये हुए व फुलाये हुए मुंह से जो रुद्र भयानक है (भीम-दसणाधरोट्ठ-गाढदट्ठे) भयङ्करता के साथ जिन्होंने दांतों से नीचे के ओष्ठ को गाढ काटा है, वैसे लोग वाला (सप्प हरणुज्जय करे), जो अच्छी तरह प्रहार करने मे तत्पर योद्धाओं के हाथ वाला है (अमरिस वस तिव्वरत्त-निद्दारितच्छे) जहाँ क्रोध वश आखें अत्यन्त लाल और निकाली हुई हैं (वेर-दिट्ठि कुद्ध-चिट्ठिय-तिवली-कुडिल-भिउडि-कय निलाडे) वैर की नजर से जो क्रुद्ध और चेष्टा युक्त हैं ललाट पर तीन रेखाओं से वक्र-टेढी-जहाँ भ्रुकुटि चढा हुई है, ऐसे दृश्यों से सग्राम भूमि युक्त है (वह परिणय नर सहस्स विक्कम वियभिय बले) मारने के विचार वाले हजारों मनुष्यों के परा क्रम से जो विस्तृत बल वाला है, अर्थात् जहाँ प्रहार करने वाले हजारों सुभटों का बल प्रदर्शित होरहा है, (वग्गतर-तुग-रह-पहाविय-समरभडा), जहाँ, उछलते हुए घोडों के रथ से साग्रामिक योद्धा जोश के साथ जुटे हुए हैं, (आवडिय छेय लाघव पहार साधिता) जो लडने को आये हुए दक्ष और हलके प्रहार से साधन किये हुए हैं, (समूसवियबाहुजुगल) हर्ष की अधिकता से जहाँ दोनों हाथ उठाये हुए हैं (मुक्कट्ट हास-पुक्कत-वोलबहुले) मुक्ताट्टहास-महाहास करने वाले और पूत्कार करने वाले मनुष्यों के कल कल शब्द की अधिकता वाला (फुर फलगा वरण गहिय गयवर पत्थित दरिय भड खल परोप्पर पलग्गजुद्ध गव्वित विउसित वरासिरोस तुरिय अभिमुह पहरित छिन्न करिकर विभगित करे) स्फुर अथवा स्फार याने चमकते हुए फलक और सन्नाह को ग्रहण किये हुए शत्रु दल के हाथिओ के कुम्भस्थल पर चढ के उनको मारने की अभिलाषा करने वाले जो दर्पयुक्त दुष्ट योद्धा हैं, वे परस्पर लडने को लगे हुए हैं और युद्ध कला के विज्ञान मे अहङ्कार युक्त, तथा उत्तम तलवारों को कोप से निकाले हुए रोप से शीघ्र सामने प्रहार करते हुए जिन्होंने हाथिओं की सूंडें काटली हैं और जहाँ अनेकों के हाथ भी खंडित दिखाई पडते हैं (अवइट्ट निसुद्ध भिन्न फालिय

पगलिय रुहिर कत भूमि कद्दम चिलि चिल्लपहे) बाण आदि से वींधे गये, अच्छी तरह कटे हुए और जो शरीर विदारण किये गये हैं उनके देह से गलते हुए रक्त से भूमि पर के मार्ग, कीचड से भरगये हैं ऐसे, तथा (कुच्छि-दालिय-गलित रुलिंत निभेल्लत फरु फुरतऽविगल मम्माहय विकय गाढ दिन्न पहार मुच्छित रुलंत वेंभल विळाव कलुणे) कुक्षि—पेट में विदारण करने से जहाँ गला हुआ रक्त बहता है और भूमि पर घायल लोग लुढक रहे हैं, तथा कइओं को पेट से आंतें निकालदी गई हैं, (फुरफुरायमाण) धूजते हुए और जो अङ्ग से विकल इन्द्रियों को विरुद्ध वृत्ति वाले हैं तथा जो मर्मस्थल मे आहत है व जिनको बुरी तरह से गाढ प्रहार दिया गया है, इसीलिये जो मूछित होकर जमीन पर लोटते और विह्वल बने हैं, उन सबके विलाप से जो स्थान करुणा जनक है वहां (हय जोह भमत तुरग उद्दाम मत्त कुजर परिसंकित जण निव्वु कच्छिन्न धय भग्ग रह वर नट्ठ सिर करि कलेवरा किन्न पतित पहरण विकिन्नाभरण भूमि भागे) मरे हुए सैनिकों के स्वेच्छा से इधर उधर फिरते हुए घाडे, मद मत्त हाथी और भयभीत मनुष्य तथा 'निवुक्क च्छिन्न'—निर्मूल कटा हुई ध्वजाये और टूटे रथ जहाँ दिखाई पडते हैं, फिर कटे हुए मस्तक वाले हाथिओ के कलेवरो से भरा हुआ तथा गिरे हुए शस्त्रास्त्र और बिखरे हुए अलङ्कारा से जहाँ का भूप्रदेश युक्त है (नच्चत कवध पवर भयकर वायस परिलेत गिद्ध मडल भमतच्छायधकार गभीरे) नाचते हुए-कवध--विना शिर के देहो की प्रचुरता वाला तथा डरावने कौए और चारों ओर फैलते हुए गिद्धो के भ्रमण करते हुए मण्डल की छाया से जो गहरे अन्धकार वाला है,ऐसे सग्राम मे (वसुवसुहविकपित्तव्व) देव और वसुधा को कम्पित करने वालों के समान वे राजालोग, (पच्चक्ख पिउवण) साक्षात् पितृवन श्मशान के जैसे (परमरुद्दवीहणग) परम-रौद्र और भय उत्पन्न करने वाले (दुप्पवेसतरग) सामान्य जनों के लिये कठिनाइ से प्रवेश पाने योग्य (सगाम सकड परधण) और सग्राम से गहन पूर्ण, ऐसे परधन को (महता) चाहते हुए (अभिवयति) उस समर युद्ध मे कूद पडते हैं । (अवरे पाइक चोरसघा) राजाओ से भिन्न दूसरे पैदल चोर समूह (सेणावति चोरवद पागड्ढिकाय) और चोर सघ को प्रेरणा करने वाले सेनापति जो (अडवी देस दुग्गवासी) अटवी के दुर्ग मे रहने वाले (काल-हरित रत्त-पीत-सुक्किल अणेगसय चिधपट्टबद्धा) काले, हरे, लाल, पीले और धोले ऐसे पांचों रग के सैकडो चिह्नपट्ट-

निशान के कपडे जिन्होंने बांध रक्खे हैं। और (लुद्धा) लोभी (परविसए) दूसरे के प्रदेशों को (धणस्स कज्जे) धन के लिये (अभिहणति) लूटते-मारते हैं, (रयणागरसागर) रत्नों की खान रूप जो समुद्र (उम्मी सहस्स माला उलाकुल वितोय पोत कल कलेंत कलिय) हजारों तरङ्ग माला से आकुल तथा जल के अभाव से व्याकुल ऐसे नौका व्यापारियों की कल-कल ध्वनि से युक्त है (पायाल सहस्स वायवस-वेग सलिल-उद्धम्ममाण दग-रय-रयधकार) हजारों पाताल कलशों मे से वायु के साथ वेग सेऊपर उछलता हुआ समुद्र जल हो जहाँ जलकण रूप धूलीमय अन्धकार है (वरफेण-पउर-धवल-पुलपुल-समुट्ठियट्टहास) उत्तम फेन हो जहाँ अत्यन्त चचल और सदा उठा हुआ अट्टहास है (मारुय-विच्छुभमाण पाणियजल मालुप्पोलहुलिय) हवा से विक्षुब्ध होते हुए जल के कारण जो शीघ्र जलमाला के समूह वाला है (अविय समतओ) और भी चारो तरफ से (खुभिय-लुलिय खो-खुब्भमाण-पक्खलिय-चलिय-विपुलजल—चक्कवाल-महाणई-वेगतुरिय-आपूरमाण गभीर-विपुल आवत्त चवल-भममाण गुप्पमाणुच्छलत पच्चोणिअत्त-पाणिय पधाविय खरफरुस-पयड-वाउलिय-सलिल-फुट्टंत-वीतिकल्लोल सकुल) वायु आदि से क्षुब्ध किया गया, लुलिय-तीर की भूमि पर टकराता हुआ, बडे मत्स्य आदि के कारण अत्यन्त व्याकुल किया गया और प्रस्खलित-पहाड आदि से रोका गया-फिरकर अपने स्थान की ओर जाता हुआ जहाँ पानी का अधिक विस्तार मे मडल है, तथा बडी नदियों के वेग से जो जल्दी भरा जा रहा है, व गभीर और अधिक फैले हुए आवर्तों मे चपलता के साथ भ्रमण करते हुए, व्याकुल होते. उछलते, या नीचे गिरते हुए पानी तथा जीवों से युक्त है, वेग युक्त गतिवाली अत्यन्त कठोर, रौद्र तथा व्याकु-लता युक्त जलवाली और विदीर्ण होती हुई तरङ्ग माला से जो सकुल है, (महामगर मच्छ कच्छभोहार-गाह-तिमि-सुसुमार-सावय-समाहय समुद्धायमाणक पूर—घोर पउर) फिर महा मगर, मत्स्य, कच्छप, ओहार—जल जन्तु विशेष, ग्राह, तिमि-बडा मत्स्य, सुसुमार और श्वापद—हिंसक जीव इनके परस्पर एक दूसरे से मारे गये और प्रहार करने को उठे हुए बहुत समूहों से जो भयानक है। (कायर जण हियय कपण) कायर मनुष्यों के हृदय को धुजाने वाला (घारमारसत) भयङ्कर शब्द करने वाला (महब्भय) परम भय देने वाला (भयकर) भयङ्कर (पतिभय) प्रत्येक वस्तु मे भय पैदा करने वाला (उत्तासणगं) डराने वाला-त्रास उत्पन्न करने वाला (अणोरपार) जिसका ओर दिखाई नही देता वैसा (आगासचेव) और आकाश

के समान (निरवलम्बं) आधार रहित (उप्पाइय पवणघणित-नोल्लिय-उवरुवरि-तरंगदरिय-अतिवेग-वेग-चक्खु पह मुच्छरंत -कत्थइ गंभोर विपुल गज्जिय-गुंजिय-निग्घाय- गरुय निवतिन सुदीह नीहारि-दूर सुव्वंत गभोर-धुगधुगतसद्दं) उत्पात सम्बन्धो पवन से अतिशय प्रेरणा पाई हुई जो निरन्तर ऊपर उठने वाली तरङ्गें हैं गर्व युक्त की तरह सब वेगों की मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले, जिनके वेग से दृष्टि का मार्ग ढका हुआ है, कहीं पर गम्भीर व मेघ ध्वनि की तरह विस्तीर्ण गर्जना रव से गुञ्जित; वाद्य विशेप के समान गुंजन और निर्घात-विजली गिरने के समान शब्द अथवा व्यन्तरकृत महाध्वनि एव विद्युत् आदि भारी द्रव्य के गिरने की जैसी महाध्वनि होती है और बहुत दूरतक सुन पडने वाला जहाँ धुग इस प्रकार गम्भीर शब्द होता है (पडिपह रुंभत-जक्ख-रक्खस-कुहड-पिसाय-पडिगज्जिय-रुसिय-तज्जाय-उवसग्ग सहस्स सकुल) मार्ग में चलने वालों के राह को रोकने वाले यक्ष राक्षस, कूष्माण्ड और पिशाच रूप व्यन्तर विशेषों के प्रति गर्जना और हजारो उपसर्ग अथवा यक्ष आदि के रोष और उनसे किये गये उपसर्ग सहस्र से जो सकुल है (बहूप्पाइय भूय) अनेक प्रकार के उत्पातों से युक्त (विरचित वलिहोम-धूव-उवचार-दिन्न रुधिर च्चणा-करण-पयत जोग-पयय चरिय) तथा बलिहोम और धूप से जिन्होंने देवता का पूजन किया एव रुधिर-अपना या अन्य का रक्त दिया और उस पूजा कर्म में प्रयत्न शील तथा नौका के अनुकूल दूसरे कार्यों में तत्पर ऐसे सायत्रिक-नौका व्यापारो से वह समुद्र सेवित है (परियत-जुगतकाल-कप्पोवम) अन्तिम युग-कलि युग के अन्त काल-नाश काल के समान उपमा वाला (दुरत महानई-नइवई महा भाम दरिसणिज्ज) जो दुख से अन्त मिलने योग्य गंगा आदि बडी नदियों तथा अन्य साधारण नदिओ का स्वामो और महाभय जनक दर्शन वाला है (दुरणुचरं) दुःख से सेवन करने योग्य (विसमप्पवेसं) विपम प्रवेप वाले (दुक्खुत्तार) दुःख पूर्वक उतरने योग्य (दुरासयं) कठिनता से पाने योग्य और (लवण सलिल पुण्ण) खारे पानी से भरे हुये समुद्र को (असियसिय-समूसिय गेहि-दच्छतर केहिं) काली व सफेद ऊची की हुई पताका वाले, अत्यन्त दक्ष याने वेग से चलने वाले (वाहणेहिं) वाहनों से (अइवइत्ता) प्रवेश करके (समुद्द मज्झे गंतूण) समुद्र के भीतर जाकर (जणस्स पोते) व्यापारी के जहाजों को (हणंति) लूटते-नष्ट करते हैं (परदव्वहरा नरा) दूसरे के धन को हरण करने वाले मनुष्य (निरणुकपा) निर्दय (निरवयक्खा) परलोक की अपेक्षा नहीं करने वाले हैं, (धण समिद्धे)

धन से समृद्ध (गामागर-नगर-खेड-कव्वड-मडंब-दोणमुह-पट्टणसम-णिगम जणवतेय) ग्राम, आकर-सोने चांदी आदि के उत्पत्ति स्थान, नगर, खेट-धूली के कोट वाला, कर्वट-छोटा नगर मडंब-चारों ओर जिसके पास कोई दूसरा गांव नहीं हो, द्रोण मुख—जल मार्ग व स्थल मार्ग दोनों से जाने योग्य शहर पत्तन—रत्न भूमि या जल स्थल गत दोनों मार्गों मे से किसी एक मार्ग से आने योग्य, आश्रम-तापस आदि का निवास स्थान या तापसो से बसाया गया निगम-व्यापारिक क्षेत्र और जनपद-देश को (हणति) वे लूटते-नष्ट करते हैं (थिर हियय-छिन्न लज्जा) ये अपने अर्थ मे स्थिर चित्त-दृढ विचार वाले और लज्जा रहित होते हैं (वदिग्गह-गोग्गहेय) मनुष्य को बन्दी बनाना और गौओं को पकडने रूप कार्यों को (गेण्हति) करते है (दारुणमती-णिक्किया) दारुण बुद्धि वाले ये निर्दय (णिय) खुद को या निजी लोकों को भी (हणति) मारते हैं (छिंदति गेहसंधिं) घर में सेंध लगाते हैं (य) और (जणवयं कुलाणं) लोकों के घर के (निक्खित्ताणि) रक्खे हुए (धण धन्न-दव्वजायाणि) धन धान्य रूप द्रव्य समूहों को (णिग्घिणमती) निर्दय बुद्धि होकर (हरंति) हरण करते हैं (जे , जो (परस्स दव्वाहिं अविरया) दूसरे के द्रव्य को लेने से निवृत्त नहीं हैं अर्थात जिन्होंने दूसरों के द्रव्य को लेना नहीं छोडा है (तहेव केई) इसी प्रकार कई लोग (अदिन्ना दाण गवेसमाणा) बिना दिये द्रव्य को ढूंढते हुए (काला कालेसु सचरता) समय और असमय में फिरते हुए (चियका-पज्जलिय—सरस-दरदड्ढ—कड्ढिय कलेवरे) चिताओं में जलते हुए मास आदि युक्त, थोडे जलते हुए और मतलब से बाहर खींचे गए कलेवर वाले तथा (रुहिरलित्त-वयण-अखत—खातिय—पीत—डाइणि भमत भयकर) रक्त से भरे हुए मुह वाले अक्षत—पूरे मृतक खाये हैं और जिन्होंने उनके रक्त का पान किया है ऐसी डाकिनिओ के भ्रमण से जो भयङ्कर है, (जंबुयखिक्खियते) जबुक की खीखी रूप ध्वनि वाले तथा (घूयकय घोर सद्दे) उल्लुओ के घोर शब्दों से युक्त (वेयालुट्ठिय—निसुद्ध कह—कहित—पहसित—बोहणक निरभिरामे) वे ताल से किया गया शब्दान्तर वाला जो कह कह रूप प्रहसन से भयङ्कर और अशोभनीक है (अति दुब्भिगध—बीभच्छ—दरिसणिज्जे) अत्यन्त दुर्गन्ध और भयङ्कर दर्शन वाले श्मशान मे तथा (सुसाणवण—सुन्नघर-लेण-अतरावणगिरि कदर-विसम-सावय समाकुलेसु) श्मशान तथा जंगल का शून्य घर, लयन-पर्वत में खोदे हुए घर, ग्राम के मध्य की दुकानें और विषमता तथा हिंसक जन्तुओं से व्याप्त पर्वत की

कन्दरा रूप (वसहीसु) निवासस्थानों में (किलिस्संता) क्लेश पाते हुए (सीतातप-सोसियसरीरा) शीत-सर्दी व गर्मी से सुखाए हुए शरीर वाले (दड्ढच्छवी) जली हुई चमडी वाले अर्थात् सर्दी आदि से जले शरीर वाले 'वे लोग' (निरय-तिरिय भव संकड-दुक्ख सभार वेयणिज्जाणि) नरक तिर्यञ्च भव रूप गहन वन में होने वाले निरन्तर दुःख की अधिकता से वेदन करने योग्य (पाव कम्माणि) पाप कर्मों को (सञ्चिणंता) सचय करते हुए 'रहते हैं' (दुल्लह-भक्खन्न पाण भोयणा) भक्ष्य-खाने योग्य अन्न और जल आदि का खाना पीना भी जिनको दुर्लभ है. (पिवासिया) प्यासे (झुंझिया) भूखे (किलंता) थके हुए (मंस कुणिमकद-मूल जंकिंचि-कयाहारा) मांस, शव-मुर्दा और कन्द मूल जो कुछ भी मिला उसी का आहार करने वाले हैं (उव्विग्गा) उद्वेग युक्त (उप्पुया) उत्सुकता वाले (असरणा) रक्षक से हीन (अडवी वास) अटवी के निवास को (उवंति) प्राप्त करते हैं, जो (वाल सत सकणिज्जं) सैकडों भुजंग आदि से शङ्का जनक है (अजसकरा) अकीर्ति करने वाले (भयकरा-तक्करा) भयङ्कर चोर (अज्ज) आज (कास) किस का (दव्व) द्रव्य (हरामोत्ति) हरण करें (इति) इस प्रकार (सामत्थ गुज्झ) गुप्त मन्त्रणा-विचार (करंति) करते हैं (बहु स्स जणस्स) बहुत से मनुष्यों के (कज्ज-करणेसु) कार्य करने मे (विग्घकरा) विघ्न करने वाले (मत्त-पमत्त-पसुत्ता-वीसत्थ-छिद्दघाती) मत्त-नशे मे प्रमत्त बे सुध सोये हुए और विश्वास किये हुए लोगों का समय पर हनन करने वाले (वसणब्भुदएसु हरण बुद्धी) व्यसन—विपत्ति और अभ्युदय-उन्नति के प्रसङ्ग मे हरण करने की बुद्धी वाले (विगव्व रुहिर महिया) वृक-व्याघ्र के जैसे रक्त का चाहने वाले (परेंति) चारों ओर भ्रमण करते हैं (नरवति मज्जाग मतिकंता) राजाओं की मर्यादा को उल्लंघन करने वाले (सज्जण जण-दुगुछिया) सज्जन लोगों से निन्दित (पाव कम्मकारी) पाप कर्म करने वाले (स-कम्मेहिं) अपने कर्मों के कारण (असुभ परिणया) असुभ परिणाम वाले (य) और (दुक्खभागी) दु.ख के भागी होते हैं (निच्चाइल-दुहमनिव्वु इमणा) सदा मलिन, दु ख का कारण और अशान्त मनवाले (परदव्वहरानरा) दूसरे के धन को चुराने वाले मनुष्य (इह लोके चेव) इस ससार मे ही (किलिस्सता) क्लेश पाते हुए (वसणसय समावण्णा) सैकडों कष्टों से घिरे रहते हैं ॥ सूत्र ४ । ११ ॥

भावार्थ—" सूत्र के आदि मे चोरों के स्वभाव, प्रवृत्ति और चोरी करने के प्रकार से, चोरों के अवान्तर भेद बताये गये हैं। तत्पश्चात् सैन्य बल को साथ लेकर

परचक्र पर आक्रमण करने वाले लुटेरों का वर्णन किया गया है। ये लुटेरे चतुरङ्गणी-हय, गज, रथ और पैदल रूप इन चार प्रकार की सैनिकों से चक्र, शकट आदि विविध व्यूह बनाकर परधन को लूटते हैं। इनमे कई साहसिक राजा सेना को सहायता के विना ही स्वय भयङ्कर सग्राम मे प्रवेश करके दूसरों का धन हरण करते हैं। केवल परधन के लालच से सग्राम करके दूसरों को लूटते हैं। राजाओं से भिन्न पैदल चोर सघ सेनापति आदि अटवी के दुर्ग स्थानों मे रहकर विविध वर्णों के चिह्नपट्टों को बाधे हुए दूसरों के प्रदेश को भी ग्रहण करते हैं। जो हजारों उत्ताल तरल तरङ्गों से दुरवगाह है, ऐसे सागर मे प्रवेश करके भी नौका आदि प्रबल साधनों से सज्जित होकर कई दूसरे के जहाजों को लूटते हैं। अनेक ग्रामों को नष्ट कर देते हैं। घर की दीवालों को फोडते, लोगों को मारते और सर्वस्व जबर्दस्ती ले लेते हैं। ऐसा मलिन आचरण वे लोग करते हैं जो परधन से अविरत हैं अर्थात् जो परधन की लालसा से अलग नहीं हुए हैं। अदत्त-विना दिये हुए-धन को खोजते हुए वे लुटेरे श्मशान में जाते और गुफाओं मे प्रवेश करते हैं, वहाँ पर सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, परिश्रम आदि सैकडों प्रकार के क्लेश सहते हैं। रक्षाहीन ऐसे अटवी वास को भी स्वीकार करते हैं। चोरों के समुद्र युद्ध तथा लूटने के प्रकार का विशद वर्णन मूल के अनुसार अन्वयार्थ मे कहा गया है। जो स्पष्ट है। सू० ४। ११॥

मूल—तहेव केइ परस्स दव्वं-गवेसमाणा गहिता य हया य बद्धरुद्धा य तुरियं अतिधाडिया, पुरवरं समप्पिया, चोरग्गह-चारभड-चाडुकराण तेहिय कप्पडप्पहार-निद्दय-आरक्खिय खर फरुस-वयण-तज्जण-गलच्छ-लुच्छल्लणाहिं विमणा चारग-वसहिं पवेसिया, निरयवसहि सरिसं तत्थावि गोम्मिय-प्पहार दूमण-निब्भच्छण-कडुय-वयण-भेसणग भयाभिभूया अक्खित्त नियंसणा मलिणदंडि खंड-निवसणा उक्कोडालंच-पासमग्ग परायणेहिं [दुक्ख समुदीरणेहिं] गोम्मिय भडेहिं विविहेहिं बंधणेहिं, किंते ?, हडि-निगड-बालरज्जुयकुदंडगवरत्त-लोह-संकल-हत्थंदुय-वज्झपट्टदाम कणिकोडणेहिं, अन्नेहि य एवमा-दिएहिं गोम्मिक भंडोवकरणेहिं दुक्ख समुदीरणेहिं संकोडण

मोडणाहिं वज्झंति मंदपुण्णा। संपुड-कवाड-लोहपंजर भूमि-घर-निरोह-कूव-चारग-कीलग-जुय-चक्क-वितत-बंधण-खंभा-लण उद्धचलण-बंधण-विहम्मणाहि य विहेडयंता अवकोडक-गाढ उरसिरबद्ध-उद्धपूरितफुरंत—उरकडग मोडणा मेडणाहिं बद्धा य नीससंता सीसावेढ-उरुयावल-चप्पडगसंधि बंधण-तत्त-सलाग-सूइया कोडणाणि-तच्छण-विमाणणाणिय खार—कडुय-तित्त--नावण--जायणा--कारण-सयाणि बहुयाणि पावियंता, उर-क्खोडी--दिन्न-गाढपेल्लण अट्ठिक-संभग्ग-सुपंसुलीगा, गलकालक लोहदंड-उर-उदर-वत्थि परिपीलिता, मत्थंतहियय संचुण्णि-यंगमंगा, आणत्तीकिंकरेहिं केति अविराहिय वेरिएहिं जमपुरिस सन्निहेहिं पहया, ते तत्थ मंदपुण्णा चडवेला-वज्झपट्ट-[4]पाराइं-छिवकस लत वरत्त [5]नेत्तप्पहारसय-तालियंगमंगा, किवणा लंबंत-चम्म-वण वेयण विमुहियमणा घणकोट्टिम-नियल-जुयल-संकोडिय-मोडिया य, कीरंति निरुच्चारा एया अन्नाय-एवमा-दीओ वेयणाओ पावा पावेंति, अदंतिंदिया वसट्टा बहु मोह मोहिया परधणंमि लुद्धा, फासिंदियविसय तिव्वगिद्धा, इत्थि-गय-रूव-सद्द-रस-गंध-इट्ठ-रति-महित-भोग तण्हाइया य धण-तोसगा, गहिया य जे नरगणा पुणरवि ते कम्मदुव्वियद्धा, उव-णीया राय-किंकराण तेसिं वहसत्थग पाढयाण, विलउली कार-काणं, लंचसय- गेण्हगाणं कूड-कवड-माया-नियडि आयरण-पणिहि वंचण-विसारयाणं, बहुविह अलिय-सत जंपकाण पर-लोक-परम्मुहाणं, निरयगति गामियाणं, तेहि य आणत्त-जीय दंडा तुरियं उग्घाडिया पुरवरे सिंघाडग- तिय-चउक्क-चच्चर-चउ-म्मुह-महापह पहेसु, वेत्त--दंडाल उड-कट्ठ-लेट्ठु पत्थर-पणालि-पणोल्लि-मुट्ठि-लया-पाद-पण्हि-जाणु-कोप्पर-पहार संभग्ग महिय

१—क. वप्पदग। २—क. पिट्ठि परिपीलिया। ३—क. पंगु पगा।
४—क. पोरा इति वा। ५—क. वेत्त।

परचक्र पर आक्रमण करने वाले लुटेरों का वर्णन किया गया है । ये लुटेरे चतुरङ्गिणी-हय, गज, रथ और पैदल रूप इन चार प्रकार की सैनिकों से चक्र, शकट आदि विविध व्यूह बनाकर परधन को लूटते हैं । इनमे कई साहसिक राजा सेना को सहायता के बिना ही स्वयं भयङ्कर सग्राम मे प्रवेश करके दूसरों का धन हरण करते हैं । केवल परधन के लालच से सग्राम करके दूसरों को लूटते हैं । राजाओं से भिन्न पैदल चोर सघ सेनापति आदि अटवी के दुर्ग स्थानों मे रहकर विविध वर्णों के चिह्नपट्टों को बांधे हुए दूसरों के प्रदेश को भी ग्रहण करते हैं । जो हजारों उत्ताल तरल तरङ्गों से दुरवगाह है ,ऐसे सागर मे प्रवेश करके भी नौका आदि प्रबल साधनों से सज्जित होकर कई दूसरे के जहाजों को लूटते हैं । अनेक ग्रामों को नष्ट कर देते हैं । घर की दीवालों को फोडते, लोगों को मारते और सर्वस्व जबर्दस्ती ले लेते हैं । ऐसा मलिन आचरण वे लोग करते हैं जो परधन से अविरत हैं अर्थात् जो परधन की लालसा से अलग नहीं हुए हैं । अदत्त—बिना दिये हुए—धन को खोजते हुए वे लुटेरे श्मशान में जाते और गुफाओं मे प्रवेश करते हैं, वहाँ पर सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, परिश्रम आदि सैकडों प्रकार के क्लेश सहते हैं । रक्षाहीन ऐसे अटवी वास को भी स्वीकार करते हैं । चोरों के समुद्र युद्ध तथा लूटने के प्रकार का विशद वर्णन मूल के अनुसार अन्वयार्थ मे कहा. गया है । जो स्पष्ट है । सू० ४ । ११ ॥

मूल—तहेव केइ परस्स दव्वं-गवेसमाणा गाहिता य हया य बद्धरुद्धा य तुरियं अतिधाडिया, पुरवरं समप्पिया, चोरग्गह-चारभड-चाडुकराण तेहिय कप्पडप्पहार-निद्दय-आरक्खिय खर फरुस-वयण-तज्जण-गलच्छ-लुच्छलणाहिं विमणा चारग-वसहिं पवेसिया, निरयवसहि सरिसं तत्थवि गोमिय-प्पहार दूमण-निब्भच्छण-कडुय-वयण-भेसणग भयाभिभूया अक्खित्त नियंसणा मलिणदंडि खंड-निवसणा उक्कोडालंच-पासमग्ग परायणेहिं [दुक्ख समुदीरणेहिं] गोम्मिय भडेहिं विविहेहिं बंधणेहिं, किंते ?, हडि-निगड-वालरज्जुयकुदंडगवरत्त-लोह-संकल-हत्थंदुय-वज्झपट्टदाम कणिकोडणेहिं, अन्नेहि य एवमा-दिएहिं गोम्मिक भंडोवकरणेहिं दुक्ख समुदीरणेहिं संकोडण

मोडणाहिं बज्झंति मंदपुण्णा । संपुड-कवाड-लोहपंजर भूमि-घर-निरोह-कूव-चारग-कीलग-जूय -चक्क-वितत-बंधण-खंभा-लण उद्धचलण-बंधण-विहम्मणाहि य विहेडयंता अवकोडक-गाढ उरसिरबद्ध-उद्धपूरितफुरंत--उरकडग मोडणा मेडणाहिं बद्धा य नीससंता सीसावेढ-उरुयावल-चप्पडगसंधि बंधण-तत्त-सलाग-सूइया कोडणाणि-तच्छण-विमाणणाणिय खार--कडुय-तित्त--नावण--जायणा--कारण-सयाणि बहुयाणि पावियंता, उर-क्खोडी--दिन्न-गाढपेल्लण अट्ठिक-संभग्ग-सुपंसुलीगा, गलकालक लोहदंड-उर-उदर-वत्थि परिपीलिता, मत्थंतहियय संचुण्णि-यंगमंगा, आणत्तीकिंकरेहिं केति अविराहिय वेरिएहिं जमपुरिस सन्निहेहिं पहया, ते तत्थ मंदपुण्णा चडवेला-वज्झपट्ट-[४]पाराइं-छिवकस लत वरत्त [५]नेत्तप्पहारसय-तालियंगमंगा, किवणा लंबंत-चम्म-वण वेयण विमुहियमणा घणकोट्टिम-नियल-जुयल-संकोडिय-मोडिया य, कीरंति निरुच्चारा एया अन्नाय-एवमा-दीओ वेयणाओ पावा पावेंति, अदंतिंदिया वसट्टा बहु मोह मोहिया परधणंमि लुद्धा, फासिंदियविसय तिव्वगिद्धा, इत्थि-गय-रूद-सद्द-रस-गंध-इट्ठ-रति-महित-भोग तण्हाइया य धण-तोसगा, गहिया य जे नरगणा पुणरवि ते कम्मदुव्वियद्धा, उव-णीया राय-किंकराण तेसिं वहसत्थग पाढयाणं, विलउली कार-काणं, लंचसय- गेण्हगाणं कूड-कवड-माया-नियडि आयरण-पणिहि वंचणा-विसारयाणं, बहुविह अलिय-सत जंपकाण पर-लोक-परम्मुहाणं, निरयगति गामियाणं, तेहि य आणत्त-जीय दंडा तुरियं उग्घाडिया पुरवरे सिंघाडग- तिय-चउक्क-चच्चर-चउ-म्मुह-महापह पहेसु, वेत्त--दंडाल उड-कट्ठ-लेट्ठु पत्थर-पणालि-पणोल्लि-मुट्ठि-लया-पाद-पण्हि-जाणु-कोप्पर-पहार संभग्ग महिय

१—क वप्पडग । २—क. पिट्ठि परिपीलिया । ३—क. पगु पगा ।
४—क. पोरा इति वा । ५—क. वेत्त ।

परचक्र पर आक्रमण करने वाले लुटेरों का वर्णन किया गया है। ये लुटेरे चतुरङ्गणी-हय, गज, रथ और पैदल रूप इन चार प्रकार की सैनिकों से चक्र, शकट आदि विविध व्यूह बनाकर परधन को लूटते हैं। इनमें कई साहसिक राजा सेना को सहायता के विना ही स्वय भयङ्कर सग्राम मे प्रवेश करके दूसरों का धन हरण करते हैं। केवल परधन के लालच से सग्राम करके दूसरों को लूटते हैं। राजाओं से भिन्न पैदल चोर सघ सेनापति आदि अटवी के दुर्ग स्थानों मे रहकर विविध वर्णों के चिह्नपट्टों को बाधे हुए दूसरों के प्रदेश को भी ग्रहण करते हैं। जो हजारों उत्ताल तरल तरङ्गों से दुरवगाह है ,ऐसे सागर मे प्रवेश करके भी नौका आदि प्रबल साधनों से सज्जित होकर कई दूसरे के जहाजों को लूटते हैं। अनेक ग्रामों को नष्ट कर देते हैं। घर की दीवालो को फोडते, लोगों को मारते और सर्वस्व जबर्दस्ती ले लेते हैं। ऐसा मलिन आचरण वे लोग करते हैं जो परधन से अविरत हैं अर्थात् जो परधन की लालसा से अलग नहीं हुए हैं। अदत्त-बिना दिये हुए-धन को खोजते हुए वे लुटेरे श्मशान में जाते और गुफाओ मे प्रवेश करते हैं, वहाँ पर सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, परिश्रम आदि सैकडों प्रकार के क्लेश सहते हैं। रक्षाहीन ऐसे अटवी वास को भी स्वीकार करते हैं। चोरों के समुद्र युद्ध तथा लूटने के प्रकार का विशद वर्णन मूल के अनुसार अन्वयार्थ मे कहा. गया है। जो स्पष्ट है। सू० ४। ११॥

मूल—तहेव केइ परस्स दव्वं-गवेसमाणा गहिता य हया य बद्धरुद्धा य तुरिय अतिधाडिया, पुरवरं समप्पिया, चोरग्गह-चारभड-चाडुकराण तेहिय कप्पडप्पहार-निद्दय-आरक्खिय खर फरुस-वयण-तज्जण-गलच्छल-उच्छल्लणाहिं विमणा चारग-वसहिं पवेसिया, निरयवसहि सरिसं तत्थावि गोम्मिय-प्पहार दूमण-निब्भच्छण-कडुय-वयण-भेसणग भयाभिभूया अक्खित्त नियंसणा मलिणदंडि खंड-निवसणा उक्कोडालंच-पासमग्ग परायणेहिं [दुक्ख समुदीरणेहिं] गोम्मिय भडेहिं विविहेहिं बंधणेहिं, किंते ?, हडि-निगड-बालरज्जुयकुदंडगवरत्त-लोह-संकल-हत्थंदुय-वज्झपट्टदाम कणिकोडणेहिं, अन्नेहि य एवमा-दिएहिं गोम्मिक भंडोवकरणेहिं दुक्ख समुदीरणेहिं संकोडण

मोडणाहिं बज्झंति मंदपुण्णा । संपुड-कवाड-लोहपंजर भूमि-घर-निरोह-कूव-चारग-कीलग-जूय -चक्क-वितत-बंधण-खंभा-लण उद्धचलण-बंधण-विहम्मणाहि य विहेडयंता अवकोडक-गाढ उरसिरबद्ध-उद्धपूरितफुरंत—उरकडग मोडणा मेडणाहिं बद्धा य नीससंता सीसावेढ-उरुयावल-चप्पडग[1]संधि बंधण-तत्त-सलाग-सूइया कोडणाणि-तच्छण-विमाणणाणिय खार-कडुय-तित्त--नावण--जायणा--कारण-सयाणि बहुयाणि पावियंता, उर-क्खोडी--दिन्न-गाढपेल्लण अट्ठिक-संभग्ग-सुपंसुलीगा, गलकालक लोहदंड-उर-उदर-वत्थि [2]परिपीलिता, मत्थंतहियय संचुण्णि-यंग[3]मंगा, आणत्तीकिंकरेहिं केति अविराहिय वेरिएहिं जमपुरिस सन्निहेहिं पहया, ते तत्थ मंदपुण्णा चडवेला-वज्झपट्ट-[4]पाराइं-छिवकस लत वरत्त [5]नेत्तप्पहारसय-तालियंगमंगा, किवणा लंबंत-चम्म-वण वेयण विमुहियमणा घणकोट्टिम-नियल-जुयल-संकोडिय-मोडिया य, कीरंति निरुच्चारा एया अन्नाय-एवमा-दीओ वेयणाओ पावा पावेंति, अदंतिंदिया वसट्टा बहु मोह मोहिया परधणंमि लुद्धा, फासिंदियविसय तिव्वगिद्धा, इत्थि-गय-रूव-सद्द-रस-गंध-इट्ठ-रति-महित-भोग तण्हाइया य धण-तोसगा, गहिया य जे नरगणा पुणरवि ते कम्मदुव्वियद्धा, उव-णीया राय-किंकराण तेसिं वहसत्थग पाढयाणं, विलउली कार-काणं, लंचसय- गेण्हगाणं कूड-कवड-माया-नियडि आयरण-पणिहि वंचण-विसारयाणं, बहुविह अलिय-सत जंपकाण पर-लोक-परम्मुहाणं, निरयगति गामियाणं, तेहि य आणत्त-जीय दंडा तुरियं उग्घाडिया पुरवरे सिंघाडग- तिय-चउक्क-चच्चर-चउ-म्मुह-महापह पहेसु, वेत्त--दंडाल उड-कट्ठ-लेट्ठु पत्थर-पणालि-पणोल्लि-मुट्ठि-लया-पाद-पण्हि-जाणु-कोप्पर-पहार संभग्ग महिय

१—क बप्पडग । २—क, पिट्ठि परिपीलिया । ३—क. यंगु पंगा ।

४—क. पोरा इति वा । ५—क. वेत्त ।

गत्ता, अट्ठारस कम्मकारणा, जाइ यंगमंगा कलुणा सुक्कोट्ठकंठ-गलक तालुजीहा जायंता पाणीयं, विगय जीवियासा, तण्हा-दिता वरागा तंपिय ण लभंति वज्झपुरिसेहिं घाडियंता, तत्थ य खर फरुस पडह घट्टित कूडग्गह गाढ रुट्ठ निसट्ठ परामुट्ठा वज्झ करकुडि जुय नियत्था, सुरत्त कणवीर गहिय विमुकुल कंठेगुण वज्झदूत आविद्ध मल्लदामा, मरण भयुप्पण्ण सेद आयतणेहुत्तु पियकिलिन्नगता, चुण्णगुंडिय सरीर रय रेणुभरियकेसा, कुसुं भगोक्किन्न मुद्धया, छिन्नजीवियासा, घुन्नंता वज्झयाणं भीता तिलं तिलं चेव छिज्जमाणा सरीर विकंत लोहिओलित्ता कागणि मंसाणि खावियंता, पावा खरफरुसएहिं तालिज्जमाणदेहा, वातिक नर नारि संपरिवुडा, पेच्छिज्जंता य नागरजणेण, वज्झ नेवत्थिया, पणेज्जंति नयरमज्झेण किवण कलुणा अत्ताणा, असरणा, अणाहा अबंधवा, बंधु विप्पहीणा, विपिक्खिंता दिसोदिसिं मरण भयुव्विग्गा आघायण-पडिदुवार-संपाविया, अधन्ना सूलग्ग-विलग्ग-भिन्नदेहा, तेयतत्थ कीरंति परिकप्पियगमंगा उल्लंबिज्जंति रुक्खसालासु केई कलुणाइ विलवमाणा, अवरे चउरंग धणिय बद्धा पव्वय कडगा पमुच्चंते, दूरपात बहुविसम पत्थरसहा, अन्नेय गयचलण-मलण य निम्मद्दिया कीरंति पावकारी, अट्ठारस खंडिया य कीरंति, मुंडपरसूहिं केई उक्कत्त कन्नोट्ठ नासा, उप्पाडिय नयण-दसण वसणा, जिब्भिंदियछिन्नया छिन्न-कन्नसिरा, पणिज्जंते, छिज्जंते य असिणा निव्विसया, छिन्न हत्थपाया। पमु-च्चंते जावज्जीव बंधणा य कीरंति केइ। पर दव्वहरणलुद्धा, कारग्गल-नियलजुयलरुद्धा, चारगावहतसारा सयणविप्पमुक्का, मित्तजणनिरिक्खिया निरासा बहुजणधिक्कार सद्दलज्जाविता, (अलज्जाविया अलज्जो अणुबद्ध-खुहा पारद्धा सी उण्ह-तण्ह वेयण दुग्घट्ट-घट्टिया, विवन्नमुह-विच्छविया, विहल मलिन दुब्बला,

१—क पाथि यगुपगा। २—क वज्झणयाणीया। ३—क निरक्कया।

किलंता, कासंता, वाहिया य आमाभिभूयगत्ता, परुढ नह-केस-मंसुरोमा, छगमुत्तंमि णियगंमि खुत्ता तत्थेव मया अकामका बंधिऊण पादेसु कड्ढिया खाइयाए छूढा, तत्थ य वग-सुणग-सियाल-कोल-मज्जार-वंद संदंसगतुंड पक्खिगण-विविहमुह सयल विलुत्तगत्ता कय विहंगा केइ किमिणा य कुहियदेहा अणिट्ठ वयणेहिं सप्पमाणा सुट्ठुकय जं मउति पावो तुट्ठेण जणेणं हम्ममाणा लज्जावणकाय होंति सयणस्सवि दीह काल मया सता ॥ सू० ५ । १२ ॥

छाया—तथैव केचिद् परस्य द्रव्यं गवेषयन्तः गृहीताश्च हताश्च बद्ध रुद्धाश्च त्वरित मति भ्राहिताः (भ्रामिताः) पुरवरं समर्पिता चौरग्राह चार भट चाटुकाराणाम् । तैश्च कर्पट प्रहार निर्दयाऽऽरक्षिक खर परुष वचन तर्जन गलग्रहणो (च्छलो) च्छलना नाभिर्विमनस्कारक वसतिं प्रवेशिता निरय वसति सदृशीम् । तत्रापि गौल्मिक प्रहार-दवन-निर्भर्त्सन कटुक वचन भेषणक भयाऽभिभूता., आक्षिप्त निवसना मलिन दण्डि-खण्ड-निवसना, उत्कोचा लञ्च पार्श्व मार्गण परार्थणैः (दु ख समुदीरणै) गौल्मिक भटैर्विविधैर्बन्धनै, किं तानि ? (तद्यथा) काष्ठ (हड्डि) निगड-बालरज्जुक कुरण्डक-वरत्र-लोहसङ्कल-हस्तान्दुक-वर्धपट्ट-दामक निष्कोट नैरन्यैश्चैवमादिकै गौल्मिक भण्डोपकरणै, दु ख समुदीरणै. सङ्कोचन मोटनाभिबध्यन्ते मन्दपुण्या, सम्पुट कपाट-लोहपञ्जर-भूमिगृह निरोध-कूप-चारक-कीलक-यूप-चक्र-वितत बन्धनस्तम्भाऽऽलिङ्गनो—र्ध्वचरण बन्धन-विधर्मणाभिश्च विहेठ्यमानाः (बध्यमानाः) अवकोटक गाढोर.-शिरो बद्धोर्ध्व पूरित-स्फुर दुर-कटक मोटनाऽऽम्रेडनाभिर्बद्धाश्च, नि श्वसन्त. शीर्षाऽवेष्टकोरुकाऽऽवलन-चप्पडक-सन्धि बन्धन-तप्तशलाका-सूचीनामा-कोटनानि च (तानि प्राप्यमाणाः) तक्षण विमननानि च क्षार-कटुक-तिक्त-दापन (नावण) यातना-कारणशतानि बहुकानि (बहूनि) प्राप्यमाणा । उरभिखोडी (दीर्घकाष्ठ) दत्तगाढ प्रेरणाऽस्थिक-संभग्न-सुपार्श्वाऽस्थिका गल कालक लोहदण्डोर उदर वस्ति परिपीडिता, मथ्यमान हृदय सञ्चूर्णिताङ्ग प्रत्यङ्गा, आज्ञप्ति किङ्करै केचिद विराधिन वैरिकैर्यम पुरुषसन्निभै. प्रहतास्तेत्र मन्दपुण्य, चडवेला (चपेटा) वर्धपट्ट प राइ (लोह कुमी) छिवा-

१—क मरमुतमि

कष-लत-वरत्र-नेत्र-प्रहारशत ताडिताऽङ्ग प्रत्यङ्गाः कृपणा लम्बमान चर्म व्रण वेदना-विमुखित-मानसाः घन कुट्टिम-निगड-युगळ-सङ्कोटित-मोटितश्च क्रियन्ते निरुच्चाराः। एता अन्याश्चैवमादिका वेदना. पापाः प्राप्नुवन्ति। अदान्तेन्द्रिया वशार्ताः (विषय पीडिताः) बहु मोह मोहिताः, परधने लुब्धा', स्पर्शेन्द्रिय विषय तीव्र गृद्धाः, स्त्रीगत रूप-शब्द-रस-गन्धेष्टरति-महित भोग तृष्णार्दिताश्च धनतोषका गृहीताश्च ये नरगणा'। पुनरपि ते कर्म दुर्विदग्धा उपनीता-राजकिङ्कराणां तेषां वधशास्त्र पाठकानां, विटपोल्लक कारकाणां, लञ्चाशत ग्राहकाणां, कूट कपट माया-निकृति काऽऽचरण-प्रणिधिवञ्चन- विशारदाना, बहुविधालीक शत जल्पकानां, परलोक पराङ्मुखानां, निरयगति गामिनाम्। तैश्च आज्ञप्त जीत (जीवित) दण्डात्वरित मुद्घाटिताः पुरवरे शृङ्गाटक- त्रिक -चतुष्क--चत्वर--चतुर्मुख-महापथ पथेषु, वेत्रदण्ड-लकुट-काष्ठ-लेष्टु प्रस्तर-पणाली-पणोदी मुष्टिलता-पादपार्ष्णि-जानुकूर्पर प्रहार संभग्नाऽऽमथितगात्राः, अष्टादश कर्म कारणात्-यातिताङ्ग-प्रत्यङ्गा', करुणाः, शुष्कौष्ठ कण्ठ गलक-तालु जिह्वा, याचमाना. पानीयं विगत जीविताशास्तृष्णार्दिता वराकास्तदपि न लभन्ते, वध्यपुरुषैः धाड्यमाना.प्रेर्यमाणा. । तत्र च खर परुष पटह घट्टित कूट ग्रह गाढ रुष्ट निसृष्ट परामृष्टाः वध्य कर कुटी युग निवसिता. सुरक्त कणवीर ग्रथित विमुकुल कण्ठे गुण वध्य दूताऽऽविद्ध माल्यदामान· मरण भयोत्पन्न स्वेदायत स्नेहित हुत्तुपित ? क्लिन्न गात्रा , चूर्णगुण्ठित शरीर रजोरेणुभृत केशा कुसुम्भ कोत्कीर्ण मूर्ध्वजाश्छिन्नजीविताऽऽशा घूर्णमानावध केभ्यो भीतास्तिल तिल चैव छिद्यमाना शरीर व्युत्क्रान्त लोहितोल्लिप्तानि काकिणी मांसानि खाद्यमाना. पापाः खरपरुषै. (खरकरशतैः) ताड्यमान देहा, वातिक नर-नारी सपरिवृताः प्रेक्ष्यमाणाश्च, नागरजनेन वध्यने पथ्यिता. प्रनीयन्ते नगरमध्येन कृपण करुणा अत्राणा-अशरणा अनाथा-अबान्धवा-बन्धुविप्रहीना-विप्रेक्षमाणा-दिशोदिश मरणभयोद्विग्ना., आघातन प्रतिद्वार सम्प्रापिता अधन्याः, शूलाग्र विलग्नभिन्न देहा, स्ते च तत्र क्रियन्ते परि-कल्पिताङ्ग प्रत्यङ्गाः। उल्लम्ब्यन्ते वृक्षशाखासु केचित्करुणानि विलपन्तः, अपरे चतुरङ्ग दृढ बद्धाः पर्वत कटकात्प्रमुच्यन्ते दूरपात बहुविषम प्रस्तरसहाः अन्ये च गज चरण मलन निर्मर्दिताः क्रियन्ते पापकारिणः, अष्टादश खण्डिताश्च क्रियन्ते, मुण्डपरशुभि केचिदुत्कीर्ण कर्णौष्ठनासा उत्पाटित नयन-दशन-वृषणा', जिह्वेन्द्रियाच्छिताः, छिन्न कर्ण शिराः, प्रणीयन्ते छिद्यन्ते चाऽसिना, निर्विषयाश्छिन्न हस्तपादा प्रमुच्यन्ते

यावज्जीव बन्धनाश्च क्रियन्ते, केऽपि परद्रव्य हरण लुब्धाः, कारागला-निगळ-युगल रुद्धाश्चारकाऽपहृतसाराः, शयन (स्वजन) विप्रमुक्ता मित्रजन निरीक्षिता (निराकृताः) निराशा बहुजन धिक्कार शब्द लज्जापिता अलज्जा अनुबद्ध क्षुधाः प्रारब्ध शीतोष्ण तृष्णा वेदना दुर्घटा घट्टिना-विवर्णमुख विच्छवयो विफल मलिन दुर्बलाः, क्लान्ता' काशमाना व्याधिताश्च आमाभिभूतगात्राः प्ररूढ नख-केश श्मश्रु लोमानः पुरीष (छग) मूत्रे निजके क्षिप्ताः, तत्रैव मृता अकामका बध्वा पादयोराकृष्टाः खातिकायां क्षिप्ताः, तत्र च वृक शुनक-शृगाल-कोल-मार्जार चण्ड सन्दंशक तुण्ड पक्षिगण विविध मुख शकल विलुप्तगात्रा कृतविभागाः, (विभगा.) केऽपिकृमिमन्तश्च क्वथितदेहा, अनिष्टवचनै. शप्यमाना., सुष्ठुकृत यन्मृत इति पापः तुष्टेन जनेन हन्यमाना , लज्जापनाश्च भवन्ति स्वजनस्यापि दीर्घकालंमृता' सन्त । सू० ५ । १२ ॥

अब चोरी का फल वर्णन करते हैं ।

अन्व०— (तद्देव) पूर्वोक्त प्रकार से (केइ) कई (परस्स दव्वं गवेसमाणा) दूसरे के द्रव्यों को ढु ढते हुए (गहिया) पकडे गये (य) और (हया) मारे गये (य बद्धरुद्धा) डोरी आदि से बांधे गये और रोके गए (य) और (तुरियं अतिधाडिया) जल्दो २ घुमाये गए तथा (पुरवरं) नगर मे पहुँचा कर (चोरगह-चारभड-चाडु कराण समप्पिया) चोरों को पकड़ने वाले, जेल के अधिकारो और चाडुकार-सिपाही वगैरह को सौंपे जाते हैं (तेहि य) और उनके द्वारा (कप्पडप्पहार-निद्दय-आरक्खिय-खर-फरुसवयण-तज्जण गलुच्छलुच्छणाहिं विमणा) कपट-कपडे के कोरडे का प्रहार, दयारहित कोतवालों के अत्यन्त कठोर वचन आ.र तर्जना तथा गला पकड के पीछे हटाना, इन सब कष्टों से उदास होकर (चारक वसहिं) चारक वसति—जैलखाने में (पवेसिया) ले जाये जाते हैं, जो जैलखाना (निरयवसहिसरिस) नरकावास के समान है (तत्थवि) वहां पर भी (गोम्मिय-प्पहार-दूमण-निब्भच्छण-कडुय वदण-भेसणग भयाभिभूता) गुप्ति पाल के प्रहार, पीडा, आक्रोश और कटु वचन तथा भय जनक-डरावने मुखाकृति आदि भय से अभिभूत होते हैं (अक्खित्त नियंसणा) जिनके वस्त्र खींचे गए (मळिन-दंडि खंड-निवसणा) मलिन और फटे हुए चिथडे पहने हुए (उक्कोडालंच-पास-मग्गण-परायणेहिं) लोगों से रिशवत व नजराना मांगने वाले [दुःखों की उदीरणा करने वाले] (गोम्मिय-भडेहिं) गुप्तिपाल-अधिकारिओं के द्वारा (विविहेहिं बंधणेहिं) अनेक प्रकार के

बन्धनों से बांधे जाते हैं (किंते) वे बन्धन कौन से हैं ? 'उत्तर' —(हडि निगड बाल रज्जुय कुदंडग–वरत्त–लोहसंकल–हत्थदुय बज्झपट्ट–दाम–कणिक्कोडणेहिं) काष्ठ का खोडा, निगड-लोह की बेडो, बाल-केशों की रज्जु-डोरी, कुदण्ड अन्त मे डोरी वाला पाशा, वरत्रा,–चमडे की डोरी और लोहे की सकल तथा हस्तान्दुक—एक प्रकार का बधन वर्धपट्ट-चमडे की पट्टी, डोरी का बना हुआ पॉव का बन्धन और निष्कोट रूप बधनों से (अन्नेहि य एवमादिएहिं) और अन्य इस प्रकार के (गोम्मिक-भडोवकरणेहिं) गुप्ति पाल के भडोपकरण-विविध साधन (दुक्ख समुदीरणेहिं) जो दु:ख को उत्पन्न करने वाले हैं उनसे (सकोड मोडणाहिं) देह को सिकोडने व मोडने से (वज्झंति) बाधे जाते हैं (मदपुन्ना) मन्द पुण्य वाले (सपुड कवाड-लोह पजर भूमिघर-निरोह- कूव चारग कीलग-जूय चक्क-वितित बधण खभालण–उद्धचलण–बधण–विहम्मणाहि य) और काष्ठमय सपुट कपाट लोहे के पिंजरे, और तल घरमे रोक रखना कूप अन्धकूप, चारक बन्दी खाना, कील, यूप, युग गाडी का जुआ जो बैलों के कधे पर दिया जाता है और चक्र से पीडा पहुँचाना, बाहु व जंघा का प्रमर्दन करके विशेष पोडा देना, थभे में बाधना, पैर ऊपर करके बाधना इन सब कदर्थनाओं से (विहेडयंता) पीडित किये गए–अङ्ग प्रत्यङ्गों से मोडे–सिकोडे जाते हैं (अवकोडक–गाढ–उर–सिर बद्ध उद्ध पूरित–फुरत–उर–कडग-मोडणा—मेडणाहिं) गर्दन को नीचे लेजा कर जो हृदय और मस्तक मे गाढ–बल पूर्वक बाधे गये तथा हवा भरे गये या खडे २ को धूलि के नीचे दबाये गए हैं, धूजती छाती वाले, देह को मोडने या उलट पुलट करने अर्थात् ऊचा नीचा करने से (बद्धाय) बाधे गए और (नीससता) श्वास गिराते हुए (सीसावेढ–ऊरु–यावल—चप्पडग सधि बधण–तत्तसलाग–सूइया कोडणाणि) चमडे से शिर को लपेट कर बाँधना, जघों को विदारण करना या जलाना, घुटनों आदि पर काष्ठ के यन्त्र विशेष को बाधना, तपी हुई शलाका—कील और सूई के अग्रभाग को कूटकर देह मे चुभोना-भोंकना (तच्छण–विमाणणाणि य) वसूले से लकडी की तरह छीलना–तरछना, अपमानित करना और (खार–कडुय तित्त–नावण -जायणा -कारण सयाणि) क्षार-तिल-क्षार आदि, मरची आदि कटुक, और निम्ब आदि तिक्त पदार्थों के देने से सैकडों पीडा के कारण (बहुयाणि) ऐसे बहुत से कारणों को (पावियंता) प्राप्त करते हुए (उरक्खोडी–दिन्न–गाढपेल्लण–अट्ठिक—सभग—सुपसुलोगा) छाती पर बाँधे गये

बडे काष्ठ को मजबूत चोट से जो टूटी हुई अस्थि और पांसली वाले हैं (गळ कालक-लोह दण्ड–उर-उदर-वत्थि-परिपीलिता) मत्स्य वेधी अस्त्र की तरह घातक होने से जो काले लोहमय दण्ड से वक्षःस्थल, पेट और गुह्य प्रदेश तथा पीठ पर पीटे गये हैं (मच्छत—हियय सचुण्णियग मगा) मथा गया है हृदय जिनका और अङ्ग चूर्णित किये—पीसे गये हैं (आणत्ती किंकरेहि केति) कई आज्ञा करने वाले किंकर पुरुषों से (अविराहिय वेरएहिं) बिना अपराध के वैरी बने हुए एवं (जमपुरिस सनिहेहि) यम पुरुषों के समान जो कठोर हैं, उनसे (पहया) ताडना पाये हुए—पीटे गए (ते) वे (मदपुण्णा) मन्द पुण्य वाले (तत्थ) वहाँ (चडवेला—वज्झपट्ट–पारा-इ —छिव-कस-लत-वरत्त-वेत्तप्पहार सय तालियग मंगा) चपेटा, बध्रपट्ट—चमडे की पट्टी, पारा—लोहमयकुशी, छिवा-चिकनी चाबुक, कष-चमडे का चाबुक, लता-बेंत भी छडी, चमडे की बडी डोरी, बैंत, इन सबके सैकडों प्रहारों से जिनके अङ्गो पाङ्ग ताडित किये गये हैं वैसे (किवणा) बुरी दशा वाले (लंवत-चम्मवण-वेयण-विमुहियमणा) लटकती हुई चमडी वाले घावों की पीडासे जो चोरी में विमुख मन वाले हैं (घण कोट्टिम-नियल-जुयल—सकोडिय मोडियाय) और लोहमय घन के मारने व बेडी के युगळ से जो संकुचित और मोडे हुए अग वाले हैं (निरुच्चारा) भ्रमण रहित या रुकी हुई जबान वाले तथा जिनका टट्टी पेशाब तक रोक दिया गया है, ऐसे (कोरति) किंकरों के द्वारा-किये जाते हैं (एया अन्नाय) ये और ऐसी दूस-री (एवमादी) इत्यादि (वेयणाओ) वेदनायें (पावा) पापी (पावंति) पाते हैं (अदतिंदिया वसट्टा) असयत इन्द्रिय वाले एव विषय की परतंत्रता से पीडित (बहुमोह मोहिया) मोह कर्म की तीव्रता से मुग्ध बने हुए (परधणमि लुद्धा) जो परधन में लुब्ध हैं (फासिंदिय विसय तिव्वगिद्धा) स्पर्श इन्द्रिय के विषय तीव्र आसक्ति वाले (इत्थिगय रूव सद्द रस-गंध-इट्ठ-रति-महित भोग–तण्हाइयाय) स्त्री के रूप—सौन्दर्य, मनोहर शब्द, रस व गन्ध सुगन्ध में मानी हुई जो रति तथा स्त्री के इष्ट भोग मे तृष्णा रखने वाले और (धण तोसगा) धन से सन्तुष्ट होने वाले (गहिया य) और राज पुरुषो से पकडे गए (जे नरगणा) जो चोर मनुष्य (पुण-रवि ते) फिरभी छूट कर वे (कम्म-दुठिवयद्धा) कर्म के वशीभूत हुए (उवणीया राय किंकराण) राज पुरुषों के पास पहुँचाये जाते हैं (तेसिं वह सत्थग पाठयाण) वध दण्ड शास्त्र के जानकार (विलउली कारकाण) बुद्धि को झांकें देने वाले या व्याकुल करने वाले या (लचसय गेण्हगाण) सैंकडो प्रकार के घूस लेने वाले (कूड-

कवडं माया-नियडि—आयरण—पणिहि-वचण विसारयाण) कूट—खोटे माप आदि, कपट-वेष व भाषा बदलना, माया-ठगबुद्धि, निकृति-धूर्तता, वंचन क्रिया इनका आचरण करने वाले अर्थात् एक चित होकर सदा कपट बाजी में विशारद (बहुविह अलिय-सत् जंपकाण) बहुत प्रकार से सैंकडों झूठ बोलने वाले (परलोक परम्मुहाणं) परलोक से पराङ्मुख अर्थात् परलोक बिगडने की अपेक्षा नहीं करने वाले (निरय गति गामियाणं) एव नरक गति में जाने वाले हैं (तेहि य) और उन राज पुरुषों के द्वारा (आणत्त जीय दडा) जो दुष्ट निग्रह के लिये किया गया दण्ड या जीवन दण्ड रूप आदेश वाले (तुरियंउग्घो डिया पुरवरे) जल्दी से नगर के राज मार्ग मे खुले किये गए (सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर चउम्मुह-महापह-पहेसु) शृङ्गाटक,-सिंघोडे के आकार का त्रिकोण स्थान त्रिक, चतुष्क-चौक, चत्वर-मैदान, चतुर्मुख-चारों ओर मार्ग वाला, देवकुल आदि महान् मार्ग और साधारण मार्ग इन सब जगहों में (वेत्त-दंड-लउड-कट्ठ-लेट्ठु-पत्थर-पणालि-पणोल्लि-मुट्ठि-लया-पाद-पण्हि-जाणु-कोप्पर-पहार सभग्ग महियगत्ता) वेत्र दण्ड, लकुट-दण्डा, काष्ठ, ढेला, पत्थर, प्रणालि-शरीर प्रमाण लाठी, प्रणोदी-आर आदि की लकडीं, मुष्टि, लता, पादपार्ष्णि-पैर की ऐडी, जानु-कूर्पर-घुटना व कोहनी इन सब के प्रहारों से भङ्ग किये और मथे गये देहवाले (अट्ठारस कम्मकारणा जाइयग मगा) अट्ठारह प्रकार के कर्मों के कारणों से कदर्थित अङ्ग प्रत्यङ्ग वाले (कलुणा) दीन (सुक्कोट्ठ-कठ-गलक-तालु जीहा) जिनके ओठ, कण्ठ, गला, तालु और जीभ सूखे हैं ऐसे (पाणीय जायता) पानी को माँगते हुए (विगय जीवियासा) जीवन की आशा छोडे हुए (तण्हादिता वरागा) तृष्णा से पीडित वेचारे (तपिय न लभति) उस पानी को भी नहीं पाते हैं (वज्झपुरिसेहिं घाडियता) वध्य-पुरुषों पर नियुक्त अधिकारिओं से प्रेरणा पाये हुए (तत्थ य) और उस प्रेरणा मे (खर-फरुस—पडह—घट्टित—कूडग्गह—गाढ —रुट्ठ-निसट्ठ परामुट्ठा) अत्यन्त कठिन पटह-ढोल से चलने के लिये धकेले गये तथा अत्यन्त रुष्ट कर्मचारिओं के द्वारा छल पूर्वक पकडने के कठिन साधन—पाश विशेष से मजबूत पकडे गये (वज्झकर कुडि-जुय नियत्था) वध्य के योग्य करकुटीयुग-वस्त्र का जोडा विशेष-पहने हुए है (सुरत्त—कणवीर-गहिय-विमुकुल-कठे गुण वज्झदूत-आविद्ध मल्लदामा) खिले हुए-खूब लाल कनेर के फूलों से गूथे गये सुवर्ण हार के समान, कंठ से वध्य के दूत की तरह फूलमाला को जो पहने हुए हैं (मरण

भयुप्पण्ण-सेद-आयत्त-णेहुत्तुप्पिय किलिन्नगत्ता) मरण भय से उत्पन्न पसीने के कारण जैसे किसी ने थक कर तैल से शरीर मसला हो वैसे गाले शरीर वाले (चुण्ण-गुण्डिय सरीर रयरेणु भरिय केसा) राख आदि के चूर्ण से भरे शरीर वाले तथा हवा से उड़ी हुई धूलि के कणों से जिनके केश भरे हैं (कुसुभ-गोकिन्न मुद्धया) कसूंबा के रंग से व्याप्त केश वाले (छिन्न जीवियासा) जीवन की आशा जिन की छूट गई है (घुन्नता) भय की अधिकता से जो धूज रहे हैं (वज्झयाण भीता) घातक पुरषो से डरे हुए, या (वज्झप्पाण पीता) वध्य और दूसरे के प्राणों का पान करने-नाश करने वाले (तिल तिल चेव छिज्जमाणा) तिल जैसे टुकडे २ कर के काटे गये (सरीर विक्कित्त—लेहिओलित्ता कागणि मंसाणि) शरीर से तत्काल काटे हुए अतएव रक्त स्राव से लिप्त ऐसे मांस के छोटे २ टुकड़ों को (खावियंता) खिलाये जाते हुए (पावा) पापी जीव (खर फरुसएहिं) अतिशय कठोर अथवा (खर करसएहिं-) सैकड़ों कठिन हाथों या पत्थर आदि से भरी हुई थैली से (तालिज्जमाण देहा) पीटे जाते हुए शरीर वाले (वातिक नर नारि संपरिवुडा) वातिक-स्वच्छन्द स्त्री पुरुषों से घिरे हुए (पेच्छिज्जंता य नागर जणेण) और नागरिक लोकों से देखे जाते हुए (वज्झ नेवत्थिया) वध्य के पूर्ण वेश वाले चोर (नयर मज्झेण) शहर के बीच से 'वध्य भूमि में' (पणेज्जंति) ले जाये जाते हैं (किवण कलुणा) अत्यन्त दीन (अत्ताणा,—असरणा-अणाहा-अबंधवा-बंधु विप्पहीणा) त्राण रहित, सरण गृह हीन, तथा नाथ बन्धु और बान्धवो से विप्रहीण अर्थात् प्रियजनों से दूर किये गए (दिसोदिसिं विपिक्खंता) एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर देखते हुए (मरण भयु व्विग्गा) मरणभय से उद्विग्न (आघायण पडिदुवार संपाविया) वध्य भूमि के प्रतिद्वार पर पहुँचाये गए (सूलग्ग-विलग्ग भिन्न देहा) शूली के अग्रभाग पर लगे होने से विदीर्ण-छिदे हुए शरीर वाले (अधन्ना) जो अधन्य-विफल हैं (ते य तत्थ) और वे वहां पर (परिकप्पियंग मगा कीरंति) छिन्न भिन्न अङ्गों पाङ्ग वाले किये जाते हैं (रुक्ख-सालासु वज्झिज्जंति) वृक्ष की शाखाओं में लटकाये जाते हैं (केई कलुणाइं विलवमाणा) कई करुणा जनक विलाप करते हुए और (अवरे) दूसरे (चउरंग धणिय बद्धा) हाथ पांव रूप चार अङ्गो में दृढ बाँधे गए (पव्वय कडगा पमुच्चंते) पर्वत के शृङ्ग-शिखर से गिरा दिये जाते हैं (दूरपात-बहुविसम—पत्थरसहा य) और दूर से बहुत विषम पत्थर पर गिराये गये पतन के दुःख को सहने वाले हैं (अन्ने) दूसरे

(गय चलण मलण निमद्दियां कीरति) हाथी के पैर नीचे मसलने के कारण मर्दित किये जाते हैं (पावकारो अट्ठारस खंडिया य) और चोरी के पाप को करने वाले अठारहों स्थान में खंडित (कीरंति) किये जाते हैं जैसे—, मुसुंढि पर सूहि) मुसुंडी-कुण्ठित कुठार और परशु स (के उक्कत्त-कन्नोट्ठ नासा) कई काटे गये कान ओष्ठ और नाक वाले (उप्पाडय-नयण दसण-वसणा) आँख, दांत और वृषण-अंडकोश जिनके निकाले गये हैं वैसे (जिब्भि दयछिया छिन्न कन्न सिरा) खींची गई जीभ वाले, कटे हुए कान और नाडी वाले (पणिज्जते) वध्य भूमि मे लाये जाते हैं (छिज्जते य असिणा) और तलवार से काटे जाते हैं (निव्विसया) देश से निकाले गये (छिन्न हत्थपाया पमुच्चते) हाथ पांव काट कर राज पुरुषों से छोडे जाते हैं (जावज्जीव बंधणाय कीरंति केइ) और कई चोर आजीवन के लिये बंदी किये जाते हैं (परदव्व हरण लुद्धा) ये दूसरों के धन को हरण करने में लोभी (कारगल नियल-जुयलरुद्धा) जेल के कटहरे और दो बेडियों से रुके हुए (चारगावहृतसारा) चारक कैद में छीने हुए द्रव्य वाले (सयण विप्पमुक्का) स्वजनों से छोडे गये (मित्तजन निरक्खिय [रक्खि] या निरासा) मित्र जनों से देखे गये या हटाये गये अतएव निराश (बहुजणधिक्कार सद्द लज्जायिता) बहुत से लोकों के धिक्कार शब्द से लज्जा पाये हुए (अलज्जा) निर्लज्ज (अणुबद्धखुहा) सदा भूखे (पारद्ध-सीउण्ह वेयण दुग्घट्ट-घट्टिया) प्रारब्ध के योग से सर्दी गर्मी और तृषा की दुर्घट वेदना से युक्त हैं (विवन्नमुहविच्छविया) विरूप मुख और कान्तिहीन शरीर वाले (विहल मलिण दुब्बला) निष्फल मनोरथवाले, मलिन और असमर्थ हैं (किलता कासंता) ग्लानियुक्त तथा खांसते हुए (वाहिया य) और कुष्ट आदि व्याधि वाले (आमभिभूयगत्ता) आम-अपक्व अंश रूप-रोग से आक्रान्त कायवाले (परूढनह-केस-मसुरोमा) बधे रहने से जिनके नख, केश दाढी व रोम बढे हुए हैं (छगमुत्तमि णियगमि खुत्ता) अपने टट्टी पेशाब मे पडे हुए (तत्थेव) परवश होकर वहाँ मल मूत्र के स्थान पर ही (मया अकाम का बधिऊण पादेसु) विना इच्छा के ही अचिन्तित मरजाने से जो पाव में बांधकर (कड्ढिया खाइयाए छूढा) खींचे गए और खाई मे गिरा दिये गये (तत्थ य) और वहाँ गिराने के बाद (वग-सुणग-सियाल-कोल-मज्जार चंड संदसग तुंड पक्खिगण विविहमुह सयल-विलुत्तगत्ता) वृक, कुत्ता, शृगाल, कोल बिल्ली के समूह और

सडाणे के समान मुख वाले पक्षि समूह के अनेक प्रकार के सैकड़ों मुखों से उनके शव नोचे जाते हैं (कयविहगा) उन मांस भक्षो जीवों से टुकड़े किये गये (केइ किमिणा य) और कई कृमियुक्त शरीर वाले (कुहियदेहा) सडे हुए देह वाले अणिट्ठवयणेहि सप्पमाणा) लोकों के द्वारा अनिष्ट वचनों से क्लेश पाते हुए (सुट्ठुकय ज मउत्ति पावो) अच्छा किया जो पापी मर गया इस प्रकार (तुट्ठेणं जणेण हम्म) सन्तुष्ट हुए मनुष्य से मारे जाते हैं (सयणस्स विय) और स्वजन वर्ग को भी बेचारे (दोहकाल) लम्बे समय तक (लज्जावणकाय होंति) शरमाने वाले होते हैं (मया संता) मरे हुए क्या दशा भोगते हैं ?, । ५ । १२ ॥

भावार्थ— दूसरे के धनको ढूढते हुए चोर पकडे जाते व मारे जाते हैं, बांध कर रोक रक्खे जाते हैं । शीघ्रता से चारों ओर घुमाकर नगर में पहुंचाये जाते हैं और फिर अधिकारियों को सौंपे जाते हैं । अधिकारियों के द्वारा दिये गये विविध प्रहार और तर्जन से उदास बने हुए नरकावास के समान दुःख प्रद ऐसे बन्दिगृह मे गौल्मिकों के प्रहार आदि से अभिभूत पोडा को भोगते हैं । वहाँ जो बध, बधन, ताडन आदि दिये जाते हैं उनका वर्णन सहज है।❀ अठारह प्रकार के चौर्य कर्मों के कारण कई चोर शूली पर चढाये जाते, कई आजीवन सजा पाते हैं और कुछ अन्धकूप आदि यातनाओं से सताये गये विना इच्छा के ही मृत्यु पाते हैं । अन्य प्रकरण सुलभ है । सू० । ५ । १२ ॥

मूल—"पुणो परलोग समावन्ना, नरए गच्छंति निरभिरामे, अंगार पलित्तक–कप्प–अच्चत्थ–सीतवेदण–अस्सा उदिन्न–सयत-दुक्खसय समभिद्दुते, ततोवि उव्वट्टिया समाणा पुणोवि पवज्जंति तिरिय जोणिं, तहिंपि निरयोवम अणु हवंति वेयणं । ते अणंत कालेण जति नाम कहिंपि मणुयभावं लभंति णे गेहिं णिरयगति-गमण तिरिय भव–सयसहस्स परियट्टेहिं, तत्थ वि य भवंतऽणा-रिया नीच–कुल- समुप्पण्णा आरिय जणेवि लोगवज्झा, तिरिक्ख भूता य अकुसला, काम भोग तिसिया, जहिं निबंधंति निरय-वत्तणी, भवप्पवंचकरण–पणोल्लि पुणोवि संसारा वत्तणेम मूल धम्मसुति विवज्जिया अणज्जा कूरा मिच्छत्त सुति पवन्ना य

❀ परिशिष्ट मे देखिए

वयणं, कहं संसार सागरं अट्ठियं अणालंबण पइट्ठाण मप्पमेयं,' चुलसीति जोणि सयसहस्स गुविलं, अणालोक मंधकारं, अणंत कालं निच्चं उत्तत्थ सुण्णभय सण्ण संपउत्ता 'वसंति उव्विग्गावास वसहिं । जहिं आउयं निबंधंति पाव कम्मकारी बंधवजण-सयण-मित्त परिवज्जिया अणिट्ठा भवंति अणादेज्ज दुव्विणीया कठाणासण-कुसेज्ज-कुभोयणा, असुइणो कुसंघयण-कुप्पमाण-कुसंठिया, कुरूवा, बहुकोह-माण-माया-लोभा, बहु मोहा धम्मसन्न-सम्मत्त परिभट्ठा, दारिद्दोवद्दवाभिभूया, निच्च परकम्म कारिणो, जीवणत्थरहिया, किविणा, परपिंडतक्कका दुक्खलद्धाहारा, अरस-विरस-तुच्छकय कुच्छिपूरा, परस्स पेच्छंता, रिद्धिसक्कार-भोयण विसेस-समुदयविहिं, निंदंता अप्पकं कयंतं च, परिवयंता इह य पुरेकडाइं कम्माइं पावगाइं, विमणसो सोएण डज्झमाणा परिभूया होंति सत्त परिवज्जिया य, छोभा-सिप्पकला समय-सत्थ परिवज्जिया, जहाजाय पसुभूया, अवियत्ता णिच्चनीय कम्मोव जीविणो, लोय कुच्छणिज्जा, मोघमणोरहा, निरास बहुला आसापास पडिबद्ध पाणा, अत्थोपायाण–कामसोक्खेय लोयसारे होंति अफल वंतका य सुट्ठुविय उज्जमंता तद्दिव सुज्जुत्त-कम्मकयदुक्ख संठविय-सित्थपिंड–संचय–पक्खीणदव्वसारा, निच्चं अधुवधण–धण्ण–कोस–परिभोग विवज्जिया, रहिय काम भोग परिभोग सव्वसोक्खा, परसिरिभोगोवभोगनिस्साण–मग्गण परायणा, वरागा अकामिकाए विणेंति दुक्खं, णेवसुहं, णेव निव्वुतिं उवलभंति अच्चंत विपुल दुक्ख सय संपलित्ता । परस्स दव्वेहिं जे अविरया । एसोसो अदिण्णादाणस्स फलविवागो, इहलोइओ, पारलोइओ, अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो, दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चति । न य अवेयइत्ता अत्थि हु मोक्खोत्ति, एवमाहंसु णायकुल

---

१ क—ससार सागर वसति ।

णंइणो मइप्पा जिणो उ वीरवर-नाम धेज्जो, कहेसी य अदिराणा दाणस्स फलविवागं, एयं तं ततियंपि अदिराणादाणं हरदह-मरण भय-कलुसतासण-पर संतिक भेज्ज लोभ मूलं एव जाव चिर-परिगतमणुगतं दुरंतं। ततियं अहम्मदारं समत्तं त्तिबेमि ॥ ३ ॥ ६ ॥ सूत्र १२ ॥

छाया—पुनः परलोक समापन्ना नरकेगच्छन्ति निरभिरामे, अङ्गारप्रदीपक कल्पाऽत्यर्थ-शीतवेदनाऽसातोदीर्ण--सतत दु.ख-शत-समभिद्रुते ततोऽप्युद्वर्तिता समाना पुनरपि प्रव्रजन्ति तिर्यग् योनिम्। तत्राऽपि निरयोपमामनुभवन्ति वेदनाम्। तेऽनन्त कालेन यदि नाम क्वापि मनुजभाव लभन्ते नैकेषु निरयगति-गमन-तिर्यग् भवशत सहस्र परिवर्तेषु। तत्राऽपि च भवन्तोऽनार्या नीच कुल समुत्पन्ना आर्यज-नेऽपि लोक बाह्यास्तिर्यग् भूताश्च अकुशला., कामभोग तृषिता यत्र निबध्नन्ति निरय-वर्तिभवप्रपञ्च करण प्रणोदीनि। पुनरपि ससारावर्तनेमि मूलानि। धर्मश्रुति विवर्जिता अनार्या क्रूरा मिथ्यात्व श्रुतिप्रपन्नाश्च भवन्ति। एकान्त-दण्ड रुचयो वेष्टयन्ति कोशि-काऽऽकार कीटा इवात्मानमष्टकर्म तन्तु-घनबन्धनेन। एव नरक तिर्यङ् नराऽमर: गमन-पर्यन्त-चक्रवाल, जन्म जरा-मरण-करण-गम्भीर-दु खप्रक्षुब्ध-प्रचुरसलिल सयोग-वियोग-वीची-चिन्ता प्रसङ्ग प्रसृत वध-बन्ध-महा (हल्ल) विपुल कल्लोल करुण-विलपित-लोभ कलकलायमान-बोल बहुलम्, अवमानन फेन, तीव्र खिंसन [पुल पुल] प्रभूत-रोग वेदना-पराभव विनिपात परुष घर्षण समापतित-कठिन-कर्म प्रस्तर रङ्ग त्तरङ्ग नित्य मृत्यु-भय तोय-पृष्ठम्, कषाय पाताल सङ्कुल, भवशत सहस्र जलसञ्चय मनन्त मुद्वेजनक मनर्वाकपार, महाभय, भयङ्कर, प्रतिभय अपरि-मित-महेच्छा कलुषमति-वायु वेगोद्धूयमानाऽऽशा-पिपासा पाताल-कामरति-राग दोष-बन्धन-बहुविध सङ्कल्प-विपुलोदक रजोरयान्धकार, मोहमहावर्त-भोग-भ्राम्यद् गुप्यदुच्छलद् बहु गर्भवास-प्रत्यव निवृत्त पानीय प्रधावितव्यसन-समापन्न-रुदित-चण्ड मारुत-समाहिताऽमनोज्ञ वाची-व्याकुलित-भङ्ग स्फुटितानष्टित-कल्लोल सङ्कुलजल, प्रमाद बहु-चण्डदुष्ट-श्वापद समाहतोत्तिष्ठत्सूर--घोर विध्वसाऽनर्थबहुलम्, अज्ञान भ्रमन्मत्स्य परिहस्तम्। अनिभृतेन्द्रिय-महामकरत्वरित-चरित चोक्षुभ्यमाण-सन्ताप-निचय-चलचपल-चञ्चलाऽत्राणाऽशरण पूर्वकृत कर्म-सञ्चयोदीर्ण-वज्र-वेद्यमान दु खशत-विपाक-घूर्णमानजलसमूहम्, ऋद्धि-रस-सात गौरवापहार-गृहीत कर्म प्रति-

वद्ध सत्त्वाऽऽकृष्यमाण नरक तलाभिमुखसन्न विषण्ण बहुलाऽरति-रतिभय विषाद शोक-मिथ्यात्व शैल सङ्कटम्, अनादि सन्तान कर्म बन्धन क्लेश-चिक्खिल्ल सुदुस्तारम्, अमर-नर तिर्यङ् निरयगति गमन कुटिल-पर्यस्त-विपुलवेलम्, हिंसाऽलीकाऽदत्ताऽदान मैथुन-परिग्रहाऽऽरम्भ करण-कारणाऽनुमोदनाऽष्टविधाऽनिष्टकर्म-पिण्डित-गुरु भाराऽऽक्रान्त दुर्गजलौघ दूर [निमज्जमान] प्रणोद्यमानोन्मग्न-निमग्न-दुर्लभतलम्, शरीर मनोमयानि दुःखान्युत्पिबन्त, साताऽसात-परितापनमयम्, उन्मग्न-निमग्ने कुर्वन्त, चतुरन्त महान्त मनवदग्र, रुद्र, ससार सागरम्। अस्थितानामनालम्बन मप्रतिष्ठानमप्रमेयम्, चतुर शीति योनिशत सहस्र गुपिलम्, अनालोकमन्धकारमनन्त कालम्, नित्यमुत्त्रस्तशून्यभयसज्ञा-सम्प्रयुक्ता वसन्ति उद्विग्नवासवसतिम्। यत्राऽऽयुर्निबध्नन्ति पाप कर्म कारिणो बान्धवजन-स्वजन मित्र-परिवर्जिता, अनिष्टा भवन्ति-अनादेय दुर्विनीता कुस्थानाऽऽशन-कुशय्या-कुभोजना अशुचय, कुसहनन कु प्रमाण-कुसस्थाना., (स्थिता) कुरूपाः बहुक्रोध मान माया लोभा., बहुमोहा, धर्म सज्ञा-सम्यक्त्वप्रभ्रष्टा दारिद्र्योपद्रवाऽभिभूता नित्यपर कर्म कारिणो जीवनाऽर्थरहिता, कृपणा., पर पिण्डतर्कका, दुःखलब्धाऽऽहारा, अरस विरस तुच्छ कृत कुक्षिपूराः, परस्य प्रेक्षकाः, ऋद्धि सत्कार भोजन विशेष समुदयविधि, निन्दन्त -आत्मानं कृतान्तं च परिवदन्त, इह च पुराकृतानि कर्माणि पापकानि विमनस शोकेन दह्यमानाः परिभूता भवन्ति-सत्त्व परिवर्जिताश्च [क्षोभणीय] क्षोभशिल्प-कला समय-शास्त्र परिवर्जिता. यथा जात पशुभूता, अप्रणीता नित्य नीचकर्मोपजीविनो लोक कुत्सनीया मोघ मनोरथा, निराशा-बहुलाः, आशा पाश प्रतिबद्ध प्राणा अर्थोपादान कामसौख्ये च लोकसारे भवन्त्यफलवन्तश्च। सुष्ठ्वपि च उद्यच्छन्तस्तद्दिवसोद्युक्त-कर्मकृत-दुःख सस्थापित-सिक्थ-पिण्ड सञ्चय-प्रक्षीण द्रव्यसारा, नित्यमध्रुव धन-धान्य कोश-परिभोग-विवर्जिता., रहित-काम भोग-परिभोग सर्वसौख्याः, परश्री भोगोपभोग-निश्राण मार्गण परायणाः, वराका अकामिकया विनयन्ति दुःखम्। नैव सुखं नैव निर्वृतिमुपलभन्ते, अत्यन्त विपुल दुःखशत सम्प्रदीप्ता, परस्य द्रव्याद् येऽविरता। एष सोऽदत्तादानस्य फल विपाक ऐहिलौकिक पारलौकिकोऽल्पसुखो, बहुदुःखो महाभयो, बहुरजः प्रगाढो दारुण कर्कशोऽसातो वाससहस्रैमुच्यते। न चाऽवेदयित्वाऽस्ति मोक्ष इति, एवमाख्यातवान् ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा जिनस्तु वीर वरनामधेय. कथयिष्यति चाऽदत्तादानस्य फल विपाकम्। एतत् तत् तृतीयमप्य-

दत्ताऽऽदानं इरदह मरण-भय कालुष्य त्रासन पर सत्का भद्या लोभ मूलमेव यावत् चिर परिगत मनुगतं दुरन्तम् । तृतीयमधर्मद्वार समाप्तम् । इति ब्रवीमि ॥ ३ ॥ सूत्र । ६ । १२ ॥

अन्वयार्थ— (पुणो परलोक समापन्ना) मरजाने के बाद फिर परलोक गये हुए वे चोर (नरए गच्छति) नरक में जाते है (निरभिरामे) जो नरक सुन्दरता से हीन है और (अंगार पलित्तक-कप्प-अचत्थ-सीत वेदण असा उदिन्न-सयत दुक्ख सयसमभिदुते) अग्नि से जलते हुए घर के समान जो अत्यन्त शीत वेदना वाला और असाता-दुःख से उदीरणा पाये हुए लगातार सैकडो दुःखों से व्याप्त घिरा हुआ है (ततोवि उव्वट्टिया समाणा) उस नरक स्थान से निकले हुए (पुणोवि पवज्जति) फिर भी प्राप्त करते हैं (तिरियजोणिं) तिर्यक् योनि को (तहिंपि) वहाँ पर भी (निरयोवमवेयण) नरक के समान वेदना को (अणुभवंति) अनुभव करते हैं (अणतकालेण) अनन्त काल से (जतिनाम) अगर कदाचित् (ते) वे-चोर के जीव (कहिंवि) किसी प्रकार या कहीं भी (मणुयभाव) मनुष्यता को (णेगेहिं) अनेक (निरय गति गमण तिरियभवसय सहस्स पारयट्टेहिं) नरक गति में जानेरूप और तिर्यञ्च भव के लाखों परिवर्तन होजाने पर (लभति) प्राप्त करते हैं (तत्थवि य) और वहाँ मनुष्य भव के लाभ मे भी (भवतऽणारिया) अनार्य होजाते हैं, जो (नीयकुलसमुप्पण्णा) नीच कुल मे पैदा हुए है (आरियजणेवि) अनार्य मनुष्य मे उत्पन्न होकर भी (लोगवज्झा तिरिक्खभूता य) लोकों से बहिष्कृत और पशुके समान (अकुसला) तत्त्व ज्ञान मे अनिपुण (काम भोग तिसिया) काम भोग की तृषा वाले (जहिं) जहाँ, मनुष्य भव का बन्ध हुआ वहाँ, (निरय वत्तणि-भवप्पवच-करणपणोल्लि पुणोवि ससारावत्तणेम मूले) नरक गति सम्बन्धी अनेक भव करने से पुनः उसी में प्रवृत्ति परायण जीव, पुनः पुनरावर्तन से ससार रूप नींव वाले दुःखों के मूल कर्मों को (निबधति) बाधते-सञ्चय करते हैं (धम्म सुति विवज्जिया) धर्म शास्त्र से विवर्जित-विकल (अणज्जाकूरा) अनार्य क्रूर—हिंसाकारी उपदेश देने वाले (मिच्छत्तसुति पवन्नाय होंति) और वे मिथ्यात्व प्रधान श्रुति-सिद्धान्त को स्वीकार करने वाले होते हैं (एगत दड रुइणो) एकान्त-रूप तरह से-हिंसा को रुचि वाले (कोसिकार कीडोव्व अप्पग) रेशम के कीडे की तरह अपने आपको (अट्ठकम्मतंतु-घण बधणेण) अष्ट प्रकार के कर्मरूप तन्तुओं के

सघन बन्धन से (वेढेंति) वेष्टित करते हैं (एवं) इस प्रकार (नरग-तिरिय-नर अमर गमण पेरंत चक्कवालं) नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव गति में गमनागमन परिधि वाले (जम्म–जरा–मरण–करण–गंभीर–दुक्ख–पक्खुभिय–पउरसलिलं) जन्म, जरा मरण रुप साधन वाला गम्भीर दुःख ही जहां अत्यन्त क्षुब्ध प्रचुर पानी है (संजोग-विओग-वीची चिंता-पसंग-पसरिय- वह—बंध—महल्ल विपुल-कल्लोल-कलुण-विलवित–लोभ–कलकलिंत–बोल बहुलं) सयोग, वियोग रूप तरङ्ग वाला, चिन्ता के प्रसङ्ग रूप फैलाव वाला, और जो बध—बन्धन रूप लम्बाई से बड़ा और विस्तीर्ण कल्लोल वाला है, दीनता से विलाप युक्त, लोभ रूप कल-कल करती हुई ध्वनि की अधिकता वाले (अवमाणणफेण) अपमान रूप फेन वाले (तिव्व-खिंसणपुलंप्पु-लप्प-भूय-रोग-वेयण-पराभव- विणिवास–फरुस–धरिसण-समावडिय-कढिण–कम्म-पत्थर-तरंग रंगत–निच्च मच्चुभयतोयपट्ठं) तीव्र निन्दा, निरन्तर उत्पन्न हुए अनेक रोगों की वेदनायें, अनादर का संयोग और कठिन बचनों का संघर्ष, ये सब जिनसे प्राप्त हों ऐसे कठिन कर्म रूप पत्थरों से तरङ्ग की तरह चलायमान सदा-अटल मृत्यु भय रूप जल के पृष्ठ भाग वाले (कसाय पायाल संकुलं) ४ कषाय रूप पाताल कलशों से व्याप्त (भवसय सहस्स जल सचयं अणंत:) लाखों भवरूप जल सञ्चय वाले, अन्त रहित (उव्वेजणय अणोरपार) उद्वेगजनक अपार एव अति विस्तीर्ण (महब्भयं-भयंकरं पइभयं) महाभयानक, भयङ्कर और जो प्रत्येक वस्तु में भय उत्पन्न करने वाला है (अपरिमिय–महिच्छ–कलुसमति वाउ वेग उद्धम्ममाण—आसा–पिवास–पायाल—काम–रति–राग —दोस-बंधण–बहुविह संकप्प–विपुल–दग—रय-रयंधकारं) अपरिमित-बडी इच्छा वाले मलिन मति रूप वायु के वेग के कारण आशा पिपासा रूप पाताल कलशे या समुद्रतल से उत्पन्न हुआ जो विषय में अभिरुचि, राग द्वेष रूप बन्धन और अनेक प्रकार के सङ्कल्परूप विस्तीर्ण पानी के रज:कण हैं उन के वेग से भवसमुद्र अन्धकार युक्त है (मोह–महावत्त–भोग–भममाण–गुप्पमाणुच्छलंत-बहु गब्भवास-पच्चोणियत्त पाणियं) जहाँ मोह ही महा आवर्त है, भोग–इन्द्रिय के विषय ही परिभ्रमण करते हुए व्याकुल होते और उछलते हुए बहुत गर्भवास-मध्य भाग–में उछलकर पीछे लौटे हुए प्राणी हैं (पधावित वसण–समावन्न–रुन्न–चंड-मारुय-समाहया—मणुन्न वीची–वाकुलिय भग्ग-फुट्टंत—निट्ठ कल्लोल—संकुलजलं) इधर उधर फैले हुए व्यसनों को प्राप्त कर रोने वालों का प्रलाप रूप प्रचण्ड वायु से

आघात पाये हुए अमनोज्ञ तरङ्गों से व्याकुल और तरङ्ग से विदलित—चपल-कल्लोलों से व्याप्त जलवाला है (पमात बहुचंड-दुट्ठ सावय-समाहय उद्घायमाण पूरघोर विद्धसणत्थ बहुलम्) (प आदि प्रमाद ही बहुत रौद्र व दुष्ट श्वापद—हिंसक जन्तु हैं, उनके आघात से उठते हुए पुरुष आदि रूप मगरों का समूह हो पूर है उसके भयङ्कर विनाश लक्षण अनर्थों से जो बहुल-व्याप्त है (अण्णाण भमत मच्छ परिहत्थ) अज्ञान रूपी भ्रमण करते हुए दक्ष मत्स्यों से युक्त (अणिहुतिंदिय—महा मगर—तुरिय-चरिय-खोखुब्भमाण-सताव—निच्चय-चलत—चवल—चचल—अत्ताणऽसरण-पुव्वकय कम्म-संचयोदिन्न वज्ज वेइज्जमाण दुह सय विपाक घुण्णंत जल समूह) अनुपशान्त इन्द्रिय रूप बडे मकरों के जल्दी चलने या चेष्टा करने से जो अधिक क्षुब्ध तथा नित्य सन्ताप वाला है, चलता हुआ चपल व चञ्चल और त्राण रहित एव अशरण प्राणियों के पूर्वकृत कर्म के सचय से उदय पाये हुए-पापों का भोगा जाता हुआ सैंकडों दुःख रूप विपाक ही भ्रमण करता हुआ जल समूह है (इड्ढि—रस-सात—गारवोहार—गहिय-कम्म पडिबद्ध-सत्त—कड्ढिज्जमाण—निरयतलहुत्त सन्न—विसन्न—बहुला—अरइ—रइ—भय—विसाय-सोग-मिच्छत्त सेल सकड) ऋद्धि, रस और सात। ये तीन गौरव रूप अपहार—जलचर विशेष से गृहीत और कम बन्ध से जकडे हुए प्राणी खींचे जाते हुए जो नरक रूप पाताल तल के सम्मुख सन्न और विषण्ण—खेद युक्त—हैं, उन से बहुल, अरति, रति, भय, दीनता, शोक तथा मिथ्यात्व रूप पर्वतों से सकट (अणादि—संताण-कम्म-बधण—किलेस—चिक्खिल्ल सुदुत्तार) अनादि—आदि रहित सन्तान वाला कर्म बधन और रागादि क्लेश रूप कीचड के कारण बहुत कठिनता से तरने योग्य (अमर—नर-तिरिय निरयगतिगमण—कुडिल-परियत्त—विपुल वेल) देव, मनुष्य, तिर्यञ्च, और निरय-नरक गति मे जाने रूप कुटिल परिवर्तन युक्त विस्तीर्ण वेला-जल वृद्धि वाले (हिंसालिय—अदत्तादाण—मेहुण—परिग्गहारम्भ—करण—कारावणाणुमोदण—अट्ठ-विह अणिट्ठकम्म-पिंडित गुरुभारक्कत—दुग्ग-जलोघ—दूर-पणोलिज्जमाण—उम्मग्ग-निमग्ग-दुल्लभतल) हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह लक्षण, आरम्भ के करने कराने व अनुमोदन से सञ्चित आठ प्रकार के अनिष्ट कर्म के भारी बोझ से जो दबे हुए हैं, व्यसन रूप जल के प्रवाह से दूर फैंके जाते हुए और पानी मे ऊपर नीचे होने से जिसका तल प्रदेश मिलना दुर्लभ है। (सरीर-मणोमयाणि दुक्खाणि) शरीर व मन सम्बन्धी दुःखों को (उप्पयन्ता) प्राप्त करते हुए (सातस्साय

परितापण मयं) साता-सुख और दुःख से उत्पन्न परितापना वाले (उव्वुड्ड निब्बुड्डय)सुख दुःख रूप ऊच नीच दशा को (करेंता) करते हुए (चउरंत महंत मणवयग्ग रुद्द (रुद्द) संसार सागर) दिशा व गति से चार तरफ अन्त वाले, बड़े अन्त रहित और अत्यन्त विशाल ससार सागर को (अट्ठियं अणालबणमपतिट्ठाणमप्पमेय) संयम में अस्थित, आलम्बन रहित अप्रतिष्ठान-आधार रहित या त्राण-रक्षा के कारण से रहित तथा अदृश्ज्ञों से नहीं जानने योग्य (चुलसीति जोणि सय—सहस्स-गुविल) चोरासी-लाख जीव योनिओ से गुपिल-व्याप्त (अणालोकमधकार) अज्ञान के अन्धकार स्वरूप ऐसे ससार सागर में (अणतकाल) अनन्त काल (णिच्च उत्तत्थ सुन्न भयसन्न संपउत्ता) सदा त्रास युक्त शून्य—कर्तव्य विचार में मूढ—और भयसज्ञा सहित जीव (वसति) रहते हैं (उव्विगावास वसहि) जो ससार उद्विग्न जनों का निवास्थान है (जहिं) जिस ग्राम कुल आदि में (पावकम्मकारो) पाप कर्म करने वाले (आउय) आयु को (निबंधति) बध करते हैं, वहां (बंधव जण-सयण मित्त-परिवज्जिया) बाधव जन स्वजन तथा मित्रों से वे परिवर्जित-रहित (अणिट्ठा) अनिष्ट (भवंति) होते हैं,(अणादेज्ज दुव्विणीया) फिर अग्राह्य वाक् एव दुर्विनीत-विनय से भ्रष्ट (कुठाणासण-कुसेज्ज-कुभोयणा) अयोग्य व खराब स्थान,आसन शय्या, और खराब भोजन वाले (असुइणो) अशुचि-शुचि रहित या धर्म श्रुति से हीन (कुसघयण—कुप्पमाण—कुसठिया—कुरूवा) सेवट्ट आदि अशुभ संहनन वाले, अधिक लम्बे या अधिक छोटे हुड आदि आकार वाले कुरूप सुन्दरता से हीन (-बहुकोह-माण -माया—लोभा —बहुमोहा) बहुत क्रोध, मान, माया और लोभ वाले, बहु मोहा-अधिक कामी या अज्ञानी (धम्म सन्न-सम्मत्त-पब्भट्ठा) धर्म बुद्धि और सम्यक्त्वसे परिभ्रष्ट (दारिद्दोवद्दवाभिभूया) दरिद्रता के उपद्रव से घिरे हुए (निच्चं पर कम्म कारिणो) सदा दूसरो के काम करने वाले (जीवणत्थ-रहिया) जीने योग्य द्रव्य से रहित या जीवन के पवित्र उद्देश्य से रहित (किवणा—पर पिंड—तक्का) रक, भिखारी, तथा दूसरे के दिये हुए पिण्ड को ताकने वाले अर्थात् परमुखापेक्षी (दुक्खलद्धाहारा) दुःख से आहार का लाभ करने वाले (अरस विरस तुच्छ कय कुच्छि पूरा) अरस-हींग आदि रस रहित, विरस-पुराने-बासी और तुच्छ आहार से उदर भरण करने वाले (परस्स) दूसरे के (रिद्धि-सक्कार भोयण विसेस समुदयविहिं पेच्छता) ऋद्धि—सम्पत्ति, सत्कार और

भोजन के विशिष्ट प्रकार के संग्रह और तरीके को देखते हुए-तरसते (निदंता-अप्पकं) अपनी निन्दा करते हुए (कयंतं च परिवयंता) और कृतान्त—दैव को बुरा कहते हुए (इह य) इस जन्म में ही (पुरे कडाइं कम्माइं पावगाइं) पूर्व कृत-जन्मान्तर के किये हुए-अशुभ कर्मों का निन्दन करते हुए (विमणसो) उदास मन वाले (सोएण डज्झमाणा) शोक से जलते हुए (परिभूया होंति) अनादर युक्त होते हैं, (सत्त परिवज्जिया य) और सामर्थ्य रहित (छोभा) असहाय-क्षोभपाने योग्य (सिप्प कला समयसत्थ परिवज्जिया) शिल्प-चित्रकला आदि, कला-धनुर्वेद आदि और समय शास्त्र-जैन बौद्ध शैव आदि के सिद्धान्त शास्त्र, इन सब से परिवर्जित अर्थात् अनजान होते (जहाजाय पसुभूया) मूर्ख और पशु के समान (अवियत्ता) अप्रीति उत्पन्न करने वाले (णिच्चं नीयकम्मोवजीविणो) सदा नीच कर्मों से जीविका चलाने वाले (लोय कुच्छणिज्जा) लोक में निन्दनीय (मोघ मणोरहा निरास बहुला) निष्फल मनोरथ वाले व निराश की अधिकता वाले (आसापास पडिबद्धपाणा) आशा के पाश में रुके हुए प्राण वाले (अत्थोपायाण कामसोक्खे य लोगसारे) अर्थ संग्रह-धन सञ्चय तथा काम सुखरूप लोक के साराश में (सुट्ठुविय उज्जमंता) अच्छी तरह से उद्यम करते हुए भी (अफलवंतका होंति) निष्फल होते हैं, (तद्दिवसुज्जुत्तकम्म कय—दुक्खसंठविय—सित्थपिंड-सचय-पक्खीण-दव्वसारा) प्रतिदिन तत्पर होकर किये गये श्रम से दुःख पूर्वक मिलाये गये सिक्थ-गिरे हुए आहार के अंशको सचय करने पर भी घटते हुए द्रव्य-सार वाले खाने भोजन के सिवाय कुछ भी नहीं बचाने वाले (निच्चं) सदा (अधुव-धण-धन्न कोस परिभोग विवज्जिया) अस्थिर धन, धान्य और कोष के स्थिर रहने पर भी जो परिभोग से रहित हैं (रहिय काम-भोग परिभोग सव्व सोक्खा) काम—शब्द रूप, भोग—गंध रस और इष्ट स्पर्शों के परिभोग में आनन्द रहित हैं (परसिरि भोगोवभोग निस्साण मग्गण परायणा) दूसरे की लक्ष्मी से भोगोपभोग में निश्रा—आश्रय की खोज करने वाले (अकामिकाए वरागा) बिना इच्छा से बेचारे (विणेंति-दुक्खं) दुःख को वहन करते हैं (नेव सुहं नेव निव्वुतिं उवलभंति) न सुख को और न कहीं शान्ति को ही वे प्राप्त करते हैं (अच्चंत विपुल दुक्खसय संपलित्ता) अत्यन्त विस्तीर्ण सैंकड़ों दुःखों से जलते रहते (जे परस्स दव्वेहिं अविरया) जो दूसरे के द्रव्य से निवृत्ति रहित हैं ॥

उपसंहार—(एसोसो) ऐसा यह—(अदिण्णादाणस्स फल विवागो) अदत्तादान का फल रूप विपाक (इहलोइओपारलोइओ) मनुष्य लोक और परलोक सम्बन्धी (अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो) अल्प सुख वाला, अधिक दुःख वाला, महाभयानक, कर्मरज की अधिकता से गाढ (दारुणो कक्कसो असाओ) भयङ्कर, कठोर और दु.ख रूप है (वाससहस्सेहिं मुच्चति) हजारों वर्षों से छूटता है (न य अवेयइत्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति) बिना भोगे इससे छुटकारा नहीं होता है (एवमाहसु णायकुलणदणो महप्पा जिणो उ वीरवर नाम धेज्जो) इस प्रकार ज्ञात-कुल-नन्दन--जिनवर महावीर नाम वाले महात्मा ने कहा है (कहेसी य अदिण्णा-दाणस्स फल विवागं) और अदत्तादान के फल रूप विपाक को कहेंगे (एयं तं ततियपि अदिन्नादाणं) यह वह तीसरा आस्रवद्वार भी अदत्तादान नाम का हुआ (हर-दह-मरणभय—कलुस—तासण-परसंतिक-भेज्ज-लोभमूलं एवं जाव चिर-परिगत मणुगतं दुरत) हरण, जलन और मरण भय वाला तथा यावत् दूसरे के धनग्रहण रूप लोभ के मूल वाला इस प्रकार यावत् चिरकाल से रहा हुआ भव-परम्परा से साथ चलने वाला और दुरत—दुःख से अन्त वाला है (ततियं०) इस प्रकार तीसरा अधर्मद्वार पूर्ण हुआ, ऐसा मैं कहता हूं ॥ सू० ६ । १२ ॥

भावार्थ-सूत्र के इस अंश में बताया गया है कि वे चोर मर कर नरक में जाते और सैकड़ों दुःखों का वहां अनुभव करते हैं। वहां से निकले भी तो नरक के समान फिर तिर्यञ्च योनि मे वेदना भोगते हैं। अनन्त काल से अगर कहीं मनुष्य जन्म प्राप्त किया तो भी अनार्य व नीच कुल में उत्पन्न होते हैं, आर्य होकर भी लोक-बहि-ष्कृत तथा तिर्यञ्च के समान अकुशल यावत् धर्म, श्रुति रहित और क्रूर व मिथ्यात्वी होते हैं। एकान्त हिंसा की रुचि के कारण अपनी आत्मा को रेशम के कीडे की तरह आठ कर्मों के तन्तुओं से वे वेष्टित करते हैं। इस प्रकार अनन्त काल संसार-सागर में निवास करते हैं। ये पाप कर्म करने वाले मित्रादि रहित, अनिष्ट, साधन विकल, शरीर के आकार, प्रकार व रचना से हीन एवं कुरूप होते हैं। अधिक कषाय वाले, धर्म बुद्धि से रहित, दरिद्री, दास, और योग्य अन्न जल आदि जीवनोचित सामग्री में भी मुंहताज होते हैं। दूसरे के द्रव्य की इच्छा रखने वाले प्राणी कभी सुख व शान्ति नहीं पाते और अत्यन्त दुखी होते हैं। उपसंहार पूर्ववत् ही समझ लेवें। इस प्रकार तीसरा अधर्म द्वार पूर्ण हुआ । ३ । सू । ६ । १२

भोजन के विशिष्ट प्रकार के संग्रह और तरीके को देखते हुए-तरसते (निदंता-अप्पकं) अपनी निन्दा करते हुए (कयंतं च परिवयंता) और कृतान्त—दैव को बुरा कहते हुए (इह य) इस जन्म में ही (पुरे कडाइ कम्माइं पावगाइ) पूर्व कृत-जन्मान्तर के किये हुए-अशुभ कर्मों का निन्दन करते हुए (विमणसो) उदास मन वाले (सोएण डज्झमाणा) शोक से जलते हुए (परिभूया होंति) अनादर युक्त होते हैं, (सत्त परिवज्जिया य) और सामर्थ्य रहित (छोभा) असहाय-क्षोभपाने योग्य (सिप्प-कला समयसत्थ परिवज्जिया) शिल्प-चित्रकला आदि, कला-धनुर्वेद आदि और समय शास्त्र-जैन बौद्ध शैव आदि के सिद्धान्त शास्त्र, इन सब से परिव-र्जित अर्थात् अनजान होते (जहाजाय पसुभूया) मूर्ख और पशु के समान (अवि-यत्ता) अप्रीति उत्पन्न करने वाले (णिच्चं नीयकम्मोवजीविणो) सदा नीच कर्मों से जीविका चलाने वाले (लोय कुच्छणिज्जा) लोक में निन्दनीय (मोघ मणोरहा निरास बहुला) निष्फल मनोरथ वाले व निराश की अधिकता वाले (आसापास पडिबद्धपाणा) आशा के पाश में रुके हुए प्राण वाले (अत्थोपायाण कामसोक्खे य लोगसारे) अर्थ संग्रह-धन सञ्चय तथा काम सुखरूप लोक के सारांश में (सुट्ठुविय उज्जमंता) अच्छी तरह से उद्यम करते हुए भी (अफलवंतका होंति) निष्फल होते हैं, (तद्दिवसुज्जुत्तकम्म कय—दुक्खसठविय—सित्थपिंड-सचय-पक्खी-ण-दव्वसारा) प्रतिदिन तत्पर होकर किये गये श्रम से दुःख पूर्वक मिलाये गये सिक्थ-गिरे हुए आहार के अशको सचय करने पर भी घटते हुए द्रव्य-सार वाले पाने भोजन के सिवाय कुछ भी नहीं बचाने वाले (निच्चं) सदा (अधुव-धण-धन्न कोस परिभोग विवज्जिया) अस्थिर धन, धान्य और कोष के स्थिर रहने पर भी जो परिभोग से रहित हैं (रहिय काम-भोग परिभोग सव्व सोक्खा) काम—शब्द रूप, भोग—गंध रस और इष्ट स्पर्श के परिभोग में आनन्द रहित हैं (परसिरि भोगोव-भोग निस्साण मग्गण परायणा) दूसरे की लक्ष्मी से भोगोपभोग में निश्रा—आश्रय की खोज करने वाले (अकामिकाए वरागा) बिना इच्छा से बेचारे (विणेंति-दुक्खं) दुःख को वहन करते हैं (नेव सुहं नेव निव्वुतिं उवलभति) न सुख को और न कहीं शान्ति को ही वे प्राप्त करते हैं (अच्चंत विपुल दुक्खसय संपलित्ता) अत्यन्त विस्तीर्ण सैंकडों दुःखों से जलते रहते (जे परस्स दव्वेहिं अविरया) जो दूसरे के द्रव्य से निवृत्ति रहित हैं ॥

उपसंहार—(एसोसो) ऐसा यह–(अदिण्णादाणस्स फल विवागो) अदत्तादान का फल रूप विपाक (इहलोइओपारलोइओ) मनुष्य लोक और परलोक सम्बन्धी (अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो) अल्प सुख वाला, अधिक दुःख वाला, महाभयानक, कर्मरज की अधिकता से गाढ (दारुणो कक्कसो असाओ) भयंकर, कठोर और दुःख रूप है (वाससहस्सेहि मुच्चति) हजारों वर्षों से छूटता है (न य अवेयइत्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति) बिना भोगे इससे छुटकारा नहीं होता है (एवमाहसु णायकुलणदणो महप्पा जिणो उ वीरवर नाम धेज्जो) इस प्रकार ज्ञात-कुल-नन्दन ·जिनवर महावीर नाम वाले महात्मा ने कहा है (कहेसी य अदिण्णा-दाणस्स फल विवागं) और अदत्तादान के फल रूप विपाक को कहेंगे (एयं तं ततियपि अदिन्नादाण) यह वह तीसरा आस्रवद्वार भी अदत्तादान नाम का हुआ (हर–दह–मरणभय—कलुस—तासण–परसतिक-भेज्ज-लोभमूल एवं जाव चिर-परिगत मणुगत दुरंत) हरण, जलन और मरण भय वाला तथा यावत् दूसरे के धनग्रहण रूप लोभ के मूल वाला इस प्रकार यावत् चिरकाल से रहा हुआ भव-परम्परा से साथ चलने वाला और दुरंत—दुःख से अन्त वाला है (ततियं०) इस प्रकार तीसरा अधर्मद्वार पूर्ण हुआ, ऐसा मै कहता हूं ॥ सू० ६ । १२ ॥

भावार्थ-सूत्र के इस अंश में बताया गया है कि वे चोर मर कर नरक में जाते और सैकड़ों दुःखों का वहां अनुभव करते हैं। वहां से निकले भी तो नरक के समान फिर तिर्यञ्च योनि में वेदना भोगते हैं। अनन्त काल से अगर कहीं मनुष्य जन्म प्राप्त किया तो भी अनार्य व नीच कुल में उत्पन्न होते हैं, आर्य होकर भी लोक-बहिष्कृत तथा तिर्यञ्च के समान अकुशल यावत् धर्म, श्रुति रहित और क्रूर व मिथ्यात्वी होते हैं। एकान्त हिंसा की रुचि के कारण अपनी आत्मा को रेशम के कीडे की तरह आठ कर्मों के तन्तुओं से वे वेष्टित करते हैं। इस प्रकार अनन्त काल संसार-सागर में निवास करते हैं। ये पाप कर्म करने वाले मित्रादि रहित, अनिष्ट, साधन विकल, शरीर के आकार, प्रकार व रचना से हीन एवं कुरूप होते हैं। अधिक कषाय वाले, धर्म बुद्धि से रहित, दरिद्री, दास, और योग्य अन्न जल आदि जीवनोचित सामग्री में भी मुंहताज होते हैं। दूसरे के द्रव्य की इच्छा रखने वाले प्राणी कभी सुख व शान्ति नहीं पाते और अत्यन्त दुखी होते हैं। उपसंहार पूर्ववत् ही समझ लेवें। इस प्रकार तीसरा अधर्म द्वार पूर्ण हुआ । ३ । सू । ६ । १२

भोजन के विशिष्ट प्रकार के संग्रह और तरीके को देखते हुए-तरसते (निंदंता-अप्पकं) अपनी निन्दा करते हुए (कयंतं च परिवयंता) और कृतान्त—दैव को बुरा कहते हुए (इह य) इस जन्म में ही (पुरे कडाइं कम्माइं पावगाइं) पूर्व कृत-जन्मान्तर के किये हुए-अशुभ कर्मों का निन्दन करते हुए (विमणसो) उदास मन वाले (सोएण डज्झमाणा) शोक से जलते हुए (परिभूया होंति) अनादर युक्त होते हैं, (सत्त परिवज्जिया य) और सामर्थ्य रहित (छोभा) असहाय-क्षोभपाने योग्य (सिप्प-कला समयसत्थ परिवज्जिया) शिल्प—चित्रकला आदि, कला—धनुर्वेद आदि और समय शास्त्र—जैन बौद्ध शैव आदि के सिद्धान्त शास्त्र, इन सब से परिव-र्जित अर्थात् अनजान होते (जहाजाय पसुभूया) मूर्ख और पशु के समान (अवि-यत्ता) अप्रीति उत्पन्न करने वाले (णिच्चं नीयकम्मोवजीविणो) सदा नीच कर्मों से जीविका चलाने वाले (लोय कुच्छणिज्जा) लोक में निन्दनीय (मोघ मणोरहा निरास बहुला) निष्फल मनोरथ वाले व निराश की अधिकता वाले (आसापास पडिबद्धपाणा) आशा के पाश में रुके हुए प्राण वाले (अत्थोपायाण कामसोक्खे य लोगसारे) अर्थ संग्रह—धन सञ्चय तथा काम सुखरूप लोक के सारांश में (सुट्ठुविय उज्जमंता) अच्छी तरह से उद्यम करते हुए भी (अफलवंतका होंति) निष्फल होते हैं, (तद्दिवसुज्जुत्तकम्म कय—दुक्खसठविय—सित्थपिंड-सचय-पक्खी-ण-दव्वसारा) प्रतिदिन तत्पर होकर किये गये श्रम से दुःख पूर्वक मिलाये गये सिक्थ-गिरे हुए आहार के अंशको सचय करने पर भी घटते हुए द्रव्य-सार वाले याने भोजन के सिवाय कुछ भी नहीं बचाने वाले (निच्चं) सदा (अधुव-धण-धन्न कोस परिभोग विवज्जिया) अस्थिर धन, धान्य और कोष के स्थिर रहने पर भी जो परिभोग से रहित हैं (रहिय काम-भोग परिभोग सव्व सोक्खा) काम—शब्द रूप, भोग—गंध रस और इष्ट स्पर्श के परिभोग में आनन्द रहित हैं (परसिरि भोगोव-भोग निस्साण मग्गणा परायणा) दूसरे की लक्ष्मी से भोगोपभोग में निश्रा—आश्रय की खोज करने वाले (अकामिकाए वरागा) विना इच्छा से बेचारे (विणेंति-दुक्खं) दुःख को वहन करते हैं (नेव सुहं नेव निव्वुतिं उवलभति) न सुख को और न कहीं शान्ति को ही वे प्राप्त करते हैं (अच्चंत विपुल दुक्खसय संपलित्ता) अत्यन्त विस्तीर्ण सैंकडों दुःखों से जलते रहते (जे परस्स दव्वेहिं अविरया) जो दूसरे के द्रव्य से निवृत्ति रहित हैं ॥

उपसंहार—(एसोसो) ऐसा यह—(अदिण्णादाणस्स फल विवागो) अदत्तादान का फल रूप विपाक (इहलोइओपारलोइओ) मनुष्य लोक और परलोक सम्बन्धी (अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो) अल्प सुख वाला, अधिक दुःख वाला, महाभयानक, कर्मरज की अधिकता से गाढ (दारुणो कक्कसो असाओ) भयंङ्कर, कठोर और दु ख रूप है (वाससहस्सेहि मुच्चति) हजारों वर्षों से छूटता है (न य अवेयइत्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति) विना भोगे इससे छुटकारा नहीं होता है (एवमाहसु णायकुलणन्दणो महप्पा जिणो उ वीरवर नाम धेज्जो) इस प्रकार ज्ञात-कुल-नन्दन जिनवर महावीर नाम वाले महात्मा ने कहा है (कहेसी य अदिण्णा-दाणस्स फल विवागं) और अदत्तादान के फल रूप विपाक को कहेंगे (एयं तं ततियपि अदिन्नादाणं) यह वह तीसरा आस्रवद्वार भी अदत्तादान नाम का हुआ (हर-दह-मरणभय—कलुस—तासण-परसतिक-भेज्ज-लोभमूलं एवं जाव चिर-परिगत मणुगत दुरत) हरण, जलन और मरण भय वाला तथा यावत् दूसरे के धनग्रहण रूप लोभ के मूल वाला इस प्रकार यावत् चिरकाल से रहा हुआ भव-परम्परा से साथ चलने वाला और दुरत—दुःख से अन्त वाला है (ततियं०) इस प्रकार तीसरा अधर्मद्वार पूर्ण हुआ, ऐसा मैं कहता हूं ॥ सू० ६ । १२ ॥

भावार्थ-सूत्र के इस अंश में बताया गया है कि वे चोर मर कर नरक में जाते और सैकडों दु·खों का वहां अनुभव करते हैं। वहां से निकले भी तो नरक के समान फिर तिर्यञ्च योनि में वेदना भोगते हैं। अनन्त काल से अगर कहीं मनुष्य जन्म प्राप्त किया तो भी अनार्य व नीच कुल में उत्पन्न होते हैं, आर्य होकर भी लोक-बहिष्कृत तथा तिर्यञ्च के समान अकुशल यावत् धर्म, श्रुति रहित और क्रूर व मिथ्यात्वी होते हैं। एकान्त हिंसा की रुचि के कारण अपनी आत्मा को रेशम के कीडे की तरह आठ कर्मों के तन्तुओं से वे वेष्टित करते हैं। इस प्रकार अनन्त काल संसार-सागर में निवास करते हैं। ये पाप कर्म करने वाले मित्रादि रहित, अनिष्ट, साधन विकल, शरीर के आकार, प्रकार व रचना से हीन एव कुरूप होते हैं। अधिक कषाय वाले, धर्म बुद्धि से रहित, दरिद्री, दास, और योग्य अन्न जल आदि जीवनोचित सामग्री में भी मुंहताज होते हैं। दूसरे के द्रव्य की इच्छा रखने वाले प्राणी कभी सुख व शान्ति नहीं पाते और अत्यन्त दुखी होते हैं। उपसहार पूर्ववत् ही समझ लेवें। इस प्रकार तीसरा अधर्म द्वार पूर्ण हुआ । ३ । सू । ६ । १२

भोजन के विशिष्ट प्रकार के संग्रह और तरीके को देखते हुए-तरसते (निंदंता-अप्पकं) अपनी निन्दा करते हुए (कयंतं च परिवयंता) और कृतान्त—दैव को बुरा कहते हुए (इह य) इस जन्म में ही (पुरे कडाइं कम्माइं पावगाइ) पूर्व कृत-जन्मान्तर के किये हुए-अशुभ कर्मों का निन्दन करते हुए (विमणसो) उदास मन वाले (सोएण डज्झमाणा) शोक से जलते हुए (परिभूया होंति) अनादर युक्त होते हैं, (सत्त परिवज्जिया य) और सामर्थ्य रहित (छोभा) असहाय-क्षोभपाने योग्य (सिप्प कला समयसत्थ परिवज्जिया) शिल्प-चित्रकला आदि, कला-धनुर्वेद आदि और समय शास्त्र-जैन बौद्ध शैव आदि के सिद्धान्त शास्त्र, इन सब से परिव-र्जित अर्थात् अनजान होते (जहाजाय पसुभूया) मूर्ख और पशु के समान (अवि-यत्ता) अप्रीति उत्पन्न करने वाले (णिच्चं नीयकम्मोवजीविणो) सदा नीच कर्मों से जीविका चलाने वाले (लोय कुच्छणिज्जा) लोक में निन्दनीय (मोघ मणोरहा निरास बहुला) निष्फल मनोरथ वाले व निराश की अधिकता वाले (आसापास पडिबद्धपाणा) आशा के पाश में रुके हुए प्राण वाले (अत्थोपायाण कामसोक्खे य लोगसारे) अर्थ संग्रह-धन सञ्चय तथा काम सुखरूप लोक के सारांश में (सुट्ठुविय उज्जमंता) अच्छी तरह से उद्यम करते हुए भी (अफलवंतका होंति) निष्फल होते हैं, (तद्दिवसुज्जुत्तकम्म कय—दुक्खसठविय—सित्थपिंड-संचय-पक्खी-ण-दव्वसारा) प्रतिदिन तत्पर होकर किये गये श्रम से दुःख पूर्वक मिलाये गये सिक्थ-गिरे हुए आहार के अशको सचय करने पर भी घटते हुए द्रव्य-सार वाले याने भोजन के सिवाय कुछ भी नहीं बचाने वाले (निच्चं) सदा (अधुव-धण-धन्न कोस परिभोग विवज्जिया) अस्थिर धन, धान्य और कोष के स्थिर रहने पर भी जो परिभोग से रहित हैं (रहिय काम-भोग-परिभोग सव्व सोक्खा) काम—शब्द रूप, भोग—गंध रस और इष्ट स्पर्श के परिभोग में आनन्द रहित हैं (परसिरि भोगोव-भोग निस्साण मग्गण परायणा) दूसरे की लक्ष्मी से भोगोपभोग में निश्रा—आश्रय की खोज करने वाले (अकामिकाए वरागा) विना इच्छा से बेचारे (विणेंति-दुक्खं) दुःख को वहन करते हैं (नेव सुहं नेव निव्वुतिं उवलभति) न सुख को और न कहीं शान्ति को ही वे प्राप्त करते हैं (अच्चंत विपुल दुक्खसय सपलित्ता) अत्यन्त विस्तीर्ण सैंकड़ों दुःखों से जलते रहते (जे परस्स दव्वेहिं अविरया) जो दूसरे के द्रव्य से निवृत्ति रहित हैं ॥

उपसंहार—(एसोसो) ऐसा यह-(अदिण्णादाणस्स फल विवागो) अदत्तादान का फल रूप विपाक (इहलोइओपारलोइओ) मनुष्य लोक और परलोक सम्बन्धी (अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो) अल्प सुख वाला, अधिक दुःख वाला, महाभयानक, कर्मरज की अधिकता से गाढ (दारुणो कक्कसो असाओ) भयङ्कर, कठोर और दुःख रूप है (वाससहस्सेहि मुच्चति) हजारों वर्षों से छूटता है (न य अवेयइत्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति) विना भोगे इससे छुटकारा नहीं होता है (एवमाहसु णायकुलणदणो महप्पा जिणो उ वीरवर नाम धेज्जो) इस प्रकार ज्ञात-कुल-नन्दन जिनवर महावीर नाम वाले महात्मा ने कहा है (कहेसी य अदिण्णा-दाणस्स फल विवागं) और अदत्तादान के फल रूप विपाक को कहेंगे (एयं तं ततियपि अदिन्नादाण) यह वह तीसरा आस्रवद्वार भी अदत्तादान नाम का हुआ (हर-दह-मरणभय—कलुस—तासण-परसतिक-भेज्ज-लोभमूलं एव जाव चिर-परिगत मणुगत दुरत) हरण, जलन और मरण भय वाला तथा यावत् दूसरे के धनग्रहण रूप लोभ के मूल वाला इस प्रकार यावत् चिरकाल से रहा हुआ भव-परम्परा से साथ चलने वाला और दुरत—दुःख से अन्त वाला है (ततियं०) इस प्रकार तीसरा अधर्मद्वार पूर्ण हुआ, ऐसा मे कहता हूं ॥ सू० ६ । १२ ॥

भावार्थ-सूत्र के इस अश में बताया गया है कि वे चोर मर कर नरक में जाते और सैकडों दुःखों का वहां अनुभव करते हैं। वहां से निकले भी तो नरक के समान फिर तिर्यञ्च योनि मे वेदना भोगते हैं। अनन्त काल से अगर कहीं मनुष्य जन्म प्राप्त किया तो भी अनार्य व नीच कुल मे उत्पन्न होते हैं, आर्य होकर भी लोक-बहिष्कृत तथा तिर्यञ्च के समान अकुशल यावत् धर्म, श्रुति रहित और क्रूर व मिथ्यात्वी होते हैं। एकान्त हिंसा की रुचि के कारण अपनी आत्मा को रेशम के कीडे की तरह आठ कर्मों के तन्तुओ से वे वेष्टित करते हैं। इस प्रकार अनन्त काल संसार-सागर में निवास करते हैं। ये पाप कर्म करने वाले मित्रादि रहित, अनिष्ट, साधन विकल, शरीर के आकार, प्रकार व रचना से हीन एव कुरूप होते हैं। अधिक कषाय वाले, धर्म बुद्धि से रहित, दरिद्री दास, और योग्य अन्न जल आदि जीवनोचित सामग्री में भी मुंहताज होते हैं। दूसरे के द्रव्य की इच्छा रखने वाले प्राणी कभी सुख व शान्ति नहीं पाते और अत्यन्त दुखी होते हैं। उपसहार पूर्ववत् ही समझ लेवें। इस प्रकार तीसरा अधर्म द्वार पूर्ण हुआ । ३ । सू । ६ । १२

चौरासी ८४ लक्ष जीव योनि—

७ लाख पृथ्वी काय, ७ लाख अप्काय, ७ लाख तेजस्काय, ७ लक्ष वायु काय, १० लक्ष प्रत्येक वनस्पति, १४ लक्ष साधारण वनस्पति, २ लक्ष द्वीन्द्रिय, २ लक्ष त्रीन्द्रिय, २ लक्ष चतुरिन्द्रिय. ४ लक्ष नारक,—४ लक्ष देव, ४ लक्ष तिर्यञ्च, और १४ लक्ष मनुष्य, ऐसे ८४ लक्ष जीवों की योनियाँ हैं।

"चतुर्थम् अब्रह्माध्ययनम्"

सम्बन्ध-तीसरे अध्ययन के बाद चौथे अध्ययन का प्रारम्भ करते हैं, सूत्र में किये हुए निर्देश के अनुसार अब्रह्म में आसक्त चित्त वाला प्राय. अदत्त का ग्रहण करता है। पञ्च द्वारों से अब्रह्म वर्णन करते हुए श्री सुधर्म स्वामी पहले इसका स्वरूप वर्णन करते हैं-

मूल-"जंबू ! अबंभं च चउत्थं सदेव मणुयासुरस्स लोयस्स पत्थणिज्जं, पंक-पणय-पासजालभूयं, थी-पुरिस-नपुंसवेद-चिंधं, तव संजम बंभचेरविग्घं, भेदायतण-बहुपमादमूल, कायर-कापुरिस सेवियं, सुयणजण वज्जणिज्जं, उड्ढ-नरय-तिरिय-तिलोक पइट्ठाणं, जरा-मरण-रोग-सोग-बहुलं, वध बंधविघात दुव्विघायं, दंसण-चरित्त मोहस्स हेउभूयं चिरपरिगयमणुगयं दुरंतं चउत्थं अधम्मदारं ॥ सू० १ । १३ ॥

छाया-"हे जम्बू ! अब्रह्म च चतुर्थं सदेव मनुजाऽसुरस्य लोकस्य प्रार्थनीयं, पङ्क-पनक पाशजालभूतं, स्त्री पुरुष-नपुंसक वेद चिह्नम्, तपः संयम ब्रह्मचर्य विघ्नः, भेदायतन-बहुप्रमादमूलम्, कातर कापुरुष सेवितम्, सुजनजन वर्जनीयम् ऊर्ध्व नरक-तियक्-त्रैलोक्य प्रतिष्ठान, जरा-मरण-रोग-शोक बहुलम्, वध-बन्धन-विघात दुर्विघातम्, दर्शन चारित्र मोहस्य हेतुभूतम्, चिर-परिगतमनुगतम् दुरन्तं चतुर्थ-मधर्मद्वारम् ॥० १ । १३ ॥

अन्व-'(जंबू !) हे जम्बू ! (अबंभ च) तीसरे के बाद अब्रह्म नाम का (चउत्थं) चौथा आस्रव द्वार है (सदेवमणुया सुरस्स लोयस्स पत्थणिज्जं) देव सहित मनुष्य और असुर लोक का प्रार्थनीय है (पक-पणय-पासजालभूय) कीचड़, चिकनी काई, पाश और जाल के समान (थी पुरिस नपुंसवेद चिंधं) स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदका चिह्न है (तव, सजम बभचेर विग्घ) तप, सयम और ब्रह्मचय का विघ्न (भेदा-यतण बहु पमादमूल) चारित्र भग का स्थान और अनेक प्रमादों का मूल कारण है (कायर कापुरिस सेवियं) कायर तथा अधर्म मनुष्यों से सेवित (सुयणजण वज्ज-

खिज्जं) सुजन जनों से परिहार करने योग्य (उड्ढ नरय तिरिय तिलोक पइट्ठाणं) ऊर्ध्वलोक, नरकलोक, अधोलोक, तिर्यग्-मध्यलोक रूप त्रिलोकी में प्रतिष्ठान-स्थिति वाला (जरा मरणं रोग सोग बहुल) जरा, मरण और रोग शोक को अधिकता वाला (वध बध विघात दुव्विघात) बध, बन्धन और नाश से दुष्कर विघात वाला (दंसण चरित्त मोहस्स हेउभूयं) दर्शन मोह और चारित्र मोह का कारण (चिर परिगयमणुगयं दुरंत चउत्थ अधम्मदारं) अनादि काल से परिचित, पीछे २ आने वाला और दुःख से अन्त हो ऐसा यह चतुर्थ अधर्मद्वार है' ॥ सू० १ ॥ १३ ॥

भाव—सुधर्म स्वामी फरमाते हैं-हे जम्बू! अब्रह्म यह चतुर्थ आस्रव है, देव मनुष्य और असुर आदि जीवों से प्राथनीय, प्राणियों को कलङ्कित करने व फसाने के कारण कीचड तथा जाल के समान है, स्त्री, पुरुष और नपुसक वेद का चिह्न, तप सयम आदि में विघ्न, चारित्र भङ्ग का स्थान और विविध प्रमादों का मूल है। कायर व नीच जन से सेवित, सुजन-सन्त पुरुषों से छोडा हुआ, तीनों लोक में आश्रय पाया हुआ, जरा मरण और रोग शोक को प्रचुरता वाला यावत् दर्शन मोह और चारित्र मोह का हेतु है। शेष पूर्ववत् ॥ सू० १ । १३ ॥

मूल—"तस्स य णामाणि गोन्नाणि इमाणि होंति तीसं, तं जहा-१ अबंभ २ मेहुणं ३ चरंतं ४ संसग्गि ५ सेवणाधिकारो ६ संकप्पो ७ बाहणा ८ पदाणं दप्पो ९ मोहो १० मणं संखेवो ११ अणिग्गहो १२ वुग्गहो १३ विघाओ १४ विभंगो १५ विब्भमो १६ अधम्मो १७ असीलया १८ गामधम्म तित्ती १९ रती २० राग, २१ काम-भोग मारो २२ वेर २३ रहस्सं २४ गुज्झं २५ बहुमाणो २६ बंभ-चेर विग्घो २७ वावत्ति २८ विराहणा २९ पसंगो ३० कामगुणो त्ति, विय, तस्स एयाणि एवमादीणि नाम धेज्जाणि होंति तीसं ॥ सू० २ । १४ ॥

छाया—तस्य च नामानि गौणानीमानि भवन्ति त्रिंशत्, तानि यथा अब्रह्म, मैथुनम्, चरत्, संसर्गि, सेवनाधिकारः, सङ्कल्पः, बाधनापदानाम्, दर्पः, मोह, मनः-संक्षोभ, अनिग्रह, विग्रह, विघातः, विभङ्गः, विभ्रमः, अधर्मः, अशीलता, ग्रामधर्म-तृप्ति, रति, राग[1], कामभोगमारः, वैर रहस्यम्, गुह्यम्, बहुमानः, ब्रह्मचर्यविघ्न,

[1] क—राग चिंता।

व्यापत्तिः विराधना; प्रसङ्गः, कामगुणः,' इत्यपि च तस्य एतानि एवमादीनि नामधेयानि भवन्ति त्रिंशत् ॥ सूत्र २ । १४ ॥

अन्व०—(तस्स य) और उस अब्रह्म के (इमाणि गोण्णाणि) ये कहे जाने वाले गुण निष्पन्न (नामाणि) नाम (तीस होंति) तीस होते हैं (तं जहा) जैसे कि–(अबंभ) अब्रह्म-अशुभ आचरण (मेहुणं) मैथुन -स्त्री पुरुष का कर्म (चरंत) चरत्—विश्व को व्याप्त करने वाला (संसग्गि) संसर्गि-स्त्री पुरुष के विशेष संसर्ग वाला (सेवणाधिकारो) सेवना अधिकार-चोरी आदि को प्रतिसेवना का अधिकारी (संकप्पो) सङ्कल्प--विकल्प से होने वाला (बाहणा पदाण) बाधना–संयम स्थान या प्रजा को बाधा करने वाला (दप्पो) दर्प–अभिमान से होने वाला (मोहो) मोहोदय से होने वाला (मण संखेवो) मन· संक्षेप अथवा मन· संक्षोभ-मन को संकुचित या क्षुब्ध करने वाला (अणिग्गहो) अनिग्रह- विषय मे प्रवृत्त मन को निग्रह नहीं करने वाला (वुग्गहो) विग्रह–कलह का कारण (विघाओ) विघात–गुणों का नाश करने वाला (विभंगो) विभग–गुणों का खडन करने वाला (विब्भमो) विभ्रम–सुख की भ्रान्ति करने वाला (अधम्मो) धर्म विरुद्ध (असीलया) अशीलता–दुश्शीलपन (गामधम्मतित्ती) ग्राम धर्मतृप्ति-तप्ति शब्दादि—कामगुणों मे तृप्ति करना या काम गुणों का गवेषण करना (रति) बुरा प्रेम (रागो) राग—विषयानुराग (काम भोग मारो) काम भोगों के साथ मरण वाला (वेरं) वैर-शत्रुता का कारण (रहस्स) रहस्य–एकान्त में छिपके करने योग्य (गुज्झ) गुह्य–छिपाने योग्य व अवाच्य (बहुमाणो) बहुमान–बहुतों का माना हुआ (बभचेर विग्घो) ब्रह्मचर्य का विघ्न (वावत्ति) व्यापत्ति—सद्गुणों से गिराने वाला (विराहणा) विराधना–एक देश से व्रत खण्डन का कारण (पसगो) प्रसङ्ग–कामगुणों में प्रसङ्ग करना (काम गुणोत्ति वि य) और कामगुण इस प्रकार (तस्स एयाणि) उस अब्रह्म के ये पूर्वोक्त (एवमादीणि) इस प्रकार के अन्य, इत्यादि (नाम धेज्जाणि) नाम (तीस होंति) तीस होते हैं ॥ सू० २ । १४ ॥

भावार्थ—" उस अब्रह्म के ये गुण युक्त ३० नाम होते हैं, जो ऊपर कहे जा चुके हैं। ये केवल मुख्य २ बातों का सङ्केत मात्र है। अतएव एवमादीनि, यह विशेषण है, इससे दूसरे नामों की सूचना हो रही है। इसलिये तीस ही नाम निश्चित न समझकर दुराचार, विषय भोग आदि नाम भी समझ लेने चाहिये। सू० २ । १४ ॥

अब इसके सेवन करने वालों को कहते हैं ।—

मूल—"तं च पुण निसेवंति सुरगणा, स अच्छरा, मोह मोहिय-मती, असुर-भुयग-गरुल-विज्जु-जलण-दीव-उदहि-दिसि पवण थणिया १० । अणवन्नि-पणवन्निय-इसिवादिय-भूयवादिय कंदिय महाकंदिय—कूहंड-पयंग देवा ८ । पिसायभूय-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस—महोरग-गंधव्वा ८ । तिरिय-जोइम-विमाण-वासि-मणुय गणा, जलयर—थलयर-खहयरा य मोह-पडिबद्ध-चित्ता, अवितण्हा, काम-भोग तिसिया, तण्हाए बलवईए मह-ईए समभिभूया, गढिया य अतिमुच्छिया य अबंभे उस्सण्णा, ताम-सेण भावेण अणुम्मुक्का, दंसण-चरित्त-मोहस्स पंजरं पिव करंति [1]अन्नोऽन्नं सेवमाणा । भुज्जो असुर—सुर—तिरिय-मणुअ-भोग-रति-विहार संपउत्ता य चक्कवट्टी सुरनरवति सक्कया सुर वरुव्व देवलोए, भरह णग णगर [2]णियम—जणवय-पुरवर-दोणमुह-खेड-कब्बड-मडंब-संबाह-पट्टण—सहस्स मंडिय, थिमिय मेयणियं, एग-च्छत्तं, ससागर भुंजिऊण वसुहं, नरसीहा नरवई नारदा नर-वसभा मरुय-वसभकप्पा अब्भहियं रायतेय—लच्छीए दिप्पमाणा सोमा रायवंसतिलगा, रवि—ससि-संख-वरचक्क-सोत्थिय-पडाग-जव-मच्छ-कुम्म-रहवर-भग-भवण-विमाण-[3]तुरय-तोरण-गोपुर-मणिरयण—नंदियावत्त-मुसल-णंगल-सुरइयवर कप्परुक्ख-मिग-वति-भद्दासण-सुरुवि थूभवर-मउड—सरिय-कुंडल-कुंजर—वर-वसभ-दीव-मंदिर-गरुल-द्धय-इंदकेउ-दप्पण—अट्ठावय-चाव-बाण-नक्खत्त-मेह-मेहल-वीणा-जुग-छत्त-दाम—दामिणि-कमंडलु-कमल-घंटा-वरपोत-सूइ—सागर—कुमुदागर—मगर—हार गागर-नेउर णग-णगर-वइर-किन्नर-मयूर वरराय हंस—सारस-चकोर-चक्कवाग-मिहुण-चामर-खेडग—पव्वीसग-विपंचि—वरतालियंट सिरिया-भिसेय-मेइणि-खग्गंकुस-विमल कलस-भिंगार-वद्धमाणग-पसत्थ

---

१ क- अण्ण मण्णं २ क- णिगम ३ क-तुरग

उत्तम विभत्तवर-पुरिसलक्खण धरा। बत्तीसं वररायसहस्साणु-जायमग्गा, चउसट्ठि सहस्स पवर जुवतीण णयणकंता, रत्ताभा पउम-पम्ह-कोरंटग—दाम चंपक सुतयवरकणक—निहसवण्णा, सुजाय-सव्वंग सुंदरंगा, महग्घवर पट्टणुग्गय विचित्त राग-एणि-पेणि-णिम्मिय-दुगुल्ल-वरचीण पट्टकोसेज्ज-सोणी सुत्तक विभूसि-यंगा, वरसुरभि—गंधवर—चुण्णवासवरकुसुम—भरिय सिरया, कप्पिय छेया यरिय-सुकय-रइत-माल-कडगंगय-तुडिय-पवर भूस-ण पिणद्धदेहा, एकावलि-कंठ सुरइय-वच्छा, पालंब-पलंबमाण सुकय—पडउत्तरिज्ज- मुद्दिया पिंगलंगुलिया, उज्जल-नेवत्थ-रइय चेल्लग विरायमाणा, तेएण दिवाकरोव्व दित्ता, सारय-नव—त्थणिय महुर-गंभीर निद्धघोसा, उप्पन्न-समत्त—रयण—चक्करयण-प्पहाणा, नवनिहि वइणो, समिद्ध कोसा, चाउरंता चाउराहिं सेणाहिं समणुजाइज्जमाणमग्गा, तुरगवती, गयवती, रह-वती, नरवती, विपुलकुलवीसुयजसा, सारय—ससि—सकल सोमवयणा, सूरा तेलोक-निग्गय-पभावलद्धसद्दा समत्त भर-हाहिवा, नरिंदा, ससेलवण काणणंच हिमवन्त सागरं तं, भोत्तूण भरहवासं जियसत्तू पवर रायसीहा, पुव्वकड तवप्पभावा, निविट्ठ संचियसुहा, अणेगवाससयमायुवंतो भज्जाहि य जण-वयप्पहाणाहिं लालियंता-अतुल सद्द फरिस-रस-रूव-गंधे य अणु-

भावेनाऽनुन्मुक्ताः,-दर्शन चारित्रमोहस्य पञ्जरमिव कुर्वन्ति अन्योऽन्यं (परस्पर) सेव-
मानः । भूयोऽसुर-सुर-तिर्यङ्-मनुज भोग रति विहार सम्प्रयुक्ताश्च चक्रवर्तिन सुर
नरपति सत्कृताः सुरवरा इव देव लोके, भरत-नग-नगर-निगम-जनपद-पुरवर-
द्रोणमुख-खेट-कर्बट-मडम्ब-संवाह-पत्तन सहस्रमण्डिता स्तिमितमेदिनीकामेकच्छत्रां,
ससागरां भुक्त्वा वसुधा, नरसिंहा नरपतयो नरेन्द्रा नरवृषभा मरुद् (ज) वृषभकल्पा
अभ्यधिकं राजतेजोलक्ष्म्या दीप्यमानाः सौम्या राजवंशतिलका., रवि-शशि शङ्ख वर-
चक्र-स्वस्तिक-पताका-यव-मत्स्य-कूर्म-रथवर भग भवन-विमान-तुरग-तोरण गोपुर-
मणिरत्न-नन्द्यवर्त-मुषल-लाङ्गल-सुरचितवरकल्पवृक्ष-मृगपति भद्रासन-सुरुचि-स्तूप-
वरमुकुट-मुक्तावली-कुण्डल-कुञ्जर-वरवृषभ-द्वीप-मन्दर-गरुड-ध्वजेन्द्रकेतु-दर्पणा-
ष्टापद-चाप-बाण-नक्षत्र मेघ-मेखला-वीणा-युगच्छत्र-दाम-दमिनी-कमण्डलु-
कमल-घण्टा-वरपोत-सूची सागर-कुमुदाकर-मकर-हार-स्त्री परिधान (गागर)
नूपुर-नग-नगर-वज्र-किन्नर-मयूरवर-राजहंस-सारस-चकोर-चक्रवाक-मिथुन-
चामर खेटक-पव्वीसक-विपञ्ची-वरतालवृन्त-श्रीकाभिषेक-मेदिनी-खड्गाऽङ्कुश-
विमल कलस-भृङ्गार-वर्द्धमानक-प्रशस्तोत्तम-विविक्त वर पुरुष लक्षणधरा. । द्वात्रिं-
शद्वरराज सहस्राऽनुजात मार्गा, चतुः षष्टिवरयुवतीना नयनकान्ता, रक्ताभा पद्म-
गर्भ कोरण्टक-दाम चम्पक- सुतप्तवर कनक निकषसवर्णा., सुजात-सर्वाङ्ग सुन्दराङ्गा,
महार्घवर पत्तनोद्गत-विचित्ररागैणी-प्रैणी (चर्म) निर्मित-दुकूलवर चीनपट्ट
कौशेयक श्रोणी सूत्रक विभूषिताङ्गा, वरसुरभिगन्धवर चूर्णवास वरकुसुम भरित-
शिरस्काः, कल्पित छेकाचार्य-सुकृत-रतिद माला-कटकाङ्गद तुटिकाः, प्रवर भूषण
पिनद्धदेहा, एकावली कण्ठ सुरचितवक्षस., प्रलम्ब प्रलम्बमान सुकृत पटोत्तरीय मुद्रि-
का-पिङ्गलाऽङ्गुलय, उज्ज्वल नेपथ्य रचित-चेल्लक-विराजमाना., तेजसा दिवाकरा
इव दीप्ता, शारद नवस्तनित-मधुर गम्भीर स्निग्धघोषा, उत्पन्न समस्तरत्न-चक्ररत्न
प्रधाना, नवनिधिपतयः, समृद्धकोशाश्चतुरन्ताश्चतसृभि. सेनाभिः समनुयायमान
मार्गा, तुरगपतयो-गजपतयो रथपतयो नरपतयो-विपुल कुल विश्रुत यशस, शारद शशि
सकलसौम्यवदना, शूरास्त्रैलोक्यनिर्गत प्रभाव लब्धशब्दाः, समस्त-भरताधिपा नरेन्द्रा-,
सशैलवन-काननं च हिमवत्सागरान्त धीरा भुक्त्वा भरतवर्षं जितशत्रव. प्रवरराजसिंहाः,
पूर्वकृततपः, प्रभावाः, निविष्ट सञ्चित सुखा, अनेक वर्षशतमायुष्मन्तो भार्याभिश्च
जनपद प्रधानाभिर्लाल्यमाना अतुल शब्द-स्पर्श-रस-रूप गन्धाश्चाऽनुभूय तेऽपि उपन-
मन्ति मरण धर्मं वितृप्ता. कामेषु । सू० । ३ । १५ ॥

अन्वयार्थ—(त च पुण) और फिर उस चौथे अब्रह्म को (निसेवति) सेवन करते हैं (सुरगणा स अच्छरा) अप्सरा सहित वैमानिक देव समूह, ये कैसे हैं ? (मोह मोहियमतो) मोह से मोहित बुद्धि वाले (असुर-भुयग-गरुळ-विज्जु जलण-दीव-उदहि—दिसि-पवण-थणिया) १ असुर कुमार २ भुजंग—नाग कुमार ३ गरुड-ध्वजवाले—सुपर्ण कुमार, ४ विद्युत्कुमार, ५ अग्निकुमार, ६ द्वीपकुमार, ७ उदधि-कुमार, ८ दिक्कुमार, ९ पवनकुमार, और १० स्तनितकुमार, ऐसे दश भवन पति (अणवन्नि—पणवन्निय—इसिवाइय भूयवादिय कदिय महाकदिय --कूहड-पयंगदेवा) १ अणपन्नि, २ पणपन्निक, ३ ऋषिवादिक, ४ भूतवादिक, ५ क्रन्दित, ६ महाक्रन्दित, ७ कुष्माण्ड और पतङ्ग देवरूप व्यन्तर विशेष (पिसाय—भूय-जक्ख—रक्खस-किन्नर—किंपुरिस—महोरग—गधव्वा) १ पिशाच, २ भूत ३ यक्ष, ४ राक्षस, ५ किंनर, ६ किम्पुरुष ७ महोरग और ८ गन्धर्व ये आठ जाति के व्यन्तर देव (तिरिय-जोइस-विमाणवासि मणुयगणा) तिर्यग् लोक में जो ज्योतिष्क, विमान वासी-ज्योतिष्क देव तथा मनुष्यगण (जलयर—थलयर—खहयरा य) और जलचर, स्थलचर व खेचर—आकाश मार्ग मे चलने वाले पशु पक्षिगण (मोह पडिबद्धचित्ता) जो मोह में बधे चित्त वाले हैं (अवितण्हा काम भोगतिसिया) प्राप्त विषय में बिना बुझी हुई प्यास वाले अर्थात् सन्तोष रहित व अप्राप्त काम भोग की तृषा वाले (तण्हाए बलवईए महईए समभि-भूया) बलवती और अधिक विषय वाली, महतो—बडो भोग लालसासे घिरे हुए (गढिया य) और ग्रथित—विषयों मे गुथे हुए-गृद्ध हैं (अतिमुच्छिया य अबभे) फिर अब्रह्म—मैथुन मे अत्यन्त आसक्त बने हुए (उस्सण्णा) कीचड के जैसे फसे हुए हैं (तामसेण भावेण) तमोगुण रूप भाव से (अणुमुक्का) नहीं छूटे हुए (अन्नोन्न सेवमाणा) अब्रह्म को परस्पर सेवन करते हुए 'देव आदि' (दसण चरित्त-मोहस्स पजरंपिव करेंति) दर्शन मोह तथा चारित्र मोह के बन्ध को आत्म रूप पक्षी के लिये पञ्जर जैसा करते हैं, (भुज्जो असुर—सुर—तिरिय—मणुअ—भोग—रति विहार सपउत्ता) फिर विशेष रूप से कहते हैं—और असुर, सुर तिर्यञ्च और मनुष्यों के भोग मे—रति—आसक्ति प्रधान अनेक क्रीडाओं से युक्त जो (देव लोए सुरवरुव्व) देवलोक मे प्रधान देव की तरह 'यहाँ' (सुर नरवति सक्कया चक्कवट्टी) सुरेन्द्र और नरेन्द्र से सत्कार पाये हुए चक्रवर्ती 'है' (भरह—णग—णगर—णियम—जणवय पुरवर—दोणमुह—खेड—कब्बड—मडब—सवाह—पट्टण सहस्स मडिय) भरत-भारत वर्ष के नग—पर्वत, नगर, निगम—वणिक् प्रधान वस्ती, जनपद—देश, पुरवर-

राजधानी रूप शहर और द्रोणमुख, खेट, कर्वट, मडम्ब, संवाह—रक्षा के लिये धान्य आदि के संवहन योग्य दुर्ग विशेष और पत्तन, इनके हजारों समूह से शोभित (थिमिय-मेयणियं एगच्छत्तं) स्तिमित-निर्भय जन समूह वाली एकच्छत्र (ससागर वसुह भुंजिऊण) समुद्र सहित पृथ्वी का पालन करके (नरसीहा नरवई नरिंदा नरवसभा) नरसिंह-मनुष्यों में सिंह के समान, नरपति, नरेन्द्र-मनुष्यों में इन्द्र, नर वृषभ-पुरुषश्रेष्ठ (मरुय वसभकप्पा) मरुवृषभ—मरुभूमि के जातिमान् वृषभ के समान कार्यभार को निभाने वाले (रायतेय लच्छीए अब्भहिय) राजतेज की लक्ष्मी से अतिशय (दिप्पमाणा) दीप्यमान-दीपते हुए (सोमा रायवंसतिलगा) सौम्य आकृति वाले, राजवंश में तिलक रूप (रवि—ससि-संख-वरचक्क—सोत्थिय-पडाग-जव—मच्छ—कुम्म-रहवर-भग-भवण—विमाण—तुरग—तोरण—गोपुर-मणि रयण नदियावत्त मुसल-लंगल) सूर्य, चन्द्र, शङ्ख, वरचक्र-प्रधानचक्र, स्वस्तिक, पताका, यव, मत्स्य, कूर्म,रथवर-उत्तमरथ भग-योनि, भवन,विमान, तुरग-घोडा, तोरण, गोपुर-नगर का द्वार, मणि, रत्न-कर्केतन आदि, नन्द्यावर्त—नव कोण का स्वस्तिक विशेप मूसल, और लांगल—हल (सुरइय-वरकप्परुक्ख-मिगवति-भद्दासण-सुरुचि-थूभवर-मउड—सरिय—कुंडल—कुंजर—वरवसभ-दीव- मंदिर-गरुलद्धय-इंदकेउ-दप्पण-अट्ठावय-चाव-बाण—नक्खत्त-मेह-मेहल-वीणा-जुग-च्छत्त—दाम) अच्छी रचना वाला या सुखप्रद-उत्तम कल्पवृक्ष, मृगपति-सिंह, भद्रासन—आसन विशेष, सुरुचि या सुरूपि-आभरण विशेष, स्तूप-यज्ञस्तम्भ, उत्तम मुकुट, सरिका-मुक्तावली आदि, कुंडल-कान के आभरण, कुंजर—हाथी, उत्तमवृषभ, द्वीप-जल के बीच का भूमिभाग, मन्दर-मेरुपर्वत या मन्दिर, गरुड ध्वजा, इन्द्र केतु—इन्द्रयष्टि-लकडी पर चिन्ह विशेष, दर्पण-काँच, अष्टापद-जूए का पाशा अथवा कैलाश पर्वत, चाप-धनुष, बाण, नक्षत्र, मेघ, और मेखला-कमर का डोरा, वीणा, युग-गाडी का जूआ, छत्र, दाम-माला, तथा (दामिणि—कमंडलु-कमल-घंटा—वरपोत-सूइ-सागर-कुमुदागर-मगर-हार-गागर-णेउर णग णगर-वइर—किन्नर-मयूर-वररायहंस-सारस-चकोर—चक्कवाक (ग) मिहुण—चामर—खेडग-पव्वीसग-विपंचि—वरतालियंट-सिरियाभिसेय-मेइणि-खग्गकुस-विमल कलस-भिंगार-वद्धमाणग-पसत्थ उत्तम विभत्त-वर पुरिस लक्खणधरा) दामिनी-डोरी, कमंडलु-कुण्डी, कमल, घण्टा, उत्तम जहाज, सूची—सूई, सागर, कुमुद-चन्द्र विकाशि कमल का समूह, मकर, हार-आभरण विशेप, गागर-स्त्री के पहिनने का कपडा, नूपुर—पाव का भूषण, नग—पर्वत, नगर,

वज्र, किन्नर,—देव या वाद्य विशेष, मयूर-मोर, उत्तम राजहंस, सारस, चकोर, और चक्रवाक-चकवा चकवी का जोडा, चामर, खेटक-पाटिया विशेष, पव्वीसक और विपञ्ची-वाद्यविशेष, श्रेष्ठ तालवृन्त-उत्तम पंखा, लक्ष्मी का अभिषेक, मेदिनी—पृथ्वी, खड्ग-तलवार, अङ्कुश, निर्मल कलस, भृङ्गार झारी, वर्द्धमानक-शरावा अथवा पुरुष के कंधे पर आरूढ पुरुष, इन शुभकारी उत्तम पुरुषों के प्रधान लक्षणों को शुद्ध रूप से धारण करने वाले (बत्तीसं वर राय सहस्साणु जायमग्गा) पीछे चलने वाले बत्तीस हजार उत्तम राजाओं से अनुगत मार्ग वाले (चउसट्ठि सहस्स-पवर जुवतीण-णयण-कता) चौंसठ हजार उत्तम युवतिओं के नयनाभिराम (रत्ताभो) लाल कान्ति वाले (पउमपम्ह कोरंटग—दाम—चंपक सुतय-वर कणग-निहसवण्णा) कमल का गर्भ, कोरंट, फूलों की माला, चम्पक-चम्पा का फूल और अच्छी तरह तपे हुए उत्तम सुवर्ण की रेखा के जैसे वर्ण वाले (सुजाय सव्वंग-सुंदरंगा) अच्छी तरह से निष्पन्न सभी अङ्गों से सुन्दर शरीर वाले (महग्घवर पट्टणुग्गय विचित्त राग एणि पेणि णिम्मिय दुगुल्लवरचीणपट्ट कोसेज्ज सोणीसुत्तक विभूसियंगा) बहु मूल्य उत्तम पट्टन में बने हुए तथा अनेक प्रकार के रङ्ग वाले और हरिणी के चर्म से निर्मित वस्त्र, दुकूल वृक्ष विशेष की वल्क-छाल को जल के साथ ऊखल में कूटकर उस के सूत से बनाये हुए वस्त्र दुकूल वस्त्र कहाते हैं, वरचीन —दुकूल वृक्ष की छालके भीतरी तन्तुओं-हीरकों से बनाये गये अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र अथवा चीन देश में बने हुए, पट्ट-पट्टसूत्र-पाट के कपडे, कौशेयक-कीट से बने हुए रेशमी वस्त्र और श्रोणी सूत्र-कटिसूत्र-कदोरा इनसे विभूषित शरीर वाले (वर सुरभिगंध - वर चुण्ण वास-वर-कुसुम भरिय सिरया) उत्तम सुगन्धित पदार्थ, सुगन्धि युक्त चूर्ण, वास और प्रधान फूलों से भरे हुए शिर वाले (कप्पिय-छेया यरिय—सुकय-रइत्त-माल-कडगगय तुडिय-पवर भूसण-पिणद्धदेहा) कुशल आचार्य ने अच्छी तरह बनाये गये इष्ट और मन को आनन्द देने वाले माला, कटक—कङ्कण, अङ्गद—भुज बन्ध, त्रुटिक-बाहु रक्षक-बहरखा तथा अन्य मुकुट आदि प्रवर भूषण—शरीर पर पहने हुए हैं (एकावलि कंठ-सुरइयवच्छा) एकावली-सुवर्ण आदि की एक लडी माला कण्ठ में डालकर वक्ष प्रदेश को सुशोभित करने वाले (पालम्ब-पलम्बमाण-सुकय-पडउत्तरिज्ज-मुद्दिया पिंगलंगुलिया) लम्बे लटकते हुए उत्तम रचना युक्त उत्तरीय वस्त्र वाले तथा अङ्गूठियों से पीली अङ्गुली वाले (उज्जल नेवत्थ—रइय—चेल्लग-विरायमाणा) सुन्दर-उज्जवल वेष के वस्त्रों से विराजमान (तेएण दिवाकरोव्व दित्ता) तेज

से सूर्य के समान दीप्ति वाले (सारय नव थणिय महुर गंभीर निद्ध घोसा) शरत्काल के नवीन उत्पन्न गर्जारव के समान मधुर गम्भीर और स्निग्ध-प्रेमयुक्त ध्वनि वाले (उप्पण्ण समत्तरयण चक्करयणप्पहाणा) उत्पन्न हुए सभी रत्नों के स्वामी और चक्ररत्न की प्रधानता वाले (नवनिहिवइणो) नव निधान के मालिक तथा (समिद्ध कोसा) समृद्ध—परिपूर्ण खजाने वाले (चाउरंता) चार समुद्र रूप अन्त-पर्यन्त वाले (चउराहिं सेणाहिं) हाथी, घोडे, रथ और पदाति रूप—चतुरंगिनी सेनाओं से (समणु जातिज्जमाणमग्गा) अच्छी तरह अनुगमन किये हुए मार्ग वाले (तुरगवती गयववी रहवती नरवती) घोडों के स्वामी, गज के स्वामी रथ के स्वामी और जो मनुष्यों के अधिपति हैं (विपुल कुल विस्सुय जसा) विस्तीर्ण कुल और प्रख्यात कीर्तिवाले (सारयससि सकल सोम वयणा सूरा) शरद ऋतु के पूर्णचन्द्र की तरह सौम्य मुख वाले शूर—पराक्रमी है (तेलोक्क निग्गय-पभाव—लद्ध—सद्दा) त्रिलोकी में फैले हुए प्रभाव वाले व प्रसिद्धि पाये हुए (समत्त भरहाहिवा नरिंदा) समस्त भरत क्षेत्र के स्वामी, नरेन्द्र (ससेल-वण—काणण च धीरा) और वे धीर शैल—पर्वत वन और उपवनों से युक्त (हिमवंत सागरंत भरहवास) हिमवान्—चुल्लहिम गिरि और समुद्र से अन्त वाले भारतवर्ष को (भुत्तूण) पालकर (जिय सत्तू पवर राय-सीहा) शत्रु रहित उत्तम राजसिंह (पुव्वकड तवप्पभावा) पूर्वकृत तपस्या के प्रभाव से (निविट्ठ संचिय सुहा) संचित सुखों को भोगने वाले होते हैं (अणेगवास-सयमायुवंतो) सैकडों वर्ष की आयु वाले 'वे' (भज्जाहि य जणवयप्पहाणाहिं) देश में प्रधान ऐसी भार्याओं से (लालियंता) विलास करते हुए (अतुल सद्द-फरिस-रस-रूव- गंधे य) और अतुल शब्द, स्पर्श, रूप और गंध का (अणुभवेत्ता) अनुभव करके (तेवि) वे भी (कामाणं अवितत्ता मरणधम्मं उवणमंति) काम से याने विषय भोग से विना तृप्ति पाये ही मृत्यु को प्राप्त करते हैं। ३। १५।

मूल—" भुज्जो भुज्जो बलदेव वासुदेवा य पवर पुरिसा महा-बल परक्कमा, महाधणुवियट्टका, महासत्तसागरा, दुद्धरा धणुद्धरा नर वसभा, रामकेसवा भायरो सपरिसा वसुदेव—समुद्दविजय-मादिय दसाराणं, पज्जुन्न—पतिव—संब—अनिरुद्ध—निसह—उम्मुय-सारण—गय—सुमुह—दुम्मुहादीण जायवाणं, अद्धुट्ठाणवि कुमार कोडीणं हिययदयिया, देवीए रोहिणीए देवीए देवकीए य आणंद

हियय भावनंदणकरा, सोलस रायवर सहस्साणु जातमग्गा, सोलस देवीसहस्स-वरणयण हियय-दयिया, णाणामणि-कणग-रयण-मोत्तिय-पवालधण-धन्न संचय-रिद्धि-समिद्ध कोसा, हय-गय-रह-सहस्ससामी, गामागर-णगर-खेड-कव्वड-मडंब-दोण-मुह-पट्टणासम-संबाह सहस्स थिमिय निव्वुय मुदित जण विविह सस्स निप्फज्जमाण-मेइणि-सर-सरिय-तलाग-सेल-काणण-आरा-मुज्जाण-मणाभिराम परिमंडियस्स दाहिणड्ढ वेयड्ढ गिरि वि-भत्तस्स लवणजलहि-परिगयस्स, छव्विह कालगुण काम जुत्तस्स, अद्ध भरहस्स सामिका, धीरकित्तिपुरिसा, ओहबला, अइबला, अनिहया अपराजियसत्तु-मद्दण-रिपुसहस्समाण-महणा, साणु-कोसा, अमच्छरी, अचवला, अचंडा, मितमंजुल-पलावा-हसिय-गंभीर महुरभणिया, अब्भुवगयवच्छला, सरण्णा, लक्खण-वंजण-गुणोववेया, माणुम्माण पमाण-पडिपुन्न सुजाय-सव्वंग-सुंदरंगा, ससिसोमागार कंतपियदंसणा, अमरिसणा, पयंड-डंडप्पयार-गंभीर दरिसणिज्जा, तालद्ध उव्विद्ध गरुलकेऊ, बल-वग-गज्जंत-दरित दप्पित-मुट्ठिय चाणूरमूरगा, रिट्ठ-वसभ-घातिणो केसरिमुह विप्फाडगा, दरितनागदप्पमहणा, जमल-ज्जुण भजगा, महासउणि-पूतणारिऊ कंस मउड मोडगा, जरा-सिंध माण महणा, तेहि य अविरल सम सहिय चंद मंडल-समप्पभेहिं, सूरमिरीयकवयं विणिम्मुयंतेहिं, सपतिदंडेहिं आयवत्तेहिं धरिज्जंतेहिं विरायंता, ताहि य पवर गिरि कुहर विह-रण समुट्ठियाहिं निरुवहय-चमर पच्छिम सरीर संजाताहिं अमइल-सियकमल विमुकुलुज्जलित रयतगिरि-सिहर-विमल ससि किरण सरिस कलहोय निम्मलाहिं पवणाहय चवल चलिय-सललिय-पणच्चिय-वीइ पसरिय-खीरोदग-पवर सागर-प्पूरचंचलाहिं, माणस सर-पसर-परिचियावास-विसदवेसाहिं, कणगगिरि सिहर संसिताहिं, उवाउप्पात-चवल-जयियसिग्घ-

वेगाहिं, हंसवधूयाहिं, चेव कलिया, नाणामणि-कणग-महारिहत-वणिज्जुज्जल विचित्त डंडाहिं, सलालियाहिं, नरवति सिरिसमुदय-प्पगासण करीहिं वर पट्टणुग्गयाहिं, समिद्ध रायकुल सेवियाहिं, कालागुरुपवर कुंदुरुक्क तुरुक्क धूवव रवास विसद-गधुद्धूयाभिरामाहिं चिल्लिकाहिं, उभयोपासंपि चामराहिं, उक्खिप्पमाणाहिं, सुहसीतलवातवीतियंगा, अजिता अजितरहा हल-मुसल कणग पाणी, संख-चक्क-गय-सत्ति-णंदगधरा, पवरुज्जल-सुकत्त विमल कोथूभ-तिरीडधारी, कुंडल उज्जोवियाणणा, पुंडरीय णयणा एगावली कंठ-रतियवच्छा सिरिवच्छ सुलंछणा वरजसा सव्वोउय सुरभि-कुसुम-सुरइय-पलंब-सोहंत-वियसंत-चित्त-वणमाल-रतियवच्छा, अट्ठसय-विभत्त-लक्खण पसत्थ-सुंदर विराइयंगमंगा। मत्तगय वरिंद-ललियविक्कम-विलासियगती, कडिसुत्तगनील-पीत कोसिज्जवाससा, पवर दित्ततयो, सारय-नवथणिय-महुरगंभीर-निद्धघोसा नरसीहा, सीहविक्कमगई, अत्थमिया, पवर रायसीहा, सोमा बारवइ पुन्न चंदा पुव्व-कयतवप्पभावा, निविट्ठ संचिय सुहा, अणेगवास-सयमायुवंतो भज्जाहि य जणवयप्पहाणाहिं लालियंता, अतुलसद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे अणुभवेत्ता, ते वि उवणमति मरणधम्मं अवितत्ता कामाणं ॥ ४ । १५ ॥

छाया—" भूयो भूयो बलदेव वासुदेवाश्च प्रवर पुरुषा महाबलपराक्रमा' महाधनुर्विकर्षका महासत्त्वसागराः, दुर्द्धरा', धनुर्द्धरा नरवृषभा [3]रामकेशवा भ्रातरः सपरिषदो वसुदेव-समुद्रविजयादिक दशाऽऽर्हाणां प्रद्युम्न-प्रतिव-शम्बाऽनिरुद्ध-निषधौल्मुक-सारण—गज-सुमुख—दुर्मुखादीनां यादवानामध्युष्टानामपि कुमार कोटीनां हृदय-दयिता, देव्या रोहिण्या देव्या देवक्याश्चाऽऽनन्द हृदय—भावनन्दनकराः, षोडश राजवर सहस्रानुजातमार्गा, षोडश देवी सहस्र वर नयन हृदयदयिता, नानामणि-कनक-रत्नमौक्तिक—प्रवाल-धन—धान्य—सञ्चयर्द्धिसमिद्ध कोशा, हय—गज-रथ—

---

१ क—धूववस। २ क—विराइयगुपगा। ३ क—भ्रात्रादरार्थं बहुवचनम्।

रहस्सस्वामिनो, ग्रामाकर—नगर—खेट—कर्वट—मडम्ब द्रोणमुख-पत्तनाऽऽश्रम-संवाह—सहस्र—स्तिमित-निर्वृत्त-प्रमुदित जन—विविध सस्य-निष्पद्यमान-मेदिनी-सरःसरित्-तडाग-शैल-काननाऽऽरामोद्यान-मनोऽभिराम-परिमण्डितस्य, दक्षिणार्द्ध-वैताढ्य गिरिविभक्तस्य लवण जलधि परिगतस्य षड्विधकाल गुण काम युक्तस्य अर्द्ध-भरतस्य स्वामिकाः, धीरकीर्तिपुरुषा-ओघबला-अतिबला-अनिहता-अपराजित—शत्रु-मर्दन-रिपुसहस्र-मानमथनाः सानुक्रोशाः, अमत्सरा अचपला अचण्डा मितमञ्जुल-प्रलापाः, हसित गम्भीर मधुरभणिताः, अभ्युपगतवत्सलाः, शरण्या, लक्षणव्यञ्जन गुणोपपेताः, मानोन्मान प्रमाण परिपूर्ण सुजात सर्वाङ्ग सुन्दराङ्गाः, शशि सौम्याकार-कान्तप्रियदर्शनाः, अमर्षणाः, प्रचण्ड दण्ड प्रचार गम्भीरदर्शनीयास्ताल ध्वजोद्विद्ध-गरुडकेतवो-बलवद्गर्ज दृप्त दर्पित-मौष्टिक-चाणूर मारकाः,रिष्ट वृषभघातिनः, केसरि मुखविस्फाटकाः, दृप्तनाग-दर्पमथनाः, यमलार्जुन भञ्जकाः, महाशकुनि पूतना रिपवः, कंस मुकुट मोटकाः, जरासन्ध मानमथनास्तैश्चाविरल—सम—सहित चन्द्रमण्डलसम-प्रभैः, सूर्यमरीचिकवचं विनिर्मुञ्चद्भिः, सप्रतिदण्डैरातपत्रैर्ध्रियमाणैर्विराजमानाः, तैश्चप्रवर-गिरि—कुहर विहरण समुत्थितैर्निरुपहत—चमरपश्चिम शरीरसञ्जातैः-अमलिनः, सितकमल-विमुकुलोज्ज्वलित—रजतगिरि—शिखर-विमलशशि—किरण सदृश—कल-धौतनिर्मलैः, पवनाऽऽहत चपल चलित ललित प्रवृत्त वीची प्रसृत परिचिताऽऽवास विशदवेशाभिः, कनकगिरिशिखरसंश्रिताभिः, अवपातोत्पात चपल (वस्त्वन्तर) जयनशीघ्र-वेगाभिर्हंसवधूभिश्चैवकलिता नानामणि कनक महार्ह-तपनीयोज्ज्वल-विचित्रदण्डैः, सललितैर्नरपति श्रीसमुदाय प्रकाशन करैर्वरपट्टनोद्गतैः, समिद्ध राज-कुलसेवितैः, कालागुरु प्रवर कुन्दुरुक्क—तुरुष्क-धूपवश वास- विशद-गन्धोद्धुताऽऽभि-रामैर्दीप्यमानैरुभयपार्श्वयोरपि, चामरैरुत्क्षिप्यमाणैः, शुभशीतल—वात—वीजिताङ्गाः, अजिताः, अजितरथाः, हलमुशल कनक पाणयः, शङ्ख-चक्र-गदा—शक्ति—नन्दक धराः, प्रवरोज्ज्वल सुकृत विमल-कौस्तुभ—किरीट धारिणः, कुण्डलोद्योतिताननाः, एकावली-कण्ठ रचितवक्षस्काः, श्रीवत्स सुलाञ्छनाः, वरयशस्काः, सर्वर्तुक—सुरभि—कुसुम—सु-रचित—प्रलम्ब शोभमान—विकशच्चित्रवनमाला रतिद-वक्षस्काः, अष्टशत—विभक्त—लक्षण-प्रशस्त—सुन्दर विराजिताङ्गोपाङ्गाः, मत्तगजवरेन्द्र ललित—विक्रम विलसित गतयः, कटिसूत्रक-नील-पीत—कौशेयवासस्काः, प्रवरदीप्ततेजस्काः, शारद नवस्तनित-मधुर-गम्भीर-स्निग्धघोषाः,नरसिंहाः,सिंहविक्रमगतयः,अस्तमिताः, प्रवरराजसिंहाः, सौम्याः,

द्वारावती पूर्णचन्द्राः, पूर्वकृत तपः प्रभावाः, निविष्ट सञ्चितसुखा, अनेकवाच शत-मायुष्मन्तो भार्याभिश्च जनपद प्रधानाभिलाल्यमाना, अतुल शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् अनुभूय तेऽपि उपनमन्ति मरणधर्ममवितृप्ताः कामेषु । ४ । १५ ।

अन्वयार्थ—(भुज्जो-भुज्जो) फिर इसी प्रकार (बलदेव वासुदेवा य पवर पुरिसा) बलदेव और वासुदेव रूप उत्तम पुरुष (महाबल परक्कमा महाधणु विय-ट्टका महासत्त सागरा) जो बडे शारीरिक बल तथा पराक्रम वाले, बडे धनुष को खींचने वाले और महान् साहस के समुद्र हैं (दुद्धरा धणुद्धरा) दुर्धर तथा प्रधान धनुर्धारी (नर वसभा) नरों में वृषभ याने श्रेष्ठ (रामकेसवा भायरो सपरिसा) बलराम तथा कृष्ण अथवा बलदेव वासुदेव दोनों भाई, परिवार सहित भी, 'भोग में अतृप्त ही अस्त होगए' विशेष कहते हैं-(वसुदेव समुद्दविजयमादिय दसाराणं) वसुदेव और समुद्रविजय आदि दशारों के (पज्जुन्न-पतिव-संब-अनिरुद्ध-निसढ-उम्मुय-सारण-गय—सुमुह—दुम्मुहादीण जायवाण अद्धुट्ठाणवि कुमार कोडीणं हियय-दयिता) प्रद्युम्न कुमार, प्रतिव, शम्ब, अनिरुद्ध कुमार, निषध, औल्मुक, सारण, गज-कुमार, सुमुख, और दुर्मुख आदि यादवों के तथा साढे तीन कोटि कुमारों के जो हृदय वल्लभ हैं (देवीए रोहिणीए देवीए देवकीए य) देवी रोहिणी और देवी देवकी के (आणदहियय भाव नंदणकरा) आनन्द रूप हृदय के भाव को बढाने वाले (सोलस रायवर सहस्साणु जातमग्गा) मार्ग में सोलह हजार राजा जिनके साथ चलते हैं (सोलस देवी सहस्स वरणयण—हिययदइया) सोलह हजार राणियों के नेत्रों व हृदयों के प्रधान प्रिय (नानामणि-कणग रयण-मोत्तिय-पवाल-धण-धण्ण-सचय-रिद्धि समिद्ध कोसा) अनेक प्रकार के मणि, सुवर्ण, रत्न-कर्केतन आदि, मौक्तिक, प्रवाल-मूंगा, धन-गिनने योग्य, धान्य—तोलने योग्य के सञ्चय रूप लक्ष्मी से समृद्ध भरपूर-भण्डार वाले (हय-गय रह-सहस्ससामी) हजारों हाथी घोडे व रथों के स्वामी (गामागर-णगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह—पट्टणासम-संवाह-सहस्स-थिमिय-णिव्वुय—पमुदित जण विविह-सास निप्फज्जमाण मेइणि-सर-सरिय-तलाग-सेल-काणण-आरामुज्जाण-मणाभिराम परिमंडियस्स) ग्राम, आकर नगर, खेड, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, और संवाह पूर्व कथित स्वरूप वाले इन हजारों बस्तियों के निर्भय स्थिर-स्वस्थ और प्रमुदित लोक वाला, अनेक प्रकार के धान्य से अङ्कुरित पृथ्वी और सर, नदी, तालाब, पर्वत, कानन, उपवन, आराम-स्त्री पुरुषों के

रमण करने योग्य वन विशेष और मनोहर उद्यान-बगीचों से परिमण्डित ऐसे भारत-वर्ष का (दाहिणड्ढ-वेयड्ढ—गिरि विभत्तस्स-लवण जलहि-परिगयस्स छव्विह-काल-गुण-कमजुत्तस्स—अद्धभरहस्स) वैताढ्य पर्वत से विभाग, पाये हुए दक्षिण के अर्ध भाग रूप, और लवण समुद्र से तीन दिशाओं में घिरे हुए छः प्रकार के कालगुण वाले ऋतुओं के कार्य—क्रम से युक्त अर्द्ध भरत के (सामिका) नाथ हैं, (धीरकित्ति पुरिसा) धीरों के योग्य कीर्ति वाले पुरुष, (ओहबला, अइबला, अनिहया) ओह—अविच्छिन्न—अखुट बल वाले, अतिशय बली, किसी से नहीं मारे गये (अपराजिय-सत्तुमद्दण—रिपुसहस्समाणमहणा) किसी से नहीं हारे हुए, शत्रुओं का मर्दन करने वाले, हजारों शत्रुओं के मानों को मथन करने वाले (साणुक्कोसा अमच्छरी) दयावान् तथा मत्सर—द्रोह से रहित (अच-वला अचंडा) चपलता रहित, बिना कारण क्रोध नहीं करने वाले (मित मंजुल—पलावा) परिमित और मधुर सलाप वाले (हसिय गंभीर महुर भणिया) गम्भीर हास्य और गम्भीर ध्वनि वाले (अब्भुवगयवच्छला सरण्णा) आश्रितों के वत्सल व शरण दाता (लक्खण वंजण गुणोववेया) लक्षण, व्यञ्जन-तिल मशा आदि और गुण, दया आदि इन सबों से युक्त (माणुम्माण पमाण पडिपुन्न सुजाय सव्वगसुद-रगा) मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण तथा अच्छे बने हुए सभी अवयवों से सुन्दर शरीर वाले (ससि सोमागार कतपियदसणा) चन्द्र की तरह सौम्य आकार और कान्त व प्रियदर्शन वाले (अमरिसणा) अपराधों को नहीं सहने वाले या कार्य में आलस्य रहित (पयड—डंड-प्पयार-गंभीर-दरिसणिज्जा) प्रचण्ड दण्ड विशेष का विधान करने वाले या प्रकाण्ड सेना के विस्तार वाले तथा देखने में गम्भीर मुद्रा वाले (तालद्ध उव्विद्ध गरुल केऊ) उठी हुई ताल वृक्ष की ध्वजा वाले और गरुड केतु वाले 'बलराम और कृष्ण' (बलवग—गज्जंत-दरित—दप्पित-मुट्ठिय-चाणूर—मूरगा) बलवान तथा मेरे समान कौन है ? इस प्रकार गाजते हुए अह-ङ्कारियों मे दर्पवाले, मौष्टिकमल्ल और चाणूर नामक मल्ल को चूर्ण करने वाले (रिट्ठ-वसभघातिणो) कस के अरिष्ट नामक बैल को मारने वाले (केसरिमुह विप्फाडगा) केसरी का मुंह फाडने वाले (दरित नागदप्पमहणा) दुष्ट नाग के दर्प को मथने वाले (जमलज्जुण भजगा) अर्जुन वृक्ष के रूप को धारण करने वाले दो विद्या-धरों के मान भङ्ग करने वाले 'श्री कृष्ण' (महासउणि पूतनारिवू) महा शकुनि और पूतना के शत्रु (कस मउड मोडगा) युद्ध के लिये तत्पर ऐसे कस के मुकुट को

मोडने वाले (जरासिंधमाण महणा) जरासन्ध नामक राजा के मान को मथन करने वाले (तेहि य अविरल—सम—सहिय—चद-मंडल समप्पभेहिं सूर—मिरीय-कवयं—विणिम्मुयंतेहिं सपति—दडेहि आयवत्तेहि धरिज्जतेहिं) और छिद्र रहित तुल्यशलाका वाले तथा हितकारी चन्द्र मन्डल के समान प्रभावाले, सूर्य की किरणों के समान चारों ओर प्रभा-समूह को फैलाते हुए प्रतिदण्ड वाले,[1] शिरपर धारे जाते हुए—' छत्रों से (विरायंता) विराजमान हैं।

(ताहि य) और उन चामरों से युक्त जो (पवर गिरि कुहर विहरण समुद्धियाहि) ऊचे पहाड़ की गुफा मे चमरी गाय के विचरते समय उखडे हुए (निरुवहय चमर-

१—वाचनान्तर में छत्र का वर्णन फिर ऐसा मिलता हैं अब्भपडल पिंगलुज्जलेहिं, अविरल सम सहिय चद मंडल समप्पभेहिं, मगल सयभत्ति—च्छेय—चित्तियखिंखिणि—मणि—हेमजाल विरइय—परिगय—पेरत—कणय—घटिय—पयलिय खिणिखिणिंत—सुमहुर—सुह-सुह—सद्दाल सोहिएहिं, सपयरग—मुत्तदाम—लवत भूसणेहिं, नरिंद—वामप्पमाण—रुदपरिमडलेहिं, सीयायव-वायवरिस—विसदोसणासएहिं, तमरय—मलबहुल-पडल—धाडण—पहाकरेहिं, मुद्धसुह—सिवच्छायसमणुबद्धेहिं, वेरुलियदडमज्जिएहिं, वयरामय—वत्थि-णिउण—जोइय—अट्ठसहस्स-वरकचणसलाग-निम्मिएहिं, सुविमल—रयय-सुट्ठुच्छइएहिं, णिउणोविय-मिसिमिसिंत मणि—रयण-सूर-मडल—वितिमिर कर—निग्गय—पडिहय-पुणरवि—पच्चोवयंत चचल मरीइ कवय विणिम्मुयतेहिं —'बडे बादल की तरह पीले और उज्ज्वल छिद्र रहित, बराबर हितकारी व चन्द्र-मण्डल के समान प्रभा वाले, कुशल शिल्पी के द्वारा मङ्गलकारी सैकडों विच्छित्तिओं से चित्र युक्त, छोटी घंटिका और रत्न जटित सोने की जाल की रचना से चारों ओर घिरे हुए, प्रान्त भाग में हिलती हुई सुवर्ण घटिकाओं के खिनखिनाहट से अतिशय मधुर और कर्णप्रिय शब्दों से शोभित, आभरण युक्त लटकती हुई मोती की माला के भूषण वाले, राजा के फैलाये हुए बाहुओं के प्रमाण गोल व विस्तार वाले, सर्दी गर्मी, धूप, हवा, वर्षा और विषसम्बन्धी दोषों को मिटाने वाले, अन्धकार तथा धूलिमल के सघन पटल को नष्ट करने वाली प्रभा वाले, मस्तक को सुखकारी निरुपद्रव, छाया के सम्बन्ध वाले, वैडूर्यरत्न के निर्मलदण्डों पर ताने हुए, वज्रमय मध्यभाग पर चतुर शिल्पिओं से जोडे हुए और एक हजार आठ उत्तम सोने की शलाकाओं से जो निर्मित हैं, खूब साफ चादी के पत्तरे से अच्छी तरह छाये हुए, कुशल शिल्पिओं से साफ किये हुए और चाक चिक्ययुक्त मणिरत्न की किरणों से सूर्यमण्डल की निस्तिमिर बाहर पडती हुई किरणों की तरह किरण समूह को फैलाने वाले (धारे जाते हुए) ऐसे छत्रों से शोभायमान' ॥

पच्छिम सरीर संजाताहिं) रोग रहित चमरी गौ की पूंछ के पिछले भाग में (अम-इल-सिय-कमल-विमुकुलुज्जलित-रयत-गिरि-सिहर-विमल-ससि-किरण—सरिस-कलहोय निम्मलाहि) निर्मल और खिला हुआ श्वेत कमल तथा उज्ज्वल किये हुए चांदी के पर्वत का शिखर एव निर्मल चन्द्र को किरणों के समान तथा स्वच्छ चांदी जैसे निर्मल (पवणाहय-चवल-चलिय-सललिय-पणच्चिय-वीइ-पसरिय-खीरोदग-वरसागरुप्पूर चचलाहिं) वायु से ताडित होकर जैसे चपल हो वैसे चलता हुआ, लीला के साथ प्रवृत्त तरङ्गों से फैले हुए उत्तम क्षीरोदधि-क्षीर समुद्र-के उप्पूर को तरह चञ्चल, (माणस-सर-पसर-परिचियावास—विसदवेसाहिं) मानस-सरोवर के विस्तार में परिचित आवास और सफेद वेष वाली-(कणग-गिरि-सिहर-संसिताहिं) सुवर्ण गिरि के शिखर पर आश्रय रखने वाली (उवाउप्पात-चवल जयिण-सिग्घ-वेगाहिं हंस वधूयाहिं चेव कलिया) नीचे जाने व ऊपर उठने में चपल वस्तुओं को जोतने योग्य शीघ्र वेगवाली जैसे हस वधु हंसनिओं को तरह जो (नाणामणि—कणग-महरिह-तवणिज्जुज्जल-विचित्त दडाहिं सललियाहिं) अनेक प्रकार की मणियों और सुवर्ण तथा बहु मूल्य तपनीय-लाल सोने के उज्जवल व विचित्र दड वाले लालित्य-युक्त (नरवति-सिरि समुदय-प्पगासणकरीहिं) राज लक्ष्मी के समुदाय को प्रकट करने वाली (वरपट्टणुग्गयाहिं समिद्धरायकुल सेवियाहिं) श्रेष्ठ बाजार में निर्मित तथा समृद्ध राजकुलो से सेवित, (कालागुरु-पवर-कुदुरुक्क-तुरुक्क-धूववस-वास-विसद-गधुद्धूयाभिरामाहि) काला, अगुरु, प्रधान कुदुरुक्क-चीडा, तुरुक्क-लोबान, इनके धूप के कारण प्रकट, एव स्पष्ट गन्ध की वासना से रमणोय (चिल्लिकाहिं उभओ पासपि चामराहिं उक्खिप्पमाणाहि) दीपते हुए तथा दोनों बाजू उछाले जाते हुए चामरों से विराजमान (सुह-सीतल-वातवीतियगा) सुखकारी चामरों की शीतल हवा से वीजित शरीर वाले (अजिना अजितरहा) किसी से नहीं जोते गए-तथा अजित रथ वाले (हल मुसल-कणग पाणी) हल मूशल और बाण को हाथ में लिये हुए-बलदेव (सख-चक्क-गय-सत्ति-णदगधरा) शङ्ख, चक्र-सुदर्शन चक्र और कौमुदी नामक गदा व शक्ति-त्रिशूल तथा नन्दक नाम के खड्ग को धारण करने वाले कृष्ण हैं (पवरुज्जल-सुकत-विमल-कोथूभ-तिरोडधारी) उत्तम श्वेत तथा सुरचित-निर्मल कौस्तुभमणि और किरीट-मुकुट को धारण करने वाले (कुडल-उज्जोवियाणणा) कुण्डल से उद्योतित मुख वाले पुडरीयणयणा) पुडरीक-कमल-के समान नेत्र वाले (एगावली-कट—रत्तियवच्छा) कण्ठ मे पहनी हुई एकावली-सुवर्ण

मालो से आह्लादक वक्षस्थल वाले (सिरिवच्छ सुलछणा, वरजसा) श्रीवत्स के उत्तम लक्षण वाले व श्रेष्ठ कीर्ति वाले (सव्वोउय सुरभि कुसुम-रइय-पलंब-सोहंत-वियसंत-चित्तवणमालरतिय—वच्छा) षड् ऋतुओं के सुगन्धित फूलों से गूथी हुई, खूब लम्बी शोभायमान और विकाश युक्त, चित्र विचित्र वनमाला से प्रीतिप्रद वक्षस्थल वाले (अट्ठसय विभत्त—लक्खण—पसत्थ—सुंदर—विराइयगमगा) स्वस्तिक आदि विभाग युक्त एक सौ आठ उत्तम लक्षणों से सुन्दर और विशेष शोभा युक्त अङ्गोपाङ्ग वाले (मत्त गय वरिंद—ललिय-विक्कम—विलसिय गई) मदोन्मत्त गजेन्द्र के समान धीर-गम्भीर गतिवाले (कडि-सुत्तग-नील पीत-कोसिज्जवाससा) कटि सूत्र, प्रधान नीले और पीले कौशेयक वस्त्र वाले (पवर दित्ततेया) बहुत दीप्ति युक्त तेज वाले (सारय-णव-थणिय-महुर-गभीर-निद्ध घोसा) शरत् काल के नव जलधर के समान गम्भीर व स्निग्ध ध्वनि वाले (नरसीहा सीह विक्कमगई) मनुष्यों में सिंह, सिंह के समान पराक्रम और गमन वाले (सोमा, वारवइ पुन्न-चंदा) सौम्य आकृति वाले, द्वारिका नगरी के पूर्णचन्द्र (पुव्वकय—तवप्पभावा, निविट्ठ सचिय सुहा) पूर्वकृत तपस्या के प्रभाव से प्राप्त और सचित सुख वाले (अणेगवाससयमाउवंतो) अनेक सैकड़ों वर्षों की आयु वाले ऐसे 'बलदेव और वासुदेव रूप' (अत्थमिया पवर-राय सीहा) प्रधान राजसिंह, अस्त होगये (भज्जाहिं य जणवयप्पहाणाहिं) और देश की प्रधान स्त्रियों से (लालियंता) विलास करते हुए (अतुलसद्द—फरिस—रस—रूव—गंधे अणुभवेत्ता) अनुपम शब्द, स्पर्श, रस, और गन्धों का अनुभव करके (कामाणं अवितत्ता) काम भोगों मे तृप्ति रहित (तेवि मरण धम्मं उवणमंति) वे बलदेव एव वासुदेव भी मरण धर्म—मृत्यु—को प्राप्त कर जाते हैं। ४।१५॥

अब मांडलिक राजा व युगलिकों का वर्णन करते हैं—

मूल—"भुज्जो मंडलिय नरवरेंदा, सबला. सअंतेउरा सपरिसा, सपुरो हियाऽमच्च दंड नायक—सेणावति-मंत-नीति कुसला, नाणा-मणिरयण-विपुल-धण—धन्न—संचय निही, समिद्ध कोसा, रज्ज-सिरिं विपुल मणुभवित्ता विक्कोसंता, बलेण मत्ता, तेवि उवणमंति मरण धम्मं अवितत्ता कामाणं । भुज्जो उत्तर कुरु देवकुरु-वण-विवर—पाय चारिणो, नरगणा, भोगुत्तमा, भोग लक्खणधरा, भोग सस्सिरीया, पसत्थ-सोम-पडिपुण्ण रूव-दरिसणिज्जा, सुजात-

सव्वंग-सुंदरंगा, रत्तुप्पल-पत्त-कंत-कर-चरण-कोमलतला, सुपइ-ट्ठिय-कुम्म-चारु-चलणा, अणुपुव्व-सुसंह यंगुलीया, उन्नय-तणु-तंब-निद्धनखा, संठिय सुसिलिट्ठ गूढ गोंफा, एणी-कुरुविंद-वत्त-वट्टाणु पुव्वि जंघा, समुग्ग-निसग्ग-गूढ जाणू, [1]वर वारण-मत्त-तुल्ल-विक्कम विलासितगतो, वर तुरग-सुजाय गुज्झ देसा, आइन्न हयव्व-निरुवलेवा, पमुइय-वर तुरग-सीह-अतिरेग वट्टिय कडी, गंगावत्त-दाहिणावत्त-तरंग-भंगुर-रविकिरण-बोहिय-विकोसा-यंत-पम्ह गंभीर-विगडनाभी, साहत-सोणंद-मुसल-दप्पण निगरिय-वर कणग-च्छरु सरिस-वर वइर-वलियमज्झा, उज्जुग-सम साहिय जच्च-तणु कसिण-णिद्ध-आदेज्ज-लडह-सूमाल-मउय रोमराई, झस-विहग-सुजात-पीणकुच्छी, झसोदरा, पम्ह-विगड नाभा, संनतपासा, संगयपासा, सुंदर पासा, सुजात-पासा, मित माइय-पीण-रइयपासा, अकरंडुय-कणग-रुयग-निम्मल-सुजाय-निरुवहय देहधारी, कणग-सिलातल-पसत्थ-समतल-उवइय विच्छिन्न-पिहुल वच्छा, जुयसंनिभ-पीण-रइय-पीवर-पउट्ठ-संठिय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठ-सुनिचित-घण-थिर-सुबद्ध संधी, पुरवर-वरफलिह-वट्टियभुया, भुय-ईसर-विपुल भोग-आयाण-फलि उच्छूढ दीह बाहू, रत्ततलो-वतिय-मउय-मंसल-सुजाय-लक्खण-पसत्थ-अच्छिद्द जालपाणी, पीवर-सुजाय-कोमल वरंगुली, तंब-तलिण-सुइ-रुइल-निद्ध नखा, निद्ध-पाणिलेहा, चंद-पाणिलेहा, सूर-पाणिलेहा, संख-पाणिलेहा, दिसा सोवत्थिय-पाणिलेहा, रवि-ससि-संख-वरचक्क-दिसा सोव-त्थिय विभत्त-सुविरइय-पाणिलेहा, वर महिस-वराह-सीह [2]सदूल-सीह-नाग-वर-पडिपुन्न-विउल खंधा, चउरंगुल सुप्पमाण-कंबुवर-सरिसग्गीवा, अवट्ठिय-सुविभत्त-चित्त मंसू, उवचिय-मंसल-पस-त्थ-सद्दूल-विपुल हणुया, ओयविय सिलप्प वाल-बिंबफल-

---

१ क-गय-गमण सुजाय सन्निभोक वर-२ क-सद्दूल रिसह

मालो से आह्लादक वक्षस्थल वाले (सिरिवच्छ सुलंछणा, वरजसा) श्रीवत्स के उत्तम लक्षण वाले व श्रेष्ठ कीर्ति वाले (सव्वोउय सुरभि कुसुम-रइय-पलंब-सोहंत-वियसंत-चित्तवणमालरतिय—वच्छा) षड् ऋतुओं के सुगन्धित फूलों से गूंथी हुई,खूब लम्बी शोभायमान और विकाश युक्त, चित्र विचित्र वनमाला से प्रीतिप्रद वक्षस्थल वाले (अट्ठसय विभत्त—लक्खण—पसत्थ—सुंदर—विराइयगमगा) स्वस्तिक आदि विभाग युक्त एक सौ आठ उत्तम लक्षणों से सुन्दर और विशेष शोभा युक्त अङ्गोपाङ्ग वाले (मत्त गय वरिंद—ललिय-विक्कम—विलसिय गई) मदोन्मत्त गजेन्द्र के समान धीर-गम्भीर गतिवाले (कडि-सुत्तग-नील पीत-कोसिज्जवाससा) कटि सूत्र, प्रधान नोले और पीले कौशेयक वस्त्र वाले (पवर दित्ततेया) बहुत दीप्ति युक्त तेज वाले (सारय-णव-थणिय-महुर-गभीर-निद्ध घोसा) शरत् काल के नव जलधर के समान गम्भीर व स्निग्ध ध्वनि वाले (नरसीहा सीह विक्कमगई) मनुष्यों मे सिंह, सिंह के समान पराक्रम और गमन वाले (सोमा, बारवइ पुन्न-चंदा) सौम्य आकृति वाले, द्वारिका नगरी के पूर्णचन्द्र (पुव्वकय-तवप्पभावा, निविट्ठ संचिय सुहा) पूर्वकृत तपस्या के प्रभाव से प्राप्त और सचित सुख वाले (अणेगवाससयमाउवंतो) अनेक सैकडों वर्षों की आयु वाले ऐसे 'बलदेव और वासुदेव रूप' (अत्थमिया पवर-राय सीहा) प्रधान राजसिंह, अस्त होगये (भज्जाहि य जणवयप्पहाणाहिं) और देश को प्रधान स्त्रियों से (लालियता) विलास करते हुए (अतुलसद्द-फरिस-रस-रूव—गंधे अणुभवेत्ता) अनुपम शब्द, स्पर्श, रस, और गन्धों का अनुभव करके (कामाणं अवितत्ता) काम भोगों मे तृप्ति रहित (तेवि मरण धम्मं उवणमंति) वे बलदेव एव वासुदेव भी मरण धर्म—मृत्यु—को प्राप्त कर जाते हैं। ४।१५॥

अब मांडलिक राजा व युगलिकों का वर्णन करते हैं—

मूल—"भुज्जो मंडलिय नरवरेंदा,सबला सअंतेउरा सपरिसा, सपुरोहियाऽमच्चदंड नायक—सेणावति-मंत-नीति कुसला, नाणा-मणिरयण-विपुल-धण—धन्न—संचय निही, समिद्ध कोसा, रज्ज-सिरिं विपुल मणुभवित्ता विक्कोसंता, बलेण मत्ता, तेवि उवणमंति मरण धम्मं अवितत्ता कामाणं । भुज्जो उत्तर कुरु देवकुरु—वण-विवर—पाय चारिणो, नरगणा, भोगुत्तमा, भोग लक्खणधरा, भोग सस्सिरीया,पसत्थ-सोम-पडिपुण्ण रूव-दरिसणिज्जा,सुजात-

सव्वंग-सुंदरंगा, रत्तुप्पल-पत्त-कंत-कर-चरण-कोमलतला, सुपइ-ट्ठिय-कुम्म-चारु-चलणा, अणुपुव्व-सुसंहय अंगुलीया, उन्नय-तणु-तंब-निद्धनखा, संठिय सुसिलिट्ठ गूढ गोंफा, एणी-कुरुविंद-वत्त-वट्टाणु पुव्वि जंघा, समुग्ग-निसग्ग-गूढ जाणू, [1]वर वारण-मत्त-तुल्ल-विक्कम विलासितगतो, वर तुरग-सुजाय गुज्झ देसा, आइन्न हयव्व-निरुवलेवा, पमुइय-वर तुरग-सीह-अतिरेग वट्टिय कडी, गंगावत्त-दाहिणावत्त-तरंग-भंगुर-रविकिरण-बोहिय-विकोसा-यंत-पम्ह गंभीर-विगडनाभी, साहत-सोणंद-मुसल-दप्पण निगरिय-वर कणग-च्छरु सरिस-वर वइर-वलियमज्झा, उज्जुग-सम सहिय जच्च-तणु कसिण-णिद्ध-आदेज्ज-लडह-सूमाल-मउय रोमराई, झस-विहग-सुजात-पीणकुच्छी, झसोदरा, पम्ह-विगड नाभा, संनतपासा, संगयपासा, सुंदर पासा, सुजात-पासा, मित माइय-पीण-रइयपासा, अकरंडुय-कणग-रुयग-निम्मल-सुजाय-निरुवहय देहधारी, कणग-सिलातल-पसत्थ-समतल-उवइय विच्छिन्न-पिहुल वच्छा, जुयसंनिभ-पीण-रइय-पीवर-पउट्ठ-संठिय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठ-सुनिचित-घण-थिर-सुबद्ध संधी, पुरवर-वरफलिह-वट्टियभुया, [2]भुय-ईसर-विपुल भोग-आयाण-फलि उच्छूढ दीह बाहू, रत्ततलो-वतिय-मउय-मंसल-सुजाय-लक्खण-पसत्थ-अच्छिद्द जालपाणी, पीवर-सुजाय-कोमल वरंगुली, तंब-तलिण-सुइ-रुइल-निद्ध नखा, निद्ध-पाणिलेहा, चंद-पाणिलेहा, सूर-पाणिलेहा, संख-पाणिलेहा, दिसा सोवत्थिय-पाणिलेहा, रवि-ससि-संख-वरचक्क-दिसा सोव-त्थिय विभत्त-सुविरइय-पाणिलेहा, वर महिस-वराह-सीह [3]सदूल-सीह-नाग-वर-पडिपुन्न-विउल खंधा, चउरंगुल सुप्पमाण-कंबुवर-सरिसग्गीवा, अवट्ठिय-सुविभत्त-चित्त मंसू, उवचिय-मंसल-पसत्थ-सद्दूल-विपुल हणुया, ओयविय सिलप्प वाल-बिंबफल-

१क-गय-गमण सुजाय सन्निभोरु वर-२ क-सद्दल रिसह

संनिभा-धरोट्ठा, पंडुर-ससि-सकल-विमल संख-गोखीर फेण-कुंद-दगरय-मुणालिया-धवल दंतसेढी, अखंड दंता, अप्फुडियदंता, अविरलदंता, सुणिद्धदंता, सुजायदंता, एगदंत सेढिव्व- अणेगदंता, हुयवह-निद्धंत-धोय तत्तत वणिज्ज-रत्ततला-तालुजीहा, गरुलायत उज्जुतुंग नासा, अवदालिय-पोंडरीय-नयणा, [1]कोकासिय धवल-पत्तलच्छा, आणामिय-चाव-रुइल-किण्हब्भराजि-संठिय-संगया-यय-सुजाय भुमगा, अल्लीण-पमाण-जुत्त सवणा, सुसवणा, पीण-मंसल-कवोल देसभागा, अचिरुग्गय-बालचंद-संठिय-महानिडा-ला, उडुवतिरिव-पडिपुन्न-सोमवयणा,—छत्तागारुत्तमंगदेसा, घणनिचिय-सुबद्ध-लक्खणुन्नय-कूडागार-निभ-पिंडियग्गसिरा, हुयवह—निद्धंत-धोय तत्तत-वणिज्ज-रत्तकेसंत केसभूमी, सामली-पोंड-घणनिचिय-छोडिय मिउ विसत-पसत्थ-सुहुम-लक्खण सुगंधि सुंदर-भुयमोयग भिंग-नील-कज्जल-पहट्ठ-भमरगण-निद्ध निगुरुंब-निचिय-कुंचिय—पयाहिणावत्त—मुद्ध सिरया, सुजात सुविभत्त संगयंगा, लक्खण वंजण गुणोववेया, पसत्थ-बत्तीस लक्खण धरा, हंसस्सरा, कुंचस्सरा, दुंदुभिस्सरा, सीह-स्सरा, ([2]ओघ) सरा, मेघसरा, सुस्सरा, सुस्सर, निग्घोसा; वज्जरिसह, नाराय, संघयणा, सम चउरंस, संठाण, संठिया, छाया उज्जोवियंगमंगा, पसत्थच्छवी, निरातंका, कंकग्गहणी, कवोत परिणामा, सउणि पोस पिट्ठंत रोरुपरिणया, पउमुप्पल सरिस गंधुस्सास सुरभिवयण, अणुलोम वाउवेगा, अवदाय-निद्धकाला, विग्गहिय-उन्नय कुच्छी अमयरस-फलाहारा, तिगा-ऊयस मूसिया तिपलिओवमट्ठितिका, तिन्निय पलिओवमाइं परमाउं पालयित्ता ते वि उवणमंति मरण धम्मं, अवितत्ता कामाणं। पमया वि य तेसिं होंति सोम्मा सुजाय सव्वंग सुंद-रीओ, पहाण महिला गुणेहिं जुत्ता, अतिकंत-विसप्पमाण-मउय-

१क—विकोसिय धवल२-क-उज्जसरा, आ० स०

सुकुमाल-कुम्म संठिय-सिलिट्ठ चरणा, उज्जु-मउय-पीवर सुसा-
हतंगुलीओ, अब्भुन्नत—रतित-तलिण-तंब-सुइ-निद्धनखा, रोम
रहिय वट्ट-संठिअ-अजहन्न पसत्थ-लक्खण-अकोप्प-जघजुयला,
सुणिम्मित—सुनिगूढ जाणु, मसल-पसत्थ—सुबद्ध-संधी,
कयली—खंभातिरेक-संठिय—निव्वण-सुकुमाल—मउय-कोमल
अविरल-सम सहित-सुजायवट्ट-पीवर-निरंतरोरू, अट्ठावय-वीइ-
पट्ट-संठिय-पसत्थ-विच्छिन्न-पिहुलसोणी, वयणायामप्पमाण-
दुगुणिय-विसाल-मंसल-सुबद्ध-जहण-वर धारिणीओ, वज्जवि-
राइय-पसत्थ-लक्खण निरोदरीओ, तिवलि-वलिय-तणु नमिय-
मज्झियाओ, उज्जुय-समसहिय-जच्चतणु-कसिण-निद्ध-आदेज्ज-
लडह—सुकुमाल-मउय-सुविभत्त—रोमराती ओ, गंगा वत्तग-
पदाहिणावत्त—तरंगभंग-रविकिरण—तरुण-बोधित-आकोसायत-
पासा, सुजातपासा, संगतपासा, मियमायिय-पीण-रतितपासा,
अकरंडुय—कणग-रुयग—निम्मल-सुजाय—निरुवहय—गायलट्ठी,
कंचणकलस-पमाण-समसहिय-लट्ठ चूचुय-आमेलग-जमल-जुयल-
वट्टिय-पओहराओ, भुयंग-अणुपुव्व-तणुय-गोपुच्छ-वट्ट-समस-
हिय-नमिय-आदेज्ज-लडहवाहा, तंबनहा, मंसलग्गहत्था, कोमल
पीवर वरंगुलीया, निद्ध पाणिलेहा, ससि-सूर-संख-चक्क-वरसो-
त्थिय-विभत्त—सुविरइय-पाणिलेहा, पीणुण्णय-कक्ख-वत्थिप्प-
देस-पडिपुन्न-गलकवोला, चउरंगुल-सुप्पमाण-कंबुवर-सरिसगीवा,
मंसलसंठिय—पसत्थ-हणुया, दालिम—पुप्फ-प्पगास—पीवर-
पलंब-कुंचित वराधरा, सुंदरोत्तरोट्ठा, दधि-दग-रय-कुंद-चंद-
वासंति-मउल-अच्छिद्द—विमलदसणा, रत्तुप्पल-पउमपत्त-सुकु-
माल-तालुजीहा, कणवीर-मउलऽकुडिलऽब्भुन्नय-उज्जु-तुंग-नासा,
सारद-नवकमल कुमुत-कुवलयदल-निगर-सरिस-लक्खण-पसत्थ-
अजिम्हकंत नयणा, आनामिय-चाव-रुइल—किण्हब्भराइ-संगय-
सुजाय-तणु-कसिण-निद्ध भुमगा, अल्लीण-पमाण जुत्त-सवणा,

सुस्सवणा, पीणमट्ठ गंडलेहा, चउरंगुल-विसाल-सम निडाला, कोमुदि-रयणिकर-विमल-पडिपुन्न-सोमवदणा, छत्तुन्नय-उत्तमंगा, अकविल-सुसिणिद्ध-दीहसिरया, छत्तज्झय-जूव-थूभ—दामिणि-कमंडलु-कलस-वावि-सोत्थिय-पडाग—जव-मच्छ-कुम्म-रहवर-मकर-ज्झय-अंक-थाल-अंकुस-अट्ठावय-सुपइट्ठ—अमर-सिरिया-भिसेय-तोरण-मेइणि-उदधिवर-पवर भवण—गिरिवर-वरायंस-सललिय—गय-उसभ-सीह—चामर—पसत्थ-बत्तीस लक्खण-धरीओ, हंस [1]सरिच्छ गतीओ, कोइल-महुर-गिराओ, कंता, सव्वस्स अणुमयाओ, ववगय-वलि-पलिय-वंग-दुव्वन्न-वाधि-दोहग्ग-सोयमुक्काओ, उच्चतेण य नराण थोवूण मूसियाओ, सिंगारागार-चारुवेसाओ, सुंदर-थण—जहण-वयण-कर-चरण-णयणा, लावण्णरूव—जोव्वण—गुणोववेया, नंदणवण—विवर-चारिणीओव्व अच्छराओ उत्तरकुरु-माणुसच्छराओ, अच्छेरग पेच्छणिज्जियाओ, तिन्नि पलिओवमाइं परमाउ पालयित्ता, ताओऽवि उवणमंति मरणधम्मं, अवितित्ता कामाणं ॥ सू० ५ । १५ ॥

छाया—"भूयो माण्डलिक-नरवरेन्द्रा, सबलाः, सान्तःपुरा, सपरिषदः,–सपुरोहिताऽमात्य-दण्डनायक-सेनापति-मन्त्र-नीति कुशला, नानामणि–रत्न–विपुल–धन-धान्य—सञ्चय निधि–समृद्ध–कोशा, राज्यश्रिय विपुल मनुभूय व्युत्–क्रोशन्तो बलेन-मत्तास्तेऽप्युपनमन्ति मरण धर्ममवितृप्ता कामेषु। भूय–उत्तरकुरु-देवकुरु-वन-विवर-पाद चारिणो, नरगणाः, भोगोत्तमा', भोग लक्षणधराः, भोगसश्रीका, प्रशस्तसौम्य परिपूर्ण—रूपदर्शनीया., सुजात—सर्वाङ्ग—सुन्दराङ्गा, रक्तोत्पलपत्र–कान्तकर-चरण-कोमल तला, सुप्रतिष्ठित—कूर्म चारु-चलना, आनुपूर्व्य–सुसंहताऽङ्गुलीका उन्नत तनु-ताम्र—स्निग्धनखा.,-सस्थित-सुश्लिष्ट-गूढ-गुल्फा, एणी-कुरुविन्द वृत्त-वर्तानुपूर्विजंघा', समुद्गक-निसर्ग गूढजानवो, वरवारण-मत्त-तुल्य–विक्रम–विलासित गतयः, वरतुरग-सुजात गुह्यदेशा, आकीर्ण हयाइव निरुपलेपा,–प्रमुदित-वरतुरग-सिंहाऽतिरेक वर्तित-कटयो, गङ्गावर्त दक्षिणाऽऽवर्त-तरङ्ग—भङ्गुर रविकिरण बोधित—विकोशायमान पद्म गम्भार-विकटनाभय, संहित-सोणंद (त्रिपादपीठिका) मुशल-दर्प निगडित-वकनक-

[1]-क-सरिच्छ गताओ

त्सरु सदृश-वरवज्र वलित-मध्याः, ऋजुक-सम-सहित-जात्यतनुक-कृष्ण स्निग्धादेय लडह (मनोज्ञ)-सुकुमार मृदुल-रोमराजय , झप-विहग-सुजात पीन कुक्षय , झषोदराः,पद्म विकट-नाभयः, सन्नतपार्श्वा , सङ्गत पार्श्वाः, सुन्दरपार्श्वा , सुजातपार्श्वाः, मितमात्रिक-पीन-रतिदपार्श्वाः, अनस्थि [अकरण्डुक] कनक -रुचक निर्मल सुजात निरुपहत--देह-धारिणः, कनकशिलातल- प्रशस्त--समतलोपचित विच्छिन्न- पृथुल विपुलवक्षस , युग-सन्निभ-पीन-रतिद-पोवर-प्रकोष्ठ- संस्थित-सुश्लिष्ट-लष्ट सुनिचित घन-स्थिर सुबद्धसन्धयः, पुरवर वरपरिघ—वर्तितभुजा ,-भुजगेश्वर-विपुल भोगाऽऽदान-फलिकाच्छूढ-दीर्घ-बाहवः, रक्ततलोप चयिक- मृदुक-मांसल-सुजात—लक्षण-प्रशस्ताऽच्छिद्र—जाल-पाणयः, पीवर—सुजात-कोमल-वराङ्गुलयः, ताम्र-तलिन शुचि-रुचिर—स्निग्ध-नखाः, स्निग्ध-पाणिरेखाश्चन्द्र पाणिरेखा, सूर्य—पाणिरेखा, शङ्खपाणिरेखाश्चक्र—पाणिरेखा, दिक्स्वस्तिक—पाणिरेखा,-रवि शशि—शङ्ख—वर चक्र—दिक् स्वस्तिक-विभक्त सुविरचित—पाणिरेखा, वरमहिष—वराह—सिंह—शार्दूल सिंह—नागवर-परिपूर्ण—विपुलस्कन्धाश्चतुरङ्गुल—सुप्रमाण - कम्बुवर - सदृशग्रीवा,-अवस्थित -सुवि-भक्त—चित्र [शोभाढ्य श्मश्रु कूर्चकेशा] मश्रवः, उपचित-मासल—प्रशस्त—शार्दूल-विपुलहनुकाः, परिकर्मित —शिल प्रवाल-बिम्बफल सन्निभाऽधरोष्ठा पाण्डुर—शशि-सकल -विमल शङ्ख -गोक्षीर -फेन-कुन्द--दकरजो- मृणालिका—धवल दन्त श्रेणयः, अखण्ड दन्ता, अस्फुटित दन्ता अविरल दन्ताः, स्निग्ध दन्ता सुजात दन्ता, एकदन्त श्रेणिरिव, अनेक दन्ताः, हुतवहनिर्ध्मात धौत-तप्त तपनीयरक्ततलास्तालुजिह्वा, गरुडा-यत-ऋजुतुङ्गनासिका अवदारित—पुण्डरीक नयनाः, विकसित-[काकामित] धवल-पत्रल-पक्ष्माणः, [पत्रलाक्षा.] आनामित चाप-रुचिर- कृष्णाभ्र--राजि-संस्थित सङ्गता-यत-सुजातभ्रूवः, आलीन-प्रमाणयुक्त श्रवणा ,सुश्रवणा पीन-मांसल-कपोल देशभागाः, अचिरोद्गत बाल चन्द्र-संस्थित महाललाटा , उडुपतिरिव परिपूर्ण सौम्यवदनाश्छत्रा-काराुत्तमाङ्ग देशाः,घननिचित सुबद्ध-लक्षणोन्नत कूटाकार– निभ-पिण्डिताग्रशिरस्काः,हुत वह-निर्ध्मात धौत-तप्त तपनीयरक्त-केशान्त केशभूमय ,शाल्मली वृन्त फल–घन-निचित-छोटित-मृदुविशद प्रशस्त-सूक्ष्म लक्षण-सुगन्धि सुन्दर- भुजमोचक भृङ्ग—नील—कज्जल-प्रहृष्ट भ्रमरगण-स्निग्ध-निकुरम्ब निचित कुञ्चित प्रदक्षिणावर्त मूर्द्धशिरोजा , सुजात सुवि-भक्त-सङ्गताङ्गा , लक्षण व्यञ्जन- गुणोपपेता , प्रशस्त-द्वात्रिंशल्लक्षणधराः, हंसस्वराः,क्रौ-ञ्चस्वराः, दुन्दुभिस्वराः, सिंहस्वरा , [ओघ] स्वराः, मेघस्वरा , सुस्वरा , सुस्वरनिर्घो-षा, वज्रर्षभ-नाराच-संहनना , समचतुरस्र संस्था न-संस्थिताः, छायो द्योतिताङ्गोपाङ्गाः,

प्रशस्तच्छवयो, निरातङ्का , कङ्कग्रहणीका· कपोत परिणामा , शकुनि पोप-पृष्ठान्तरोरु-परिणता , पद्मोत्पल-सदृश-गन्धोच्छ्वास-सुरभिवदना , अनुलोम वायुवेगा·,अवदात-स्निग्ध-काला , (कृष्णा) वैग्रहिकान्नत कुक्षयो मृतरस फलाहारास्त्रि गव्यूति समुच्छ्रूता , त्रिपल्योपमस्थितिका , त्राणि च पल्योपमानि परमायूंषि पालयित्वा तेऽप्युपनमन्ति मरणधममवितृप्ता कामेषु ।

प्रमदा अपि च तेषा भवन्ति सौम्या , सुजात—सर्वाङ्ग—सुन्दर्य ,प्रधान—महिला गुणैर्युक्ता—अतिकान्त --विसर्पन्मृदुल—सुकुमार—कूर्म-सस्थित-श्लिष्ट चरणा ,ऋजु-मृदुल—पीवर—सुसंहताऽङ्गुलीका, अभ्युन्नत -रतिद तलिन—ताम्र—सुस्निग्धनखा, रोमरहित—वृत्त सस्थित—प्रशस्त लक्षणाऽजघन्याऽकोप्य जङ्घा युगला , सुनिर्मित-सुनिगूढ—जानु मासल—प्रशस्त—सुबद्ध सन्धय , कदली—स्तम्भातिरेक—सस्थित-निर्व्रिणा—सुकुमार—मृदु क—कोमलाऽविरल—सम संहित—सुजात-वृत्त-पीवर-निरन्तरोरव , अष्टापद—वीचि—पृष्ठ-सस्थित—प्रशस्त—विच्छिन्न पृथुल-श्रोणय', वदनायाम—प्रमाण—द्विगुणित—विशाल—मासल-सुबद्ध—जघनवर धारिण्य ,वज्र - विराजित—प्रशस्तलक्षण—निरुदर्य , त्रिवली—वलित—तनु—नतमध्या , ऋजुक-सम—सहित—जात्यतनु—कृष्ण—स्निग्धाऽऽदेय—लडह (ललित) सुकुमार मृदुक-सुविभक्त रोम राजयो,गगावर्तक-प्रदक्षिणा वर्तक—तरङ्ग भङ्ग-रवि—किरण तरुणबोधित-विकसित—पद्म गम्भीर—विकटनाभय , अनुद्भट—प्रशस्त—सुजात—पीनकुक्षय , सन्नत पार्श्वा ,सुजात-पार्श्वा सङ्गतपार्श्वा—मित मृदुल-मात्रिक—पीन -रतिद पार्श्वा , अकरण्डुक—कनक—रुचक-निर्मल—सुजात निरुपहत—गात्रयष्टय ,काञ्चन कलस-प्रमाण-सम सहित लष्ट चूचुकाऽमेलक यमल युगल वर्तित-पयोधरा,भुजङ्गाऽनुपूर्व तनुक-गोपुच्छ-वृत्त-सम सहित-नमिताऽऽदेय-ललित बाहव , ताम्रनखा., मासलाऽग्रहस्ता , कोमल पीवर वराङ्गुलीका , स्निग्ध पाणिलेखा , शशि—सूर्य—शङ्ख चक्र वर स्वस्तिक विभक्त—सुविरचित-पाणिलेखा , पीनोन्नत-कक्ष-वस्ति प्रदेश-परिपूर्ण गल कपोला', चतुरङ्गुल—सुप्रमाण-कम्बुवर सदृश ग्रीवा , मासल-सस्थित प्रशस्त--हनुका , दाडिम-पुष्प प्रकाश-पीवर-प्रलम्ब कुञ्चित वराऽधरा , सुन्दरोत्तरोष्ठा., दधि-दक-रज.-कुन्द-चन्द्र वासन्ती-मकुला-च्छिद्र-विमलदशना., रक्तोत्पल पद्मपत्र- सुकुमार तालु जिह्वा , करवीर-मुकुल-कुटिलाऽभ्युन्नत-ऋजुतुङ्ग नासिका· शारद-नव-कमल-कुमुद-कुवलय-दल-निकर-सदृश-लक्षण-प्रशस्ताऽजिह्मकान्त नयना, आनामित-चाप-रुचिर कृष्णा·भ्राजि- सङ्गत-सुजात-तनु-कृष्ण स्निग्धभ्रुव,ः आलीन-प्रमाणयुक्त-श्रवणाः, सुश्रवणा·,

पीनमृष्ट-गण्डलेखाः, चतुरङ्गुल-विशाल-सम-ललाटाः, कौमुदी-रजनीकर-विमल-प्रतिपूर्ण-सौम्यवदना, छत्रोन्नतोत्तमाङ्गाः, अकपिल-सुस्निग्ध-दीर्घ शिरोजाः, छत्र-ध्वज-यूप-स्तूप-दामिनी-कमण्डलु-कलस-वापी-स्वस्तिक-पताका-यव-मत्स्य-कूर्म-रथवर-मकर-ध्वजांक-स्थालाऽङ्कुशाऽष्टापद—सुप्रतिष्ठकाऽमर-श्रीकाऽभिषेक-तोरण-मेदिन्युदधिवर-प्रवर भवन-गिरिवर-वरादर्श-सललितगज-ऋषभ-सिंह-चामर-प्रशस्त द्वात्रिंशल्लक्षण धारिण्यो, हंससदृशगतयः कोकिल—मधुरगिरश्च कान्ताः सर्वेषाम्, अनुमताः, व्यपगत, वली पलित—व्यङ्ग दुर्वर्ण—व्याधि दौर्भाग्य शोक मुक्ताः, उच्चत्वेन नराणा स्तोकोन मुच्छ्रिताः, शृङ्गाराऽगारचारुवेषाः सुन्दर स्तन-जघन—वदन—कर-चरण नयनाः, लावण्य-रूप-यौवन-गुणोपपेताः, नन्दन वन—विवर चारिण्य इवाऽप्सरस, उत्तरकुरु मानुष्याप्सरसः, आश्चर्य प्रेक्षणीयाः, त्रीणि पल्योपमानि परमायूषि पालयित्वा ता अपि उपनमन्ति मरणधममवितृप्ताः कामेषु ॥। सू० ५ । १५ ॥

अन्व०—(भुज्जो मडलिय नर वरंदा) फिर मण्डलाधिपति राजा जो (सबला सअतेउरा सपरिसा) सैन्य वाले अन्तः पुर तथा परिषद्—उत्तम सभा वाले (सपुरोहिया) पुरोहित सहित याने जिनके पास—शान्ति कर्म कराने वाले हैं, तथा—(अमच्च-दंडनायक-सेणावती-मत नीति—कुसला) अमात्य-प्रधान, दण्डनायक-कटक का नायक और सेनापति, इन सब से युक्त, और जो गुप्त विचार एव नीति मे कुशल हैं (णाणामणि-रयण-विपुल-धण-धन्न-सचय-निही-समिद्ध कोसा) अनेक प्रकार के मणि रत्न तथा विस्तीर्ण धन धान्य के सञ्चय और निधियों से परिपूर्ण खजाने वाले वे (रज्जसिरिं विपुलमणुभवित्ता) विस्तार युक्त राज्य लक्ष्मी को भोगकर (विक्कोसता) दूसरों को बुरा कहते हुए या कोप रहित हुए (बलेण मत्ता) अपने बल से मदोन्मत्त (तेवि) वे माण्डलिक नरेन्द्र भी (कामाण अवितत्ता) काम भोगों के विषय मे अतृप्त बने हुए (मरण धम्म उवणमंति) मरण धर्म को प्राप्त करते हैं। (भुज्जो उत्तर कुरु—देवकुरु-वण-विवर—पाद—चारिणो नरगणा) ऐसे ही फिर उत्तर कुरु-और देवकुरु—नामक क्षेत्र के वन प्रदेशों मे पैदल फिरने वाले मनुष्य जो—युगलिक कहाते हैं (भोगुत्तमा भोग लक्खणधरा भोग सस्सिरीया) भोगों से उत्तम भोग सूचक उत्तम लक्षणों का धारण करने वाले उत्तम भोगों से शोभायुक्त (पसत्थ-सोम-पडि-पुन्न-रूव-दरिसणिज्जा) प्रशस्त, सौम्य और प्रतिपूर्ण रूप के कारण देखने योग्य हैं (सुजात-सव्वग-सुदरगा) सुजात सभी अंगों से सुन्दर शरीर वाले (रत्तुप्पल-पत्त-कत-कर-चरण—कोमलतला) रक्त—लाल कमल पत्र की तरह—कान्त और कोमल

हाथ पैर के तल वाले (सुपइट्ठिय-कुम्म-चारु चलणा) अच्छी तरह बैठे हुए कच्छप के जैसे सुन्दर चरण वाले ऐसे (अणुपुव्व—सुसहयंगुलीया) क्रम से बढती हुई व घटती हुई परस्पर मिली हुई अङ्गुली वाले (उन्नय-तणुतम्ब—निद्धनखा) ऊंचे, पतले और ताम्बे की तरह कुछ लाल वर्ण के चिकने नख वाले (सठिन—सुसिलिट्ठ-गूढ-गोफा) योग्य आकार वाले अच्छी तरह जुडे हुए और मांस से ढके हुए गुल्फ हैं जिनके (एणी—कुरु विंदावत्त-वट्टाणुपुव्वि-जघा) हरिणी और कुरु विन्द नामक तृण के समान क्रम से गोल जघा वाले (समुग्ग-निसग्ग-गूढ जाणू) डब्बे की सन्धि के समान निसर्ग गूढ-मांस के कारण स्वभाव से छिपे जानु—घुटने है जिनके 'ऐसे' (वर-वारण-मत्त—तुल्ल-विक्कम-विलासितगति) मस्त गजेन्द्र के समान पराक्रम और विलास युक्त गति वाले (वरतुरग-सुजाय-गुज्झदेसा) उत्ताम घोडे के समान सुजात गुह्य प्रदेश—मल द्वार वाले (आइन्न-हयव्व --निरुवले-1) जाति सम्पन्न घोडे की तरह जिन के मल द्वार के लेप से रहित होते हैं (पमुइय वर तुरग—सीह अतिरेग-वट्टियकडी) प्रमोद युक्त उत्ताम घोडे व सिंह की कमर के समान अधिक गोल कटिभाग वाले (गगावत्त दाहिणावत्त-तरग-भंगुर-रवि-किरण—बोहिय-विकोसायंत-पम्हगभीर-विगडनाभो) गगा के आवर्त की तरह दक्षिण की ओर घूमती हुई तरङ्ग युक्त, सूर्य की किरण से खिले हुए विकास शील कमल के समान, गम्भीर और विकट नाभिवाले (साहत-सोणंद-मुसल-दप्पण-निगरिय-वर—कणग च्छरु सरिस-वर वइर—वलियमज्झा) समेटी हुई त्रिपादिका, मुशल, दर्पण—दण्ड युक्त कांच और शुद्ध किये हुए उत्ताम सुवर्ण के खड्ग की मूठ तथा उत्तम वज्र की तरह दुबला है मध्य भाग जिनका (उज्जुग—सम सहिय-जच्च-तणु-कसिण-णिद्ध-आदेज्ज-लडह-सूमाल मउय—रोमराई) सरल-समान रूप से मिले हुए स्वाभाविक पतले काले, चिकने या मनोहर, सौभाग्य युक्त सुन्दर एव अतिशय कोमल और रमणीय रोम राजि वाले (झस-विहग-सुजात-पीण-कुच्छी झसोदरा) मत्स्य और पक्षी के समान उत्तम रचना युक्त कुक्षि वाले, अतएव—झषोदरा-मत्स्य जैसे पेटवाले (पम्ह विगड-नाभा) कलस की तरह विकट नाभि वाले, (सनतपासा सगयपासा, सुंदरपासा, सुजात पासा, मित माइय-पीण-रइयपासा) अच्छी तरह नमे हुए मिले हुए सुदर और सुजात-उत्तम रचना युक्त, परिमित एव मात्रा से युक्त, पीन-मांस से पुष्ट और रमणीय पार्श्व वाले (अकरडुय-कणग-रुयग-निम्मल-सुजाय निरुवहय देहधारी) मांस से पुष्ट होने के कारण खुजाल रहित एव सोने की जैसी कान्ति वाले निर्मल, सुजात

और रोग रहित देह को धारण करने वाले (कणग-सिलातल-पसत्थ-समतल-उवइय-विच्छिन्न पिहुल-वच्छा) सुवर्णमय शिलातल के समान प्रशस्त, समतल-सब जगह बराबर, मांसयुक्त और अत्यन्त विस्तीर्ण बड़े वक्षस्थल वाले (जुयसंनिभ-पीण-रइय पीवर-पउट्ठ-संठिय-सुसिलिट्ठ- विसिट्ठ-लट्ठ-सुनिचित- घणथिर-सुबद्ध संधी) गाड़ी के जुए के समान पुष्ट, रमणीय और बड़े कलांची तथा विशिष्ट स्थान वाली, अच्छी तरह मिली हुई,विशिष्ट-मनोहर, अत्यन्तभरी हुई,बहुत प्रदेश के कारण सघन, स्थिर और सुबद्ध-नसों से अच्छी तरह बंधी हुई सांधे-हड्डी की जोड़ है जिनकी (पुरवर-वरफलिह-वट्टिय भुया) बड़े नगर की श्रेष्ठ परिघा-आगल-के समान गोल भुजा वाले (भुयईसर-विपुल भोग आयाण-फलिउच्छूढ-दीहबाहू) बड़े सर्प के विस्तीर्ण शरीर के समान रमणीय तथा अपने स्थान से निकाली हुई परिघा के जैसे दीर्घ लम्बी बाहु वाले (रत्ततलोव-तिय-मउय-मंसल-सुजाय-लक्खण-पसत्थ अच्छिद्द जालपाणी) ताल तल वाले, मांस से उपचित-भरे हुए या योग्य, मृदु-कोमल, मासयुक्त, सुजात, प्रशस्त-शुभ-लक्षण वाले और मिली हुई अँगुलिओ के कारण छिद्र रहित हाथ वाले (पीवर-सुजाय-कोमल-वरंगुली) मास से पुष्ट, सुन्दर और कोमल श्रेष्ठ अँगुली वाले (तब-तलिण-सुइ-रुइल-निद्धनखा) ताम्र, पतले, पवित्र, कान्तियुक्त और चिकने नख वाले, (निद्ध पाणि लेहा, चंदपाणि लेहा, सूरपाणिलेहा, संखपाणिलेहा, चक्कपाणिलेहा,) चिकनी रेखा वाले, चन्द्र-सूर्य-शङ्ख और चक्र-की तरह हाथ की रेखा वाले (दिसा सोवत्थियपाणिलेहा) दिशा स्वस्तिक जैसी दक्षिणावर्त हस्त रेखा वाले (रवि-ससि-संख-वरचक्क-दिसासो-वत्थिय विभत्त सुविरइय पाणिलेहा) सूर्य, चन्द्र, शङ्ख, श्रेष्ठचक्र और दिक्स्वस्तिक के विभागयुक्त अच्छी हस्तरेखा वाले (वरमहिस-वराह-सीह-सद्दूल-सिंह नागवर पडिपुन्न-विउलखधा) श्रेष्ठ भैसा, अच्छा वराह-सूकर,-सिंह,-शार्दूलसिंह, या वृषभ और उत्तम हाथी के जैसे प्रतिपूर्ण और विस्तीर्ण खंधे वाले, (चउरंगुल-सुप्प-माण-कंबुवर-सरिसग्गीवा) चार अँगुल प्रमाण प्रधान शङ्ख के समान शुभ ग्रीवा वाले (अवट्टिय-सुविभत्त-चित्तमंसू) अवस्थित-घट बढ रहित, खूब शुद्ध और विभागवाली शोभा से अद्भुत श्मश्रु-दाढ़ी वाले (उवचिय-मंसल-पसत्थ-सद्दूल-विपुल हणुया) मांस से पुष्ट-भरी हुई, प्रशस्त शार्दूलसिंह के समान हणु-चिबुक-दाढी वाले (ओयवियसिलप्पवाल-बिंबफलसंनिभाधरोट्ठा) साफ किये हुए,-शिल

हाथ पैर के तल वाले (सुपइट्ठिय-कुम्म-चारु चलणा) अच्छी तरह बैठे हुए कच्छप के जैसे सुन्दर चरण वाले ऐसे (अणुपुव्व—सुसहयंगुलीया) क्रम से बढती हुई व घटती हुई परस्पर मिली हुई अङ्गुली वाले (उन्नय-तणुतम्ब—निद्धनखा) ऊंचे, पतले और ताम्बे की तरह कुछ लाल वर्ण के चिकने नख वाले (संठिन—सुसिलिट्ठ-गूढ-गोंफा) योग्य आकार वाले अच्छी तरह जुडे हुए और मांस से ढके हुए गुल्फ हैं जिनके (एणी—कुरु विंदावत्त-वट्टाणुपुव्वि-जघा) हरिणी और कुरु विन्द नामक तृण के समान क्रम से गोल जंघा वाले (समुग्ग-निसग्ग-गूढ जाणू) डब्बे की सन्धि के समान निसर्ग गूढ—मांस के कारण स्वभाव से छिपे जानु—घुटने हैं जिनके 'ऐसे', (वर-वारण-मत्त—तुल्ल-विक्कम-विलासितगति) मस्त गजेन्द्र के समान पराक्रम और विलास युक्त गति वाले (वरतुरग-सुजाय-गुज्झदेसा) उत्तम घोडे के समान सुजात गुह्य प्रदेश-मल द्वार-वाले (आइन्न-हयव्व --निरुवलेवा) जाति सम्पन्न घोडे की तरह जिन के मल द्वार के लेप से रहित होते हैं (पमुइय वर तुरग—सीह अतिरेग-वट्टियकडी) प्रमोद युक्त उत्तम घोडे व सिंह की कमर के समान अधिक गोल कटिभाग वाले (गंगावत्त दाहिणावत्त-तरंग-भंगुर-रवि-किरण-बोहिय-विकोसायत-पम्हगंभीर-विगडनाभी) गंगा के आवर्त की तरह दक्षिण की ओर घूमती हुई तरङ्ग युक्त, सूर्य की किरण से खिले हुए विकास शील कमल के समान, गम्भीर और विकट नाभिवाले (साहत-सोणंद-मुसल-दप्पण-निगरिय-वर—कणग च्छरु सरिस-वर वइर—वलियमज्झा) समेटी हुई त्रिपादिका, मुशल, दर्पण—दण्ड युक्त कांच और शुद्ध किये हुए उत्तम सुवर्ण के खङ्ग की मूठ तथा उत्तम वज्र की तरह दुबला है मध्य भाग जिनका (उज्जुग—सम सहिय-जच्च-तणु-कसिण-णिद्ध-आदेज्ज-लडह-सूमाल मउय—रोमराई) सरल-समान रूप से मिले हुए, स्वाभाविक पतले काले चिकने या मनोहर, सौभाग्य युक्त सुन्दर एवं अतिशय कोमल और रमणीय रोम राजि वाले (झस-विहग-सुजात-पीण-कुच्छी झसोदरा) मत्स्य और पक्षी के समान उत्तम रचना युक्त कुक्षि वाले, अतएव—झषोदरा-मत्स्य जैसे पेटवाले (पम्ह विगड-नाभा) कलस की तरह विकट नाभि वाले, (संनतपासा संगयपासा, सुंदरपासा, सुजात पासा, मित माइय-पीण-रइयपासा) अच्छी तरह नमे हुए मिले हुए सुन्दर और सुजात-उत्तम रचना युक्त, परिमित एवं मात्रा से युक्त, पीन-मांस से पुष्ट और रमणीय पार्श्व वाले (अकरंडुय-कणग-रुयग-निम्मल-सुजाय निरुवहय देहधारी) मांस से पुष्ट होने के कारण खुबाल रहित एवं सोने की जैसी कान्ति वाले निर्मल, सुजात

और रोग रहित देह को धारण करने वाले (कणग-सिलातल-पसत्थ-समतल-उवचय-विच्छिन्न पिहुल-वच्छा) सुवर्णमय शिलातल के समान प्रशस्त, समतल-सब जगह बराबर, मांसयुक्त और अत्यन्त विस्तीर्ण बड़े वक्षस्थल वाले (जुयसंनिभ-पीण-रइय पीवर-पउट्ठ-संठिय-सुसिलिट्ठ- विसिट्ठ-लट्ठ-सुनिचित- घणथिर-सुबद्ध संधी) गाडी के जुए के समान पुष्ट, रमणीय और बड़े कलांची तथा विशिष्ट स्थान वाली, अच्छी तरह मिली हुई,विशिष्ट-मनोहर, अत्यन्तभरी हुई,बहुत प्रदेश के कारण सघन, स्थिर और सुबद्ध-नसों से अच्छी तरह बंधी हुई सांधें-हड्डी की जोड है जिनकी (पुरवर-वरफलिह-वट्टिय भुया) बड़े नगर की श्रेष्ठ परिघा-आगल-के समान गोल भुजा वाले (भुयईसर-विपुल भोग आयाण-फलिउच्छूढ-दीहबाहू) बड़े सर्प के विस्तीर्ण शरीर के समान रमणीय तथा अपने स्थान से निकाली हुई परिघा के जैसे दीर्घ लम्बी बाहु वाले (रत्ततलोव-तिय-मउय-मंसल-सुजाय-लक्खण-पसत्थ अच्छिद्द जालपाणी) लाल तल वाले, मांस से उपचित-भरे हुए या योग्य, मृदु-कोमल, मासयुक्त, सुजात, प्रशस्त-शुभ-लक्षण वाले और मिली हुई अँगुलिओं के कारण छिद्र रहित हाथ वाले (पीवर-सुजाय-कोमल-वरंगुली) मास से पुष्ट, सुन्दर और कोमल श्रेष्ठ अँगुली वाले (तव-तलिण-सुइ-रुइल-निद्धनखा) ताम्र, पतले, पवित्र, कान्तियुक्त और चिकने नख वाले, (निद्ध पाणि लेहा, चंदपाणि लेहा, सूरपाणिलेहा, संखपाणिलेहा, चक्कपाणिलेहा,) चिकनी रेखा वाले, चन्द्र-सूर्य-शङ्ख और चक्र-की तरह हाथ की रेखा वाले (दिसा सोवत्थियपाणिलेहा) दिशा स्वस्तिक जैसी दक्षिणावर्त हस्त रेखा वाले (रवि-ससि-सख-वरचक्क-दिसासो-वत्थिय विभत्त सुविरइय पाणिलेहा) सूर्य, चन्द्र, शङ्ख, श्रेष्ठचक्र और दिक्स्वस्तिक के विभागयुक्त अच्छी हस्तरेखा वाले (वरमहिस-वराह-सीह-सद्दूल-सिंह नागवर पडिपुन्न-विउलखंधा) श्रेष्ठ भैंसा, अच्छा वराह-सूकर,-सिंह,-शार्दूलसिंह, या वृषभ और उत्तम हाथी के जैसे प्रतिपूर्ण और विस्तीर्ण खंधे वाले, (चउरंगुल-सुप्प-माण-कबुवर-सरिसगीवा) चार अँगुल प्रमाण प्रधान शङ्ख के समान शुभ ग्रीवा वाले (अवट्ठिय-सुविभत्त-चित्तमंसू) अवस्थित-घट बढ रहित, खूब शुद्ध और विभागवाली शोभा से अद्भुत श्मश्रु-दाढ़ी वाले (उवचिय-मंसल-पसत्थ-सद्दूल-विपुल हणुया) मास से पुष्ट-भरी हुई, प्रशस्त शार्दूलसिंह के समान हणु-चिबुक-दाढी वाले (ओयवियसिलप्पवाल-बिंबफलसंनिभाधरोट्ठा) साफ किये हुए,-शिला

प्रवाल-मूंगे तथा बिंबफल के समान लाल नीचे के होठ वाले (पंडुरससिसकल-बिमल-संख-गोखीर-फेण-कुंद-दगरय-मुणालिया-धवल दंत सेढी) श्वेत चन्द्र खण्ड की तरह निर्मल शङ्ख, गोक्षीर-गौकादूध, फेन-पानी ऊपर के झाग, कुंद का फूल, पानी के कण, और मृणालिका-पद्मिनी के नाल गत तन्तु के जैसे धवल-सफेद दांत की श्रेणि वाले (अखंडदंता, अप्फुडियदंता, अविरलदंता, सुणिद्धदंता, सुजायदंता, एगदंतसेढिव्व अणेगदंता) अखण्ड दांत वाले, बिना फूटे दांत वाले, मिले हुए दांत वाले, खूब चिकने-चमक युक्त दांत वाले, अच्छे बने हुए दांत वाले, अनेक दांत भी जिनके एक दांत की पंक्ति के जैसे हैं (हुयवह-निद्धंत-धोय-तत्त तवणिज्ज-रत्ततला-तालुजीहा) अग्नि से जलकर धुल गया है मल जिसका ऐसे तपनीय लाल सुवर्ण के समान लाल तल युक्त तालु और जीभ वाले, (गरुलायत-उज्जु-तुंग नासा) गरुड के समान लम्बी, सरल और ऊँची नासिका-नाक वाले, (अवदालिय पोंडरीयनयणा) खिले हुए कमल के समान नेत्र वाले (दोकासिय-धवल-पत्तलच्छा) विकसित धौले और पद्म युक्त आंख वाले (आणामिय-चाव-रुइल-किण्हब्भराजि-संठिय-संगयाययसुजायभूमगा) थोडे नमे हुए धनुष के समान सुन्दर, काले मेघ की रेखा के आकार वाले, योग्य, लम्बे तथा सुनिष्पन्नभ्रू हैं जिनके (अल्लीण-पमाणजुत्तसवणा) मर्यादा से लीन और प्रमाणयुक्त श्रवण-कान वाले (सुसवणा) अच्छे कान वाले (पीण-मंसल-कवोल-देसभागा) मोटे, मांस युक्त कपोल भाग-गाल वाले, (अचिरुग्गय-बालचंद-सठिय-महानिडाला) तत्काल उदय पाये हुए बाल चन्द्र के समान आकार के बड़े ललाट-भाल-वाले (उडुवति-रिव पडिपुन्न-सोमवयणा) चन्द्र के समान प्रतिपूर्ण व सौम्य मुख वाले, (छत्तागारुत्तमंगदेसा) छत्र के समान आकार युक्त उत्तमाङ्ग-मस्तक के भाग वाले (घण-निचिय-सुबद्ध-लक्खणुण्णय-कूडागारनिभ-पिंडियग्गसिरा) लोह मुद्गर के जैसे निविड-ठोस,-अच्छी तरह स्नायु से बंधा हुआ, लक्षण से ऊँचा और शिखर युक्त भवन के समान गोल पिण्ड सहित मस्तक के अग्रभाग वाले (हुय वह-निद्धंत-धोततत्त-तवणिज्ज-रत्त केसत-केसभूमी) अग्नि मे जलाकर धोये हुए और तपाये हुए तपनीय के समान लाल है केश का अन्त और मस्तक की त्वचा जिनकी ऐसे (सामलि-पोंड-घण-निचित-छोडिय-मिउविसय-पसत्थ-सुहुम-लक्खण-सुगंधि-सुंदरभुयमोयग-भिंग-नीलकज्जल-पहट्ठ भमरगण-निद्ध निकुरंब-

निचिय-कुंचिय-पयाहिणावत्त मुद्धसिरया) शाल्मली वृक्ष के अत्यन्त निविड और छोटित-मिले हुए, फूल के समान कोमल, विशद-स्पष्ट, प्रशस्त-मङ्गल कारक, सूक्ष्म-चिकने (पतले) लक्षण सम्पन्न, सुगन्धि वाले सुन्दर और भुज मोचक रत्न व भृङ्ग भँवरा नील-रत्न, कज्जल और प्रसन्न भँवरो के समूह की तरह स्निग्ध-चिकने समूह रूप से मिले हुए, कुंचित-टेढे नमे हुए और प्रदक्षिणावर्त मस्तक के केशवाले (सुजाय-सुविभत्त-संगयंगा, लक्खण वंजण गुणोववेया) सुजात, सुविभक्त-अच्छी तरह विभागयुक्त और योग्य अङ्ग वाले लक्षण, व्यञ्जन-मशा तिल आदि एवं अन्य गुणो से युक्त हैं (पसत्थ बत्तीस लक्खण धरा) उत्तम बत्तीस लक्षणो को धारण करने वाले (हंसस्सरा, कुंचस्सरा दुंदुहिस्सरा, सीहस्सरा, ओघस्सरा, मेघस्सरा,सुस्सरा) हंस के जैसे स्वर वाले, क्रौंच पक्षी के समान स्वर वाले, दुंदुभि के जैसे स्वर वाले, सिंह के समान स्वर वाले, अविच्छेद से अभंगस्वर वाले, मेघ जैसे गम्भीर स्वर वाले और सुस्वर-सुन्दर स्वर वाले (सुस्सर निग्घोसा) सुस्वर-ध्वनि वाले (वज्ज-रिसह-नाराय-संघयणा) वज्र-ऋषभ नाराच-संहनन वाले (समचउरंस-संठाण-संठिया) समचतुरस्र संस्थान के आकार वाले (छाया उज्जोवियंगमंगा) कान्ति से प्रकाशयुक्त अङ्गोपाङ्ग वाले (पसत्थच्छवी निरातंका) प्रशस्त त्वचा वाले, व रोगरहित (कंकग्गहणी, कवोत परिणामा) कंकपक्षी के समान नीरोग गुदाशय वाले, कपोत के जैसे आहार की परिणति वाले याने प्रबल पाचन शक्ति वाले (सगुणि-पोस-पिट्ठंतरोरु परिणया) पक्षी की तरह मलोत्सर्ग मे लेपरहित गुदा वाले, तथा पृष्ठ, पार्श्व और उरु-जंघा के योग्य परिणाम वाले (पउमुप्पलसरिस-गंधुस्सास-सुरभिवयणा) पद्म-कमल और उत्पल कमल के समान सुगन्धयुक्त श्वास से सुगन्धित मुखवाले (अणुलोमवाउवेगा) अनु कूल वायुवेग वाले (अवदायनिद्धकाला) गौरवर्ण के समान स्वच्छ स्निग्ध-चिकने श्यामरङ्ग वाले, (विग्गहिय उन्नय कुच्छी) शरीर के अनुरूप ऊँचे कुक्षि-उदर वाले (अमयरसफलाहारा) अमृत के जैसे रसपूर्ण फलो का आहार करने वाले (तिगा उय समूसिया) तीन कोशकी उंचाई वाले (तिपलिओवमट्ठितिका) तीन पल्योपम की स्थिति वाले, (तिन्निय पलिओवमाइं परमाउं पालयित्ता) तीन पल्योपम की परमायु को पालकर (ते वि) वेयुगलिक मनुष्य भी (अवितत्ता कामाणं) काम भोगो में अतृप्त हुए (मरण धम्मं उवणमंति) मरणधर्म-मृत्यु को प्राप्त करते हैं ।

(पमया वि य ते सिं) और उनकी स्त्रियां भी (सोम्मा) सौम्य गुणवती (सुजाय-सव्वंग सुंदरीओ) उत्तम रीति से उत्पन्न हुए सर्वाङ्गों से सुन्दर (पहाण महिलागुणेहिंजुत्ता) महिलाओं के प्रधान गुणो से युक्त (होंति) होती हैं, फिर (अतिकंत-विसप्पमाण-मउय-सुकुमाल-कुम्म सठिय-सिलिट्ठ चलणा) अत्यन्त मनोहर, चलते हुए भी बहुत कोमल, काछवे के आकार के सुन्दर पांववाली (उज्जु मउय-पीवर-सुसंहतागुलीओ) सरल, कोमल, मांसयुक्त और अच्छी तरह अन्तर रहित-अंगुली वाली (अब्भुन्नतरतिद-तलिण-तंब-सुइनद्धनखा) ऊंचे, सुखदायी, पतले, ताम्रवर्ण के और स्वच्छ तथा चिकने नखवाली (रोमरहिय-वट्ट-संठिय-अज छन्न-पसत्थ-लक्खण अकोप्पजंघजुयला) रोमरहित, गोल संस्थान वाली, बहुत शुभ लक्षणों से युक्त और रमणीय जंघा युगल वाली (सुणिम्मितसुनिगूढ जाणू मंसलपसत्थ सुबद्ध संधी) अच्छी तरह बने हुए बहुत गूढ-दृष्टि मे नहीं आने योग्य जानु-घुटनों के मांसयुक्त प्रशस्त और नसों से अच्छी तरह बंधी हुई संधि-जोडवाली (कयली खंभातिरेक सठिय-निव्वण-सुकुमाल-मउय-कोमल-अविरल समसहित-सु जाय-वट्ट-पीवर-निरंतरोरू] कदली के स्तम्भ की उत्तम आकृति युक्त, व्रणरहित अत्यन्त कोमल, परस्पर नजदीक में रही हुई, सम-प्रमाणसे बराबर, लक्षणों से युक्त, सुनिष्पन्न, गोल, मासयुक्त और परस्पर समान उरू साथलवाली (अट्ठावय वीइ-पट्ठ-संठिय-पसत्थ-विच्छिन्न-पिहुल सोणी) अष्टापद-जूआ खेलनेका एक प्रकार का पाशा-उसकी या तरङ्ग के आकार की रेखावाले पृष्ठ के समान संस्थान वाली शुभ और अत्यन्त विस्तीर्ण श्रोणि-कटि याने कमर है जिनकी 'ऐसी' (वयणायामप्प माण-दुगुणिय-विसाल-मंसलसुबद्ध-जहणवर-धारिणीओ) मुंह की लंबाई के प्रमाण से द्विगुण याने २४ अँगुल की विशाल मांस युक्त और अच्छी तरह बंधे हुए प्रधान जघन कटिके पूर्व भाग वाली (वज्जविराइय-पसत्थलक्खण निरोदरीओ) मध्य में पतली होने से वज्र की तरह विराजमान प्रशस्त लक्षण वाली और कृश उदर वाली हैं (तिवलि-वलिय-तणु नमिय-मज्झियाओ) तीन रेखाओ से बल युक्त दुबले और नमे हुए मध्य भागवाली (उज्जुयसम-सहिय-जच्च-तणु-कसिण- निद्ध-आदेज्ज-लडह-सुकुमाल-मउय सुविभत्त-रोम राईओ) सरल, समान, लक्षणो से युक्त, स्वभाव से उत्पन्न, सूक्ष्म, कृष्ण-काले, स्निग्ध-चिकने, रमणीय, ललित, अत्यन्त कोमल और अच्छी तरह विभागयुक्त रोमराजि वाली (गंगावत्तग-पदा

हिणावत्त-तरंग-भंग-रवि-किरण-तरुण-बोधित-आकोसायंत-पउम-गंभीर वि-गडनाभा) गंगावर्त की तरह प्रदक्षिणावर्त, तरङ्ग के जैसे भङ्गयुक्त, तरुण सूर्य की किरणो से प्रबोधित-विकाशयुक्त पद्म के समान गम्भीर तथा विकट नाभि वाली (अणुब्भड-पसत्थ-सुजात-पीणकुच्छी) योग्यप्रमाणोपेत, प्रशस्त, सुजात और मांसल -कुक्षिवाली (सन्नत पासा, सुजात पासा, संगतपासा, मियमाथिय पीण रतितपासा) अच्छे बने हुए पार्श्व वाली, सुजात पार्श्व वाली योग्य पार्श्व वाली, परिमित मात्रामें मांसल और प्रसन्नता कारक पार्श्व वाली (अकरंडुय-कणग-रुयग निम्मल-सुजाय निरुवहय-गायलट्ठी) दृष्टि में नहीं आने योग्य पीठ की हड्डी वाले और सुवर्ण की कान्ति के समान निर्मल सुजात तथा रोग रहित गात्रयष्टि-शरीरवाली (कंचण कलस-पमाण-समसहिअ-लट्ठ-चुंचुय आमेलग-जमल-जुयल-वट्टिय-पओहराओ) सुवर्ण कलस के जैसे प्रमाण के, सम, लक्षणयुक्त, मनोहर, स्तन मुख के शिखरयुक्त समश्रेणि में दो गोलाकार पयोधर वाली (भुयंग-अणुपुव्व-तणुय-गोपुच्छ-वट्टसम सहिय-नमिय-आदेज्ज-लडह वाहा) सर्प के समान क्रम से नीचे पतले तथा गोपुच्छ के जैसे गोल, समान, लक्षणयुक्त, नमे हुए और रमणीय व शोभायुक्त बाहुवाली (तंब नहा) ताम्रवर्ण के नखवाली (मंसलग्गहत्था) मांस से उपचित हाथ के अग्र भाग वाली (कोमल-पीवर-वरंगुलीया) कोमल और स्थूल श्रेष्ठ अँगुली वाली (निद्धपाणिलेहा,ससि-सूर-संख-चक्क-वरसोत्थिय-विभत्त-सविरइय-पाणिलेहा) स्निग्ध हाथ की रेखावाली, चन्द्र, सूर्य, शङ्ख, प्रधानचक्र और स्वस्तिक की विभागयुक्त अच्छी रचना सहित हाथ में रेखावाली (पीणुण्णय-कक्ख वत्थिप्पदेस-पडिपुन्नगल-कवोला) मांसल, ऊँचे, कांख और वस्तिप्रदेश-गुह्य भाग वाली तथा प्रति पूर्ण गला व कपोलवाली (चउरंगुलसुप्पमाण-कंबुवर-सरिसगीवा) चार अँगुल प्रमाण के प्रधान शङ्ख के जैसी ग्रीवा-गर्दन वाली (मंसल-संठिय-पसत्थ हणुया) मांसयुक्त और योग्य आकार की प्रशस्त हनु-ठोढ़ी वाली (दालिम-पुप्फ-प्पगास-पीवर-पलंब-कुंचित-वराधरा) दाड़िम के फूल जैसा लाल और बड़ा कुछ लटकता हुआ तथा थोडा वक्र ऐसे श्रेष्ठ नीचे के होठ वाली, (सुंदरोत्तरोट्ठा) सुन्दर उत्तरोष्ठ-ऊपर के ओठ वाली (दधि-दग-रय-कुंद-चंद-वासंति-मउल-अच्छिद्द विमलदसणा) दही पानी के कण, कुन्द-वासन्ति के फूल, चन्द्र और वासन्ती के मुकुल की तरह श्वेत निर्मल और छिद्र रहित दांत वाली (रत्तुप्पल-पउमपत्त-सुकु-माल-तालुजीहा) रक्त उत्पल के जैसे लाल और पद्मपत्र की तरह सुकुमाल तालु

व जीभ वाली (करवीर-मुउल-ऽकुडिल-ऽनुन्नय-उज्जुतुंगनासा) करवीर वृक्ष के मुकुल की तरह सीधा आगे में उच्च, सरल और ऊँची नासिका वाली। (सारद-नव-कमल-कुमुत कुवलयदल-निगर-सरिस-लक्खण-पसत्थ-अजिम्ह-कतनयणा) शरद् ऋतुके सूर्य विकाशी नवीन कमल,-कुमुद-चन्द्र विकाशी कमल, और कुवलय-नीलोत्पल कमल के-पत्र समूह के समान लक्षणों से प्रशस्त तथा कुटिलता रहित मनोहर नेत्रवाली (आनामिय-चाव-रुइल-किण्हब्भराइ-सगय-सुजाय-तणु-कसिण-निद्ध भुमगा) थोड़े से नमाये हुए धनुष की तरह सुन्दर, काले बादल की रेखाओं के समान सगत,-सुजात, पतले, कृष्णवर्ण युक्त और स्निग्ध भमुहवाली (अल्लीण-पमाण जुत्त सवणा मर्यादा से लीन और प्रमाण युक्त श्रवण-कानवाली (सुस्सवणा) अच्छे कानवाली (पीणमट्ठ-गंडलेहा) पीन-मोटे और शुद्ध कपोल स्थल वाली (चउरंगुल-विसाल-समणिडाला) चार अँगुल के विशाल और विषम ता रहित ललाट वाली (कोमुदि-रयणिकर-विमल-पडिपुन्न-सोमवदणा) कार्तिक पूर्णिमा के चन्द्र की तरहं निर्मल प्रतिपूर्ण और सौम्य मुखवाली (छत्तुन्नय-उत्तमंगा) छत्र की तरह ऊँचे शिर वाली (अकविल-सुसिणिद्ध-दीहसिरया) पीलेपन रहित-काले, लम्बे व चिकने केश वाली (छत्तज्झय-जूव-थूभ-दामिणि-कमंडलु-कलस-वावि-सोत्थिय-पडाग-जव-मच्छ-कुम्म-रथवर-मकरज्झय- अंक-थाल-अंकुस-अट्ठावय-सुपइट्ठ-अमर- सिरियाभिसेय-तोरण-मेइणि' उदधिवर-पवरभवण-गिरिवर-वरायस-सललिय गय-उसभ-सीह, चामर पसत्थ बत्तीस लक्खण धरीओ) छत्र १ ध्वज २ यूप ३ स्तूप ४ दामिनी-डोरी विशेष ५ कमण्डलु-६ कलस ७ वापी ८ स्वस्तिक ९ पताका १० यव ११ मत्स्य १२ कूर्म १३ प्रधान रथ १४ कामदेव १५ अङ्क १६ स्थाल १७ अकुश १८ अष्टापद १९ सुप्रतिष्ठक याने शरावे की कीहुई स्थापना २० अमर-देवया मयूर २१ लक्ष्मी का अभिषेक २२ तोरण २३ पृथ्वी २४ उदधि-समुद्र २५ श्रेष्ठ जनो का प्रधान भवन २६ प्रधानगिरि २७ उत्तम दर्पण २८ और लीलायुक्त गज २९ वृषभ-बैल ३० सिंह ३१ तथा चामर ३२ इन उत्तम बत्तीस लक्षणो को धारण करने वाली (हंससरिच्छगतीओ) हंस के समान गति वाली (कोइलमहुर गिराओ) कोकिल के समान मधुर वाणी वाली (कंता, सव्वस्स अणुमयाओ) कान्त और, सब लोक के लिये अभिमत-चाहने योग्य-इष्ट होती हैं (ववगत-वलि-पलित वग दुव्वन्न वाधिदोहग्ग-सोयमुक्काओ' वलि-अङ्ग के सिकुडन तथा पलित बुढापे के

अनुकूल केश पकना आदि विरूपता से रहित, तथा दुर्वर्ण-खराब रंग, व्याधि, दुर्भाग्य और शोक से मुक्त रहने वाली उच्चत्तेणय नराण थोवूण मूसियाओ) और ऊँचाई में पुरुषों से कुछ कम ऊँची होती हैं। (सिगारागार-चारुवेसाओ) शृङ्गार के घर के समान सुन्दर वेषवाली (सुन्दर-थण-जहण-वयण-कर-चरण-नयणा) सुन्दर स्तन, जघन, मुख, तथा हाथ पैर व आंखवाली (लावण्ण रूव जोव्वण गुणोववेया) लावण्य, सौन्दर्य, व यौवन तथा कुन्नां ममुचित गुणों से शोभित रहने वाली (नंदण-वण विवर-चारिणीओव्व अच्छराओ उत्तरकुरु-माणुसच्छराओ) नन्दन वन की कन्दराओ में विहार करने वाली अप्सराओ की जैसी वे उत्तर कुरु प्रदेश की मनुष्य अप्सरायें (अच्छेरगपेच्छणिज्जियाओ) जो आश्चर्य के साथ देखने योग्य हैं (तिन्निय पलिओवमाइं परमाउं पालयित्ता) तीन पल्योपम जितनी परम आयु को पालकर (ताओऽवि) ऐसी पूर्व कही गई वे अप्स-रायें भी (कामाणं-अविन्तत्ता) कामो के विषय मे तृप्त नही होती हुई (मरणधर्म्म उवणमति) मरण धर्म को प्राप्त करती है ॥ ४ ॥ १४ ॥

भावार्थ-"इस मैथुनके मोह से व्याकुल हुए अप्सरा सहित देवगण इसका सेवन करते हैं। वे देव इस प्रकारके हैं-असुरकुमार आदि दश भवन पतिदेव, अण पन्निक, पण पन्निक और पिशाच आदि सोलह जाति के व्यन्तर देव। तिरछे लोक में रहने वाले ज्योतिष्क देव और ऊर्ध्वलोक के विमानवासी देव, ये सब देवगण तथा मनुष्य व जलचर आदि पशुगण, काम भोग की तृषा वाले बड़ी इच्छा से व्याकुल और उसी में आसक्त बने हुए जीवगण विषय का सेवन करते हैं। ऐसी तामसी भावना के कारण ये सब अपनी आत्मा के लिये दर्शन मोह और चारित्र मोह का पिंजरा सा बना लेते हैं। विशेष रूप से मर्त्यलोक के काम प्रधान नर नारियों का परिचय देते हैं-"चक्रवर्ती देव, दानव तथा साधारण मनुष्यों के भोग में रति का अनुभव करने वाले, देव लोक में इन्द्र की तरह नरेन्द्र और देवेन्द्र से सत्कार पाने

मधुर गम्भीर होते हैं. १४ रत्न और ६ निधान इनकी सन्निधि में रहते हैं। १४ रत्नो के नाम-१ सेनापति रूपरत्न, २ गाथापतिरत्न, ३ पुरोहितरत्न, ४ अश्वरत्न, ५ वर्द्ध की रत्न, ६ गजरत्न, ७ स्त्री रत्न, रूप सात प्राणिरत्न, सात प्राणिभिन्न रत्न जैसे ८ चक्ररत्न, ६ छत्र रत्न १० चर्मरत्न, ११ मणिरत्न, १२ कागणिरत्न, १३ खड्गरत्न, और १४ दण्ड रत्न ये एकेन्द्रियरत्न होते हैं। हाथी घोड़े रथ और पदाति रूप चार प्रकार की सेनाओं के स्वामी, उत्तमकुल व विस्तीर्ण कीर्ति वाले वे समस्त भारत भूमि के साथ पूर्वकृत सुकृत से प्राप्त सुखों को सैकड़ों वर्षों तक भोगते हैं, सैकड़ो वर्षों तक उत्तम स्त्रियों के साथ विलास करते हुए भी उन शब्द स्पर्शादि सुखों से बिना तृप्ति के ही वे मरण प्राप्तकर जाते हैं। ऐसे बलदेव वासुदेव आदि महापुरुष भी जो अतिशय बल सम्पन्न, धनुर्द्धारी तथा दुर्द्धर व शक्ति के सागर होते हैं। वर्तमान के बलदेव वासुदेव का वर्णन करते हैं-"राम केशव कहाने वाले बलदेव वासुदेव रूप दोनों भाई परिषद् युक्त तथा वसुदेव समुद्र विजय आदि दश दशारों के जो प्यारे हैं (थे) अनेक यादव व प्रद्युम्न कुमार, शंबकुमार आदि साढे तीन कोटि कुमारों के हृदय वल्लभ थे। बलदेव की माता रोहिणी और वासुदेव-कृष्ण की माता देवकी के हृदय को प्रसन्न करने वाले थे। सोलह हजार राजा जिनके पीछे चलते थे। और जिनकी सोलह हजार रानिया थीं। मणि, रत्न, और सुवर्ण आदि धन धान्य से इनके भण्डार पूर्ण-भरे रहते, तथा हजारों हाथी घोड़े और रथों के ये अधिपति थे। ग्राम नगर आदि हजारों वसतिओं से युक्त एवं पर्वतादि से मनोरम दक्षिण भरतार्द्ध के शासन करने वाले थे। ये धोरयशस्वी अतिशय शक्तिशाली और हजारों शत्रुओं के मान मथन करने वाले, तथा परम दयालु थे। मत्सर भाव रहित-स्थिर प्रकृति वाले व शान्त तथा मित मधुर भाषी थे। इनका हास्य गम्भीर होता था। शरणागत वत्सल एव लक्षण व्यञ्जन और गुणों से युक्त थे। यावत् दर्शनीय थे, ताल वृक्ष और गरुड की क्रमशः दोनों की ध्वजायें थी। अत्यन्त अहङ्कारी मौष्टिक और चाणूर नामक मल्ल के मान-प्राण मर्दन करने वाले अरिष्ट नामक बैल का दमन करने वाले, केशी नामक दुष्ट अश्व और दुष्ट (काली) नाग का मथन करने वाले हैं। मारने के अभिप्राय से वृक्ष रूप बने हुए दो विद्याधरों का कृष्ण ने नाश किया अतएव ये यमलार्जुन भंजक कहाते हैं। महा शकुनि और पूतनां नामक विद्याधरिओं के शत्रु, कंस के मुकुट गिराने वाले

और जरासंध के मानका मथन करने वाले है, अनेक विशेषणयुक्त छत्र तथा हंस जोड़े के जैसे समुज्ज्वल चामर से विराजमान थे। हल मूशल बाण रूप अस्त्रधारी बलराम थे, और पाञ्चजन्य नामक शङ्ख, सुदर्शन नामक चक्र और कौमोद की नामक गदा एवं शक्ति व नन्दक नामक खड्ग को धारण करने वाले श्रीकृष्ण थे। शरीर शोभा के अलङ्करणों का वर्णन सहज है। अन. अन्वयार्थ से समझे। यावत् द्वारवती नगरी के लिये पूर्णचन्द्र के जैसे विराजमान वे बलदेव वासुदेव भी कामोपभोग में अतृप्त ही चले गये। ऐसे माण्डलिक राजा भी बल, वाहन, सभा, अन्त.पुर-स्त्री वर्ग खजाना और विस्तीर्ण राज्य लक्ष्मी को अत्यधिक भोगकर बलवीर्य से मदोद्धत दूसरे को बुरा कहते हुए कामोपभोग मे अतृप्त ही संसार से चल बसे। इसी प्रकार देवकुरु, उत्तरकुरु आदि क्षेत्रो के युगलिक मनुष्य, जो भोग प्रधान जीवन वाले हैं, अन्य विशेषण तथा नख शिख पूर्ण शरीराकृति का वर्णन सहज होने से अन्वयार्थ पर से ही समझे। यावत् सुजात अच्छी तरह विभागयुक्त और उत्तम शरीर वाले होते हैं। लक्षण आदि से युक्त, ३२ लक्षणो के धारक और हंस आदि के समान गम्भीर व मधुर स्वर वाले होते है। उनकी शारीरिक रचना सर्व श्रेष्ठ होती है। उनके शरीर कान्तियुक्त तथा रुजा रहित होते है। मलस्थान भी उनके पक्षिवत मल लेप रहित एवं निर्मल होते हैं। उनकी जाठराग्नि कबूतर सी प्रदीप्त रहती है (शेष सुगम है)। वे भी काम भोगो मे अतृप्त ही संसार से विदा होते है। इनकी स्त्रियाँ भी सौम्या व सर्वाङ्गसुन्दरियाँ तथा प्रधान स्त्री गुणो मे शोभा युक्त होती हैं। इनका भी नख शिख वर्णन युगलिक पुरुषो के समान है, अतएव अन्वयार्थ से ही समझ लेवें। छत्र ध्वज आदि ३२ लक्षणो को धारण करने वाली, हंस जैसी गति वाली और कोकिला के समान मधुर स्वरवाली, अनिन्द्य सुन्दरी और सभी के लिये प्रिय दर्शना होती है। यावत् नन्दनवन विहारिणी अप्सराओ के समान उत्तरकुरु आदि क्षेत्रो की ये, मनुष्याप्सराये होती है। तीन पल्य के उत्कृष्ट आयु को भोगकर भोगों मे अतृप्त ही ये भी संसार से चल बसती हैं। सू० ४ । १५ ॥

अब मैथुन जिस प्रकार सेवन किया जाता और जो फल देता है इसको साथ ही कहते हैं-"

मूल-"मेहुणसन्नासंपगिद्धा य मोहभरिया, सत्थेहिं हणंति एक्कमेक्कं विसयविसउदीरएसु, अवरे परदारेहिं हम्मंति, विसुणिया धणनासं सयग-

विप्पणासं च पाउणंति, परस्सदाराओ जे अविरया, मेहुणसन्न संपगिद्धा य मोहभरिया अस्सा हत्थी गवा य महिसा, मिगा य मारेंति एक्केक्कं। मणुयगणा वानरा य पक्खीय विरुज्झंति, मित्ताणि खिप्पं भवंति सत्तू, समये धम्मेगणे य भिंदंति पारदारी। धम्मगुणरया य बंभयारी, खणेण उल्लोट्टए चरित्ताओ। जसमंतो सुव्वया य पावेंति अयसकित्तिं। रोगत्ता वाहिया पविड्ढंति रोयवाही। दुवे य लोया दुआराहगा भवंति–इह लोए चेव परलोए, परस्सदाराओ जे अविरया। तहेव केइ परस्सदारं गवेसमाणा, गहिया हया य बद्धरुद्धा य एवं जाव गच्छंति विपुलमोहाभिभूयसन्ना।

छाया–"मैथुन संज्ञा संप्रगृद्धाश्च मोहभरिताः, शस्त्रैर्घ्नन्ति–एकैकं, विषय–विषेषूदीरकेषु, केचनाऽपरे परदारैश्चहन्यन्ते, विश्रुता धननाशं, स्वजन–विप्रणाशञ्च प्राप्नुवन्ति, परस्य दारेभ्यो येऽविरताः, मैथुनसंज्ञासम्प्रगृद्धाश्च मोहभृता–अश्वा, हस्तिनो गावश्च, महिषा मृगाश्च मारयन्ति, परस्परमेकैकं,–मनुजगणा वानराश्च पक्षिणश्च विरुन्धन्ति, मित्राणि क्षिप्रं भवन्ति शत्रवः, समयान् धर्मान् गणांश्च भिन्दन्ति पारदारिकाः, धर्मगुणरताश्च ब्रह्मचारिणः क्षणेन परावर्तन्ते च चरित्रात्–,यशस्विनः सुव्रताश्च प्राप्नुवन्ति–अयशस्कीर्तिम्, रोगार्ता व्याधिताः प्रवर्द्धयन्ते रोगव्याधीन्, द्वयोर्लोकयोर्दुराराधका भवन्ति (द्वौलोकौ दुराराध्यौ भवतः), इह लोके चैव परलोके चैव, परस्य दारेभ्यो येऽविरताः, तथैव केऽपि परस्य दारान्गवेषयन्तो गृहीता हताश्च बद्धरुद्धाश्च। एवं यावद्गच्छन्ति विपुल मोहाभिभूतसंज्ञा'।

अन्व०–"(मेहुणसन्ना–संपगिद्धा य मोहभरिया) फिर मैथुन संज्ञा मे आसक्त जीव अज्ञान या काम के भरे हुए (एक्कमेक्कं सत्थेहिं हणंति) एक दूसरे को शस्त्रों से मारते हैं, (विसयविस उदीरएसु) विषय रूप विष के प्रवर्तकों में (अवरे) दूसरे–कई (परदारेहिं हम्मंति) पर स्त्री के साथ गमन करते हुए मारे जाते हैं (विसुणिया) कुकर्म से प्रसिद्धि पाये हुए (धणनासं सयण विप्पणासं च पाउणंति) धन के नाश और स्वजनवियोग को प्राप्त करते हैं, (परस्स दाराओ जे अविरया) पर स्त्री के गमन से जो अविरत होते हैं। (मेहुणसन्नासंपगिद्धा य मोह भरिया) और मैथुन संज्ञा में आसक्त और मोह से भरे हुए (अस्सा, हत्थी, गवा य महिसा मिगा य मारेंति एक्कमेक्कं) घोडे, हाथी और बैल, भैंसे और मृग एक दूसरे को मारते रहते है (मणुय गणा वानराय) मनुष्य समूह और वानर (पक्खीय

विरुज्झंति) और पक्षी परस्पर लड़ते हैं, (मित्ताणि खिप्पं भवंति सत्तू) मैथुन कर्म से मित्र शीघ्र ही शत्रु हो जाते है (समये धम्मेगणे य भिंदंति पारदारी) समय-सिद्धान्त के अर्थ, धर्म और गणों जाति मर्यादा को परदार लम्पट भङ्ग करते याने सदोष करते हैं, (धम्मगुण रया य बंभयारी खणेण उल्लोट्टए चरित्ताओ) और धर्म गुण मे रमण करने वाले ब्रह्मचारी क्षण भरमें चारित्र से लौट पड़ते हैं, (जसमंतो सुव्वयाय) कीर्तिमान् और सुव्रती भी (पावेंति अयसकित्ति) अयश-अकीर्ति को पाते है (रोगत्ता वाहिया) ज्वर आदि के रोगी तथा कुष्ठ आदि व्याधि से ग्रस्त (रोयवाही पवड्ढंति) अपने रोग व व्याधि को बढाते हैं (दुवे य लोया दुआराहगा भवंति) और दोनो लोक कठिन से आराधने योग्य (वाले) होते हैं जैसे-(इह लोए चेव परलोए) इस लोक और ऐसे परलोक-दोनों का आराधन उनको कठिन होता है (परस्स दाराओ जे अविरया) जो परस्त्री से विरत नहीं होते हैं, (तहेव केइ परस्स दारं गवेसमाणा) इसी प्रकार कई पर स्त्री की गवेषणा-खोज करते हुए-(गहिया, हया य बद्धरुद्धा य) पकड़े गये और मारे गये तथा बाधकर रोके गये हैं (एवं जाव गच्छंति विपुल मोहाभिभूयसन्ना) इस प्रकार यावत् विस्तीर्ण मोहसे दबे हुए ज्ञान वाले 'नरक मे' जाते हैं।

मू०—"मेहुणमूलंच सुव्वए तत्थ तत्थ वत्तपुव्वा संगामा जणक्खयकरा,—सीयाए दोवईए कए, रुप्पिणीए, पउमावईए, ताराए, कंचणाए, रत्तसुभद्दाए, अहिल्लियाए, सुवन्नगुलियाए, किन्नरीए, सुरूवविज्जुमतीए, रोहणीए य। अन्नेसु य एवमादिएसु बहवो महिलाकएसु सुव्वंति अइक्कंता संगामा, गामधम्ममूला इहलोए तावनट्ठा परलोए वियनट्ठा, महया मोह तिमिसंधकारे घोरे तसथावर सुहुमबादरेसु पज्जत्तमपज्जत्त साहारणसरीर पत्तेयसरीरेसु य, अंडज—पोतज—जराउय—रसज—संसेइम—संमुच्छिम—उब्भिय-उववादिएसु य नरग—तिरिय—देव—माणुसेसु, जरा—मरण—रोग—सोग—बहुले, पलिओवम सागरोवमाइं अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंत संसार कंतारं अणुपरियट्टंति जीवा मोहवससन्निविट्ठा। एसोसो अबंभस्स-फल विवागो इहलोइओ पारलोइओ य अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वास सहस्सेहिं मुच्चती, नय अवेदयित्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति, एवमाहंसु नायकुलनंदणो महप्पा जिणोउ वीरवरनामधेज्जो,

कहेसीय अबंभस्स फलविवागं, एयंतं अबंभंपि चउत्थं सदेव मणुयासुरस्स लोगस्स पत्थणिज्जं, एवं चिरपरिचियमणुगतंदुरंतं, चउत्थं अधम्मदारं समत्तं त्तिबेमि ॥ ४ ॥ सूत्र ६ । १६ ॥

छाया-"मैथुन मूल च श्रूयन्ते तत्र तत्र वृत्तपूर्वा संग्रामा जनक्षयकरा:, सीताया-द्रौपद्या कृते, रुक्मिण्या., पद्मावत्यास्ताराया:, काञ्चनाया, रक्त सुभद्राया, अहिल्याया:, सुवर्णगुलिकाया:, किन्नर्या., सुरूपविद्युन्मत्या, रोहिण्याश्च । अन्यासु चैव मादिषु बह्वोमहिलाकृतेषु श्रूयन्तेऽतिक्रान्ता. संग्रामा ग्रामधर्ममूला ।

इह लोके तावन्नष्टा:,परलोकेऽपिचनष्टा,महति मोहतमिस्रान्धकारे घोरे त्रसस्थावर-सूक्ष्मबादरेषु पर्याप्ताऽपर्याप्त-साधारण-शरीर-प्रत्येकशरीरेषुच अण्डज-पोतज-जरायुज-रसज-सस्वेदिम-संमूर्च्छिमोद्भिज्जौपपातिकेषुच, नरक तिर्यग्देव मनुष्येषु, जरा मरण रोग शोक बहुले, पल्योपम सागरोपमानि अनादिकमनवदग्रं दीर्घमध्वानं चतुरन्त ससारकान्तारमनुपरिवर्तन्ते जीवा मोहवश संनिविष्टा । एषल अब्रह्मण: फल विपाक. ऐहलौकिक: पारलौकिकअल्पसुखो बहुदु:खो, महाभयो बहुरज: प्रगाढो दारुण:, कर्कशोऽसातो वर्षसहस्रैमुच्यते, न च अवेदयित्वा अस्तिमोक्ष इति, एवमाख्यातवान् ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा जिनस्तु वीरवरनामधेय:, कथयिष्यतिच अब्रह्मण: फलविपाकम्, एतत्तदब्रह्मापि चतुर्थं सदेवमनुजासुरस्य लोकस्य प्रार्थनीयम् एवं चिरपरिचितमनुगतं दुरन्तं । चतुर्थमधर्मद्वार समाप्तमिति ब्रवीमि ॥ ४ ॥ ६ । १६ ॥

अन्व०-" (मेहुणमूलंच) और मैथुन मूलक (तत्थतत्थ वत्त पुव्वासगामा सुव्वए) उन शास्त्रों में पहले हुएभये संग्राम सुने जाते हैं (जणक्खयकरा) जो युद्ध नर संहार करने वाले हैं , जैसे-(सीयाए, दोवईएकए) सीता और द्रौपदी के लिये-राम रावणका और पद्मनाभ व पाण्डवों का युद्ध हुआ (रुप्पिणीए) रुक्मिणी के लिये कृष्ण और शिशुपालका युद्ध हुआ (पउमावईए) पद्मावती के लिये-कृष्ण का अनेक राजाओंसे युद्ध हुआ (ताराए) तारा के वास्ते-साहसमति व सुग्रीव का युद्ध हुआ (कंचणाए) कञ्चना के लिये युद्ध हुआ (रत्तसुभद्दाए) रक्तसुभद्रा के लिये कृष्ण और अर्जुन का युद्ध (अहिन्नियाए) अहल्या या अहिन्निका के लिये हुआ अप्रसिद्ध युद्ध (सुवन्नगुलियाए) सुवर्णगुलिका के लिये उदायन और चण्डप्रद्योतन का युद्ध (किन्नरीए) किन्नरी और (सुरूवविज्जुमतीए) सुरूपविद्युन्मती के लिये (रोहि-

णीए य) और रोहिणी के लिये वसुदेवका युद्ध (अन्नेसु य एवमादिएसु) और इत्यादि अन्य (बहवो) बहुत से (महिलाकएसु) स्त्रियों के प्रयोजनसे (अइक्कंता संगामा सुव्वंति) भुत पूर्व संग्राम सुने जाते है. (गामधम्ममूला) जिनका विषयोप भोगही मूल करण है, विषय सेवन करने वाले-(इहलोएतावनट्ठा) इस लोक मे तो अकीर्तिके कारण नष्ट होते हैं (परलोए वियणट्ठा) और परलोक मे भी नष्ट होते हैं (महया मोह तिमिसंधकारे) महामोहरूप अत्यन्त अन्धकार वाले (घोरे)घोर-परलोकमें (तसथावर सुहुमबादरेसु) त्रस स्थावर तथा सूक्ष्म और बादर नाम कर्मवाले (पज्जत्तम पज्जत्त साहारणसरीर पत्तेय सरीरेसु य) और पर्याप्त व अपर्याप्त तथा साधारण शरीर नाम कर्मवाले और प्रत्येक शरीरीपन मे (अंडज-पोतज-जराउय-रसज-संसेइम संमुच्छिम उब्भिय -उववादिएसुय) अण्डज, पोतज, जरायुज क्रमसे अण्डा से पैदा होने वाला अण्डज- पक्षी. पोतज हाथी आदि और जड के साथ उत्पन्न होने वाले जरायुज, रसमे पैदा होने बाले रसज, स्वेद-पसीने से पैदा होने वाले संस्वेदिम, विना गर्भ के उत्पन होने वाले समूर्च्छिम , और भूमि को फोडकर पैदा होने वाले उद्भिज्ज तथा उपपात-एकाएक अन्यस्थानसे दूसरेस्थान में जाने वाले सहसाशय्या में पैदा होने वाले जीव औपपातिक-देव तथा नारक आदि, इन जीवो को संक्षेपमें कहें तो (नरग-तिरिय-देव-माणुसेसु) नरक, तिर्यञ्च, देव और मनुष्य रूप योनि-ओंमे 'पर्यटन करते हुए जीव,' (जरा मरण रोग सोग बहुले) जरा मरण, रोग और शोक की प्रधानता वाले 'संसार मे' नष्ट होते हैं, (पलिओवम-सागरोवमाइं) अनेक पल्योपम व सागरोपम तक (मोहवस संनिविट्ठा जीवा) मोहके कारण अब्र ह्मके सेवन मे लगे हुए जीव (अणादीयं अणवदग्गं) आदि अन्त रहित-और (दीह मद्धंचाउरंत संसार कंतारं) दीर्घ-लम्बे मार्गवाले-चार गतिओं से युक्त इस संसार रूप अटवी में (अणुपरियट्टंति) भटकते रहते हैं।

उपसंहार-"(एसोसो अबंभस्स फलविवागो) इस प्रकार यह अब्रह्म सेवन का फलरूप विपाक-आखीरी परिणाम (इहलोइओ पारलोइओ य) इस लोक सम्बन्धी और परलोक सम्बन्धी (अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ) अल्प सुख वाला, बहुत दुःखवाला-तथा महाभयङ्कर है, (बहुरयप्पगाढो, दारुणो, कक्कसो, असाओ) कर्मरज की अधिक्ता से प्रगाढ़, भयङ्कर और कठोर, असाता रूप है (वाससहस्सेहिं मुच्चती) हजारों वर्षों मे छूटता है (न य अवेदयित्ता अत्थिहुमोक्खोति) बिनाभोगे

इस कर्म विपाक से मोक्ष-छुटकारा-नहीं होता है, (एवमाहंसु नायकुल नंदनो महप्पा) ज्ञातकुल नन्दन महात्माने इसप्रकार कहा है, (जिणोउ वीरवर नाम धेज्जो) महावीर नामके जिनेन्द्र ने (कहेसीय अबंभस्स फलविवागं) और अब्रह्म के फलविपाकको कहा है (हेगे) (ए यं तं अबंभंपिचउत्थं) यह अब्रह्म नामक वह चौथा अधर्मद्वार भी हुआ, (सदेवमणुजासुरस्स लोगस्स पत्थणिज्ज, एवं चिरपरिचियमणुगयं दुरंतं चउत्थं अधम्मद्वारं समत्तं त्तिवेमि) जो देव, मनुष्य और असुर सहित-लोक-संसार का प्रार्थनीय है, इस प्रकार यावत् अधिक कालका परिचित, साथी और दु:ख से अन्तवाला है। ऐसा चौथा अधर्मद्वार समाप्त हुआ, ऐसा मैं कहता हूँ। सू० ६। १६।

भावार्थ-"इस सूत्र में बताया गया है कि मैथुन संज्ञा के वशीभूत जीव एक दूसरे को मारते हैं। कई जीव विषय के व्यासङ्ग में लग्न हुए मारे जाते हैं। कुकर्म से प्रख्यात हुए कई धन जन व प्राणों की क्षति उठाते है। मैथुन से निवृत्त नहीं होने वालो की यह दशा है। विषय मे आसक्त हुए भए घोड़े, हाथी आदि पशु परस्पर-एक दूसरे को मारते हैं और नर, वानर पक्षी भी इस कारण से लड़ते हैं। मित्र भी शत्रु बन जाते मैं। और दुराचारी लोग सम्प्रदाय सिद्धान्त एवं धर्ममर्यादा को भी भंग करते हैं। इस कृष्णकृत्य के उपासक लोग सदाचारी रहकर झट नीचे गिरजाते हैं। और कीर्तिमान् भी अकीर्तियुक्त हो जाते हैं। इस व्यभिचार से जीव रोगी बनते और फिर उस रोग को बढाते रहते हैं। संक्षेप मे कहना चाहिए कि दुराचारिओं के लिये दोनों लोक दुराराध्य-अर्थात् विफल हो जाते हैं। क्योकि इस लोक मे पकड़े जाने पर वध बन्धन आदि दुःख सहने पडते हैं और परलोक में भी नरकगामी बनते हैं। इस मैथुन के चलते गत काल में कई जनसहारी संग्राम हुए हैं, जिनका विशदवर्णन शास्त्रो में सुन पड़ता है। जैसे-सीता के लिये राम रावण का, द्रौपदी के लिये कौरव पाण्डवो का, तथा तारा के लिये साहसमति व सुग्रीव का, इत्यादि सैकडो युद्ध प्रसिद्ध हैं। विषयी लोग-उभयलोक को अपने हाथ से नष्ट करते हैं। आखीर त्रसस्थावर पर्यायों में भटकते हुए चतुर्गतिक संसार मे पल्योपम सागरोपम कालतक पर्यटन करते रहते हैं। उपसंहार स्पष्ट ही है। सू० ६। १६।

अथ "पञ्चम आस्रव" प्रारभ्यते

सम्बन्ध-"पूर्व अध्ययन में अब्रह्म का स्वरूप कहा गया, वह परिग्रह के होने पर ही होता है, इसलिये इस अध्ययन मे परिग्रह को पाच द्वारो से कहेंगे,-प्रथम परिग्रह का स्वरूप बताते हुए श्री सुधर्म स्वामी महाराज फरमाते हैं-

मूल-"जंबू ! इत्तो परिग्गहो पंचमो उ नियमा णाणामणि-रयण-कणग-महरिह-परिमल-सपुत्त-दार-परिजण-दासीदास-भयग-पेस-हय-गय-गोमहिस-उट्ट-खर-अय-गवेलग-सीया-सगड-रह-जाण-जुग्ग-संदण-सयणासण-वाहण-कुविय-धणधन्न-पाण-भोयणाच्छायण-गंध-मल्ल-भायण भवण विहिं चेव बहुविहीयं, भरहं णग-णगर-णियम-जणवय-पुरवर-दोणमुह-खेड-कब्बड-मडंब-संवाह-पट्टणसहस्स परिमंडियं, थिमियमेइणीयं, एगच्छत्तं ससागरं भुंजिऊण वसुहं, अपरिमिय मणंत तण्ह-मणुगय-महिच्छसार-निरयमूलो, लोभकलिकसाय-महक्खंधो, चिंतासय निचिय विपुलसालो, गारव पविरल्लियग्ग विडवो, नियडि तया पत्त पल्लव धरो, पुप्फफलं जस्स कामभोगा, आयास विसूरणा, कलह पंकपियग्ग सिहरो, नरवतिसंपूजितो, बहुजणस्स हियय दइओ इमस्स मोक्खवर-मोत्ति मग्गस्स-फलिहभूओ चरिमं अहम्मदारं । १ । १७ ।

छाया-"हेजम्बूः ! इतः परिग्रहः पञ्चमस्तु नियमात्-नाना-मणि-कनक रत्न-महार्ह-परिमल-सपुत्रदार-परिजन-दासीदास-भृतक-प्रेष्य-हय गज गो-महिषोष्ट्र-खराऽज-गवेलक-शिबिका-शकट-रथ यान-युग्य-स्यन्दन शयनाऽऽसन-वाहन-कुप्य-धन धान्य पान-भोजनाच्छादनगन्धमाल्य भवनविधिम्, चैवं बहुविधं, भारतं [नाम] नग-नगर-निगम-जनपद-पुरवर-द्रोणमुख-खेट-कर्वट-मडम्ब-सवाह-पट्टणसहस्रपरिमण्डितम्, स्तिमित मेदिनीकमेकच्छत्रं ससागरं भुक्त्वा

वसुधामपरिमिताऽनन्ततृष्णानुगत-महेच्छासार निरयमूलो, लोभ कलिकषाय महास्कन्धः, चिन्ताऽऽयास निचित विपुलशालो, गौरवपल्लविताग्र विटपो, निकृति-त्वचा-पत्र-पल्लव धर', पुष्पफलं, यस्य काम भोगाः, आयास विसूरणा कलह प्रकम्पिताऽऽग्रशिराः,नरपतिसम्पूजितो बहुजनस्य हृदयदयितः। अस्य मोक्षवर मुक्ति मार्गस्य परिघी भूतं (स) चरममधर्मद्वारम्। सूत्र १ । १७ ॥

अन्व०-"(जंबू ! इत्तो) हे जम्बू ! इस चौथे आस्रव के बाद (परिग्गहो पंचमोउ) परिग्रह-पाचवां आस्रव (नियमा) निश्चय से होता है, यह कैसा है ?-(णाणामणि-कणग-रयण-महरिह-परिमल-सपुत्तदार-परिजण-दासीदास-भयग-पेस-हय-गय-गो-महिस-उट्ट-खर-अय-गवेलग- सीया-सगड--रहजाण-जुग्ग-संदण-सयणासण-वाहण-कुविय-धण धन्न-पाण भोयणाच्छायण-गंधमल्ल-भायण-भवण विहिं चेव बहुविहीयं) अनेक प्रकार के मणि, कनक-सोना, रत्न-कर्केतन आदि, बेशकीमती सुगन्धि द्रव्य पुत्र और स्त्री सहित परिवार, दासीदास और काम करने वाले भृतक, तथा खास काम पर भेजने योग्य-प्रेष्य, घोड़े, हाथी, गाय, भैंस, ऊंट, गधा, बकरे की जाति और गवेलक व शिबिका-पालकी, शकट-गाडी तथा रथ, यान व युग्य-वाहन विशेष तथा स्यन्दन-क्रीडारथ, शयन, आसन और वाहन व कुप्य-घर के उपयोगी सामान, धन, धान्य, भक्ष्य खाने के पदार्थ और पेय, आच्छादन-शरीर ढकने का वस्त्र, गध-कपूर आदि, माल्य-पुष्पमाला, भाजन और भवन के अनेक प्रकार के विधान को (णग-णगर-नियम-जणवय-पुरवर-दोणमुह-खेड कब्बड मडब-संवाह-पट्टण-सहस्स परिमंडियं) तथा नग-पर्वत, नगर-शहर, निगम-वणिग् लोगों का निवास स्थान-मंडी, जनपद-देश, पुरवर-प्रधान शहर, द्रोणमुख-जलमार्ग और स्थलमार्ग दोनो से जाने योग्य नगर, खेड, कर्वट, मडम्ब, सबाह और हजारों पत्तनों से मंडित (भरहं) भरत क्षेत्र को (थिमिय मेइणीयं) निर्भयजलयुक्त मेदिनी वाली (ससागरं वसुहं) समुद्र सहित पृथ्वी को (एगच्छत्र') एकच्छत्र-अखंड राज्य से (भुंजिऊण) भोगकर, अब परिग्रह का वृक्षरूप से वर्णन करते हैं-(अपरिमिय मणंततण्ह मणुगय महिच्छसार-निरयमूलो) अपरिमित अनन्त तृष्णा के साथ रहने वाली बड़ी इच्छा ही अक्षय्य और अशुभफल वाले जिसके मूल हैं, (लोभ-कलि-कसाय-महक्खंधो) लोभ, कलि-कलह, और कषाय-क्रोध मान आदि एतद्रूप महास्कन्ध वाला (चिंतायास

(निचिय विपुल सालो) चिन्ता और मनस्ताप आदि की अधिकता से या निरन्तर सैकडो चिन्ताओं से विस्तीर्ण शाखावाला (गारव पविरल्लियग्ग विडवो) ऋद्धि आदि के गौरव ही विस्तारयुक्त शाखा के अग्रभाग है जिसमें (नियडि-तयापत्त-पल्लवधरो) दूसरे को ठगने के लिये किये गये वंचनाप्रकार या कपट रूप त्वचा पत्र और फूल को जो धारण करने वाला है, (पुप्फफलं जस्स कामभोगा) तथा काम भोगही जिस वृक्ष के फूल व फल है (आयास विसूरणा कलह पकं पियग्ग सिहरो) शरीर और मन का खेद, तथा कलह ये ही जिस वृक्ष के कम्पमान होने वाले अग्र शिखर हैं (नरवतिसंपूजितो) राजाओ से पूजित (बहुजणस्सहियय दइओ) बहुत लोकों का हृदयवल्लभ (इमस्स मोक्खवर मोत्ति मग्गस्स) इस-प्रत्यक्ष-विद्यमान मोक्ष-वर्म मोक्ष-के निर्लोभितारूप मार्ग का (फलिहभूओ) यह परिग्रह आगल के समान रोध करने वाला है (चरिमं अहम्मदारं) यह अन्तिम अधर्मद्वार है ।१।१७।

भावार्थ-"सुधर्मस्वामी महाराज जम्बू नामक अपने शिष्य से फरमाते हैं कि अब्रह्म के बाद पांचवा अधर्म द्वार परिग्रह है । अनेक प्रकार के मणि सुवर्ण आदि जङ्गम तथा स्थावर सचेतन और अचेतन रूप बहुत प्रकार के साधनो को तथा गिरि नगर आदि हजारो बसतिओ से मण्डित भरत क्षेत्रको और समुद्र सहित पृथ्वीके एक-च्छत्र राज्य को भोगने पर भी जो तृप्ति रहित हैं । इसकी वृक्ष के साथ तुलना करते हैं -अपरिमित अनन्त तृष्णारूप बडी इच्छा व अशुभफलही इसका मूल है , लोभ कलह और कषाय इसके बडे स्कन्ध हैं ,सैकडो प्रकार की चिन्ताये इसकी विशाल शाखायें और अहङ्कार ही विस्तारयुक्त इसका शिखर है । अनेक प्रकार के छल कपट ही, जिसकी त्वचा पत्र व फूल हैं , कामभोग ही इसके फल फूल हैं । इसी प्रकार अन्य तुलना समझें यावत् निर्लोभितारूप मोक्षमार्ग का यह आगल के समान रोध करने वाला पंचम अधर्म द्वार है ॥ १ । १७ ॥

अब परिग्रह के नाम कहते हैं-

मूल-"तस्स य नामाणि इमाणि गोण्णाणि हों ति तीसं, तंजहा-परिग्गहो १, संचयो २ चयो ३, उवचओ ४, निहाणं ५, संभारो ६, संकरो ७, आयरो ८, पिंडो ९, दव्वसारो १०, तहामहिच्छा ११, पडिबंधो १२, लोहप्पा १३, महद्दी[2] १४, उवकरणं १५, संरक्खणाय १६,

१ क पव आयारो, २ क. महिद्दी ।

भारो १७, संपाउप्पायको १८, कलिकरंडो १९, पवित्थरो २०, अणत्थो-२१, संथवो २२, अगुत्ती २३, आयासो २४, अविओगो २५ अमुत्ती-२६, तण्हा २७ अणत्थको २८, आसत्ती २९, असंतोसोत्तिविय ३०, तस्स एयाणि एवमादीणि नामधेज्जाणि होंति तीसं । २ । १८ ।

छाया-"तस्य च नामानि इमानि गौणानि भवन्ति त्रिंशत्, तानि यथा-'परिग्रहः १, सञ्चयः २, चयः ३, उपचयः ४, निधानम् ५, सम्भारः ६, सङ्करः ७, आदरः ८, पिण्डः ९, द्रव्यसारः १०, तथा महेच्छा ११, प्रतिबन्ध (अभिष्वङ्गः) १२, लोभात्मा (लोभ स्वभावः) १३, महर्द्धिः १४, उपकरणम् १५, संरक्षणा च १६, भारः १७, सम्पातोत्पादकः १८, कलिकरण्डः १९, प्रविस्तारः २०, अनर्थः २१, सस्तवः २२, अगुप्तिः २३, आयासः २४, अवियोगः २५, अमुक्ति २६, तृष्णा २७, अनर्थकः २८, आसक्तिः (आसङ्गः) २९, असन्तोषः ३०, इत्यपि च, तस्यैतानि-एवमादीनि नामधेयानि भवन्ति त्रिंशत् ।। सू० २ । १८ ।।

अन्व०- " (तस्स य) फिरस्वरूप के बाद उस परिग्रह के (इमाणि) ये आगे कहे गये (गोण्णाणि) गुणनिष्पन्न (तीसं) तीस (नामाणि) नाम (हुंति) होते हैं (तंजहा) जैसे कि वे इस प्रकार हैं-(परिग्गहो) परिग्रह-शरीर आदि का अच्छी तरह ग्रहण करना , (संचयो) सञ्चय-अधिक मात्रा मे संग्रह करना (चयो) चय-वस्तुओ को जुटाना, (उवचओ) उपचय (निहाणं) निधान (संभारो) संभार जो अच्छी तरह से धारण किया जाय (संकरो) सङ्कर-वस्तुओ को एक दूसरे से मिलाना (आयरो) आदर-वस्तुओ मे आदर बुद्धि करना (पिंडो) पिण्ड (दव्वसारो) द्रव्यरूप सार वाला (तहा महिच्छा)वैसेही महेच्छा-तीव्र इच्छा (पडिबधो) प्रतिबन्ध-बाह्यपदार्थमे स्नेहबन्ध होना (लोहप्पा) लोभात्मा-लोभमय आत्मा वाला, (महद्दि) महर्द्धि -अपरिमित याचनावाला (उवकरणं) उपकरण (सरक्खणा य) और संरक्षणा-मोह वश-शरीर आदि की विशेष रक्षा करना (भारो) भार-आत्मा को विशेषभारी करने वाला (संपाउप्पायको) संपातोत्पादक-झूठ आदि पातको को पैदा करने वाला (कलिकरंडो) कलहोंकी पेटी (पवित्थरो) प्रविस्तर-धनधान्य आदि का विस्तार (अणत्थो) अनर्थ-अनर्थो का हेतु (संथवो) संस्तव-बाह्यपदार्थों का अधिक परिचय (अगुत्ती)-अगुप्ति-इच्छा के संगोपन से हीन (आयासो) आयास-खेदका कारण (अविओगो) अवियोग-धन आदिको नहीं छोडना(अमुत्ती) अमुक्ति-सलोभ-

हुआ, (तयहा) तृष्णा (अणत्थको) अनर्थक-परमार्थसे निरर्थक अनर्थ को करनेवाला, (आसत्ती) आसक्ति-अधिकमोह (असंतोसोत्तिविय) इसप्रकार असन्तोष ग्रह भी (तस्स) उस परिग्रहके (एयाणि एवमादीणि नामधेज्जाणि तीसंहोंति) ये कहे गये तीस और इसीतरह के दूसरे नाम होते हैं ॥ २ ॥ १८ ॥

भावार्थ-इससूत्र में परिग्रह के तीस नाम कहे गये हैं जैसे-"परिग्रह १ सञ्चय २ चय ३ उपचय ४ निधान ५ सम्भार ६ सङ्कर ७ आदर ८ पिण्ड ९ द्रव्यसार १० महेच्छा ११ प्रतिबन्ध १२ लोभात्मा १३ महार्द्धि १४ उपकरण १५ और संरक्षण १६ भार १७ सम्पातोत्पादक १८ कलिकरण्ड १९ प्रविस्तर २० अनर्थ २१ संस्तव २२ अगुप्ति २३ आयास २४ अवियोग २५ अमुक्ति २६ तृष्णा २७ अनर्थक २८ आसक्ति २९ और असन्तोष ३० इसप्रकार परिग्रह के ये तीसनाम अन्वर्थक-सार्थक होते हैं । २ । १८ ॥

मूल-"तंच पुण परिग्गहं ममायंति लोभघत्था, भवनवर विमाणवासिणो परिग्गहरुती, परिग्गहे विविह करणबुद्धी, देव-निकायाय, असुर-भुयग-गरुल-विज्जुजलण-दीव-उदहि-दिसि-पवण-थणिय, अणवंनिय-पणवंनिय-इसिवातिय- भूतवाइय- कंदिय- महाकंदिय-कुहंड-पतंगदेवा, पिसाय-भूय-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस-महोरग-गंधव्वा य, तिरियवासी पंचविहा जोइसिया य देवा, बहस्सती, चंद-सूर-सुक्क-सनिच्छरा, राहु-धूमकेउ बुधाय, अंगारकाय, तत्ततवणिज्ज कणयवण्णा, जे य गहा जोइसम्मि[1] चारं चरंति, केऊ य गतिरतीया, अट्ठावीस तिविहा य नक्खत्त-देवगणा, नाणा संठाण संठियाओय तारगाओ, ठियलेस्सा-चारिणो य अविस्साम मंडलगती उवरिचरा, उड्ढलोगवासी दुविहा-वेमाणिया य देवा, सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोग- लंतक-महासुक्क- सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुया कप्पवर विमाणवासिणो, सुरगणा, गेवेज्जा, अणुत्तरा दुविहा कप्पातीया विमाणवासी, महिड्ढिका उत्तमा सुरवरा एवं च ते चउव्विहा सपरिसाविदेवा ममायंति, भवण वाहण जाण विमाण सयणासणाणि य नाणा विहवत्थभूसणा[2] पवर पहरणाणि य नानामणि-पंचवण्णदिव्वं च भायणविहिं, नाणाविह कामरूवे, वे उव्विय

१ क. जोइसियंम्मि, २ क. भूसणाणि य,

अच्छर गणसंघाते, दीवसमुद्दे, दिसाओ, विदिसाओ, चेतियाणि, वणसंडे, पव्वते गामनगराणि य, आरामुज्जाण काणणाणिय, कूव–सर–तलाग वावि-दीहिय देवकुल–सभ–प्पव–वसहि माइयाइं बहुकाइं, कित्तणाणि य परिगेण्हित्ता परिग्गहं विपुलदव्वसारं देवावि सइंदगा न तित्तिं न तुट्ठिं उवलभंति।

छाया–"तं च पुनः परिग्रहं ममायन्ते लोभग्रस्ता भवनवरविमान वासिनः, परिग्रह रुचयः परिग्रहे विविध करणबुद्धयो देवनिकायाश्चाऽसुरभुजग-गरुड-विद्युज्ज्वलन-द्वीपो॰ दधि-दिक्-पवन-स्तनिताऽणपन्निक-पणपन्निक-इषि ऋद्धिवादिक-भूतवादिक-क्रन्दित-महाक्रन्दित–कूष्माण्ड–पतङ्गा देवाः, पिशाच–भूत–यक्ष–राक्षस–किन्नर–किम्पुरुष–महोरग–गन्धर्वाश्च, तिर्यग् वासिनः पञ्चविधा ज्योतिष्काश्च देवाः, बृहस्पति चन्द्र सूर्य शुक्र शनिश्चरा., राहु धूमकेतु बुधाश्चाङ्गारकाश्च तप्ततपनीय कनक वर्णा, ये च ग्रहा ज्योतिष्केषु चारं चरन्ति, केतवश्च गतिरतयः, अष्टाविंशतिविधाश्च नक्षत्र देव-गणाः, नाना संस्थानसंस्थिताश्च तारकाः, स्थितलेश्याश्चारिणश्चाऽविश्राममंडल गतयः, उपरिचरा ऊर्द्ध्वलोकवासिनो द्विविधा वैमानिकाश्च देवाः, सौधर्मेशान–सन-त्कुमार–माहेन्द्र–ब्रह्मलोक– लान्तक– महाशुक्र– सहस्राराऽऽणत–प्राणताऽऽरणकाऽ-च्युता. कल्पवर विमान वासिनः सुरगणाः, ग्रैवेयका अनुत्तरा द्विविधाः कल्पातीता विमानवासिनो महर्द्धिका उत्तमाः सुरवरा.। एवञ्चते चतुर्विधाः सपरिषदोऽपि देवा ममायन्ते, भवन–वाहन–यान–विमानशयनाऽऽसनानिच, नानाविध वस्त्रभूषणानि प्रवरप्रहरणानिच, नानामणि पञ्चवर्ण–दिव्यञ्च भाजनविधि, नानाविध कामरूपा विकुर्विताऽप्सरो गण संघातान्, द्वीपसमुद्रान्, दिशो, विदिशश्चैत्यानि, वनखण्डान् पर्वताश्च, ग्रामनगराणिच, आरामोद्यानकाननानिच, कूपसरस्तटाक–वापी–दीर्घिका देवकुल–सभाप्रपा–वसत्यादीनिबहुकानि, कीर्तनानि च परिगृह्य परिग्रह विपुल द्रव्य सारं देवा अपि सेन्द्रका न तृप्तिं न तुष्टिमुपलभन्ते।

अन्वयार्थ–"(तं च पुण परिग्गहं) और फिर उस परिग्रह को (ममायंति) स्वीकार करते हैं (लोभघत्था भवणवरविमाणवासिणो) लोभग्रस्त प्रधान भवन और विमानवासी देव (परिग्गहरुती, परिग्गहे विविह करणबुद्धी) जो परिग्रह की रुचि वाले हैं, तथा परिग्रह में वृद्धि करने की बुद्धि वाले हैं, (देव निकाया य) और देवसमूह (असुर–भुयग–गरुल विज्जुज्जलण–दीव–उदहि दिसि-पवण-थणिय-

अणवन्निय-पणवन्निय-इसिवातिय-भूतवाइय-कंदिय-महाकंदिय-कुहंड-पतंगदेवा) जैसे-असुर कुमार १, नागकुमार २, गरुड-सुपर्णकुमार ३, विद्युत्कुमार ४, अग्निकुमार ५, द्वीपकुमार ६, उदधिकुमार ७, दिक्कुमार ८, पवनकुमार ९, और स्तनित कुमार १०, ये दश भवनपति, अणपन्निक १, पणपन्निक २, इषिवादिक ३, भूतवादिक ४, कन्दित ५, महाकन्दित ६, कूष्माण्ड ७, और पतङ्गदेव ८, ये आठ व्यन्तर जाति के देव, (पिसाय-भूय-जक्खरक्खस-किनर किंपुरिस महोरग-गन्धव्वाय) और पिशाच १, भूत २, यक्ष ३, राक्षस ४, किन्नर ५, किम्पुरुष ६, महोरग ७, तथा गन्धर्व ८ ये आठ व्यन्तर विशेष [कुल १६ जाति के व्यन्तर देव] (तिरियवासी पंचविहा जोइसिया य देवा) और तिर्यग् लोक मे रहने वाले पांच प्रकार के ज्योतिष्कदेव (बहस्सती, चंद-सूर-सुक्क-सनिच्छरा) बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र व शनैश्चर (राहु-धूम-केउ-बुधा य, अंगारका य, तत्त-तवणिज्ज-कणयवण्णा) राहु, धूमकेतु और बुध तथा तपाये हुए लाल सुवर्ण के समान वर्ण वाले अङ्गारक-मङ्गल ग्रहविशेष (जे य गहा जोइसंमि चारं चरंति) और जो दूसरेग्रह ज्योतिश्चक्र में संचार करते हैं (केउ य गतिरतीया) और केतु, गतिमें प्रसन्नता का अनुभव करने वाले (अट्ठावीसतिविहा य नक्खत्त देवगणा) और अट्ठाईस प्रकारके नक्षत्र देवोका समूह (नाणा-संठाण संठियाओ य तारगाओ) फिर अनेक प्रकार के संस्थान-आकारवाले तारक-तारागण (ठियलेस्सा चारिणो य अविस्साम मंडलगई उवरिचरा) स्थिर कान्ति वाले-मनुष्य क्षेत्र से बाहर के ज्योतिष्क, और मनुष्य क्षेत्र के भीतर संचार करने वाले जो तिर्यग् लोक के ऊपरी भाग मे वर्तमान तथा अविश्रान्त मंडल-वर्तुलाकार-गति से चलने वाले हैं, (उड्ढलोगवासी दुविहा वेमाणिया य देवा) और ऊर्ध्वलोक में बसने वाले दो प्रकार के-कल्पोपपन्न, तथा कल्पातीत-वैमानिक देव है। 'कल्पोपपन्न देवों को कहते हैं'-(सोहम्मीसाण-सणकुमार-माहिंद बंभलोग-लंतक-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुया कप्पवर विमाण वासिणो सुरगणा) सौधर्म १, ईशान २, सनत्कुमार ३, माहेन्द्र ४, ब्रह्मलोक ५, लान्तक ६, महाशुक्र ७ सहस्रार ८, आणत ९, प्राणत १०. आरण ११ और अच्युतकल्प १२ के प्रधान विमानों में रहने वाले देव समूह (गेवेज्जा अणुत्तरा दुविहा कप्पातीया विमाणवासी) ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानवासी ये दो प्रकार के कल्पातीत कल्प-मर्यादा के बन्धनो से रहित'-(महिड्ढिका उत्तमा सुरवरा)

महर्द्धिक, उत्तम और प्रधान देव हैं (एवं च ते) और इस प्रकार वे (चउव्विहा सपरिसाविदेवा) चार प्रकार के परिषत् सहित भी देव (भवण-वाहण-जाण विमाण-सयणासणाणिय) भवन, वाहन-हाथी आदि, यान-रथ आदि अथवा घूमने के विमान और विमान-पुष्पक आदि तथा शय्या और आसन-भद्रासन, सिंहासन आदि, (नाणा विहवत्थ भूसणा-पवर-पहरणाणिय) और अनेक प्रकार के वस्त्र,-भूषण तथा उत्तम प्रहरण-शस्त्रों को (नाणामणि-पचवन्न-दिव्वं च भायणविहिं) और नाना भाँति की मणिओ के पांच वर्ण के दिव्य भाजन जाति को तथा (नाणाविह-कामरूवे, वेउव्विय-अच्छरगण-संघाते) इच्छानुसार अनेक प्रकार के रूपवाले, वस्त्र आदि से विशेषशोभावाली अप्सरा समूह को (दीव-समुद्दे, दिसाओ, विदिसाओ, चेतियाणि, वणसंडे पव्वते य द्वीपसमुद्र, दिशा-पूर्व आदि दिशायें, ईशान आदि विदिशायें चैत्य-माणवक चैत्य या ऐसे चैत्य स्तूप आदि, वनखण्ड और पर्वतों को (गाम नगराणि य) ग्राम, नगर और (आरामु-ज्जाण काणणाणिय) आराम उद्यान-बगीचा व कानन-जंगलों को और (कूव-सर-तलाग-वाविदीहिय-देवकुल सभ-प्पव-वसहि माइयाइं) कूप, सर-सरोवर तालाब, वापी-बावडी, दीर्घिका-लम्बीवापी, देवकुल-देवल सभा, प्रपा-प्याऊ और वसति इत्यादि (बहुकाइं कित्तणाणि य , और कीर्तनीय-स्तुतिके लायक धर्मस्थानों को (ममायंति) ममत्व भावसे स्वीकार करते हैं (विपुल दव्वसार परिग्गह) विपुल द्रव्य वाले परिग्रह को (परिगेण्हित्ता) ग्रहण करके (सइंदगा देवावि) इन्द्र सहित सब देव भी (न तित्ति नतुट्ठिं उवलभंति) न तृप्ति और न सन्तोष को ही प्राप्त करते हैं।

मूल—"अच्चंत विपुल लोभाभिभूत[1] सत्ता, वासहर-इक्खुगार-वट्ट पव्वय-कुंडल-रुचगवर-माणुसोत्तर-कालोदधि-लवण सलिल-दहपति-रतिकर-अंजणकसेल दहिमुहऽवपातुप्पाय[2]-कंचणक-चित्त विचित्त-जमकवर-सिहर कूडवासी, वक्खार अकम्मभूमिसु, सुविभत्त-भागदेसासु, कम्मभूमिसु जेऽवियनरा चाउरंत चक्कवट्टी, वासुदेवा, बलदेवा, मंडलीया, इस्सरा, तलवरा, सेणावती, इब्भा, सेट्ठी, रट्ठिया, पुरोहिया, कुमारा,

१ क.- लोभाभिभूयासत्ता, २ क उवउप्पाय.

दंडणायगा, माडंबिया, सत्थवाहा, कोडुंबिया, अमच्चा, एए अन्ने य एवं-मादी परिग्गहं संचिणंति, अणंतं असरणं दुरंतं, अधुवमणिच्चं, असासयं पावकम्मनेम्मं, अवकिरियव्वं, विणासमूलं, वहबंध-परिकिलेस बहुलं, अणंत संकिलेस कारणं, ते तं धण-कणग-रयण-निचयं पिंडिंता चेव लोभघत्था संसारं अतिवयंति सव्वदुक्ख संनिलयणं। सू० । ३ । १८ ।

छाया-" अत्यन्त विपुल लोभाभिभूत सत्त्वा, वर्षधरेषुकार-वृत्त पर्वत-कुण्डल रुचकवर-मानुषोत्तर-कालोदधि-लवण सलिल-ह्रदपति-रतिकराऽञ्जनक शैल-दधिमुखावपानोत्पात-काञ्चन-चित्र-विचित्र-यमक-वर शिखर-कूट वासिनः, वक्ष-स्काराऽकर्मभूमिषु सुविभक्तभागदेशासु, कर्मभूमिषु येऽपिचनराश्चातुरन्त चक्रवर्तिनो वासुदेवाः, बलदेवाः, माण्डलिकाः, ईश्वरास्तलवराः, सेनापतयः, इभ्याः, श्रेष्ठिनो, रथिकाः, [राष्ट्रिकाः] पुरोहिता., कुमाराः, दण्डनायकाः, माडम्बिकाः, सार्थवाहाः कौटुम्बिका, अमात्याः, एतेऽन्ये चैवमादयः परिग्रहं संचिन्वन्ति-अनन्तमशरणं दुरन्तमनित्यमशाश्वतं पापकर्मनेमिकम्, अपकरणीयं, विनाशमूलं वधबन्ध परिक्ले-शबहुलम्, अनन्त संक्लेशकारणम्, ते तं धन-कनक-रत्ननिचयं-पिण्डयन्तश्चैव लोभग्रस्ताः संसारमति पतन्ति सर्व दुःखसंनिलयनम्। ३ । १८ ॥

अन्व०-"(अच्चंत विपुल लोभाभिभूत सत्ता) अत्यन्त विशाल लोभ से घिरी-हुई बुद्धि वाले हैं, तथा (वासहर-इक्खुगार-वट्ट पव्वय-कुंडल रुचगवर माणुसोत्तर कालोदधि-लवणसलिल-दहपति-रतिकर अंजणक-सेल-दहिमुह-वपा-तुप्पाय-कंचणक-चित्त-विचित्त-जमकवर-सिहर कूडवासो) वर्षधर-हिमवान् आदि वर्षधर पर्वत, इषुकार,-धातकी खंड और पुष्करवर द्वीप के अर्द्धभाग करने वाले दक्षिण उत्तर लम्बे पर्वत विशेष, वृत्तपर्वत-शब्दापाति आदि गोलाकार पर्वत, कुंडल-जम्बुद्वीप से इग्यारहवें कुण्डलनामक द्वीप मे कुण्डलाकार के पर्वत, रुचकवर-तेरहवें रुचक द्वीप के भीतर मण्डलाकार रुचकवर पर्वत, मानुषोत्तर-मनुष्यक्षेत्र की सीमा बनाने वाले मानुषोत्तर पर्वत, कालोदधिसमुद्र, लवण समुद्र, सलिला-गंगा आदि महानदियाँ ह्रदपति-पद्मह्रद आदि महाह्रद,तथा रतिकर पर्वत-आठवें नन्दीश्वर नामक द्वीप के कोण में रहे हुए चार झल्लरी के संस्थान के पर्वत, अञ्जनक पर्वत नन्दीश्वर के चक्रवाल मे रहे हुए कृष्णवर्ण के पर्वत विशेष, दधिमुख-अंजनक पर्वतों के पासकी सोलह पुष्करिणी में रहे हुए १६ पर्वत, अवपात पर्वत-जिनपर वैमानिक

देव आकर मनुष्यक्षेत्र के लिए उतरते हैं, उत्पात पर्वत-भवनपति देव जिन स्थानों से ऊपर उठकर मनुष्यक्षेत्र में आते हैं, वैसे तिगिच्छ कूट आदि, काञ्चनक-उत्तरकुरु और देवकुरु क्षेत्र में रहे हुए सुवर्णमय पर्वत, चित्र विचित्र-निषधपर्वत के पासकी शीतोदा नदी के किनारे चित्रकूट व विचित्रकूट नामके पर्वत, यमकवर-नीलवान् वर्षधर के समीप की शीतानदीके तटपर रहे हुए २ यमकवर पर्वत,शिखर समुद्रमें रहे हुए गोस्तूप आदि पर्वत और कूट-नन्दन वनके कूट आदि इनपर रहने वाले 'ऐसे देव भी तृप्ति नहीं पाते, फिर अन्य प्राणिओं की तो बात ही क्या' ? (वक्खार अकम्म-भूमिसु सुविभत्त भागदेसासु कम्मभूमिसु) वक्षस्कार-विजय के विभाग करने वाले चित्रकूट आदि, तथा अकर्मभूमि-हैमवत आदि भोग्य भूमि के क्षेत्रों में तथा अच्छी तरह विभागयुक्त देशवाली-कर्मभूमि-भरत आदि पन्द्रह भूमिओं मे (जेऽवियनरा) और जो भी मनुष्य देवों की तरह रहते है 'उन मनुष्यों का विशेष प्रकार-(चाउरं-त चक्कवट्टी, वासुदेवा, बलदेवा) चारों ओर अन्त वाले षट् खण्ड भूमि के स्वामी-चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव (मंडलीया) माण्डलिक-मण्डलके अधिपति-महाराजा (इस्सरा, तलवरा, सेणावती, इब्भा, सेट्ठी, रट्ठिया) ईश्वर-युवराज आदि या भोगिक, तलवर-शिरपर सुवर्णपट्ट को बांधे हुए राजस्थानीय, सेनापति-सैन्य के नायक, इभ्य-हाथी को ढक देने जितने विशाल धन राशि के स्वामी, श्रेष्ठी-श्रीदेवता से अलंकृत चिह्न को मस्तक पर धारण करने वाले श्रेष्ठी-सेठ-राष्ट्रिक-राष्ट्र-देशकी चिन्ता करने वाले अर्थात् राष्ट्र को उन्नति और अवनति के विचार में नियुक्त अधिकारी विशेष (पुरोहिया, कुमारा, दंडणायगा, माडबिया, सत्थवाहा, कोडुंबिया, अमच्चा) पुरोहित-शान्तिकर्म आदि करने वाले, कुमार-युवराज, दण्ड नायक-कोतवाल आदि, माडबिक-छोटे राजा, सार्थवाह-बहुत से लोगों को साथ लेकर चलने वाले व्यापारी, कौटुम्बिक-ग्राम के मुख्य होकर जो सेवक है, अर्थात् राज्याश्रित मुख्य पुरुष, अमात्य-प्रधान (एए अन्ने य एवमादी) ये पूर्व कहे हुए विशिष्टलोक और इस प्रकार के दूसरे-इत्यादि मनुष्य (परिग्गहं संचिणंति) परि-ग्रह का सञ्चय करते है (अणतं असरणं दुरंतं अधुवमणिच्चं असासयं) जो परि-ग्रह अनन्त-परिणाम रहित, अशरण-दुःखसे बचाने में असमर्थ, दुरन्त-दुःखमय अन्तवाला, अध्रुव-निश्चलता रहित अनित्य-अस्थिर और प्रतिक्षण विनाश होने से अशाश्वत है (पावकम्मनेम्मं अवकिरियव्वं, विणास (विसाल) मूलं,वह बध परिकिलेस

बहुलं, अणंत संकिलेसकारणं) पाप कर्म का मूल, ज्ञानिओं के लिये त्यागने योग्य, विशाल बहुत गम्भीर या विनाश के मूल वाला, परजीवों के मारने बाधने और क्लेश देने की प्रधानता वाला याने परिग्रह के कारण परजीवों को अधिक मात्रा मे वध बन्धन और परिताप होता है, चित्त के अपरिमित क्लेश का कारण है (ते तं धण-कणग-रयण-निचयं) इस प्रकार के उस धन-सुवर्ण तथा रत्न के समूह को वे देव आदि (पिंडिता चेव लोभघत्था) सञ्चय करते हुए ही लोभ से ग्रसे गये (सव्वदुक्ख संनिलयण संसारं अतिवयंति) सब प्रकार के दुःखो के घररूप संसार मे जा पड़ते है।

भावार्थ-पूर्वोक्त परिग्रह को लोभ के वशीभूत भवनपति आदि देव स्वीकार करते हैं। देवों के विविध प्रकार और परिग्रह मे आने वाले पदार्थो का वर्णन सहज है। अकर्मभूमि और कर्मभूमि के निवासी मानवो मे कर्मभूमि के मनुष्य ही अधिक परिग्रह वाले हैं। इसलिए उनका विशेष वर्णन करते हैं-चक्रवर्त्ती आदि परिग्रह का सञ्चय करते है। यह परिग्रह अनन्त अशरण यावत् अनन्त दुःखो का कारण है। लोभ के अधीन वे देव आदि इसका सञ्चय करते हुए ही दुःखमय ससार मे गिर जाते है। सू० ३। १८।

परिग्रह का सञ्चय जिस प्रकार किया जाता है उसका वर्णन करते हैं—

मूल—"परिग्गहस्स य अट्ठाए सिप्पसयं सिक्खए बहुजणो, कलाओ य बावत्तरिं सुनिउणाओ लेहाइयाओ सउण 'रुयावसाणाओ, चउसट्ठिं च महिलागुणे रतिजणणे, सिप्पसेवं, असि मसि किसि वाणिज्जं, ववहारं अत्थ-सत्थ-इसत्थ'-च्छरुगयं, विविहाओ य जोग जुंजणाओ, अन्नेसु एवमादिएसु बहूसु कारणसएसु जावज्जीवं नडिज्जए, संचिणंति मंदबुद्धी परिग्गहस्सेव य अट्ठाए करंति पाणाण वहकरणं, अलिय नियडि साइ संपओगे, परदव्व अभिज्जा, सपरदार' अभिगमणा सेवणाए आयास विसूरणं कलह भंडण वेराणि य, अवमाणण विमाणणाओ, इच्छा महिच्छ-प्पिवास सततातिसिया, तण्हगेहिलोभवत्था, अत्ताणा, अणिग्गहिया करेति कोहमाण मायालोभे, अकित्तणिज्जे परिग्गहे, चेव होंति नियमा सल्ला, दंडा, य गारवा य, कसाया, सन्ना य, कामगुण, अण्हगा य, इंदियलेसा-

१ क. गणियप्पहाणाओ, २ क इसमत्थे, ३ क. अपरदार.,

ओ, सयण संपओगा, सच्चित्ताचित्तमीसगाइं दव्वाइं अणंतकाइं इच्छंति परिघेत्तुं, सदेवमणुयासुरंमिलोए लोभपरिग्गहो जिणवरेहिं भणिओ, नत्थिएरिसो पासो पडिबंधो अत्थि सव्वजीवाणं सव्वलोए। सू० ४।१६॥

छाया—"परिग्रहस्य चार्थाय शिल्पशतं शिक्षते बहुजनः, कलाश्च द्वासप्ततीः सुनिपुणा लेखादिकाः शकुनरुतावसाना (गणित प्रधानाः) चतुःषष्टीश्च महिलागुणान् रतिजनकान्, शिल्पसेवाम्, असिमषिकृषिवाणिज्यं, व्यवहारमर्थशास्त्रेषुशास्त्रत्सरु, प्रगतं, द्विविधाश्च योगयोजना. अन्येष्वेवमादिषु बहुषु कारणशतेषु यावज्जीवनं नटयन्ति (दृश्यन्ते) सञ्चिन्वन्ति मन्दबुद्धयः परिग्रहस्यैवार्थायकुर्वन्ति प्राणिनां वधकरणम्, अलीक-निकृति-साति सम्प्रयोगे परद्रव्याऽभिज्ञाः सपरदाराभिगमनाऽऽसेवनया आयासविसूरणाः कलह भाण्डनवैराणिच, अवमानन विमानना इच्छा महेच्छा पिपासा सततवृषिताः, तृष्णागृद्धिलोभग्रस्ताः, अत्राणा, अनिगृहीताः कुर्वन्ति क्रोधमान मायालोभान् अकीर्तनीयान्, परिग्रहे चैव भवन्ति नियमा. (त्), शल्यानि, दण्डाश्च, गौरवानिच, कषाया., सञ्ज्ञाश्च,कामगुणा आस्रवाश्च,इन्द्रियलेश्याः, शयनसम्प्रयोगा., सचिताऽचित्त-मिश्रकादीनि द्रव्याणि, अनन्तकानीच्छन्ति परिग्रहीतुं सदेवमनुजाऽसुरे लोके,लोभपरिग्रहो जिनवरैर्भणितो,नाऽस्तीदृशः पाश प्रतिबन्धोऽस्ति सर्वजीवाना सर्वलोके ॥ सू० ४।१६ ॥

अन्व०—"(परिग्गहस्स य अट्ठाए) और परिग्रह के लिये (बहुजणोसिप्प सयं सिक्खए) बहुत से लोग सैकड़ों शिल्प सीखते हैं (कलाओ य बावत्तरिं सुनिपुणाओ लेहाइयाओ सउणरुयावसाणाओ गणियप्पहाणाओ) और अतिशय निपुण बहत्तर कलायें जिनमें लेखनकला आदि-प्रारम्भिक है, शकुनरुत-पक्षिओं के शब्दज्ञान-जहां अन्तिम और गणित कला जहां प्रधान है ऐसी (चउसट्ठिंच महिला गुणे रतिजणणे) और स्त्री के चौंसठ गुण या कलायें जो रति-अनुराग पैदा करने वाले है,उन्हें सीखते हैं (सिप्पसेवं) शिल्प पूर्वक सेवा (असि मसि किसि वाणिज्जं, ववहारं, अत्थ सत्थ ईसत्थ च्छरुप्पगयं) असि-खड्गादिशस्त्राभ्यास, मषी-लिपि विज्ञान कृषि-खेती का कर्म और वाणिज्य तथा व्यवहार को, अर्थशास्त्र-राजनीति आदि इषु-अस्त्र-धनुर्वेद शास्त्र छुरिका आदि मुष्ठि में ग्रहण करने का उपाय (विविहाओ य जोग जुंजणाओ) और अनेक प्रकार के वशीकरण आदि योग रचना को परिग्रह के लिये लोक सीखते हैं, (अन्नेसु एवमादिएसु बहूसु कारणसएसु जावज्जीवं-

भावार्थ—"परिग्रह के लिए ही बहुत से आदमी सैंकड़ो प्रकार की शिल्पशिक्षा ग्रहण करते हैं तथा ७२ बहत्तर प्रकार की कलाएं जिनमें सुन्दर लेखन आदि मिश्रित हैं, पक्षिओ के शब्द ज्ञान और गणित कला एवं चौंसठ प्रकार के महिलागुण जो अनुरागोत्पादक है उनको सीखते है। तलवार, लेखन, खेती, व्यापार, लोक व्यवहार अर्थशास्त्र याने राजनीति, धनुर्वेद, वशीकरण आदि योग रचना को भी लोग परिग्रह के लिए ही सीखते तथा यावज्जीवन उसीमें रमते रहते हैं।

परिग्रह के लिए ही जीवहिंसा, झूठ, परवंचन, सम्मिश्रण, परद्रव्य में लोभ आदि घृणित कार्यों मे उलझे रहते है। परिग्रही को स्व और परदार में भी शान्ति नही मिलती। वह वचन से कलह, शरीर से लड़ाई, तथा निरर्थक वैर और परापमान की इच्छा को बनाये रखता है। साधारण धनी से लेकर चक्रवर्तीपन की इच्छा से वह सतत सन्तप्त रहता है तथा अप्राप्त अर्थ की अभिलाषा उसके दिल में जगी रहती है। इस तरह अवशेन्द्रिय बनकर वह क्रोध, मान, माया, एवं लोभरूप दुर्भावनाओ का शिकार बना रहता है जो निन्दनीय है। परिग्रह मे ही शल्य और मनोदण्ड आदि तीन दण्ड, ऋद्धि, रस तथा सुखानुभवरूप गारव (गौरव) क्रोध आदि चार कषाय, आहार आदि चार संज्ञाएं और शब्दरूप आदि पाच काम गुण तथा पाच आस्रव, श्रोत्र आदि पाच असंयत इन्द्रियां तथा कृष्ण आदि अशुभ लेश्याए होती हैं। परिग्रही, सचित्त, अचित्त और मिश्र रूप से अनन्त द्रव्यों को सदा ग्रहण करने की इच्छा रखते है। सब जीवो के लिए मनुष्य तथा असुर लोक मे लोभ परिग्रह के समान दूसरा कोई बन्धन नहीं है यही मोह बन्ध का प्रमुख स्थान है—ऐसा जिनवरो ने कहा है। ४। १६॥

मूल—"परलोगम्मि य नट्ठा, तमंपविट्ठा, महया मोह मोहियमती, तिमिसंधकारे तसथावर सुहुमवादरेसु, पज्जत्तमपज्जत्तग एवं जाव परियट्ट ंति, दीहमद्धं जीवा लोभवससंनिविट्ठा। एसोसो परिग्गहस्स फलविवाओ इहलोइओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो, महब्भओ, बहुरयप्पगाढो, दारुणो ककसो, असाओ वाससहस्सेहिं मुचइ, नयअवेतित्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति, एव माहंसु नायकुलनंदणो महप्पाजिणोउ वीरवर नाम धेज्जो, कहेसी य परिग्गहस्स फल विवागं। एसोसो परिग्गहो पंचमोउ नियमा नाणामणि-

कणग रयणमहरिह एवं जाव इमस्स मोक्खवर मोत्तिमग्गस्स फलिहभूयो। चरिमं अधम्मदारं समत्तं । सू० ५।२०॥

छाया—"परलोके च नष्टारतमः प्रविष्टा., महामोह मोहितमतयस्तमिस्रान्धकारे त्रसस्थावर सूक्ष्मबादरेषु पर्याप्ताऽपर्याप्तकेषु, एवंयावत्परिवर्तन्ते [पर्यटन्ति] दीर्घ-मध्वानं जीवा लोभवशसन्निविष्टाः । एषस परिग्रहस्यफलविपाक ऐहिलौकिकः पारलौकिकोऽल्पसुखो बहुदु खो महाभयो बहुरज अगाढो, दारुण कर्कशोऽसातो वर्षसहस्रैर्मुच्यते नाऽवेदयित्वाऽस्ति हि मोक्षइति, एवमाख्यातवान् ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा जिनरतु वीरवर नामधेय.,कथयिष्यतिच परिग्रहस्य फलविपाकम् । एषस-परि-ग्रह. पञ्चमस्तु नियमेन (मात्) नानामणि कनकरत्न महार्ह, एवंयावदस्य मोक्षवर मौक्तिक मार्गस्य परिघभूतं चरममधर्मद्वार समाप्तम् ॥ सू० ५ ।२० ॥

अन्व—"(परलोगंमि य नट्ठातमंपविट्ठा) परलोक और इसलोक मे सन्मार्ग से च्युत होने के कारण नष्ट तथा अज्ञानरूप अन्धकार में निमग्न हैं (महयामोह मोहियमती) अतिशय मोह से मोहित मतिवाले जीव (तिमिसंधकारे तसथावर सुहुमबादरेसु पज्जत्तमपज्जत्तग एवं जाव रात्रि की तरह अज्ञानरूप अन्धकार मे त्रस, स्थावर, सूक्ष्म और बादर स्थानो मे पर्याप्त तथा अपर्याप्त रूप से इस प्रकार यावत् लोभवस संनिविट्ठा जीवा दीहमद्धं परियट्टंति) लोभ के कारण परिग्रह में लगे हुए जीव दीर्घ-लम्बे मार्ग वाले संसार मे परिभ्रमण करते हैं (ऐसोसो परिग्गहस्स फलविवागो) यह वह परिग्रह का फलस्वरूप विपाक (इहलोइओ, परलोइओ, अप्पसुहो, बहुदुक्खो, महब्भओ, बहुरयप्पगाढो, दारुणो, कक्कसो) इसलोक सम्बन्धी, तथा परलोक सम्बन्धी अल्पसुख और बहुत दुःख वाला, महाभय को उत्पन्न करने वाला, कर्मरज की अधिकता से अत्यन्त गाढ, दारुण और कर्कश—कठोर है (असाओ वाससहस्सेहि मुच्चइ) दुःखरूप वह परिणाम हजारो वर्षों से छूटता है (न अवेतित्ता अत्थिहुमो-क्खोति) बिना भोगे उस कटु फल से मोक्ष नहीं होता है (एवमाहंसु नायकुल नंदणो महप्पा जिणोउ वीरवर नाम धेज्जो) इस प्रकार ज्ञात कुल नन्दन महात्मा महावीर नाम के तीर्थङ्कर ने कहा है (कहेसी य परिग्गहस्सफल विवागं) और परि ग्रह के फलरूप विपाक को कहेगा (एसोसो परिग्गहो पंचमो उ नियमा) वह [वैसा] यह परिग्रह पाचवा निश्चयसे अधर्मद्वार है (नाणा मणि कणग रयण महरिह एवं जाव इमस्स मोक्खवर मोत्तिमग्गस्स फलिह भूयो) अनेक प्रकार के मणि सुवर्ण रत्न

आदि मूल्यवान् पार्थिवसम्पत्ति और इस प्रकार जंगम स्थावर अन्य सम्पत्ति रूप परिग्रह इस निर्लोभितारूप मोक्ष के प्रधान मार्ग का आगल के जैसा अवरोध करने वाला है चरिमं अधम्मदारं समत्तं) (अन्तिम अधर्मद्वार पूर्ण हुआ ॥ सू० ५।२० ॥

भावार्थ—परिग्रह के कारण लोक इस संसार में वैर विरोध आदि से और परलोक मे दुर्गति–गमन से नष्ट होते हैं। मोह से मुग्ध मति वाले प्राणी त्रसस्थावर आदि पर्यायों को अनुभव करते हुए यावत् चिर काल तक संसार में परिभ्रमण करते हैं। परिग्रह के इस फल विपाक को प्रभु महावीर ने कहा है आदि। यह परिग्रह नियम से पांचवां अधर्मद्वार है यावत् मोक्षमार्ग का विरोधी है। इस प्रकार पांचवां अधर्मद्वार पूर्ण हुआ ॥ सू० ५।२० ॥

हिंसा आदि पांचो अधर्मद्वार का निम्न गाथा से निगमन करते हैं–

मू०—एएहिं पंचहि असंवरेहिं, रयमादिणित्तु अणुसमयं।
चउव्विह गति (इ) पेरंतं, अणुपरियट्टंति संसारं ॥ १ ॥

छाया–एतैः पञ्चभिरसंवरै,–रज आचित्याऽनुसमयम्।
चतुर्विधगतिपर्यन्त,–मनुपरिवर्तन्ते संसारम् ॥ १ ॥

मू०—सव्वगई पक्खंदे, काहेंति अणंतए अकयपुण्णा।
जे य ण सुणंति धम्मं, सोऊण य जे पमायंति ॥ २ ॥

छाया–सर्वगतिप्रस्कन्दान्, करिष्यन्त्यनन्तानकृतपुण्या।
ये च न शृण्वन्ति धर्मं, श्रुत्वा च ये[1] प्रमाद्यन्ति ॥ २ ॥

मू०—"अणुसिट्ठं पि बहुविहं, मिच्छादिट्ठीणरा [य जेणरा] [1]अबुद्धीया।
बद्धनिकाइयकम्मा, सुणें (णं) ति धम्मं न य करेंति ॥ ३ ॥

छाया–अनुशिष्टमपि बहुविधं, मिथ्यादृष्टयोनरा अबुद्धिकाः।
बद्धनिकाचितकर्माणः शृण्वन्ति धर्मं न च कुर्वन्ति ॥ ३ ॥

मू०—किं सक्का काउं जे, जं णेच्छह ओसहं मुहा पाउं।
जिणवयणं गुणमधु (हु) रं, विरेयणं सव्वदुक्खाणं ॥ ४ ॥

छाया–किं शक्यं कर्तुं ये, यन्नेच्छथौषधं मुधा पातुम्।
जिन वचनं गुणमधुरं, विरेचनं सर्वदुःखानाम् ॥ ४ ॥

---

१ य जे नरा अहमा।

मू०—पंचेव य उज्झिऊणं, पंचेव य रक्खिऊण भावेण ।
कम्मरय विप्पमुक्का, सिद्धिवर मणुत्तरं जंति (त्तिबेमि) ॥ ५ ॥

छाया—पञ्चैव चोज्झित्वा, पञ्चैव च रक्षित्वा भावेन ।
कर्मरजो विप्रमुक्ताः सिद्धिवर मनुत्तरं यान्ति ॥ ५ ॥ इति ब्रवीमि ॥

* इति पंचासवदारा समत्ता *

अन्वयार्थ "(एएहि पंचहिं असंवरेहिं) पूर्वोक्त इन पांच असंवर-आस्रवों से अणुसमयं) प्रति समय (रयमादिणातु) जीवस्वरूप को रंगने के कारण ज्ञाना-वरण आदि कर्मरज का सञ्चय करके (चउव्विहगतिपेरंतं संसारं) चार प्रकार की गति रूप अन्त वाले संसार मे (अणुपरियट्टंति) पर्यटन करते है । १ ।

(अकयपुण्णाजे) पुण्य से हीन जो प्राणी हैं 'वे' (अणंतए) अनन्त (सव्वगई) पक्खंदे) देव आदि सब गतियों के अनन्त गमनों को (काहेंति) करेंगे, कौन ? (जे य ण सुणंति धम्मं) जो लोग धर्मको नही सुनते और (जे य) जोभी (सोऊण) सुनकर (पमायंति) आचरण मे प्रमाद करते है ॥ २ ॥

(मिच्छादिट्ठीअबुद्धीयानरा) मिथ्या दृष्टिवाले अज्ञानी नर (बद्धनिकाइयकम्मा) आत्मप्रदेश मे निकाचित कर्मों को बाधने वाले (अणुसिट्ठंपि बहुविहं) गुरुजनो से उपदिष्ट बहुत प्रकार के (धम्म) धर्म को (सुणेति न य करेंति) सुनते है परन्तु उसका आचरण नही करते हैं ॥ ३ ॥

(मुहा) निस्स्वार्थबुद्धि से दिये गये ' जिणवयणं ओसहं) जिनवचन रूप औषध को (जं णेच्छह पाउं) जिसलिये तुम पीना नहीं चाहते हो इसलिये (गुणमहुर) मूलोत्तर गुण से मधुर तथा (सव्वदुक्खाणं विरेयणं) सब दु खों का विरेचन वह जिनवचन रूप औषध (किं सक्का काउं जे) क्या कर सकता है ? ॥४॥

(पंचेवयउज्झिऊणं) हिंसा आदि पांच आस्रवों को छोड़कर और (पचेवभावेण रक्खिऊण) अहिंसा आदि पांचो संवरो का भाव से पालन करके (कम्मरय विप्प-

मुक्का) कर्मरज से सर्वथा मुक्त हुए जीव (सिद्धिवरमणुत्तरंजति) सम्पूर्ण कर्मों के क्षय से मिलने योग्य उत्तम और सर्वश्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥ सर्वथा कर्मों से मुक्त हुए जीव उत्तम सिद्धि गति को पाते हैं।

भावार्थ—"इन पाच गाथाओ का सार इसप्रकार है-इन वर्णितरूप वाले पांच आस्रवो से प्रतिसमय कर्म परमाणुओ का सञ्चय करके जीव ससार में पर्यटन करते है। जो पुण्यहीनप्राणी धर्म को नहीं सुनते, अथवा सुनकर धर्ममें प्रमाद करते हैं आचरण मे नहीं लाते, वे देव आदि गतिओं मे अनन्त बार जन्म ग्रहण करते हैं। मिथ्यादृष्टि अज्ञानीजीव प्राक्तन गाढ अशुभ कर्म के उदय से गुरु के उपदेश किये गये बहुत प्रकार के धर्म को श्रवण करके भी आचरण में नहीं लाते हैं॥ ३ ॥ निस्पृह भाव से दिये गये जिन वचन रूप औषध को जो तुम पीना भी नहीं चाहते, तो सब दु खो का नाश करने वाला और गुणों से मधुर वह औषध क्या कर सकता है? हिसा आदि पाच आस्रवों का त्याग कर और अहिसा सत्य आदि संवरो का पालन करके सर्वथा कर्मों से विमुक्त हुए जीव उत्तम सिद्धि गति को पाते हैं॥ १-५ ॥

❀ इति अधर्मद्वार सम्पूर्ण हुए ❀
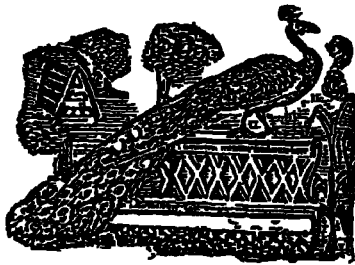
श्री प्रश्नव्याकरणसूत्रस्य

पंच संवर द्वाराणि

※ उत्तर खण्ड ※

प्रथम संवर द्वारम्

व्वयाइं नरगतिरिय मणुय देवगति-विवज्जकाइं, सव्वजिणसासणगाइं, कम्मरयविदारगाइं, भवसयविणासणकाइं, दुहसय विमोयणकाइं, सुहसय पवत्तणकाइं, कापुरिस दुरुत्तराइं, सप्पुरिस निसेवियाइं, निव्वाण गमण मग्ग सग्गपणायगाइं, संवरदाराइं पंच कहियाणि उ भगवया।

छाया-"तानित्विमानि सुव्रत ! महाव्रतानि, लोकहितसद्व्रतानि, श्रुतसागर देशितानि, तप. संयममहाव्रतानि, शीलगुणवरव्रतानि, नारकतिर्यङ् मनुजदेवगति विवर्जकानि, सर्वजिन शासनकानि, कर्मरजो विदारकाणि, भवशत विनाशकानि, दु.खशतविमोचकानि, सुखशतप्रवर्तकानि, कापुरुष दुरुत्तरकाणि, सत्पुरुष निषेवितानि, निर्वाणगमनमार्गस्वर्गप्रणायकानि, संवरद्वाराणि पञ्च कथितानि तु भगवता।

अन्वय-"(सुव्वय !) हे सुव्रतमुने ! (ताणि उ इमाणि महव्वयाणि) पूर्व कहे गये वे अहिंसा आदि, ये महाव्रत-हैं (लोकहिय सव्वयाइ सुयसागर देसियाइं) संसार मे धैर्य देने वाले या चित्त की शान्ति रखने वाले सद्व्रत शास्त्र सागर मे दिखाये गये हैं, (तव संजम महव्वयाइं) अनशन आदि महातप और संयम जिनमे नष्ट नहीं होते अर्थात् तप व संयम के रक्षण करने वाले (सीलगुण वरव्वयाइं), शील और उत्तमगुणों के समूह वाले (सच्चज्जवव्वयाइं) सत्य एवं सरलता प्रधान व्रत (नरग-तिरिय मणुय-देवगति-विवज्जकाइं) नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिरूप संसार का विवर्जन-उच्छेद-करने वाले (सव्वजिण सासणगाइं) सब तीर्थङ्करो से कहे गये होने से शासनरूप (कम्मरय-विदारगाइं) कर्मरज के विदारण करने वाले (भवसय विणासणकाइं, दुहसय विमोयणकाइं) सैकडो भवों को मिटाने वाले इसीलिये-सैकडो दु खो से छुडाने वाले (सुहसय-पवत्तणकाइं) और सैकड़ो सुखों को मिलाने वाले हैं-(कापुरिसदुरुत्तराइं, सप्पुरिसनिसेवियाइं) कायर पुरुषों के द्वारा दु ख से पार करने योग्य और सत्पुरुषो स सेवन किये गये हैं (णिव्वाणगमणमग्ग सग्गपणायगाइं) निर्वाण गमन मे मार्ग के समान तथा स्वर्ग में ले जाने वाले (संवरदाराइं पच कहियाणि उ भगवया) ऐसे पाच संवर द्वारों को भगवान ने कहे हैं।

मूल-"तत्थ पढमं अहिंसा जासा सदेवमणुयासुरस्सलोगस्स भवति दीवो, ताणं, सरणं, गती पइट्ठा १ निव्वाणं २ निव्वुई ३ समाही ४ [1]सत्ती

१ क. संती।

५ कित्ती ६ कंती, ७ रती य ८ विरती य ९ सुयंग १०तित्ती ११ दया१२ विमुत्ती १३ खंती १४ सम्मत्ताराहणा १५ महंती १६ बोही १७ बुद्धी १८ धिती १९ समिद्धी २० रिद्धी २१ विद्धी २२ ठिती २३पुट्ठी २४ नंदा २५ भद्दा २६ विसुद्धी २७ लद्धी २८ विसिट्ठदिट्ठी २९ कल्लाणं ३० मंगलं ३१ पमोओ ३२ विभूती ३३ रक्खा ३४ सिद्धावासो ३५ अणासवो ३६ केवलीणट्ठाणं ३७ सिवं ३८ समिई ३९ सील(लं)४०संजमो ४१ त्तिय सील [1]परिघरो ४२ संवरो ४३ य गुत्ती ४४ ववसाओ ४५ उस्सओ ४६ जन्नो ४७ आयतणं ४८ जतण ४९ मप्पमातो ५० अस्सासो ५१ वीसासो ५२ अभओ ५३ सव्वस्सवि अमाघाओ ५४ चोक्खपवित्ता ५५ सूती ५६ पूया ५७ विमल ५८ पभासा ५९ य निम्मलतर ६० त्ति, एवमादीणि निययगुण निम्मियाइं पज्जवनामाणि होति अहिंसाए भगवतीए। सूत्रम् १।२१॥

छाया-"तत्र प्रथमं अहिंसा यासा सदेव मनुजाऽसुरस्य लोकस्य भवति द्वीप ,त्राण, शरण,गति', प्रतिष्ठा-१ निर्वाणम् २ निर्वृत्ति ३ समाधि ४ शक्ति ५कीर्ति ६कान्ति ७, रतिश्च ८ विरतिश्च ९ श्रुताङ्ग तृप्ति १० ११, दया १२ विमुक्ति १३ क्षान्तिः १४, सम्यक्त्वाऽऽराधना १५, महत्ता १६, बोधि. १७, बुद्धि १८ धृतिः १९, समृद्धि २०, ऋद्धि २१, वृद्धि २२, स्थिति २३, पुष्टि. २४, नन्दा २५ भद्रा २६, विशुद्धि. २७, लब्धि २८,विशिष्ट दृष्टि. २९,कल्याणम् ३०,मङ्गलम्३१ प्रमोदः ३२,विभूति.३३, रक्षा ३४, सिद्धावास ३५, अनास्रव ३६,केवलिना स्थानम् ३७, शिवम् ३८,समितिः ३९, शीलम् ४०, संयम ४१ इति च, शीलपरिगृहं ४२, सवर ४३, च गुप्ति' ४४,व्यवसाय' ४५, उच्छ्रय' ४६ यज्ञ·[2] ४७, आयतनम् ४८, यतना ४९ अप्रमाद. ५० आश्वास ५१,विश्वास ५२,अभय ५३,सर्वस्याप्यमाघात.-अमारि' ५४,चोक्ष पवित्रा ५५, शुचि ५६, पूता-पूजा ५७, विमला ५८, प्रभासा ५९,च निर्मलतरा ६०। इत्येवमादीनि नियतगुणनिर्मितानि पर्यायनामानि भवन्ति-अहिंसाया भगवत्या. ॥सू० १।२१॥

अन्व०-"प्रथम सवर का स्वरूप कहते है-(तत्थपढमं अहिंसा) उन पांच संवरों मे अहिंसा प्रथम संवर है (जा सा) जो वह अहिंसा (सदेव-मणुया-सुरस्स लोगम्स दीवो ताणं भवति) देवता मनुष्य तथा असुर सहित लोक के लिये संसार

१ क सीलघरो। २ यत्न इति वा।

समुद्र में डूबते हुए को द्वीप के समान आश्रयदाता या दीपक की तरह मार्ग दर्शक है इसलिये त्राण-विपत्ति से रक्षण करने वाली होती है, 'फिर यह अहिंसा'-(सरणं गई) शरण-सम्पत्तिदायक या घरके समान रक्षक तथा गति याने कल्याणार्थिओ के आश्रयण करने योग्य है। अब अहिंसा के नाम कहते हैं-(पइट्ठा) सब गुण तथा सुख इसमें रहते हैं इसलिये इसे 'प्रतिष्ठा' कहते हैं (निव्वाण निव्वुई) मोक्ष का हेतु तथा चित्त शान्ति का कारण होने से यह 'निर्वाण' तथा निर्वृति कहाती है, (समाही) समता का कारण होने से 'समाधि' (सत्ती) आत्मबल का कारण होने से यह 'शक्ति' अथवा शान्ति है (कित्ती) सुयश के कारण होने से कीर्ति (कंती) कान्ति-कमनीयता का कारण (रती य) और रति-सन्तोष का कारण (विरती य) और विरति-हिंसा रूप पाप से निवृत्ति वाली (सुयगतित्ती) श्रुताङ्ग-श्रुतज्ञान इसका कारण है, और तृप्ति-आत्मसन्तोष का कारण होने से यह तृप्ति है (दया) दया-प्राणिओं की रक्षा (विमुत्ती) विमुक्ति-बन्धमुक्ति का कारण (खंती) क्षान्ति-क्रोध निग्रहरूप (सम्मत्ताराहणा) सम्यक्त्वाराधना-सम्यक्त्वधर्म की आराधना करने वाली (महंती) महती-सभी धार्मिक अनुष्ठानों का इसमें समावेश होने से यह बृहती है (बोही) सद्धर्म की प्राप्ति अहिंसाधीन है, अतः अहिंसा को 'बोधि' कहते हैं अथवा सम्यक्त्व का कारण होने से अहिंसा 'बोधि' कहाती है (बुद्धी) बुद्धि-बुद्धि की सफलता का कारण (धिती) धृति-चित्त की स्थिरता से पालने योग्य (समिद्धी रिद्धी) ऋद्धि समृद्धि का कारण होने से अहिंसा भी 'समृद्धि ऋद्धि' नामवाली है (विद्धी) वृद्धि (ठिती) अनादि अनन्त मोक्ष स्थिति का कारण होने से 'स्थिति' (पुट्ठी) पुष्टि-पुण्यवृद्धि का कारण, (नंदा) नन्दा-समृद्धि दायक (भद्दा) भद्रा-कल्याण करने वाली (विसुद्धी) विशुद्धि-आत्मशुद्धि का कारण (लद्धी) लब्धि-विशिष्टलब्धिओ का हेतु (विसिट्ठदिट्ठी) उत्तम दृष्टि रूप होने से विशिष्ट दृष्टि (कल्लाणं मंगलं) कल्याण और विघ्न विनाशक होने से इसको मङ्गल भी कहते हैं (पमोओ) प्रमोद-हर्षोत्पादक (विभूती) सर्व वैभव का कारण होने से विभूति (रक्खा) रक्षा (सिद्धावासो) सिद्धावास-मोक्षवास-का कारण (अणासवो) अनास्रव-कर्मबन्ध के निरोध का उपाय (केवलीणठाणं) केवलिओं का स्थान (सिव) उपद्रव रहित होने से शिव (समिई) समिति-सम्यक् प्रवृत्ति (सील) पवित्र आचार रूप होने से शील (संजमोत्ति य) और यतना प्रधान होने

से इसे संयम कहते हैं, (सील परिघरो) शील परिगृह-चारित्र का स्थान (संवरो य) संवर और (गुत्ती) गुप्ति-अशुभ योगो का निरोध (ववसाओ) व्यवसाय-उत्तम प्रकार का निश्चय (उस्सओ) उच्छ्रय-भाव की उन्नति (जन्नो) यज्ञ-सद्-भाव से वीतराग की आज्ञाराधना के कारण अहिंसा यज्ञ कहाती है (आयतणं) आयतन-गुणो का मन्दिर, (जयणं) यजन-अभयप्रदान अथवा यतन प्राणिरक्षण (अप्पमाओ) अप्रमाद-प्रमाद का परिहार (अस्सासो) आश्वास-प्राणिओं के लिये आश्वासनरूप (वीसासो) विश्वास-विश्वास का कारण (अभओ सव्वस्स वि) अभय-प्राणिमात्र के लिये निर्भय स्थान (अमाघाओ) अमाघात-अमारी (चोक्ख पवित्ता) चोक्ष पवित्रा-अतिशय पवित्र (सूई) शुचि-भावशुद्धिरूप (पूया) पवित्रता का कारण होने से पूता या भाव से देवाराधन का अङ्ग होने से अहिंसा पूजा भी कहाती है (विमल) विमल-अशुभ भावरूप मलसे रहित. (पभा सा) प्रभासा-अतिशय दीप्तिवाली. (य निम्मलतर त्ति) और निर्मलतर-अतिशय निर्मल या जीव को निर्मल बनाने वाली है,(एवमादीणि नियय गुण निम्मियाइं) इस प्रकार के नियत गुणो से या अपने यथार्थगुणो से बने हुए (अहिंसाए भगवईए पज्जव नामाणि होंति) अहिंसाभगवती के पूर्वोक्त पर्याय नाम होते हैं॥ सू० १।२१॥

भावार्थ-सूत्रकार कहते हैं कि हे सुव्रत जंबूमुने ? वे पूर्वोक्त अहिंसा आदि पच महाव्रत ससार को धृति देने वाले,श्रुत सागर में कहे गये और तप संयमके रक्षक हैं। उत्तमशील गुणो की प्रधानता वाले, सत्य एवं सरलतायुक्त और नरक तिर्यग् आदि गतिओं के उच्छेदक हैं। सर्वतीर्थङ्करों से कहे गये व कर्मरज के बिखेरने वाले होने से सैकड़ो भवोके दु खोको नष्टकरने वाले और सुखके प्रवर्तक हैं। कायर पुरुषों को आच-रण करने मे कठिन व सत्पुरुषोसे सेवित हैं। यावत् इन पाच सवरद्वारों को भगवान् ने कहे हैं।

अहिंसा का स्वरूप-उन पांचोमें अहिंसा प्रथम संवर है। जो देव और मनुष्यों से युक्त सम्पूर्ण ससार का द्वीपरूप होने से रक्षण करने वाली है। शरणार्थिओं और कल्याणार्थिओं से प्राप्तकरने योग्य है। उसके गुणसम्पन्न नाम इस प्रकार है-" प्रतिष्ठा १ निर्वाण २ निर्वृति ३ समाधि ४ शक्ति ५ कीर्त्ति ६ कान्ति ७ रति ८ और विरति ९ श्रुताङ्ग और तृप्ति १०-११,दया १२ विमुक्ति १३ क्षान्ति १४ सम्यक्त्वारा धना १५ महती १६ बोधि १७ बुद्धि १८धृति १९ समृद्धि २०, ऋद्धि २१ वृद्धि २२ स्थिति २३ पुष्टि २४ नन्दा २५ भद्रा २६ विशुद्धि २७ लब्धि २८ विशिष्टदृष्टि २९ कल्याण ३०

मङ्गल ३१ प्रमोद ३२ विभूति ३३ रक्षा ३४ सिद्धयावास ३५ अनास्रव ३६ केवलिस्थान ३७ शिव ३८ समिति ३९ शील ४० संयम ४१ और शील परिगृह ४२ संवर ४३ गुप्ति ४४ व्यवसाय ४५ उच्छ्रय ४६ यज्ञ ४७ आयतन ४८ यजन या यतन ४९ अप्रमाद ५० आश्वास ५१ विश्वास ५२ अभय ५३ अमाघात-अमारि ५४ चोक्ष पवित्रा ५५ शुचि ५६ पूता अथवा पूजा ५७ विमल ५८ प्रभासा ५९ और निर्मलतरा ६० इत्यादि नियतगुणो से निष्पन्न भगवती अहिंसा के 'पर्यायनाम' होते है। मतलब यह है कि अहिंसा के भीतर छिपे-जो जो गुण हैं, तावन्मात्र के प्रकाशक ये ६० नाम है। इनके वाचक नाम तो सहस्रो हो सकते है। सूत्र १ । २१ ॥

मूल-"एसा सा भगवती अहिंसा, जा सा भीयाण विव सरणं, पक्खीणं पिव [1]गमणं, तिसियाणं पिव सलिलं, खुहियाणं पिव असणं, समुद्दमज्झेव पोतवहणं, चउप्पयाणं व आसमपयं, दुहट्ठियाणं च (व) ओसहिबलं, अडवीमज्झे विसत्थगमणं, एत्तो विसिट्ठतरिका अहिंसा जासा पुढविजल अगणि मारुय वणस्सइ बीज हरित जलचर थलचर खहचर तसथावर सव्वभूय खेमकरी। एसा भगवती अहिंसा जासा अपरिमियनाण दंसण धरेहिं, सीलगुण विणय तव संजम नायकेहिं, तित्थंकरेहिं, सव्वजग-जीव वच्छलेहिं, तिलोगमहिएहिं, जिणचदेहिं, सुट्ठुदिट्ठा, ओहिजिणेहिं विण्णाया, उज्जुमतीहिं विदिट्ठा, विपुलमतीहिं विविदिता, पुव्वधरेहिं अधीता, वेउव्वीहिं पतिन्ना, आभिणिबोहियनाणीहिं, सुयनाणीहिं, मण-पज्जवनाणीहिं, केवलनाणीहिं, आमोसहिपत्तेहिं, खेलोसहिपत्तेहिं, जल्लो-सहिपत्तेहिं, विप्पोसहिपत्तेहिं, सव्वोसहिपत्तेहिं, बीजबुद्धीहिं, कुट्ठबुद्धीहिं, पदाणुसारीहिं, संभिन्नसोतेहिं, सुयधरेहिं, मणबलिएहिं, वयबलिएहिं, काय बलिएहिं, नाणबलिएहिं, दंसणबलिएहिं, चरित्तबलिएहिं, खीरासवेहिं, महुआ सवेहिं, सप्पियासवेहिं, अक्खीणमहाणसिएहिं, चारणेहिं, विज्जाहरेहिं, चउत्थ-भत्तिएहि,[2] एवं जाव छम्मासभत्तिएहिं, उक्खित्तचरएहिं, निक्खित्तचरएहिं, अंतरचरएहिं, पंतचरएहिं, लूहचरएहिं, समुदाणचरएहिं, अन्नइलाएहिं, मोण-चरएहिं, संसट्ठकप्पिएहि, तज्जाय संसट्ठकप्पिएहिं, उवनिहिएहिं, सुद्धेसणि-एहिं, संखादत्तिएहिं, दिट्ठलाभिएहिं, अदिट्ठलाभिएहिं, पुट्ठलाभिएहिं, आ-

---

[1] गगणं-इत सगतम्।　　[2] क. फासु ओवणीय।

यंबिलिएहि, पुरिमड्ढिएहिं, एक्कासणिएहिं, निव्वितिएहिं, भिन्नपिंडवाइ-एहिं, परिमियपिंडवाइएहिं, अंताहारेहिं, पंताहारेहिं, अरसाहारेहिं, विरसा-हारेहिं, लूहाहारेहिं, तुच्छाहारेहिं, अंतजीविहिं, पंतजीविहिं, लूहजीविहिं, तुच्छजीविहिं, उवसंतजीविहिं, पसंतजीविहिं, विवित्तजीविहिं, अखीर महुसप्पिएहिं, अमज्जमंसासिएहिं, ठाणाइएहिं, पडिमंठाईहिं, ठाणुक्कडिएहिं, वीरासणिएहिं, णेसज्जिएहिं, डंडाइएहिं, लगंडसाईहिं, एगपासगेहिं, आया-वएहिं, अप्पावएहिं, अणिट्ठुवएहिं, अकंडूयएहिं, धुतकेसमंसुलोमनखेहिं, सव्वगाय पडिकम्मविप्पमुक्केहिं, समणुचिन्ना, सुयधर-विदितत्थकाय-बुद्धीहिं, धीरमतिबुद्धिणो य जेते आसीविस उग्गते य कप्पा, निच्छयववसाय पज्जत्तक य मतीया, णिच्चं सज्झायज्झाण-अणुवद्ध धम्मज्झाणा, पंचमह-व्वय-चरित्तजुत्ता, समितासमितिसु समित पावा, छव्विहजगवच्छला निच्चमप्पमत्ता, एएहिं, अन्नेहि य जासा अणुपालिया भगवती।

छाया-"एपा सा भगवती अहिंसा, या सा भीतानामिव शरणम्, पक्षिणामिव गम(ग)नं, तृषितानामिव सलिलम्, क्षुधितानामिवाऽशनम्, समुद्रमध्येव पोतवहनम्, चतुष्पदानां वाऽऽश्रमपदम्, दु खस्थितानाञ्चौषधीबलम्, अटवीमध्ये 'विश्वस्त'(सार्थ) गमनम्, इतोविशिष्टतरिकाऽहिंसा, या सा पृथवीजलाऽग्नि मारुत वनस्पति बीज हरित जलचर स्थलचर खेचर त्रसस्थावर सर्वभूत क्षेमकरी। एपा भगवती-अहिंसा यासाऽपरिमितज्ञान दर्शनधरै, शीलगुणविनयतप सयमनायकैस्तीर्थङ्करै, सर्व जगज्जीववत्सलै, त्रिलोकीमहितैर्जिनचन्द्रै सुष्ठुदृष्टा, अवधिजिनैर्विज्ञाता, ऋजु-मतिभिर्विदृष्टा, विपुलमतिभिर्विविदिता, पूर्वधरैरधीतावैकुर्वितै प्रतीर्णा, आभिनि-वोधिकज्ञानिभि. श्रुतज्ञानिभि मन पर्ययज्ञानिभि, केवलज्ञानिभि., आमर्षौषधिप्राप्तैः खेलौषधिप्राप्तैर्जल्लौषधिप्राप्तै, र्विप्रौषधिप्राप्तै, सर्वौषधिप्राप्तै, बीजबुद्धिभि, कुष्ठ-वुद्धिभि, पदानुसारिभि, सभिन्नस्रोतोभि श्रुतधरैर्मनोवलिकै, र्वचनबलिकै, काय-वलिकै., -ज्ञानवलिकैर्दर्शनबलिकैश्चरित्रबलिकै., क्षीरास्रवैर्मध्वास्रवै, सर्पिरास्रवै रक्षीणमहानसिकैश्चारणैर्विद्याधरैश्चतुर्थभक्तकै, रेवं यावत् पण्मासभक्तकै, रुत्क्षिप्तचरकै र्निक्षिप्तचरकै रन्तचरकै प्रान्तचरकै रूक्षचरकै, समुदानचरकै, रन्नग्लानै-र्दोपाऽन्नभो-जिभि, -मौनचरकै संसृष्टकल्पिकै, स्तज्जातसमृष्टकल्पिकैरौपनिधिकै शुद्धैपणिकै., सख्यादत्तिकै, र्दृष्टलाभिकै, रदृष्टलाभिकै, पृष्टलाभिकैराचाम्लिकै., (आयम्बिलिकै.)

पुरिमार्द्धिकैरेकाशनिकै, निर्विकृतिकैर्भिन्नपिण्डपातिकैः, परिमित पिण्डपातिकैरन्ता-ऽऽहारैः, प्रान्ताऽऽहारैररसाऽऽहारैर्विरसाऽऽहारै, रुक्षाऽऽहारैस्तुच्छाऽऽहारैरन्त-जीविभि', प्रान्तजीविभी, रूक्षजीविभिः तुच्छजीविभि रुपशान्त जीविभि' प्रशान्त-जीविभिर्विविक्तजीविभिरक्षीरमधुसर्पिष्कैरमद्यमांसाशिभिः, स्थानायितैः (स्थानाभि-ग्राहकै.) प्रतिमास्थायिभिः, स्थानोत्कटुकै', वीरासनकैर्नैषद्यिकै,-दण्डायतिकै,-लगण्डशायिभिरेकपार्श्विकैरातापनैरप्रावृतै, रनिष्ठीवकैरकण्डूयकै,-धूतकेशश्मश्रुरोम नखै, सर्वगात्र प्रतिकर्मविप्रमुक्तै. समनुचीर्णा, श्रुतधरविदितार्थकायबुद्धिभिर्धीरमति बुद्धयश्च ये, ते-आशीर्विषोग्रतेज.कल्पा निश्चय व्यवसाय पर्याप्तकृतमतिका नित्यं स्वाध्यायध्यानाऽनुबद्ध धर्मध्याना., पञ्चमहाव्रत चरित्रयुक्ता, समिता' समितिषु, शमितपापा., षड्विधजगद्वत्सला, नित्यमप्रमत्ता. एतैरन्यैश्च या साऽनुपालिता भगवती।

अन्व०-" (एसा सा भगवती अहिंसा) यह वह भगवती अहिंसा (जासा) जो यह (भीयाण विव सरणं) भीतो-डरे हुए-के लिये रक्षक के समान रक्षा करने वालीसी (पक्खीण पिव गमणं) पक्षिओ के लिये आकाश-गमन-की तरह हित कारी (तिसियाणं पिव सलिलं) प्यासो के लिये पानी के समान और (खुहियाणं पिव असणं) भूखो के लिये भोजन की तरह (समुद्दमज्झेव पोतवहणं) समुद्र के मध्यमे जहाज की तरह (चउप्पयाणं च आसम पयं) चौपाये जीवो के लिये आश्रम स्थान-वाड़े-की तरह (दुहट्टियाणं च ओसहिबल) और रोगिओ के लिये औषधी की तरह तथा (अडवीमज्झे विसत्थगमणं) अटवी मे भूले हुए को जैसे सार्थ-जन-समूह का मिलना हितकर होता है (एत्तो विसिट्ठतरिका अहिंसा) इन सबसे अतिशय विशिष्ट अहिंसा प्राणिओ के लिये हितकारिणी है (जासा) जोकि वह (पुढविजल-अगणि-मारुय-वणस्सइ-बीज हरित-जलचर-थलचर-खहचर-तस-थावर-सव्वभूय खेमकरी) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक तथा बीज व हरित एवं जलचर, स्थलचर, खेचर रूप त्रस स्थावर जोवमात्रके लिये क्षेम करने वाली (एसा भगवती अहिंसा) यह भगवती अहिंसा है, (जासा) जो कि (अपरिमिय नाणदंसणधरेहिं) अपरिमित ज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले (सीलगुण-विणय-तव-सजमनायकेहिं) शील रूप गुण और तप सयम व विनय इनके नायक (सव्वजगजीववच्छलेहिं) सभी जगज्जोवोंके वत्सल (तिलोगमहि-

एहिं) त्रिलोकके पूजित (जिणचंदेहिं) जिनसामान्यमेंचन्द्र के समान ऐसे (तित्थं करेहिं) तीर्थङ्करो से (सुट्ठुदिट्ठा) अच्छी तरह-केवल ज्ञानरूप प्रत्यक्षके द्वारा-देखी गई है (ओहिजिणेहिं विण्णाया) अवधिज्ञानिओ से सम्यग् जानी गई (उज्जु मतीहिंविदिट्ठा) ऋजुमतिओसे विशेष रूपसे देखीगई (विपुलमतीहिंविविदिता) विशेष ग्राहिणीबुद्धि वाले मनःपर्ययज्ञानिओसे अच्छ तरह जानी हुई (पुव्वधरेहिं अधीता) पूर्वधरोंसे श्रुतरूप मे पढी गई (वेउव्वीहिं पतिन्ना) वैक्रियलब्धिधारी मुनिओंसे आजीवन पाली गई है (आभिणिबोहियनाणीहिं सुयनाणीहिं मणपज्जव-नाणीहिं) आभिनिबोधिक-मतिज्ञान वाले, श्रुतज्ञान वाले और मन.पर्यवज्ञान वाले (केवलनाणीहिं) केवलज्ञानी (आमोसहिपत्तेहिं खेलोसहिपत्तेहिं जल्लोसहिपत्तेहिं) जिनका-आमर्ष अङ्ग स्पर्शही औषधिरूप है ऐसे आमर्षौषधि प्राप्त, वे श्लेष्मौपधि और जल्लौषधि लब्धिवाले और-जिनके श्लेष्म मेलही औषधि जैसे बने होते है (विप्पो सहि पत्तेहिं सव्वोसहिपत्तेहिं) जिनके मलमूत्र औषधिरूप हों वैसी लब्धि वालेमुनि-विप्रौषधिप्राप्त और जिनके स्पर्श आदि-सब औषधिका कार्य करते हो वे सर्वौषधिप्राप्त कहाते हैं (बीजबुद्धीहिं कुट्ठबुद्दीहिं पदाणुसारीहिं) बीज की तरह अर्थमात्र को पाकर अनेक पदार्थों का ज्ञान करने वाली-बीजबुद्धिवाले, कोष्ठबुद्धि-कोठे की तरह एक वार जाने हुए विषयों को सदास्मृति में रखने वाले, पदानुसारी-एक पद से सैकड़ो पदों का अनुसरण करने की बुद्धि वाले, (सभिन्न सोतेहिं) संभिन्न श्रोत्र-शरीर के सब अवयवों से श्रवण करने की लब्धि वाले अथवा प्रत्येक इन्द्रियों से श्रवण दर्शन आदि इन्द्रियविषयों का ज्ञान करने वाले (सुयधरेहिं) विशिष्ट श्रुत को धारण करने वाले (मणबलिएहिं वयबलिएहिं कायबलिएहिं) मनोबली-निश्चलचित्त वाले, वाग्-बली-दृढ प्रतिज्ञावाले और कायबली-परिषहो में स्थिर शरीर वाले, (नाणबलिएहिं दंसणबलिएहिं चरित्तबलिएहिं) ज्ञानबली, दर्शनबली-स्थिर श्रद्धावाले, चरित्रबली-निर्मल चरित्र वाले। (खीरासवेहिं महुआसवेहिं सप्पिआसवेहिं) क्षीरास्रव-क्षीर की तरह मधुर वचन वाले, मधु आस्रव-जिसमें मधु के समान वचन में माधुर्य हो वैसी लब्धिवाले, सर्पिषास्रव-घृत की तरह-स्निग्ध वचन रूप लब्धि वाले (अक्खीण महाणसिएहिं) अक्षीण महानसिक-अपने लिये लाये भोजन से लाख मनुष्यों को खिलाने पर भी जबतक स्वयं न भोजन करले तबतक जो भोजन बना रहे, वैसी लब्धि वाले (चारणेहिं) आकाश गमन की लब्धि वाले चारण-जंघाचारण और

विद्या चारण ऐसे दो प्रकार के है (विज्जाहरेहिं) विद्याधर-विशिष्ट विद्या वाले (चउत्थभत्तिएहिं एवं जाव छम्मासभत्तिएहिं) चतुर्थ भक्तिक-उपवास व्रत वाले ऐसे षष्ट अष्टम आदि यावत् षण्मास भक्त-छ मास के तप करने वाले, (उक्खित्त चरएहिं निक्खित्तचरएहि) उत्क्षिप्त चरक-पकाने के भाजन से बाहर निकाले गये आहार का ही गवेषण करने वाले, निक्षिप्त चरक-थाली आदि में रक्खे हुए आहार की गवेषणा करने वाले (अंतचरएहिं पंतचरएहिं लूहचरएहिं) अन्तचरक-सेके हुए चने आदि की गवेषणा करने वाले, प्रान्त चरक-खाने से बचे हुए चने आदि तथा बासी पदार्थ की गवेषणा करने वाले, रूक्ष आहार की गवेषणा करने वाले (समुदाण चरएहिं) सामूहिक भिक्षा के लिये भ्रमण करने वाले (अन्नइलाएहिं) रात्रि के अन्न को खाने वाले (मोणचरएहिं) मौनचर्या वाले (संसट्ठकप्पिएहि तज्जाय संसट्ठकप्पिएहिं) संसृष्ट-भरे हुए हाथ या पात्र से आहार लेने के कल्प वाले, जो पदार्थ ग्रहण करने के है उसीमे भरे हुए हाथ आदि से भिक्षा लेने के कल्प वाले, (उवनिहिएहिं) समीप मे भिक्षा के लिये जाने वाले या पास में रहे हुए पदार्थ को ही लेने वाले (सुद्धेसणिएहिं) शुद्ध-दोष रहित एषणा वाले (संखादत्तिएहिं) ५।६ आदि संख्या प्रधान दत्ति वाले (दिट्ठलाभिएहिं अदिट्ठलाभिएहिं) दृष्ट स्थान से मिली हुई या दृष्ट पदार्थ के भागयुक्त भिक्षा लेने वाले, अदृष्टदाता से अथवा अदृष्ट वस्तु के ग्रहण वाले (पुट्ठलाभिएहिं) महाराज ? यह पदार्थ ले सकते है क्या ? इस प्रकार प्रश्न पूर्वक मिले हुए आहार को ग्रहण करने वाले (आयंबिलिएहिं) आयंबिल तप वाले (पुरिमड्ढिएहिं) पुरिमार्द्ध-दोपौरुषीके व्रत वाले (एक्कासणिएहिं) एकाशन करने वाले (निव्वितिएहिं) विगय घी, दही, दूध, आदि रस रहित भोजन करने वाले (भिन्नपिंडवाइएहिं) फूटे बिखरे हुए ओदनादि-पिण्ड को ही ग्रहण करने वाले (परिमियपिंड वाइएहिं) घर व भोजन के परिमाणयुक्त पिण्ड-आहार को ग्रहण करने वाले (अंताहारेहिं) सेके चने आदि का आहार करने वाले, (पंताहारेहिं) प्रान्त आहारी (अरसाहारेहिं) हिंग आदि के संस्कार रहित अरस आहार करने वाले (विरसाहारेहिं) रस रहित-पुराने पदार्थ का आहार करने वाले (लूहाहारेहिं तुच्छाहारेहि) रूक्ष आहारी तथा तुच्छ-अल्प आहार करने वाले (अंत जीविहिं पंत जीविहिं लूह जीविहि तुच्छ जीविहिं) अन्त जीवी, प्रान्त जीवी, रूक्ष जीवी और तुच्छ जीवी (उवसंत जीविहिं पसंत

जीविहिं) अन्तर्वृत्ति की अपेक्षा-उपशान्त जीवी-उपशान्त कषाय वाले, बहिर्वृत्ति, से प्रशान्त जीवी-सौम्य जीवन वाले (विवित्त जीविहिं) विविक्त-निर्दोष भक्त, आदि से जीने वाले (अखीर महु सप्पिएहिं) दूध, मधु और घृत के त्यागी (अमज्ज-मसासिएहिं) मद्यमांस रहित भोजन वाले (ठाणाइएहिं) , ऊर्ध्व स्थान-खडे रहने आदि रूप अभिग्रह करने वाले (पडिम ठाईहिं) प्रतिमा-कायोत्सर्ग से या मासिकी आदि भिक्षु प्रतिमा से रहने वाले (ठाणुक्कडिएहिं) उत्कटुक आसन से बैठने वाले (वीरासणिएहिं) वीरासन से बैठने वाले (णेसज्जिएहिं) निषद्या-आसन विशेपरूप चर्यावाले (डंडाइएहिं) दण्ड की तरह लम्बे-सीधे शयनरूप आसन वाले (लगडसाईहिं) टेढे काष्ठ की तरह मस्तक और एडी को जमीन पर टेककर कुब्ज सोने वाले (एगपासगेहिं) एक पार्श्व से ही सोने वाले (आयावएहिं) आतापना लेने वाले (अप्पावएहिं) देह ढकने के लिये चादर आदि नही रखने वाले (अणि-ट्ठुवएहिं) मुह से थूंक नही थूंकने वाले (अकडुयएहिं) शरीर को नहीं खुजलाने वाले (धुत केसमसुलोमनखेहिं) केश, दाढी, मूछ और रोम-काख आदि के बाल तथा नखो के संस्कार रहित याने इनकी काट छाट नही करने वाले (सव्व गाय पडिकम्म विप्पमुक्केहिं) सम्पूर्ण शरीर की अभ्यङ्ग आदि से शोभा नही करने वाले, पूर्वोक्त विविध गुण-विशिष्ट मुनियों से (समणुचिन्ना) आसेवन की गई 'अहिंसा तथा (सुयधर विदितत्थ कायबुद्धीहिं) श्रुतधर और शास्त्र की अर्थ-राशि को समझने योग्य बुद्धि वाले महात्माओं से पालन की गई है (धीरमति बुद्धिणोय) और स्थिर अवग्रहादि मतियुक्त तथा औत्पत्तिकी आदि बुद्धि वाले (जेते) जो वे मुनिवर (आसी विस उग्गतेय कप्पा) उग्र विषधर नाग के समान उग्र तेजवाले (निच्छय ववसाय पज्जत्तकयमतीया) निश्चय-पदार्थ ज्ञान और परिपूर्ण पुरुषार्थ मे कृतमति वाले (णिच्च) सदा (सज्झायज्झाण अणुबद्धधम्मज्झाणा) वाचनादि पञ्च-विध स्वाध्याय तथा ध्यान-चित्त निरोध करने वाले व निरन्तर आज्ञा, विचय आदि धर्म-ध्यान वाले (पच महव्वयचरित्त जुत्ता) पच महाव्रतरूप चारित्र से युक्त (समिता समितिसु)ईर्या आदि समितिओंमें सम्यक् प्रवृत्तिवाले (समित पावा) उपशम या क्षय कर दिये है पाप जिन्होने ऐसे (छव्विह जगवच्छला) पृथ्वी आदि के छ. प्रकार के जीव युक्त जगत के वत्सल-हितैपी (निच्चमप्पमत्ता) सदा प्रमाद रहित (एएहि) इन (अन्नेहिय) और इन प्रकार के अन्य भी महात्माओ से. (जासा अणुपालिया) जो अहिंसा

अनुकूल रूप से पालन की गई है (सा भगवती) वह भगवती अहिंसा है। इस प्रकार अहिंसा का स्वरूप कहके अब अहिंसकों को क्या करना चाहिए? इसको कहते हैं-"

मूल-"इमं च पुढविदग अगणि मारुय तरुगण तस थावर सव्वभूय संजम दयट्ठयाते सुद्धं उञ्छं गवेसियव्वं, अकतमकारिमणाहूयमणुद्दिट्ठं, अकीयकडं, नवहिय कोडिहिं सुपरिसुद्धं, दसहिय दोसेहिं विप्पमुक्कं, उग्गम उप्पायणेसणासुद्धं, ववगय चुय चाविय चत्त देहं च, फासुयं च, न निसज्ज कहापओयणक्खा[1]सुओवणीयंति, न तिगिच्छामंतमूल भेसज्ज कज्ज हेउं, न लक्खणुप्पायसुमिण जोइस निमित्त कहकप्प उत्तं, न विडंभणाए, नवि रक्खणाते, नवि सासणाते, नवि दंभण रक्खण सासणाते भिक्खं गवेसियव्वं, नवि वंदणाते, नवि माणणाते, नवि पूयणाते, नवि वंदण माणण पूयणाते भिक्खं गवेसियव्वं, नवि हीलणाते, नवि निंदणाते, नवि गरहणाते, नवि हीलण 'निंदण' गरहणाते भिक्खं गवेसियव्वं नवि भेसणाते, नवि तज्जणाते, नवि तालणाते, नवि भेसण तज्जण तालणाते भिक्खं गवेसियव्वं, नवि गारवेणं, नवि कुहण याते, नवि वणीमयाते, नवि गारव कुहवणीमयाए भिक्खं गवेसियव्वं, नवि मित्तयाए, नवि पत्थणाए, नवि सेवणाए, नवि मित्त पत्थण सेवणाते भिक्खं गवेसियव्वं, अन्नाए अगढिए अदुट्ठे अदीणे अविमणे अकलुणे अविसाती अपरितंत जोगी जयण घडण करण चरिय विणय गुण जोग संपउत्ते भिक्खू भिक्खेसणाते निरते, इमंचणं सव्वजीव रक्खण दयट्ठाते पावयणं भगवया सु कहियं अत्तहियं पेच्चाभावियं आगमेसिभद्दं सुद्धं नेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्ख पावाण विउसमणं ॥ सू० २ । २२ ॥

छाया-"इदञ्च पृथ्वीदकाऽग्नि मारुत तरुगण त्रस स्थावर सर्वभूतसंयम दयार्थाय शुद्धमुञ्छं गवेषणीयम्, अकृतमकारितमनाहूतमनुद्दिष्टमक्रीतकृतम्, नवभि: कोटिभि:

---

[1] क फासु ओवणीय।

सुपरिशुद्धं, दशभिश्चदोपैर्विप्रमुक्तम्, उद्गमोत्पादनैषणा शुद्धं, व्यपगत च्युत च्यावित त्यक्तदेहञ्च प्राशुकञ्च न निषद्या कथा प्रयोजनाऽऽख्या श्रुतोपनीतमिनि, न चिकित्सा मन्त्र मूल भैषज्यकार्यहेतुक, न लक्षणोत्पात स्वप्न [स्मरण] ज्यौतिष निमित्त कथा कुहक प्रयुक्तम्, नापिदम्भनया, नापि रक्षणया, नापि शासनया, नापि दम्भना–रक्षणा–शासनाभिर्भैक्ष्यं गवेषयितव्यम्, नापि वन्दनया, नापि माननया, नापि पूजनया, नापि वन्दना–मानना–पूजनाभिर्भैक्ष्यं गवेषयितव्यम्, नापि हीलनया, नापि निन्दनया, नापि गर्हणया, नापि हीलना निन्दना गर्हणाभिर्भैक्ष्यं गवेषयितव्यम्, नापि भीषणया, नापि तर्जनया, नापि ताडनया, नापि भीषणा तर्जना ताडनाभिर्भैक्ष्यं गवेषयितव्यम्, नापि गौरवेण, नापि क्रोधनया, नापि वनीपकतया, नापि गौरव क्रोधना (कुधना) वनीपकताभिर्भैक्ष्यं गवेषयितव्यम्, नापि मित्रतया, नापि प्रार्थनया, नापि सेवनया, नापि मित्रता–प्रार्थना–सेवनाभिर्भैक्ष्यं गवेषयितव्यम्, अज्ञात अग्रथितः,–अगृध्नुः, अदुष्ट, अदीन अविमनाः अकरुणः अविषादी, अपरितान्तयोगी, यतन घटन करण चरण (चरित) विनय गुण योग सम्प्रयुक्तो भिक्षुर्भिक्षैषणायां निरतः। इदं च ननु सर्वजीव रक्षण दयार्थाय प्रवचनं भगवता सुकथितम्,–आत्महितं, प्रेत्यभावितम्, आगमिष्यद्भद्रं, शुद्धं न्यायोपेतम् अकुटिलमनुत्तरम्, सर्वदुःखपापानां व्युपशमनम्। सूत्र २। २२॥

अन्व०–"(इमं च पुढवि दग अगणि मारुय तरुगण तसथावर सव्वभूय संयम दयट्ठयाते) और पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वृक्ष समूह, और त्रस, स्थावर रूप सब जीवों पर संयम व दया के लिये इस (सुद्ध उञ्छ गवेसियव्वं) शुद्ध उञ्छ–अनेक घरों की भिक्षा से प्राप्त आहार की गवेषणा करनी चाहिए जो आहार–(अकतम कारिमणाहूयमणुद्दिट्ठं) साधुओं के लिये किया हुआ न हो, न दूसरो से बनवाया हो, अनाहूत–गृहस्थ के द्वारा निमन्त्रण पूर्वक दिया हुआ याने बुलाके दिया गया भी नहीं हो अणु–उद्देशिक दोषयुक्त नहीं हो, (अकीयकड) साधु के लिये खरीदकर लाया हुआ नहीं हो, इसी बात को विस्तार से कहते हैं–(नवहिय कोडिहिं सुपरिसुद्धं) और जो नव कोटि से विशुद्ध हो (दसहिय दोसेहिं विप्पमुक्कं) शङ्कित आदि दश दोषों से रहित और (उग्गम उप्पाय णेसणासुद्धं) उद्गम–उत्पादन और एषणा से शुद्ध–निर्दोष हो (ववगय चुय चावियचत्तदेहं च) जिस आहार से स्वयं जीव अलग होगये तथा पृथ्वी आदि के जीव जिसमें चव–मर गये अथवा दाता ने जिसे

निर्जीव कर दिये वैसे त्यक्त देह-निर्जीव बने हुए अथवा व्यपगत-सामान्यरूप से अचेतनता प्राप्त, च्युत-जीवन क्रियाओ से भ्रष्ट, च्यावित-आयुक्षय के कारण जीवन क्रियाओ से रहित और त्यक्तदेह-जीव के संसर्ग से होने वाली वृद्धि से हीन (फासुयंच) और प्राशुक-निर्जीव आहार को (न निसज्जकहापओयणक्खासु छोवणीयंति) 'गोचरी मे गया हुआ' घरमे बैठकर दी जाने वाली धर्मकथा के प्रयोजन से या दाता को खुश करने के लिये नट की तरह प्रयुक्त कथा-प्रतिबद्ध श्रुत के कारण जो नही लाया गया है वैसी भिक्षा की गवेषणा करनी चाहिए। (तिगिच्छा मंत मूल भेसज्ज कज्जहेउं) चिकित्सा-रोग के प्रतीकार, मन्त्र, मूलकृताञ्जलि आदि औषधी की जड और भैषज-अनेक द्रव्यो से बनी दवा आदि के हेतु से भिक्षा (न) नही लेनी चाहिए (नलक्खणुप्पायसुमिणजोइस निमित्तकहकप्पउत्तं) लक्षण-स्त्री पुरुष आदि के चिह्न विशेष, उत्पात-प्रकृति के अतिशय विकार धूल वृष्टि आदि, स्वप्न, ज्योतिषशास्त्र, निमित्त-चूडामणि आदि निमित्त शास्त्र, कथा-अर्थ कथा आदि और दूसरे को विस्मय उत्पन्न करने के प्रयोग इन कारणो से आकृष्ट होकर दाता ने जो द्रव्य देनेको निकाले हैं उनको नहीं ग्रहण करे (नवि डंभणाए) माया कपटके प्रयोग से भी भिक्षा नही ले (नवि रक्खणाते) दाताके पुत्र आदि की रक्षा के प्रयोग से भी भिक्षा नहीं ले (न वि सासणाते) शिक्षा सिखा कर भी भिक्षा नहीं लें अथवा अनुशासन करके भी भिक्षा नहीं लें (नवि डंभणरक्खण सासणाते) कपट, रक्षा, एवं अनुशासन का एकसाथ प्रयोग करके भी (भिक्खं गवेसियव्वं) भिक्षाकी गवेषणा नहीं करनी चाहिए (नवि वंदणाते) वन्दना करके भी भिक्षा नहीं लें (नवि माणणाते) आसन आदि से दाता का मान करके भी भिक्षा नहीं लें (नवि पूयणाते) मस्तक पर चन्दन लगाना या नमकर मुंह पत्ती आदि देने रूप पूजा से भी भिक्षा नहीं लें (नवि वंदण माणण पूयणाते भिक्खं गवेसियव्वं) वन्दन मान और पूजा के एक साथ प्रयोग से भी भिक्षा नहीं लें (नवि हीलणाते) दाता की जाति आदि की हीलना करके भी नही लें, (नवि निंदणाते) दाता की या देय वस्तु की निन्दा करके भी नहीं लें, (नविगरहणाते) हीलना करके भी नहीं ले (नवि हीलणनिंदणगरहणाते भिक्खं गवेसियव्वं) हीलना, निन्दा और गर्हणा के एक साथ प्रयोग करके भी भिक्षा की गवेषणा नहीं करनी चाहिए. (नवि भेसणाते) भय दिखाकर भी भिक्षा नहीं लें. (नवि तज्जणाते) तर्जन करके भी नहीं लें (नवि तालणाते) चपेटा आदि

की ताडना से भी भिक्षा नही ले। (न वि भेसण तज्जण तालनाते भिक्खं गवेसियव्व) भय प्रदर्शन, तर्जन और ताडना इन तीनो के साथ प्रयोग से भी भिक्षा नही लें (नवि गारवेणं) मै राज पूजित हूं इस प्रकार गर्व से भी भिक्षा नही लें। (नवि कुहण याते) दरिद्रता के भाव से या क्रोध करके भी नहीं ले (नवि वणीमयाते) मंगतो की तरह दीनता दिखाकर भी नहीं लें (नवि गारव कुहमणीमयाए भिक्खं गवेसियव्वं) गर्व, क्रोध तथा याचकता इन तीनो के प्रयोग से भी भिक्षा की गवेषणा नही करे (नवि मित्तयाए) मित्रता करके भी भिक्षा नहीं ले (नवि पत्थणाए) प्रार्थना करके भी न ले (नवि सेवणाए) सेवा करके भी भिक्षा नही ले (नवि मित्त पत्थण सेवणाते भिक्ख गवेसियव्व) मैत्री, प्रार्थना व सेवा इन तीनो के साथ प्रयोग से भी भिक्षा की गवेषणा नहीं करनी चाहिए (अन्नाए) अपना सम्बन्ध नही कहने से जो गृहस्थो से नहीं जाना गया है (अगढिए) तथा जान लेने पर भी मोह रहित अथवा आहार मे गृध्नुता रहित, (अदुट्ठे) अदुष्ट-आहार पर या दाता पर द्वेष नही करने वाले (अदीणे) क्षोभ रहित (अविमणे) उदासीनता रहित (अकलुणे) दीनता रहित (अविसाती) विषाद रहित (अपरितंत जोगी) सत्कर्म मे थकावट रहित मन, वचन आदि अकुटिलमनुत्तरम्, सर्वदु.जयण घडण करण चरिय विणय गुण जोग संपउत्ते) यतन और अप्राप्त संयम योग की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने करने वाला व क्षमा आदि गुणों से युक्त जो (भिक्खू) भिक्षा की एषणा से निरत-तत्पर रहता है (इमचण और सब जगत के जीवों की रक्षा रूप दया के लिये भगवया) भगवान् ने (सुकहियं) सम्यक् प्रकार से हित रूप और (पेच्चाभाविय) परलोक में सुख विष्य मे कल्याण का कारण व (सुद्ध) शुद्ध डल) अकुटिल-सरल, (अणुत्तर) सर्व श्रेष्ठ और पापकर्मों का (विउसमण) उपशम- प्राणिओं की परम रक्षा करने वाली है। निओ को आकाशमार्ग का, प्यासे को पानी का,

अन्व०-"(इमं च पुढवि द दयट्ठयाते) और पृथिवी, जल, अ जीवों पर संयम व दया के लिये घरों की भिक्षा से प्राप्त आहार की कारियणाहूयमणुद्दिट्ठ) साधुओं के हो, अनाहूत-गृहस्थ के द्वारा निमन्त्रण भी नहीं हो अणु-उद्देशिक दोषयुक्त नहीं लाया हुआ नहीं हो, इसी बात को निरुक्त सुद्धं) और जो नव कोटि से विशुद्ध हो (द दश दोषों से रहित और (उग्गम उप्पाय ए से शुद्ध-निर्दोष हो (ववगय चुय चावियच अलग होगये तथा पृथ्वी आदि के जीव जि

भूखे को भोजन का, समुद्र में डूबते हुए को जहाज का, चतुष्पदों को आश्रयस्थानका, रोगियों को औषधिका और अटवीमें भूले हुए को सार्थ का आधार होता है। इससे भी अधिक अहिंसा प्राणियों के लिये हित साधिका है। क्योंकि भयभीत आदि को शरण आदि से कभी हित के बदले अहित भी हो सकता है, परन्तु अहिंसा से होने वाला हित ध्रुव और अटल है। जो पृथ्वी जल आदि त्रसस्थावर जीवमात्र के लिये क्षेम व रक्षण करने वाली है, वह अहिंसा ही संसार मे भगवती है अन्य नहीं।

इसको जानने वाले व सेवन करने वाले भी विशिष्ट ज्ञानी महापुरुष हैं, जैसे अनन्तज्ञानी शीलसंयम आदि गुणों के प्रधान नायक, त्रिलोकी पूज्य और जगत् के हितैषी तीर्थङ्कर महाराज ने केवलज्ञानसे इसका सम्यक् निश्चय एवं अनुभव किया है। अवधिज्ञानी और सामान्यविशेष दृष्टिवाले मनःपर्यवज्ञानिओ से अच्छी तरह जानी व देखी गई है। पूर्वधारिओं ने शास्त्र में इसका अध्ययन किया है। वैक्रिय लब्धिवाले तथा मतिज्ञानी व केवलज्ञानी महात्माओ ने आजीवन इसका पालन किया है।

तपस्या की विशिष्ट साधना से कई महात्मा अतिशय शक्ति सम्पन्न होजाते है, जिनको लब्धिधारक कहते हैं। २८ प्रकार के लब्धिधारिओ में से कुछ का यहां निम्नलिखित उल्लेख मिलता है। जैसे कि स्पर्शमात्र से रोग निवारण करने की लब्धि वाले आमर्षौषधिक। ऐसे कइओ के श्लेष्म रोगनिवारक होते हैं। एक ऐसीलब्धिधारी होते है कि उनके शरीर पर का मल रोगनिवारक होता है। कई महात्माओ के मलमूत्र तक रोगनिवारक होते है। किसी महात्मा के शरीर की सभी चीजें औषधिवत् रोगनिवारक होती हैं। बीजबुद्धि, कोष्ठबुद्धि और पदानुसारी आदि ये सब विशिष्टबुद्धिधारक होते हैं। मन, वाणी और शरीर के स्थिर बल को धारण करने वाले तथा निर्दोष ज्ञानादि रत्नत्रय को धारण करने वाले हैं। इसलिये इनके वचन मानो क्षीर मधु और घृत के जैसे मधुर स्निग्ध एवं पौष्टिक होते हैं। अक्षीण महानस लब्धिवाले स्पष्ट हैं। जंघा या विद्या के बल से आकाश मार्ग में चलने की विशिष्ट शक्ति वाले चारण कहाते हैं। चतुर्थभक्त-उपवास से लेकर छः मास तक के तपस्वी मुनिओ ने इसका आराधन किया। ऐसे ही उत्क्षिप्त आदि

विविध अभिग्रहो से जो भिक्षा करने वाले हैं वैसे उपशान्त दशा वाले निर्दोष आहार के ग्राहक मुनिओं से सेवित हैं।

सामान्यतया मुनि लोग मद्य मांस रहित भोजन वाले, और अधिकता से दूध घृत तथा मधु के वर्जन करने वाले होते है। कई अनुकूलता के अनुसार स्थानायित एवं विविध आसन वाले होते है।

विशेष इस प्रकार है-सिंहासन पर पांव लटका के बैठा हुआ पुरुष जब आसन के हटाने पर भी उसी तरह बैठा रहे उसको वीरासन कहते हैं। आतापना करते वाले यावत्, जो सदा प्रमाद रहित है। ऐसे और अन्य विशिष्ट व्रतिओ से जो पालन की गई वह भगवती अहिंसा प्रथम संवर रूप है।

आगे अहिंसको को कैसी और किस प्रकार से भिक्षा लेनी चाहिए? इस बातको दिखाते हैं।

पृथ्वी आदि सभी प्राणी मात्र के संयम तथा दया के लिये मुनि को निम्न प्रकार की शुद्ध भिक्षा लेनी चाहिए, जो आहार साधु के लिये नही किया हो और कराया गया भी नहीं हो। बुलाकर दिया हुआ और साधु के लिये खरीदा हुआ भी नही हो। नव कोटि शुद्ध तथा ४२ प्रकार के एषणा दोषो से रहित यावत् निर्दोष निर्जीव हो वैसा ले सकते हैं। किन अविधिओं को टालकर लेना यह बताया जाता है-"

घरमेबैठकर कथा सुनानेसे मिला हुआ नहीं लेना। चिकित्सा, मन्त्र, मूल आदि प्रयोग बताकर भी भिक्षा नहीं लेनी चाहिए। इसी प्रकार शारीरिक लक्षण आदि बताकर भी भिक्षा प्राप्त नहीं करे। कपट, रक्षा और अनुशासन करके तथा स्तुति, मान या पूजा के द्वारा भी भिक्षा ग्रहण नहीं करे। गृहस्थकी हीलना, निन्दा और गर्हा करके अथवा डराना, ताडना और तर्जना से भी भिक्षा नहीं ले। गर्व क्रोध या भिखारी की तरह दीनता दिखाकर एव मैत्री, प्रार्थना तथा सेवा के द्वारा भी भिक्षा प्राप्त नहीं करे अर्थात गृहस्थ को बिना किसी प्रकार का स्वार्थ भय और दीनता दिखाये मुनि भिक्षा ग्रहण करे। इससे अपनी मोह-वृद्धि और गृहस्थो मे स्वार्थ बुद्धि नहीं होगी वैसे मुनिओं का स्वरूप निम्न प्रकार है-"

वे अपना परिचय गृहस्थो
आदि में आसक्त होते हैं। द्वेष

खेद ग्लानि नहीं करते। विना विश्रान्ति के योगशील बने रहते हैं। यावत् ऐसे भिक्षु भिक्षैषणा में तत्पर रहते हैं। अहिंसा एवं अहिंसक साधु के स्वरूप को कहने वाले इस प्रवचन को भगवान् महावीर ने जगज्जीवों के रक्षणार्थ कहा है। यह आत्मा को हितकारी व परलोक मे सुखदायी और भविष्य मे भद्र का कारण है। शुद्ध न्याययुक्त तथा मोक्ष का सर्व श्रेष्ठ सरल मार्ग है। इससे सब दु ख और पापों का शमन होता है।

अब पूर्वोक्त अहिंसा व्रत की पांच भावनाओ को कहते है-"

मूल-"तस्स इमा पंच भावणातो पढमस्स वयस्स होंति पाणातिवाय-वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए, पढमं ठाण-गमण-गुण-जोग-जुंजण-जुगंतर निवातियाए दिट्ठीए ईरियव्वं, कीडपयंग-तस-थावर-दयावरेणनिच्चं पुप्फ-फल-तय-पबाल-कंद-मूल-दग-मट्टिय-बीज-हरिय-परिवज्जिएण सम्मं, एवं खलु सव्व पाणा न हीलियव्वा, न निंदियव्वा, न गरहियव्वा, न हिंसियव्वा, न छिंदियव्वा, न भिंदियव्वा, न वहेयव्वा, न भयं दुक्खं च किंचिलब्भा पावेउं, एवं ईरिया समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा असबलमसंकिलिट्ठ-निव्वण-चरित्त-भावणाए अहिंसए संजए सुसाहू ॥ १ ॥

बितीयं च मणेण पावएणं पावगं अहम्मियं दारुणं निस्संसं वहबंध परिकिलेस बहुलं, (भय) जरा मरण परिकिलेस-संकिलिट्ठं न कयावि मणेण पावतेणं पावगं किंचि वि झायव्वं, एवं मणसमितिजोगेण भावितो भवति अंतरप्पा, असबलमसंकिलिट्ठ-निव्वण-चरित्त भावणाए अहिंसए संजए सुसाहू ॥ २ ॥

ततियं च वतीते पावियाते पावगं न किंचिवि भासियव्वं, एवं वति समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा, असबलमसंकिलिट्ठ-निव्वण-चरित्त भावणाए अहिंसओ संजओ सुसाहू ॥ ३ ॥

चउत्थं आहार एसणाए सुद्धं उंछं गवेसियव्वं, अन्नाए अगढिते[2] अदुट्ठे,[3] अदीणे, अकलुणे, अविसादी, अपरितंत जोगी जयण-घडण-करण

१—क० अहम्मिक दारुणं निसंसं वह बध परिकिलेस बहुल जरा मरण परिकिलेस संकिलिट्ठ, न कयाविय-ए प.विचाए आ) प.व्रग।

२ क० अकहिए। ३ असदुट्ठे।

चरिय–विणय–गुण जोग संपओगजुत्ते भिक्खू भिक्खेसणाते जुत्ते, समु-दाणेऊण भिक्खचरियं उंछं घेत्तूण आगतो गुरु जणस्स पासं, गमणा गमणातिचारे पडिकमण पडिक्कंते, अलोयणदायणं च दाऊण गुरुजणस्स गुरुसंदिट्ठस्सवा, जहोवएसं निरइयारं च अप्पामत्तो पुणरवि अणेसणाते पयतो पडिक्कमित्ता पसंते आसीण सुहनिसन्ने मुहुत्तमेत्तं च झाण–सुहजोग-नाण–सज्झाय–गोवियमणे, धम्ममणे, अविमणे, सुहमणे, अविग्गहमणे, समाहियमणे, सद्धा संवेगनिज्जरमणे, पवतण वच्छल्लभावियमणे, उट्ठेऊणय पहट्ठ'तुट्ठे जहारायणियं निमंतइत्ता य, साहवे भावओ य विइण्णे य गुरु-जणेणं उपविट्ठे, संपमज्जिऊण ससीसं कायं, तहा करतलं, अमुच्छिते, अगिद्धे, अगढिए, अगरहिते, अणज्झोववण्णे, अणाइले, अलुद्धे, अण-त्तट्ठिते, असुर सुरं अचव' चवं, अदुतमविलंबियं, अपरिसाडिं, आलोय भायणे जयं पयत्तेण ववगयसंजोग मणिंगालं च, विगय धूमं, अक्खोवं जणाणुलेवणभूयं संजम जाया माया निमित्तं संजम भार–वहणट्ठयाए भुंजेज्जा, पाण धारणट्ठयाए संजएण समियं, एवं आहार समितिजोगेणं भाविओ भवति अतंरप्पा, असबलमसंकिलिट्ठ–निव्वण चरित्त भावणाए अहिंसए संजए सुसाहू ॥ ४ ॥

छाया–"तस्येमा. पञ्चभावना प्रथमस्य व्रतस्य भवन्ति, प्राणातिपात विरमण-परिरक्षणार्थाः । प्रथमं स्थानं गमनगुणयोगयोजना–युगान्तरनिपातिकया दृष्ट्या ईरयितव्यम् ॥ १ ॥

कीट–पतङ्ग–त्रस स्थावर–दयापरेण नित्यं पुष्पफल–त्वक्–प्रवाल कन्दमूल-दक मृत्तिका–बीजहरित–परिवर्जनयासमम् । एव खलु सर्वे प्राणा न हील-यितव्या, न निन्दितव्या, न गर्हितव्या, न हन्तव्या, [हिंसितव्या] न छेत्तव्या, न भेत्तव्या, न वधितव्या, न भयं दुःख च किञ्चित् लभ्या प्रापयितुम्, एवमीर्यासमि-तियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा, अशबलाऽसंक्लिष्ट–निर्व्रणचारित्र भावनया अहिंसकः संयत सुसाधु ।

द्वितीयञ्च मनसा पापकेन पापकमधार्मिकं, दारुणं, नृशंसं, वधबन्ध–परिक्लेश बहुलं, भय मरण संक्लेश–[परिक्लेश] संक्लिष्टं, न कदापि मनसा पापकेन

१ क. पहट्ठो। २ क. अव्रचर्व।

दया भाव वाले (निच्चंपुप्फ फलतय पवाल कंद मूल दगमट्टिय बीज हरिय परि-वज्जिएण) सदा फूल फल गीली छाल प्रवाल कूंपल कन्द, मूल वृक्षादि के मूल और वक्षा जल, खान आदि की कच्ची मिट्टी बीज तथा दूब आदि हरित- इनका बचाव करने वाले को (सम्मं) अच्छी तरह यत्न से चलना चाहिए (एवं खलु) ऐसे ही (सव्व पाणा) जीव मात्र (नहीलियव्वा) हीलना करने योग्य नही (न निंदियव्वा) निन्दा करने योग्य नही (न गरहियव्वा) गर्हा-किसी के सामने बुराई करने योग्य नही है (न हिंसियव्वा) हिंसा करने योग्य नही (न छिंदियव्वा) छेदन करने-काटने योग्य नही (न भिंदियव्वा) तथा भाले आदि से भेदन करने योग्य नहीं (न वहेयव्वा) पीडा पहुंचाने योग्य नही (न भयं दुक्खकिंचि लब्भा पावेउं) और कुछ भी भय तथा दुःख पहुंचाने योग्य नही है (एवं) इस प्रकार (इरिया समितिजोगेण) इर्यासमिति के योग से (भावितो) भावित-पवित्र (अंतरप्पा) अन्तरात्मा (असबलमसंकिलिट्ठनिव्वण चरित्त भावणाए) मलिनता रहित विशुद्धिमय विचार और अखण्ड चारित्र की भावना वाला (भवति) होता है वह (अहिंसए) अहिंसक (संजए) संयत-मृषावाद आदि सावद्य कर्मों से अलग रहने वाला, (सुसाहू) सुसाधु है।

(बितीयंच) और दूसरी भावना (मणेण पावएण) पापकारी अशुभ मन से (पावगं) पापयुक्त (अहम्मियं) अधार्मिक-धर्मविरुद्ध (दारुणं) दारुण (निस्संसं) नृशंस-दया रहित (वहबंधपरिकिलेसबहुलं) वध, बन्ध और परितापकी अधिकता वाला (भय मरणपरिकिलेस संकिलिट्ठं) भय, मृत्यु और क्लेशों से क्लेशजनक (न कयावि मणेण पावतेणं पावगं किंचि विज्झायव्वं) पापयुक्त मन से वैसे पाप-कारी विचार से कभी थोडा भी नही करना चाहिए (एव) इस प्रकार दूसरी (मणसमिति जोगेण) मन की समिति- मन की सम्यक् प्रवृत्ति के योग से (भावितो) भावित (अंतरप्पा) जीव (असबलमसंकिलिट्ठनिव्वण चरित्त भावणाए) मलिनता और संक्लेश रहित अखण्ड चारित्र की भावना से (अहिंसए) हिंसा नही करने वाला (संजए) और पाप मंक से पृथक् होने से संयत (सुसाहू) सुसाधु (भवति) होता है।

अब तीसरी भावना-वाक् समिति रूप-(ततियच) और तीसरी भावना (वतीते पावियाते) अशुभ भाषा से (किंचिवि) कुछ भी (पावगं) पाप युक्त

वचन (न भासियव्वं) नही बोलना चाहिए (एवं) इस प्रकार (वति समिति जोगेण) वाक्-समिति-भाषा समिति के योग से (भावितो) भावित (अंतरप्पा) जीव (असबलमसंकिलिट्ठ निव्वण चरित्त भावणाए) निर्मल, संक्लेश रहित और अखण्डित चारित्र की भावना वाला (अहिंसओ) अहिंसक (संजओ) मुनि (सुसाहू) सुसाधु (भवति) होता है।

चौथी एषणासमिति (चउत्थं) चौथी भावना (आहार एषणाए) आहार आदि की एषणा से (सुद्धं) दोष रहित (उंछं) सामूहिक अनेक घरो से प्राप्त भिक्षा की (गवेसियव्वं) गवेषणा करनी चाहिए (अन्नाए) अज्ञात सम्बन्ध वाला (अगढिते) मोह रहित (अदुट्ठे) दुष्टता रहित (अदीणे) क्षोभ से दूर (अकलुणे) दीनता रहित (अविसादी) खेद रहित (अपरितंत जोगी) भ्रमण में आहारादि नही मिलने पर भी अथकयोगरूप प्रवृत्तिवाला (जयण घडण करण चरिय विणय गुण जोग संपओग जुत्ते) प्राप्त संयम प्रकृति मे यतना और अप्राप्त सत्कर्म के लिये प्रयत्न करने वाला विनय का सेवन करने वाला तथा क्षमा आदि गुणयोग से जो युक्त है (भिक्खू) वैसा भिक्षु (भिक्खेसणाते) भिक्षा की एषणा मे (जुत्ते) युक्त लगा हुआ (समुदाणेऊण) अनेक घरो मे फिर कर (भिक्ख चरियं उंछं) थोड़ी २ भिक्षा (घेत्तूण) ग्रहण करके (आगतो गुरुजणस्स पासं) गुरुजन के पास आया हुआ, (गमणागमणातिचारे) गमनागमन के अतिचारो का (पडिक्कमण पडिक्कंते) ईर्यापथिक प्रतिक्रमण से प्रतिक्रमण करके (गुरुजणस्स गुरुसंदिट्ठस्सवा) गुरु या गुरु से अधिकार पाये हुए उपाध्याय आदि के पास (आलोयण दायणं च) ग्रहण किये हुए आहार पानी की यथावत् आलोचना कर उनको दिखादे (दाऊण) गुरुजनो को देकर (जहोपदेसं) उपदेश के अनुसार (निरइयारं च) और अतिचार रहित (अप्पमत्तो) प्रमाद से दूर रहने वाले साधु (पुणरवि) फिर भी (अणेसणाते) अज्ञात रूपमे छुटे हुए एषणा के दोषो को (पयतो) यत्नवान् (पडिक्कमित्ता) कायोत्सर्ग से प्रतिक्रमण करके (पसंते) प्रशान्त दशा वाला याने उत्सुकता रहित (आसीण सुहनिसन्ने) और आसन पर सुख पूर्वक निराबाधपने बैठा हुआ (झाणसुहजोग नाण सज्झाय गोवियमणे) ध्यान गुरुजनो की सेवा आदि शुभ योग, ज्ञान-तत्त्वचिन्तन और स्वाध्याय-शास्त्र पाठ रूपसे मनको गोपन करके (धम्ममणे) श्रुत चारित्ररूप धर्म मे मन वाला, (अविमणे सुहमणे) शून्य चित्त

नहीं बना हुआ शुभ विचार वाला, (अविग्गहमणे समाहियमणे) कलह शून्य या दुराग्रह से रहित मन वाला और स्वस्थ मन वाला (सद्धा संवेगनिज्जरमणे) श्रद्धा-तत्त्वज्ञान तथा संयममे निश्चल विश्वास, संवेग-मोक्षमार्ग में अभिलाषा या संसार से भय, और कर्म निर्जरा में तत्पर मन वाला (पवयण वच्छल भावियमणे) प्रवचन-शास्त्र तथा शासन के प्रेम से भरपूर विचार वाला (मुहुत्तमेत्तं) मुहूर्त भर ऐसा बैठा रहे (उट्ठेऊण य) फिर ऊठकर (पहट्ठतुट्ठे) अतिशय प्रमोद सहित (जहारायणियं) जो दीक्षा आदि से बडे हों उनके अनुसार (भावओ) भाव-आदर बुद्धि से (साहवे) साधुओ को (निमंतइत्ता) निमन्त्रण करके अर्थात् उसमे से लेने की प्रार्थना करके (विइण्णे य) और देकर के (गुरुजणेण) गुरुजनों से आहार के वितीर्ण कर लेने व सबको दे चुकने पर बाद आज्ञा देने पर (उपविट्ठे) योग्य आसन पर वैठा हुआ (ससीसं कायं तहा करतलं संपमज्जिऊण) मस्तक सहित शरीर तथा हाथ के तले को रजोहरण से अच्छी तरह प्रमार्जन-पूंज करके (अमुच्छिते) आहार में मूर्च्छा रहित (अगिद्धे) पाई वस्तु में लालसा रहित (अगढिए) अप्राप्त वस्तुओं में अभिलाषा रहित (अगरहिते) प्रतिकूल पदार्थों में गर्हा नहीं करता हुआ (अणज्झोववन्ने रसों मे तल्लीन नहीं होता हुआ (अणाइले अलुद्धे अणत्तट्ठिते) हृदय की मलिनता रहित, पदार्थों का लोभ नहीं करने वाला व परमार्थ बुद्धिवाला साधु (असुरसुरं अचवचवं) सुर सुर, चव चव आदि ध्वनि नहीं करता हुआ (अदुतमविलंबियं) अधिक जल्दी या अधिक देरी से नहीं अर्थात् भोजनके योग्य काल मे (अपरिसाडिं) नीचे नहीं गिराते हुए (आलोयभायणे) प्रकाश में और प्रकाशमान पात्र में (जयं) मन व इन्द्रियों के सयम पूर्वक (पयत्तेणं) प्रयत्न पूर्वक (ववगय संजोग मणिगालं च) दूध व सक्कर के संयोग नहीं मिलाने रूप संयोजना दोष रहित और सरस आहार पर राग करने रूप इगाल दोष से दूर और (विगय धूमं) नीरस आदि प्रतिकूल पदार्थ पर द्वेष करने रूप धूम्रदोप से रहित (अक्खोवं) गाडी के चाक में तेल लगाने और (वणाणुलेवण भूयं) घाव पर लेप करने के समान वैसे परिमित आहार को (संजम जाया माया निमित्त) संयम भार का वाहन करने के लिये (संजम भार वहणट्ठयाए पाण धारणट्ठाये) सयम रक्षा के लिये और केवल प्राण धारण मात्र करने लिये (समियं) समिति मे युक्त (संजए) साधु (भुंजेज्जा) आहार करे।

(एवं) इस प्रकार (आहार समिति जोगेणं) आहार ग्रहण आदि की योग्य प्रवृत्ति के योग से (अंतरप्पा) अन्तरात्मा (भावितो) भावित (असबलमसंकिलिट्ठ निव्वण चरित्त भावणाए) निर्मल व संक्लेश रहित और अखंडित चरित्र की भावना वाला (अहिंसए) अहिंसक (संजए) संयत (सुसाहू) सुसाधु (भवति) होता है।

मूल—"पंचमं आदान निक्खेवण समिई—पीढ फलग—सिज्जा—संथा-रग—वत्थ—पत्त—कंबल—दंडग—रयहरण—चोलपट्टग— मुहपोत्तिग— पायपुंछणादी, एयंपि संजमस्स उववूहणट्ठयाए वाता—तवदंस—मसग—सीय—परिरक्खणट्ठयाए, उवगरणं रागदोसरहितं परिहरितव्वं, संजमेणं णिच्चं पडिलेहण—पप्फोडण—पमज्जणाए अहो य राओ य अप्पमत्तेण होइसययं, निक्खियव्वं च, गिण्हियव्वं च, भायण भंडोवहि उवगरणं, एवं आयाण भंड—निक्खेवणा—समिति जोगेण भाविओ भवति अंतरप्पा, असबलमसं-किलिट्ठ—निव्वण—चरित्त भावणाए अहिंसए संजते सुसाहू ॥ ५ ॥

एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं [1]संवरियं होति सुप्पणिहियं, इमेहिं पंचहि-विकारणेहिं, मण—वयण—काय—परिरक्खिएहिं, णिच्चं आमरणंतं च एस जोगो णेयव्वो, धितिमया, मतिमया, अणासवो [2]अकलुसो [3]अच्छिद्दो असंकिलिट्ठो, सुद्धो सव्वजिणमणुन्नातो, एवं पढमं संवरदारं फासियं, पालियं, सोहियं, तीरियं, किट्टियं, आराहियं आणाते अणुपालियं भवति। एवं नायमुणिणा भगवया पन्नवियं, परूवियं, पसिद्धं, सिद्धं, सिद्धवरसासणमिणं आघवितं, सुदेसितं, पसत्थं। पढमं संवरदारं समत्तं त्तिबेमि। सूत्र ३। २३। इति पढमं संवरदारं।

छाया—"पञ्चमी—आदान निक्षेपणसमिति—"पीठ फलक—शय्या—संस्तारक-वस्त्र,—पात्र—कम्बल—दण्डक—रजोहरण—चोलपट्टक—मुखपोतिका—पादपुञ्छनाद्य., एतदपि संयमस्योपबृंहणार्थं, वाताऽऽतप दंश मशक शीतपरिरक्षणार्थमुपकरणं, राग द्वेषरहित परिहर्त्तव्यम्[4] संयमे(ति)न नित्यं प्रतिलेखन—प्रस्फोटन—प्रमार्जनाभि अहश्च

---

१ क संचरिय। २ क. अकुलमो। ३ क अच्छिद्दो अपरिस्रावी।
४ धारयितव्यमित्यर्थं.।

रात्रिश्च अप्रमत्तेन भवति सततम् निचेप्तव्यश्च ग्रहीतव्यश्च, भाजनभण्डोपध्युपकरणम् एवमादान-भण्ड निक्षेपणा-समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा-अशवलाऽसंक्लिष्ट-निर्व्रण-चारित्र भावनयाऽहिंसकः संयतः सुसाधु.।

एवमिदं सवरस्य द्वारं सम्यक् संवृतं भवति सुप्रणिहितम्, एतैः पञ्चभिः कारणैर्मनो वचन कायपरिरक्षितैर्नित्यमामरणान्तं चैषयोगोनेरञ्ओधृतिमता मतिमता अनास्रवोऽकलुषोऽच्छिद्रोऽसंक्लिष्ट., शुद्ध. सर्वजिनानुज्ञातः, एवं प्रथम संवरद्वार, स्पृष्टं, पालितं, शोधितं, तीर्णं, कीर्तितमाराधितमाज्ञयाऽनुपालितं भवति । एवं ज्ञातमुनिना भगवता प्रज्ञपितं प्ररूपितं, प्रसिद्धं, सिद्धं सिद्धवरशासनमिदमघापितं [आख्यापितं] सुदेशितं, प्रशस्तं, प्रथमं संवरद्वारं समाप्तमितिब्रवीमि । सूत्र ३।२३।

* इति प्रथमं सवरद्वारम् *

आदान निक्षेपणा समिति रूप भावना–

अन्व०–"(पंचमं) पांचवी भावना (आदान निक्खेवणसमिई) आदान निक्षेपणा समिति (पीढ फलग सिज्जासंथारग वत्थ पत्त कंबल दंडग रयहरण चोल पट्टग-मुहपोत्तिग, पाय पुंछणादी) पीठ फलक–पाट शय्या संस्तारक–छोटा बिछौना, वस्त्र, पात्र, कंबल, दण्डक रजोहरण, चोलपट्टक- पहनने का कपड़ा, मुहपोत्तिक–मुख वस्त्रिका, पादप्रोञ्छन, आदि (एयपि) यह सब भी (संजमस्स) संयम के (उवचूहणट्ठयाए) पोषण के लिए (वातातव–दंस-मसगसीय परिक्खणट्ठयाए) वायु, आतप–धूप, दंश, मशक, मच्छर और सर्दीकी रक्षाके लिये (उवगरणं) उपरोक्त उपकरण को (राग दोसरहितं) राग द्वेष से रहित (परिहरितव्व) धारण करना चाहिए (संजमेणं) संयम पूर्वक, (णिच्चं) सदा (पडिलेहण पप्फोडण पमज्जणाए) प्रति लेखना–देखना, प्रस्फोटन–झटकना व प्रमार्जन करने से (अहोयराओय) दिन व रात्रि में (सययं) सदा (अप्पमत्तेण) प्रमाद रहित (निक्खियव्वं च) रखने योग्य और (गिण्हियव्वं) ग्रहण करने–लेने योग्य (होइ) होता है (भायण भडोवहि उवगरणं) भाजन–पात्र, मिट्टी के भाड और उपधि–वस्त्र आदि उपकरण–उपयोगी सामग्री जो हैं (एवं) इस प्रकार (आयाण भड निक्खेवणा समिति जोगेण) आदान भाण्ड निक्षेपणा समिति के योग से (भाविओ) भावित–युक्त (अंतरप्पा) अन्तरात्मा

(असबलमसंकिलिट्ठ निव्वण चरित्त भावणाए) निर्मल व संक्लेश रहित और अखण्डित चरित्र की भावना से (अहिंसए संजए सुसाहू) अहिंसक, संयत सुसाधु (भवति) होता है।

(एवमिणं संवरस्सदारं) इस प्रकार यह प्रथम संवरद्वार (सम्मं) अच्छी तरह (संवरियं) अङ्गीकृत (सुप्पणिहियं) उत्तम रीति से प्रणिधान में लाया हुआ, (होति) होता है (इमेहिं पंचहिंवि कारणेहिं) इन पांचो कारणो से (मण वयण-काय परिरक्खिएहिं) मन वचन कायों से परिरक्षित (णिच्चं) सदा (आमरणां-तंच) मरण पर्यन्त (एसजोगो) यह योग (धितिमया मतिमया) धैर्यवान् व बुद्धिमान् से (अणासवो) आस्रव रहित (अकलुणो) कायरता रहित (अच्छिद्दो) त्रुटि रहित (असंकिलिट्ठो) संक्लेश रहित (सुद्धो) शुद्ध अतएव (सव्वजिण मणुन्नातो) सर्व जिनों से अनुज्ञात-अनुमत है। (एवं) इस प्रकार (पढमं) पहला (संवर दारं) संवरद्वार (फासियं) स्पृष्ट-गृहीत (पालियं) पालित (सोहियं) शोधित-शुद्ध किया (तिरियं) पूरा पाला हुआ (किट्टियं) कीर्तित (आराह्यिं) आराधित (आणाते अणु पालियं) आज्ञा से अनुपालित (भवति) होता है। (एवं) इस प्रकार (नायमुणिणा भगवया) भगवान् ज्ञातमुनि महावीर-ने (पन्नवियं) प्रज्ञापित (परूवियं) प्ररूपित (पसिद्धं) प्रसिद्ध (सिद्धं) सिद्ध है (सिद्धवरसासणमिणं) यह सिद्धवर शासन (आघवितं) बहुमूल्य (सुदेसितं) उपदेशित (पसत्थं) प्रशस्त (पढमं) पहला (संवरदारं) संवरद्वार (समत्तं) समाप्त हुआ (त्तिबेमि) ऐसा मैं कहता हूं। सूत्र ३। २३।

भावार्थ-इस सूत्र मे अहिंसाव्रत को विशुद्ध रूप से पालने के लिये पांच भाव-नायें कही गई हैं। ये भावनायें अहिंसाव्रत का रक्षण तथा पोषण करने वाली हैं। इन भावनाओ के बल पर ही अहिंसा-प्राणातिपात विरमणरूप व्रत पालित हो सकता है, अन्यथा नहीं। अतएव उन पांच भावनाओ के स्वरूपों का निरूपण किया जाता है।

अहिंसा-व्रत की पांच भावनाओं में पहली भावना-ईर्या समिति-गमन आग-मन की क्रिया में हिंसा न होने की सावधान प्रवृत्ति है। इसमें पहली बात यह है कि युग प्रमाण-प्रायः चार हाथ तक भूमि पर दृष्टि रखते हुए पवित्र भूतल पर चलना चाहिए, जिससे कीट पतङ्ग आदि त्रस स्थावर जीवों की दया पाली जाय।

रात्रिश्च अप्रमत्तेन भवति सततम् निक्षेप्तव्यश्च ग्रहीतव्यश्च, भाजनभण्डोपध्युपकरणम् एवमादान-भण्ड निक्षेपणा-समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा-अशबलाऽसंक्लिष्ट-निर्व्रण-चारित्र भावनयाऽहिंसक: संयत: सुसाधु: ।

एवमिदं संवरस्य द्वारं सम्यक् संवृतं भवति सुप्रणिहितम्, एतै: पञ्चभि: कारणैर्मनो वचन कायपरिरक्षितैर्नित्यमामरणान्तं चैषयोगोनेतव्योधृतिमता मतिमता अनास्रवोऽकलुषोऽच्छिद्रोऽसंक्लिष्ट, शुद्ध. सर्वजिनानुज्ञात:, एवं प्रथम संवरद्वार, स्पृष्टं, पालितं, शोधितं, तीर्णं, कीर्तितमाराधितमाज्ञयाऽनुपालितं भवति । एवं ज्ञातमुनिना भगवता प्रज्ञपितं प्ररूपितं, प्रसिद्ध, सिद्धं सिद्धवरशासनमिदमघोपितं [आख्यापित] सुदेशितं, प्रशस्तं, प्रथमं संवरद्वारं समाप्तमितिब्रवीमि । सूत्र ३।२३।

* इति प्रथमं संवरद्वारम् *

आदान् निक्षेपणा समिति रूप भावना—

अन्व०—"(पंचमं) पांचवी भावना (आदान निक्खेवणसमिई) आदान निक्षेपणा समिति (पीढ फलग सिज्जासंथारग वत्थ पत्त कंबल दंडग रयहरण चोल पट्टग-मुहपोत्तिग, पाय पुंछणादी) पीठ फलक-पाट शय्या सस्तारक-छोटा बिछौना, वस्त्र, पात्र, कंबल, दण्डक रजोहरण, चोलपट्टक- पहनने का कपड़ा, मुहपोत्तिक-मुख वस्त्रिका, पादप्रोञ्छन, आदि (एयपि) यह सब भी (संजमस्स) संयम के (उववूहण-ट्ठयाए) पोषण के लिए (वातातव-दंस-मसगसीय परिक्खणट्ठयाए) वायु, आतप-धूप, दंश, मशक, मच्छर और सर्दीकी रक्षाके लिये (उवगरणं) उपरोक्त उपकरण को (राग दोसरहितं) राग द्वेष से रहित (परिहरितव्वं) धारण करना चाहिए (सजमेणं) संयम पूर्वक, (णिच्च) सदा (पडिलेहण पप्फोडण पमज्जणाए) प्रति लेखना-देखना, प्रस्फोटन-झटकना व प्रमार्जन करने से (अहोयराओय) दिन व रात्रि में (सययं) सदा (अप्पमत्तेण) प्रमाद रहित (निक्खियव्वं च) रखने योग्य और (गिण्हियव्वं) ग्रहण करने-लेने योग्य (होइ) होता है (भायण भंडोवहि उवगरणं) भाजन-पात्र, मिट्टी के भाड और उपधि-वस्त्र आदि उपकरण-उपयोगी सामग्री जो हैं (एवं) इस प्रकार (आयाण भंड निक्खेवणा समिति जोगेण) आदान भाण्ड निक्षेपणा समिति के योग मे (भाविओ) भावित-युक्त (अंतरप्पा) अन्तरात्मा

(असबलमसंकिलिट्ठ निव्वण चरित्त भावणाए) निर्मल व संक्लेश रहित और अखण्डित चरित्र की भावना से (अहिंसए संजए सुसाहू) अहिंसक, संयत सुसाधु (भवति) होता है।

(एवमिणं संवरस्सदारं) इस प्रकार यह प्रथम संवरद्वार (सम्मं) अच्छी तरह (संवरियं) अङ्गीकृत (सुप्पणिहियं) उत्तम रीति से प्रणिधान में लाया हुआ, (होति) होता है (इमेहिं पंचहिवि कारणेहिं) इन पांचो कारणों से (मण वयण-काय परिरक्खिएहिं) मन वचन कायों से परिरक्षित (णिच्चं) सदा (आमरणां-तच) मरण पर्यन्त (एसजोगो) यह योग (धितिमया मतिमया) धैर्यवान् व बुद्धिमान् से (अणासवो) आस्रव रहित (अकलुणो) कायरता रहित (अच्छिद्दो) त्रुटि रहित (असंकिलिट्ठो) संक्लेश रहित (सुद्धो) शुद्ध अतएव (सव्वजिण मणुन्नातो) सर्व जिनों से अनुज्ञात-अनुमत है। (एवं) इस प्रकार (पढमं) पहला (संवर दारं) संवरद्वार (फासियं) स्पृष्ट-गृहीत (पालियं) पालित (सोहियं) शोधित-शुद्ध किया (तिरियं) पूरा पाला हुआ (किट्टियं) कीर्तित (आराहियं) आराधित (आणाते अणु पालियं) आज्ञा से अनुपालित (भवति) होता है। (एवं) इस प्रकार (नायमुणिणा भगवया) भगवान् ज्ञातमुनि महावीर-ने (पन्नवियं) प्रज्ञापित (परूवियं) प्ररूपित (पसिद्धं) प्रसिद्ध (सिद्धं) सिद्ध है (सिद्धवरसासणमिणं) यह सिद्धवर शासन (आघवितं) बहुमूल्य (सुदेसितं) उपदेशित (पसत्थं) प्रशस्त (पढमं) पहला (संवरदारं) संवरद्वार (समत्तं) समाप्त हुआ (त्तिबेमि) ऐसा मैं कहता हूं। सूत्र ३। २३।

भावार्थ-इस सूत्र में अहिंसाव्रत को विशुद्ध रूप से पालने के लिये पांच भाव-नायें कही गई हैं। ये भावनायें अहिंसाव्रत का रक्षण तथा पोषण करने वाली हैं। इन भावनाओं के बल पर ही अहिंसा-प्राणातिपात विरमणरूप व्रत पालित हो सकता है, अन्यथा नहीं। अतएव उन पांच भावनाओं के स्वरूपों का निरूपण किया जाता है।

अहिंसा-व्रत की पांच भावनाओं में पहली भावना-ईर्या समिति-गमन आग-मन की क्रिया में हिंसा न होने की सावधान प्रवृत्ति है। इसमें पहली बात यह है कि युग प्रमाण-प्राय: चार हाथ तक भूमि पर दृष्टि रखते हुए पवित्र भूतल पर चलना चाहिए, जिससे कीट पतङ्ग आदि त्रस स्थावर जीवों की दया पाली जाय।

दूसरी बात–पुष्प, फल, वृक्ष की गीली त्वचा, हरे पत्ते, कन्द, मूल, जल, मिट्टी, बीज और हरी चीजें, इन सब वस्तुओं को नहीं छूना। किसी भी प्राणी की हीलना, निन्दा, गर्हा, हत्या, छेदन, भेदन, बध नहीं करना। किसी भी प्राणी को भय में या दुःखमें नहीं पहुँचाना। इस ईर्या समिति योग से भावित अन्तरात्मा वाला अहिंसक, संयत एवं सुसाधु होता है।

दूसरी भावना यह है कि पापयुक्त मन से किसी भी पापमय कर्म को नही करना चाहिए। मनतक मे बुरे विचारों को स्थान नहीं देना चाहिए। इस प्रकार मनः समिति योग से अन्तरात्मा भावित होता है।

तीसरी भावना है कि–पापमयी वाणीसे पापयुक्त वचनको नही बोलना चाहिए। इस प्रकार वचन समिति योग से अन्तरात्मा भावित होता है।

चौथी भावना आहारैषणा है–इसमें भिक्षा शुद्धि के लिये साधु अपना विशेष परिचय नहीं दे। उत्तम भोजन मे आसक्त नहीं हो। नहीं मिलने पर दीनता या द्वेष प्रगट नहीं करे। विधि पूर्वक निर्दोष भिक्षा को ग्रहण करने पर भी अहिंसा की आराधना के लिये यह आवश्यक है कि वह भिक्षा गुरुजनो को दिखाई जाय। भिक्षा मे लगने वाले दोषो की गुरु के पास आलोचना की जाय। और गुरु की आज्ञा प्राप्त होने पर सावधानता के साथ सर्वथा शान्तभाव से क्षणभर बैठकर ध्यान किया जाय। इसके बाद अपने प्राप्त आहार से वात्सल्यभाव पूर्वक उठकर मुनिओं को आमन्त्रण करे। मोह या स्वार्थ बुद्धि से नहीं किन्तु श्रद्धा, संवेग और कर्म निर्जरा के भाव से। इस प्रकार गुरु और स्वधर्मी–मुनिओं का आदर करके स्वयं भोजन को बैठे। भोजन के पूर्व मस्तक से लेकर सारी देह और विशेषतः करतल का प्रमार्जन किया जाय। फिर शान्ति एवं सन्तोष के साथ प्रकाश वाले स्थान तथा पात्र में भोजन किया जाय।

भोजन करते सुरसुर या चवचव आदि ध्वनि नहीं करे। अति जल्दी या अधिक विलम्ब भी नहीं करे।

संयम यात्रा और देह की रक्षा ही आहार का प्रधान हेतु है अतएव नीचे नहीं गिराते हुए पूर्ण यतना के साथ भोजन करें।

अहिंसक साधुओ की कितनी उदात्त दिनचर्या है। भूख के समय भी कैसे धीरज का उपदेस है! साथिओं के साथ कैसा आदर भाव है? ऐसी चर्या वाले कुटुम्ब में

भी क्या भोजन जन्य मनोमालिन्य हो सकता है ? नहीं । अहिंसा की यह चतुर्थ भावना है । इस प्रकार आहार समिति योगसे अन्तरात्मा भावित होता है ।
पांचवी आदान निक्षेपणा समिति है–

इसमे सयम के साधन उपकरण जैसे, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, दण्ड, रजोहरण, चोलपट्टक, मुखवस्त्रिका, पाद पुंछन आदि । ये सब भी केवल संयमवृद्धि के लिये होते है जो हवा, धूप, दंश, मशक, ठंढी आदि से आत्म रक्षार्थ राग–द्वेष रहित धारण करने योग्य हैं । प्रतिदिन इन भाण्डोपकरणों की देखभाल और प्रमार्जना रूप क्रियाओ से शुद्धि करनी चाहिए । इसके लिये अहर्निश प्रमाद रहित होना चाहिए । इस प्रकार भण्डोपकरण सम्बन्धी आदान निक्षेपणारूप समिति के योग से अन्तरात्मा भावित होता है । निर्मल असंक्लिष्ट तथा अखण्डित चारित्र की भावना से अहिंसक, संयत, सुसाधु होते हैं । इस प्रकार यह संवरद्वार सम्यग् अङ्गीकृत व सुपालित होता है । मन वचन एवं काय से सुरक्षित इन पांच कारणो से सदा मरणकाल पर्यन्त यह योग धैर्यवान् व मतिमान् संयमिओ से पालने योग्य है । इसमे आस्रव नहीं हो, मलिनता न हो–त्रुटि न हो, संक्लेश न हो, अर्थात् सर्वथा विशुद्ध होना चाहिए । ऐसा ही सर्व जिनेन्द्रो के द्वारा कहा गया है । ऐसी ही आराधना से यह संवरद्वार स्पृष्ट, पालित, शोधित, तीर्ण, कीर्तित और आराधित होता है । और भगवान् की आज्ञानुसार अनुपालित होता है । इस प्रकार ज्ञातमुनि–भगवान् महावीर ने फरमाया है जो सिद्ध है और प्रसिद्ध है । यह श्रेष्ठ सिद्ध का अनुशासन है, बहुमूल्य है । उपदिष्ट है । प्रशस्त है । इस प्रकार यह प्रथम संवरद्वार पूर्ण हुआ । सू० १ । २३ ।

ॐ समाप्तं प्रथमं संवरद्वारम् ॐ

* मच्छायं सान्वयार्थं गाथा: *

* अथ *

द्वितीयं संवर द्वारम्

पहले संवरद्वार मे प्राणातिपात विरमणव्रत कहा गया अब मृषावाद विरमणव्रत कहते है। अहिंसा की सर्वाङ्गसाधना के लिये मृषावाद विरमण-सत्य की आवश्यकता है। सत्य के बिना अहिंसा का पूर्ण पालन नहीं हो सकता। इसलिये अहिंसा के बाद मृषावाद विरमणरूप दूसरा संवरद्वार कहा जाता है। जिसका प्रथम सूत्र निम्नलिखित है-

सत्य का महिमाशाली स्वरूप-

मूल-" जंबू ! बितियं च सच्चवयणं सुद्धं सुचियं सिवं सुजायं सुभासियं सुव्वयं सुकहियं सुदिट्ठं सुपतिट्ठियं सुपइट्ठियजसं सुसंजमिय वयण बुइयं सुर वर नर वसभ पवर बलवग सुविहिय जण बहुमयं, परमसाहु धम्मचरणं तव नियम परिग्गहियं, सुगतिपहदेसगं च लोगुत्तमं वयमिणं विज्जाहर गगणगमण विज्जाणसाहकं, सग्ग मग्ग सिद्धि पहदेसकं अवितहं तंसच्चंउज्जुयं अकुडिलं भूयत्थं, अत्थतो विसुद्धं उज्जोयकरं पभासकं भवति सव्वभावाण जीवलोगे अविसंवादि जहत्थ मधुरं पच्चक्खं दयिवयंवजंतं अच्छेरकारकं अवत्थंतरेसु बहुएसु माणुसाणं सच्चेण महासमुद्द मज्झेवि चिट्ठंति न निमज्जंति मूढाणिया वि पोया सच्चेण य उदग संभमं भिवि न वुज्झइ न य मरंति थाहंते लभंति। सच्चेणय अगणि संभमं मिवि न डज्झंति उज्जुगा

मणूसा। सच्चेण य तत्ततेल्ल तउ लोहसीसकाइं छिवंति धरेंति नय डज्झंति, मणूसा। पव्वयकडकाहिं मुच्चंते न य मरंति। सच्चेण य परिग्गहिया असि. पंजरगया समराओ णिणिइंति, अणहाय सच्चवादी वह-बंधभियोगवेर घोरेहिं पमुच्चंतिय अमित्तमज्झाहिं निइंति अणहा य सच्चवादी। सादेव्वाणिय देवयाओ करेंति सच्चवयणे रताणं।

छाया-"जम्बू.? द्वितीयञ्चसत्यवचनं शुद्धं सुचितं शिवं सुजातं सुभाषितं सुव्रतं सुकथितं सुदिष्टं सुप्रतिष्ठितं सुप्रतिष्ठितयशस्कं सुसंयमित वचनोक्तं सुरवर नर वृषभ प्रवर बलवत्सुविहितजन बहुमतं परमसाधु धर्मचरणम् तपोनियम परिगृहीतं सुगति-पददेशकं च लोकोत्तमं व्रतमिदं विद्याधर गगन गमन विज्ञान साधकं स्वर्गमार्ग सिद्धि पद देशकम् अवितथं तत्सत्यमृजुकम् अकुटिलं भूयोऽर्थमर्थतो विशुद्धमुद्योतकरं प्रभासकं भवति सर्वभावाना जीवलोकेऽविसंवादि यथार्थ मधुरं प्रत्यक्षं दैवतकमिव यत्त दाश्चर्यकारकम् अवस्थान्तरेषु बहुषु मनुष्याणां सत्येन महासमुद्रमध्येऽपि मूढानीका अपि पोताः। सत्येन च उदकसम्भ्रमेऽपि न निमज्जन्ति न म्रियन्ते तीरंते लभन्ते। सत्येन च वह्नि सम्भ्रमेऽपि न दह्यन्ते ऋजुका मनुष्याः सत्येन च तप्ततैल तप्तलौहसीसकानि क्षिपन्ति, धरन्ति न च दह्यन्ते मनुष्याः। पर्वतकटकाद्विमुच्यन्ते। न च म्रियन्ते सत्येन च परिगृहीता असिपञ्जरगताः समरादपि निर्यान्ति, अनघाश्च सत्यवादिनो वध बन्धाभियोगवैर घोरेभ्यः प्रमुच्यन्ते चामित्रमध्यादपि निर्यान्ति अनघाश्च सत्यवादिनः सादेव्यानि (सान्निध्यानि) कुर्वन्ति सत्यवचनेरतानाम्।

अन्व०-"(जंबू ?) हे शिष्य जम्बू! (वितियंच) अहिंसारूप प्रथम संवर के बाद फिर दूसरा संवर (सच्चवयणं) सत्यवचन जो सज्जनों के लिये अथवा द्रव्य और गुणों के लिये हितकारी है (सुद्धं) दोष रहित (सुचियं) पवित्र (सिवं) उपद्रव रहित (सुजायं) शुभ विचार से उत्पन्न (सुभासियं) अतएव सुभाषित (सुव्वयं) सुव्रत-श्रेष्ठ व्रत रूप (सुकहियं)) और सम्यक् विचार पूर्वक कहा गया (सुदिट्ठं) कल्याण के साधन रूप से ज्ञानिओं के द्वारा अच्छी तरह देखा गया व (सुपतिट्ठिय) सुप्रतिष्ठित-सभी प्रमाणों से प्रतिष्ठा प्राप्त है (सुपतिट्ठियजसं) अच्छी तरह स्थिर कीर्ति वाला (सुसंजमिय वयण वुइयं) सम्यक् प्रकार के संयम युक्त वचनों से बोला गया, (सुरवर) उत्तम जाति के देव (नर वसभ) प्रधान पुरुष (पवर बलवग सुविहियजणबहुमयं) अतिशय बलधारी और सुविहित मनुष्य

सज्जन पुरुष का सत्यव्रत बहुत माना हुआ है (परम साहु धम्म चरणं) नैष्ठिक मुनिओ का धार्मिक अनुष्ठान (तव नियम परिग्गहियं) और तप नियम से स्वीकार किया गया है (सुगतिपहदेसगं) सुगति मार्ग का उपदेशक (च) और (लोगुत्तमं) लोक मे उत्तम (वयमिणं) यह सत्य व्रत है, (विज्जाहर गगण गमण विज्जाण साहकं) विद्याधरों की आकाश गामिनी आदि विद्याओं का साधन (सग्ग मग्ग सिद्धि पह-देसकं) स्वर्ग के मार्ग और सिद्धि पथ का प्रवर्तक तथा (अवितहं) असत्य से रहित है (तं सच्चं) वह सत्य नाम का दूसरा संवर (उज्जुयं) सरल भाव से प्रवर्तित होने से ऋजु तथा (अकुडिलं) कुटिलता रहित (भूयत्थं) सद् भूत अर्थ वाला (अत्थतो विसुद्धं) अर्थ प्रयोजन से विशुद्ध (उज्जोयकरं) पदार्थ का प्रकाशक (सव्व भावाणं) सब पदार्थों का (जीव लोगे) जीव लोक में (पभासकं) अच्छी तरह कथन करने वाला (भवति) होता है (अविसंवादि) दोष-विरोध रहित (जहत्थ मधुरं) यथार्थ होने से मधुर (पच्चक्खं) प्रत्यक्ष (दयिव्वयंव) दैवत-देव-की तरह (जं) जो (माणुसाणं) मनुष्यों की (बहुएसु अवत्थंतरेसु) बहुत सी अवस्थाओं में—दशा विशेष में (तं) वह सत्य (अच्छेर कारकं) आश्चर्य कारक होता है (सच्चेण) सत्य के कारण (महासमुद्दमज्झेवि) बडे समुद्र के मध्य में भी (मूढाणिया वि) मूढानीक-दिग्भ्रम में पडे हुए चालकसमूह वाले भी (पोया) पोत—नौका जहाज 'पार लगते हैं (सच्चेणय) और सत्य से (उदगसंभमं मिवि) जल के तेज प्रवाह मे या भँवर मे भी (न बुज्झइ) नहीं डूबते (न य मरंति) और अपमृत्यु से नही मरते है (थाहं ते लभंते) गिरे हुए वे सत्यव्रती स्ताघ—भूमि तल को प्राप्त करते हैं अर्थात् डूबने के प्रसङ्ग मे भी वे सत्यव्रती सत्य के प्रभाव से आश्रय पा लेते हैं (सच्चेणय) और सत्य से (अगणि संभम मिवि) अग्नि के चक्कर मे भी (न डज्झंति) नहीं जलते हैं (उज्जुगा-मणूसा) सरल हृदय वाले मनुष्य

घिरे हुए (समराओ वि) समरभूमि से भी (अणहा) अक्षत-बाल बाल बचे हुए (णिइंति) निकल जाते हैं (य) और (सच्चवादी) सत्यवादी (वहबंध भियोग वेर घोरेहिं) वध बन्ध, अभियोग-बलात्कार पकड़े जाना और भयङ्कर शत्रुता के प्रसंगों से (पमुच्चंति) छूट-जाते हैं (य) और (अमित्तमज्झाहिं) शत्रुओं के समूह से (अणहा) विना बाधा के (सच्चवादी) सत्यवादी मनुष्य (णिइंति) निकल जाते हैं। (य) और (सच्चवयणे रताणं) सत्य वचन में रत रहने वाले मनुष्यों की (देवयाओ) देव लोग (सादेव्वाणि) सान्निध्य-साहाय्य (करेंति) करते हैं।

मूल—"तं सच्चं भगवं तित्थकर सुभासियं, दसविहं चोद्दसपुव्वीहिं पाहुडत्थविदितं महरिसीणय समयप्पदिन्नं देविंदनरिंद भासियत्थं वेमाणिय साहियं महत्थं मंतोसहि विज्जासाहणत्थं चारणगण समण सिद्धविज्जं, मणुयगणाणं वंदणिज्जं, अमरगणाणं अच्चणिज्जं असुर-गणाणं य पूयणिज्जं अणेगपासंडि परिग्गहितं। जं तं लोकंमि सारभूयं, गंभीरतरं महासमुद्दाओ। थिरतरगं मेरुपव्वयाओ। सोमतरगं चंदमंडलाओ। दित्ततरं सूरमंडलाओ। विमलतरं सरयनहयलाओ। सुरभितरं गंधमादणा-ओ जेविय लोगम्मि अपरिसेसा मंतजोगा जवा य विज्जा य जंभका य अत्थाणि य सत्थाणि य सिक्खाओ य आगमा य सव्वाणिवितांइं सच्चे पइट्ठियाइं। सच्चंपि य संजमस्स उवरोहकारकं किंचि न वत्तव्वं हिंसासा-वज्जसंपउत्तं। भेय विकहकारकं, अणत्थवाय कलहकारकं। अणज्जं अव-वाय विवाय संपउत्तं वेलंबं, ओजधेज्जबहुलं, निल्लज्जं, लोयगरहणिज्जं, दुद्दिट्ठं दुस्सुयं, अमुणियं। अप्पणो थवणा परेसु निंदा। न तंसि मेहावी, ण तंसि धन्नो न तंसि पियधम्मो न तं कुलीणो न तंसि दाणव(प)ती न तंसि सूरो न तंसि पडिरूवो न तंसि लट्ठो न पंडिओ न बहुस्सुओ नवि य तं तवस्सी ण यावि परलोगणिच्छियमतीऽसि सव्वकालं जातिकुल रूव वाहिरोगेण वाविजं होइ वज्जणिज्जं दुहिलं (दुहओ) उवयार मतिक्कंतं एवं विहं सच्चंपि न वत्तव्वं। अहकेरिसकं पुणाइ सच्चं तु भासियव्वं ? जं तं दव्वेहिं

पज्जवेहिय गुणेहिं कम्मेहिं बहुविहेहिं सिप्पेहिं आगमेहि य नामक्खाय निवा उवसग्ग तद्धिय समास संधि पदहेउ जोगिय उणादि किरिया विहाण धातु सर विभत्ति वन्नजुत्तं तिकल्लं दसविहंपिसच्चं जह भणियं तह य कम्मुणा होइ दुवालसविहा होइभासा, वयणंपि य होइ सोलसविहं। एवं अरहंत मणुन्नायं समिक्खियं संजएण कालंमिय वत्तव्वं ॥ सूत्र१।२४।

छाया–तत्सत्य भगवत्तीर्थकर सुभाषितं दशविधं चतुर्दशपूर्विभि. प्राभृतार्थ विदितं महर्षीणाच समयप्रदत्त देवेन्द्र नरेन्द्र भाषितार्थं वैमानिकसाधित महार्थं मन्त्रौषधिविद्यासाधनार्थम्। चारणगण श्रमण सिद्धवेद्यं मनुजगणानाञ्च वन्दनीयम् अमरगणानाञ्चाऽर्चनीयम्, असुरगणानाञ्च पूजनीयम्, अनेकपाषण्डिपरिगृहीतम्, यत्तल्लोके सारभूत गम्भीरतरं महासमुद्रात्, स्थिरतरकं मेरुपर्वतात्, सौम्यतरं चन्द्रमण्डलात्, दीप्ततरं सूर्यमण्डलात्, विमलतरं शारदनभस्तलात्, सुरभितरं गन्धमादनात्। येऽपिचलोकेऽपरिशेषा मन्त्रयोगा जपाश्च विद्याश्च जृम्भकाश्च अस्त्राणि च शस्त्राणि च शिक्षाश्चाऽऽगमाश्च सत्यानि च तानि सत्ये प्रतिष्ठितानि, सत्यमपि च संयमस्योपरोधकारकं किञ्चिदपिनोवक्तव्यम् हिंसासावद्यसम्प्रयुक्त भेद विकथाकारकम् अनर्थवाक्कलहकारकम् अनार्यम् अपवाद विवाद सम्प्रयुक्तं विडम्बम् ओजोधैर्यबहुलं निर्लज्ज लोकगर्हणीयं दुर्दृष्टं दुश्रुतममनोज्ञम्, आत्मनः स्थापना परेषु निन्दा, न तत्रमेधावी, न तत्रधन्यो न तत्र प्रियधर्मो न तत्कुलीनो न तत्र दानपति र्न तत्र शूरो न तत्र प्रतिरूपो न तत्र लष्टो न पण्डितो न वहुश्रुतो नापिच तत् तपस्वी न चापि परलोक निश्चित मतिरस्ति। सर्वकालं जातिकुल रूप–व्याधिरोगेण वापि यद्भवति वर्जनीयम्, दुःखत उपकारमतिक्रान्तमेवंविधं सत्यमपि न वक्तव्यम्, अथकीदृशकं पुनरपि सत्यन्तु भाषितव्यम्? यत्तद्द्रव्यै. पर्यायैश्च गुणैः कर्मभिर्बहुविधैः शिल्पैरागमैश्च नामाऽऽख्यात निपातोपसर्ग तद्धित समाससन्धिपदहेतु यौगिकोणादि क्रिया विधान धातु स्वरविभक्तिवर्णयुक्तं त्रिकाल दशविधमपिसत्य यथा भणितं तथा च कर्मणा भवति द्वादशविधा भवति भाषा, वचनमपि च भवति षोडशविधम्। एवञ्चार्हदनुज्ञातं समीक्षितं संयमिना काले च वक्तव्यम। सूत्र १। २४।

अन्व०–"(त सच्च) इस प्रकार का वह सत्य महाव्रत (भगवं) भगवान्–अतिशय सम्पन्न (तित्थकर सुभासियं) तीर्थङ्करो से अच्छी तरह कहा गया (दसविह) दश प्रकार का है (चोद्दस पुव्वीहिं) चतुर्दश पूर्व धारियो ने (पाहुड

त्थविदितं) जिसे पूर्वका एक अंश होने के कारण अर्थ रूप मे जाना है। (महरिसीण य) और महर्षि-मुनिओ को (समयप्पदिन्न) सिद्धान्त रूप मे दिया गया अर्थात् साधुओ के द्वितीय महाव्रत मे सिद्धान्त के द्वारा सत्य स्वीकार किया गया हैं। देविद नरिंद भासियत्थं) देवेन्द्र तथा नरेन्द्र-राजाओ न लोगो न जिसका अर्थ कहा है,अथवा देवेन्द्र आदि को जिसका प्रयोजन तत्त्वरूप से कहा गया है वैसा (वेमाणिय साहियं) वैमानिक देवो मे समर्थित एवं आसेवित है (महत्थ) बडे प्रयोजन वाला (मंतोसहि विज्जासाहणत्थं) मन्त्र, औषधि और विद्याओं के साधन मे अर्थयुक्त याने साधना का कारण है (चारण गण समण सिद्धविज्ज) विद्या चारण आदि मुनिवृन्द की विद्याओ को सिद्ध करने वाला (मणुयगणाण वंदणिज्जं) मनुष्य गणो का वन्दनीय-स्तुति पात्र (अमर गणाणं अच्चणिज्ज) देवगणो का अर्चनीय-आदर पात्र (असुरगणाण च पूजनीयं) असुरकुमार आदि भवनपति देवो का पूजनीय-बहुमान पात्र और (अणेग पासंडि परिग्गहितं) विविध प्रकार के व्रतधारिओ से धारण किया गया है (ज) जो पूर्वोक्त महत्व वाला है (तं) वह सत्य (लोगंमि सारभूयं) लोको मे सारभूत (महा समुद्दाओ गभीरतरं) एवं महा समुद्र-लवण आदि विशाल समुद्र से अधिक गम्भीर (मेरु पव्वयाओ थिरतरगं) मेरु पर्वत से भी अधिक स्थिर (चन्दमडलाओ सोमतरगं) चन्द्र मण्डल से विशेष सौम्य तथा (सूरमंडलाओ दित्ततरं) सूर्य मण्डल से अधिक दीप्ति वाला (सरयनहयलाओ विमलतर) शरत् काल के आकाश तल से अधिक निर्मलता वाला और (गंधामादणाओ सुरभितरं) गन्धमादन नामक गज दन्त से विशेष सुगन्धि वाला है (जेविय) और जो भी (लोगमि) संसार मे (अपरिसेसा मंतजोगा) हरिणगमेषी आदि के सब मन्त्र तथा वशीकरण आदि योग (जवा य) और जप (विज्जा य) प्रज्ञप्ति आदि विद्याये और (जंभका) जृम्भक देव (य) और (अत्थाणि) धनुष आदि अस्त्र (सत्थाणि य) और शास्त्र अर्थ शास्त्र आदि शास्त्र या खड्गादिशस्त्र (सिक्खाओ य) औरकलायें (आगमा य) सिद्धान्त-ज्ञान के तत्त्व शास्त्र हैं (सव्वाणिवितांइं) वे सभी पूर्वोक्त मन्त्रादि (सच्चे पइट्ठियाइं) सत्य में प्रतिष्ठित हैं (सच्चंपि य) और सत्य भी (संजमस्स उवरोह कारक) संयम में बाधक हो वैसा (किंचिन वत्तव्वं) किंचिन्मात्र भी नहीं बोलना चाहिए, जैसे (हिंसा सावज्जसंपउत्तं) हिंसा व पाप युक्त क्रिया के योग वाला (भेयविकह

कारकं) दर्शन तथा चारित्र में भेद करने वाली स्त्री आदि की विकथा युक्त वचन (अणत्थवाय कलह कारकं) निष्प्रयोजन वचन और कलहकारी (अणज्जं) अनार्य के योग्य अथवा न्याय हीन वचन (अववाय विवाय संपउत्तं) अपवाद-निन्दा और विरोध युक्त वचन (वेलंबं) दूसरों की विडम्बना कारी वचन (ओज धेज्जबहुलं) बल और धृष्टता-धिठाई की अधिकता वाला (निल्लज्जं) लज्जा रहित (लोयगरहणिज्जं) लोक में निन्दनीय वचन (दुद्दिट्ठं) अच्छी तरह नहीं देखा हुआ (दुस्सुयं) बुरी तरह से सुना हुआ, (अमुणियं) पूर्ण रीति से नहीं जाना हुआ, याने अज्ञात विषय का कथन (अप्पणो थवणा) अपनी स्तुति तथा (परेसुनिंदा) दूसरों के सम्बन्ध में निन्दा करना जैसे कि-(न तंसि मेहावी) तूं ग्रहण-धारणा शक्ति सम्पन्न मेधावी नहीं है (ण टंसिधन्नो) तूं धन पाने योग्य नहीं है (न तंसि पियधम्मो) तूं प्रिय धर्मा-धर्म प्रेमी नहीं है (न तं कुलीणो) न तूं कुलीन है (न तंसिदाणपती) दान देने वाला भी तूं नहीं है (न तंसिसूरो) तूं शूर नहीं है (न तंसि पडिरूवो) तूं रूप सम्पन्न भी नहीं है (न तंसिलट्ठो) न तूं सौभाग्यशाली है (न पंडिओ) न पण्डित है (न बहुस्सुओ) तूं बहुत शास्त्र का जानकार नहीं (न वियतं तवस्सी) तूं तपस्वी भी नहीं है (ण यावि पर लोगणिच्छियमतीऽसि) और तूं पर लोक के विषय में निश्चित बुद्धि वाला भी (सव्व कालं) सर्व काल-आजन्म (नऽसि) नहीं है, इस प्रकार (जाति कुल रूव वाहिरोगेणवावि) जाति-मातृवंश, कुल-पितृ वंश, रूप, व्याधि-कुष्ठ आदि अथवा रोग-ज्वर आदि से जो भी वचन (वज्जणिज्जं । पर पीड़ाकारी होने से वर्जनीय (होइ) है (दुहओ) द्रव्य और भाव से (उवयार मतिक्कंतं) उपचार-आदर या उपकार रहित हो (एवं विहंसच्चंपि) इस प्रकार का सत्य भी (न वत्तव्वं) नहीं बोलना चाहिए।

अब जो सत्य वचन बोलने योग्य होता है प्रश्न पूर्वक उसका स्वरूप कहते हैं-(अह केरिसकं पुणाइ सच्चंतु भासियव्वं?)अब फिर कैसा सत्यभी वचन बोलने योग्य है ? उत्तर-(जं)जो सत्य (दव्वेहिं पज्जवेहिय) द्रव्य और पर्याय-अवस्थाओं से ,गुणेहिं कम्मेहिं) वर्ण आदि गुणों से कृषि आदि कर्मसे (बहुविहेहिं सिप्पेहिं) बहुत प्रकारके चित्र आदि शिल्प (आगमेहिय) और सिद्धान्त के अर्थों से (नाम क्खाय) नामपद देवदत्त आदि, आख्यात- क्रियापद भवति आदि (निवा उवसग्ग तद्धित समास संधि पद हेउ जोगिय उणादि किरिया विहाण धातु सर विभत्ति वण्णजुत्तं । निपात-

ष षा आदि, उपसर्ग-धातु के साथ लगने वाले प्र परा आदि, तद्धित-तद्धित प्रत्यय जिनके अन्त में हों जैसे नाभेय आदि पद, समास-अनेक पदों को एक साथ मिला कर एक पद करना जैसे राजपुरुष आदि, सन्धि-समीपतासे पदों का सम्बन्ध विशेष जैसे दध्यानय आदि, हेतु-अनुमान का अङ्ग विशेष, यौगिक- दो आदि के संयोग वाला पद अथवा जिस पद के अवयवार्थ से समुदायार्थ जाना जाय जैसे पाचक पाठक आदि, उणादि-उण् आदि उणादिगण के प्रत्यय जिनके अन्त में हों जैसे साधु, स्वादु आदि क्रियाविधान-क्रिया का विधान करने वाला पाचक आदि पद, धातु-क्रियाका कथन करने वाले भू आदि,स्वर-आकार आदि या षड्जादि सप्तस्वर विभक्ति-प्रथमा आदि सात विभक्तिपद और वर्ण-ककार आदि व्यञ्जनों से युक्त (तिकल्लं) त्रिकाल विषयक (दसविहंपि) दश प्रकार का भी (जहभणियं) जैसे वचन (तहय) वैसे ही (कम्मुणा) लेखन व चेष्टा आदि क्रिया से दश प्रकार का (सच्चं) सत्य (होइ) होता है (दुवालस विहा होइ भासा) बारह प्रकार की भाषा होती है (वयणंपि यहोइ सोलसविहं) और वचन भी सोलह प्रकार का होता है (एवं) इस प्रकार (अरहंत) तीर्थङ्करों से (मणुन्नायं) अनुज्ञात (य समिक्खियं) और अच्छी तरह विचार पूर्वक सोचा हुआ वचन (संजएण) संयमी साधु को (कालंमिय) बोलने के अवसर पर (वत्तव्वं) बोलना चाहिए । २ । २४ ॥

भावार्थ-हे जम्बू ! अहिंसा व्रत के बाद फिर दूसरा सत्य वचन रूप संवर है, जो शुद्ध-सुयोग्य शिव-कल्याण कारक यावत् उत्तम देव और श्रेष्ठ पुरुषों का बहुमत है, साधु धर्म का अनुष्ठान तथा सुगति मार्ग का देशक है । तप और नियमों में इसका प्रधान स्थान है । यह लोकोत्तम व्रत विद्याधरों की विद्याका साधन तथा स्वर्ग व मोक्ष मार्ग का प्रवर्तक है। मृषासे रहित यह सत्य नामका संवर कुटिलता रहित सरल और वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने वाला यावत् संसार में पदार्थ मात्र का सम्यक् कथन करने वाला है, विरोध रहित,यथार्थ,मधुर और जो वह सत्य मनुष्यों की विविध दशाओं मे प्रत्यक्ष देवों की तरह उपकारक होता है, सत्य के प्रताप से महा समुद्र मे भी सत्यशील मनुष्य नही डूबते हैं,और अपमृत्यु सेभी नही मरते हैं तथा सत्य में निष्ठा रखने वालों की सन्निधि मे देव भी आते हैं, इत्यादि विविध विशेषताशाली सत्य भगवान तीर्थङ्करों से अच्छी तरह कहा गया है यह सत्य दश प्रकार का है, चौदह पूर्व के ज्ञानिओं ने पूर्व श्रुत में इसको सम्यग् जाना

और साधुओं को महाव्रत रूप से दिया गया है, देवेन्द्र आदि के समक्ष कहा गया तथा वैमानिक देवों से सेवित है, मन्त्र आदि की सिद्धि का साधन तथा देव, दानव और मानवो के लिये वन्दनीय आदरणीय एवं पूज्य है, अनेक प्रकार के व्रतियों से धारण किया गया जो यह सत्य समस्त लोक मे सारभूत है, गम्भीरता मे समुद्र जैसा अति गम्भीर और स्थिरता मे मेरु जैसा अकम्प है, ऐसे सौम्य दीप्ति और निर्मलता में चन्द्र सूर्य तथा स्वच्छ आकाश व गन्धमादन की उपमा जिस सत्य को दी गई है, संसार मे जो भी मन्त्र यन्त्र आदि हैं वे सभी सत्य मे प्रतिष्ठित हैं। सत्य होकर भी जो वचन सयम में बाधक हो वह नहीं बोलना चाहिए—जैसे हिंसा आदि पाप युक्त तथा सच्चरित्र मे भेद करने वाली स्त्री आदि की विकथा युक्त निरर्थक व कलह वर्द्धक व न्याय विरुद्ध वचन तथा लोक निन्दनीय तथा दुर्दिष्ट आदि वचन अवाच्य है, अपनी स्तुति एवं पर निन्दा के वचन भी नहीं बोलना चाहिए, जैसे कि तू बुद्धिमान नहीं है आदि जाति कुल रूप आदि से जो भी वचन वर्जनीय है इस प्रकार का सत्य भी नहीं बोलना चाहिए सत्य होने पर भी कैसा वचन बोलना चाहिए ? यह दिखाते हैं जो वचन द्रव्य पर्याय गुण कर्म और विविध प्रकार के शिल्प तथा सिद्धान्त के अर्थ से युक्त हो, नाम, क्रिया, निपात, उपसर्ग आदि से युक्त त्रिकाल विषयक दश प्रकार का भी सत्य वचन बोलने और लेखन आदि क्रिया से सत्य होता है, प्राकृत, संस्कृत आदि बारह प्रकार की भाषायें तथा तीन लिङ्ग आदि से १६ प्रकार के वचन है इस प्रकार तीर्थङ्करों से अनुज्ञात सुचिन्तित वचन ही अवसर पर बोलना चाहिए अन्यथा नहीं बोलना चाहिए।

असत्य परिहार के लिये (जिन शासन और) सत्य वचन की पांच भावनाएं

मूल—"इमंच अलिय पिसुण-फरुस कडुय चवल वयण परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं पेच्चाभाविकं आगमेसिभद्दं सुद्धं नेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्खपावाणं विओसमणं, तस्स इमा पंच भावणाओ बितियस्स वयस्स अलिय वयणस्स वेरमण परिरक्खणट्ठयाए पढमं सोऊणं संवरट्ठं परमट्ठं सुट्ठु जाणिऊण न वेगियं न तुरियं न चवलं न कडुयं न फरुसं न साहसं नय परस्स पीलाकरं सावज्जं सच्चंच हियंच मियंच गाहगंच सुद्धं संगयम काहलंच समिक्खितं संजतेण कालंमिय

.त्तव्वं, एवं अणुवीति समिति जोगेणं भाविओ भवति अंतरप्पा संजय कर चरण नयण वयणो सूरो सच्चज्जव संपुन्नो। बितियं कोहोणसेवियव्वो, कुद्धोचंडिक्किओ मणूसो अलियं भणेज्ज, पिसुणं भणेज्ज फरुसं भणेज्ज अलियं पिसुणं फरुसंभणेज्ज, कलहं करेज्जा वेरं करेज्जा विकहं करेज्जा कलहं वेरं विकहं करेज्जा सच्चं हणेज्ज सीलं हणेज्ज विणयं हणेज्ज सच्चं सीलं विणयं हणेज्ज वेसो हवेज्ज वत्थुं भवेज्ज गम्मोभवेज्ज वेसोवत्थुं गम्मो भवेज्ज, एयं अन्नं च एवमादियं भणेज्ज कोहग्गि संपलित्तो तम्हा कोहो न सेवियव्वो, एवं खंतीइ भाविओ भवति अंतरप्पा संजय कर चरण नयण वयणो सूरो सच्चज्जव संपन्नो। ततियं लोभो न सेवियव्वो, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं खेत्तस्स व वत्थुस्स व कतेण १ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं कित्तीए लोभस्स व कएण २ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं रिद्धीय (ए) वसोक्खस्स व कएण ३, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं भत्तस्स व पाणस्स व कएण ४, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं पीढस्स व फलगस्स व कएण ५, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं सेज्जाए व संथारकस्स व कएण ६, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं वत्थस्स व पत्तस्स व कएण ७, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं कंबलस्स व पायपुंछणस्सव कएण ८ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं सीसस्स व सिस्सिणीए व कएण ६, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं अन्नेसुय एवमादिसु बहुसु कारणसतेसु, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं तम्हा लोभो न सेवियव्वो, एवं मुत्तीय भाविओ भवति अंतरप्पा संजयकर चरण नयण वयणो सूरो सच्चज्जव संपन्नो।

छाया-"इदञ्चाऽलीक पिशुन परुष कटुक चपल बचन परिरक्षणार्थाय प्रवचनं भगवता सुकथितमात्महितं प्रेत्यभाविकम् आगमिष्यद्भद्रं शुद्धं न्यायोपेतम् अकुटिलम् अनुत्तर सर्वदुःख पापानां व्युपशमनम्। तस्येमाः पञ्चभावनाः द्वितीयस्य व्रतस्य अलीकवचनस्य विरमण परिरक्षणार्थतायै प्रथमं श्रुत्वा संवरार्थं परमार्थं सुष्ठु ज्ञात्वा न वेगितं न त्वरितं न चपलं न कटुकं न परुष न साहसं न च परस्य पीडाकरं सावद्यं सत्यञ्च हितञ्च मितञ्च ग्राहकञ्च शुद्धं सङ्गतं काहलमपापञ्च समीक्षितं सयतेन काले च वक्तव्यम्। एवमनुचिचिन्त्य समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा

संयतकर चरणनयनवदनः शूरः सत्यार्जव सम्पूर्णः (सम्पन्नः) । द्वितीयं क्रोधो न सेवितव्यः क्रुद्धश्चाण्डिक्यितो मनुष्योऽलीकं भणेत्, पैशुन्यं भणेत्, परुषं भणेत्, अलीकं पैशुन्यं परुषं भणेत् । कलहं कुर्यात्, वैरं कुर्यात्, विकथां कुर्यात्, कलहं वैरं विकथां कुर्यात् । सत्यं हन्यात्, शीलं हन्यात्, विनयं हन्यात्, सत्यं शीलं विनयं हन्यात्, द्वेष्यो भवेत्, वस्तु (क्रोधस्थानं) भवेत्, ग्राम्यो भवेत्, द्वेष्यो वस्तु ग्राम्यो भवेत् । एतदन्यच्चैवमादिकं भणेत् क्रोधाग्नि सम्प्रदीप्तः तस्मात् क्रोधो न सेवितव्यः, एवं क्षान्त्या भावितो भवत्यन्तरात्मा संयतकर चरण नयनवदनः शूरः सत्यार्जव सम्पन्नः । तृतीयं लोभो न सेवितव्यो लुब्धो लोलो भणेत् अलीकं क्षेत्रस्य वा वस्तुनश्चकृते १ लुब्धो लोलो भणेत्–अलीकं कीर्तयेत् लोभस्य वाकृते २ । लुब्धो लोलो भणेदलीकमृद्धयेवासौख्यस्य च कृते ३ । लुब्धो लोलो भणेदलीकं भक्तस्य वा पानस्य च कृते ४ । लुब्धो लोलो भणेदलीकं पीठस्य वा फलकस्य च कृते ५ । लुब्धो लोलो भणेदलीकं शय्याया वा संस्तारकस्य वा कृते ६ । लुब्धो लोलो भणेदलीकं वस्त्रस्य वा पात्रस्य च कृते ७ । लुब्धो लोलो भणेदलीकं कम्बलस्य वा पादप्रोञ्छनस्य च कृते ८ । लुब्धो लोलो भणेदलीकं शिष्यस्य वा शिष्यायाश्चकृते ९ । लुब्धो लोलो भणेदलीक मन्येषु चैव मादिषु बहुषु कारणशतेषु, लुब्धो लोलो भणेदलीकम् । तस्माल्लोभो न सेवितव्यः एवं मुक्त्या भावितो भवत्यन्तरात्मा संयत कर चरण नयन वदनः शूरः सत्यार्जव सम्पन्नः ।

अन्व०–"(इमंच) और यह (पावयणं) प्रवचन (अलिय पिसुण फरुस कडुय चवल वयण परिरक्खणट्ठयाए) झूठ, पिशुन–परोक्ष में दूसरे के दूषण कहने रूप, परुष–कठोर कटु और उत्सुकता से बिना विचारे बोले हुए वचन से आत्मा की अच्छी तरह रक्षा करने के हेतु (भगवया) भगवान् महावीर ने (सुकहियं) सम्यक् रीति से कहा है (अत्तहियं) आत्मा के लिये हितकारी (पेच्चाभाविकं) परलोक में शुभ फल देने वाला (आगमेसिभद्दं) भविष्य में कल्याण का कारण तथा (सुद्धं) शुद्ध (नेयाउयं) न्याय युक्त (अकुडिलं) कुटिलता रहित (अणुत्तरं) सर्व श्रेष्ठ और (सव्वदुक्खपावाणं) सब दुःख एवं पापों का (विउसमणं) उपशमन करने वाला है (तस्स) उस (बितियस्स वयस्स) दूसरे व्रत की (इमा) ये नीचे कही जाने वाली (पंच भावणाओ) पांच भावनायें (अलियवयणस्स वेरमण परिरक्खणट्ठयाए) असत्य वचन विरमण याने असत्य

याग रूप व्रत की रक्षा के लिये होती है जैसे (पढमं) पहली भावना, विचार पूर्वक
बोलना (संवरट्ठं) सद्गुरु के पास मृषावाद विरमण रूप संवर के अर्थ को
(सोऊण) सुनकर (परमट्ठं) योग्य अयोग्य वचन के परमार्थ-सार को (सुट्ठु)
अच्छी तरह (जाणिऊण) जानकर (नवेगियं) विकल्प की व्याकुलता से वेगयुक्त
नही बोलना चाहिए (न तुरियं) त्वरायुक्त नही (न चवलं) व चंचल वचन
भी नही बोले (न कडुयं) अर्थ से कटु नही (न फरुसं) वर्ण से कठोर
नही (न साहसं) साहस प्रधान-सहसा वचन नही (न य परस्स पीलाकरं) दूसरे
को पीड़ाकारी (सावज्जं) सदोष वचन नही बोलना चाहिए (सच्चंच) सत्य और
(हियच) हितकारी (मियंच) और मित-परिमित (गाहगंच) वस्तुओ का यथावत्
ग्राहक और (सुद्धं)शुद्ध-पूर्वोक्त दोष से रहित (संगयम काहलंच) संगत-योग्य
और मन्मन-अव्यक्ताक्षर रहित (समिक्खितं) विचार पूर्वक देखा गया ही वचन
(सजतेण) साधु को (कालंमिय) अवसर पर (वत्तव्वं) बोलना चाहिए (एवं)
इस प्रकार (अणुवीतिसमिति जोगेण) विचार पूर्वक बोलने रूप समिति के योग
से (भाविओ) भावित (अंतरप्पा) अन्त करण वाला (संजय कर चरण नयण
वयणो) कर, चरण, नेत्र और मुख के संयम वाला (सूरो) शूर साधु (सच्चज्जव
संपुन्नो) सत्य व सरलता से युक्त (भवति) होता है। (बितियं) दूसरी भावना
क्रोधनिग्रह रूप जैसे-(कोहोण सेवियव्वो) क्रोध का सेवन नही करना चाहिए (कुद्धो)
क्रुद्ध (चंडिक्कियो) प्रचण्ड रूप बना हुआ (मणूसो) मनुष्य (अलियं भणेज्ज)
झूठ बोलता है (पिसुनं भणेज्ज) परोक्ष मे दूसरे के दोषो को कहता है (फरुस भणेज्ज)
कठोर बोलता है (अलिय पिसुणं फरुसं भणेज्ज) झूठ, पैशुन्य और कठोर वचन
तीनो बोलता है (कलहं करेज्जा) कलह करता (वेरं करेज्जा) विरोध करता है
(विकहं करेज्जा) धर्म विरोधी स्त्री आदि की विकथाये करता है (कलहं वेरं विकहं
करेज्जा) कलह वैर और विकथा इन तीनो को करता है (सच्च हणेज्ज) सत्य को
नष्ट करता है (सीलं हणेज्ज) शील-पवित्र आचार या समाधि का हनन करता है
(विणयं हणेज्ज) विनय का हनन करता है (सच्चं सीलं विणयं हणेज्जा) सत्य
शील और विनय इन तीनो का हनन करता है (वेसो हवेज्ज) असत्य भाषी लोक
मे द्वेष्य-अप्रिय होता है (वत्थुं भवेज) दोष का घर होता है (गम्मो भवेज्ज)
अनादर का स्थान होता है (वेसो वत्थु गम्मो भवेज्ज) द्वेष के पात्र दोष का घर

संयतकर चरणनयनवदनः शूरः सत्यार्जव सम्पूर्णः (सम्पन्नः)। द्वितीयं क्रोधो न सेवितव्यः क्रुद्धश्चाण्डिक्यितो मनुष्योऽलीकं भणेत्, पैशुन्यं भणेत्, परुषं भणेत्, अलीकं पैशुन्यं परुषं भणेत्। कलहं कुर्यात्, वैरं कुर्यात्, विकथां कुर्यात्, कलहं वैरं विकथां कुर्यात्। सत्यं हन्यात्, शीलं हन्यात्, विनयं हन्यात्, सत्यं शीलं विनयं हन्यात्, द्वेष्यो भवेत्, वस्तु (क्रोधस्थानं) भवेत्, गम्यो भवेत्, द्वेष्यो वस्तु गम्यो भवेत्। एतदन्यच्चैवमादिकं भणेत् क्रोधाग्नि सम्प्रदीप्तः तस्मात् क्रोधो न सेवितव्यः, एवं क्षान्त्या भावितो भवत्यन्तरात्मा संयतकर चरण नयनवदनः शूरः सत्यार्जव सम्पन्नः। तृतीयं लोभो न सेवितव्यो लुब्धो लोलो भणेत् अलीकं क्षेत्रस्य वा वस्तुनश्चकृते १ लुब्धो लोलो भणेत्-अलीकं कीर्तयेत् लोभस्य वाकृते २। लुब्धो लोलो भणेदलीकमृद्धयेवासौख्यस्य च कृते ३। लुब्धो लोलो भणेदलीकं भक्तस्य वा पानस्य च कृते ४। लुब्धो लोलो भणेदलीकं पीठस्य वा फलकस्य च कृते ५। लुब्धो लोलो भणेदलीकं शय्याया वा संस्तारकस्य वा कृते ६। लुब्धो लोलो भणेदलीकं वस्त्रस्य वा पात्रस्य च कृते ७। लुब्धो लोलो भणेदलीकं कम्बलस्य वा पादप्रोञ्छनस्य च कृते ८। लुब्धो लोलो भणेदलीकं शिष्यस्य वा शिष्यायाश्चकृते ९। लुब्धो लोलो भणेदलीक मन्येषु चैव मादिषु बहुषु कारणशतेषु, लुब्धो लोलो भणेदलीकम्। तस्माल्लोभो न सेवितव्यः एवं मुक्त्या भावितो भवत्यन्तरात्मा संयत कर चरण नयन वदनः शूरः सत्यार्जव सम्पन्नः।

अन्व०-"(इमंच) और यह (पावयणं) प्रवचन (अलिय पिसुण फरुस कडुय चवल वयण परिरक्खणट्ठयाए) झूठ, पिशुन-परोक्ष में दूसरे के दूषण कहने रूप, परुष-कठोर कटु और उत्सुकता से बिना विचारे बोले हुए वचन से आत्मा की अच्छी तरह रक्षा करने के हेतु (भगवया) भगवान् महावीर ने (सुकहियं) सम्यक् रीति से कहा है (अत्तहियं) आत्मा के लिये हितकारी (पेच्चाभाविकं) परलोक में शुभ फल देने वाला (आगमेसिभद्दं) भविष्य में कल्याण का कारण तथा (सुद्धं) शुद्ध (नेयाउयं) न्याय युक्त (अकुडिलं) कुटिलता रहित (अणुत्तरं) सर्व श्रेष्ठ और (सव्वदुक्खपावाणं) सब दुःख एवं पापों का (विउसमणं) उपशमन करने वाला है (तस्स) उस (बितियस्स वयस्स) दूसरे व्रत की (इमा) ये नीचे कही जाने वाली (पंच भावणाओ) पांच भावनायें (अलियवयणस्स वेरमण परिरक्खणट्ठयाए) असत्य वचन विरमण याने असत्य

त्याग रूप व्रत की रक्षा के लिये होती है जैसे (पढमं) पहली भावना, विचार पूर्वक बोलना (संवरट्ठं) सद्गुरु के पास मृषावाद विरमण रूप संवर के अर्थ को (सोऊण) सुनकर (परमट्ठं) योग्य अयोग्य वचन के परमार्थ-सार को (सुट्ठु) अच्छी तरह (जाणिऊण) जानकर (नवेगियं) विकल्प की व्याकुलता से वेगयुक्त नहीं बोलना चाहिए (न तुरियं) त्वरायुक्त नहीं (न चवलं) व चपल वचन भी नहीं बोले (न कडुय) अर्थ से कटु नहीं (न फरुस) वर्ण से कठोर नहीं (न साहस) साहस प्रधान-सहसा वचन नहीं (न य परस्स पीलाकरं) दूसरे को पीडाकारी (सावज्जं) सदोष वचन नहीं बोलना चाहिए (सच्चंच) सत्य और (हियच) हितकारी (मियंच) और मित-परिमित (गाहगंच) वस्तुओं का यथावत् ग्राहक और (सुद्ध)शुद्ध-पूर्वोक्त दोष से रहित (संगयम काहलच) संगत-योग्य और मन्मन-अव्यक्ताक्षर रहित (समिक्खितं) विचार पूर्वक देखा गया ही वचन (संजतेण) साधु को (कालमिय) अवसर पर (वत्तव्वं) बोलना चाहिए (एवं) इस प्रकार (अणुवीतिसमिति जोगेण) विचार पूर्वक बोलने रूप समिति के योग से (भाविओ) भावित (अंतरप्पा) अन्त करण वाला (संजय कर चरण नयण वयणो) कर, चरण, नेत्र और मुख के संयम वाला (सूरो) शूर साधु (सच्चज्जव संपुन्नो) सत्य व सरलता से युक्त (भवति) होता है। (वितिय) दूसरी भावना क्रोधनिग्रह रूप जैसे-(कोहोण सेवियव्वो) क्रोध का सेवन नहीं करना चाहिए (कुद्धो) क्रुद्ध (चंडिक्किओ) प्रचण्ड रूप बना हुआ (मणूसो) मनुष्य (अलियं भणेज्ज) झूठ बोलता है (पिसुन भणेज्ज) परोक्ष में दूसरे के दोषों को कहता है (फरुसं भणेज्ज) कठोर बोलता है (अलिय पिसुण फरुस भणेज्ज) झूठ पैशुन्य और कठोर वचन तीनों बोलता है (कलह करेज्जा) कलह करता (वेर करेज्जा) विरोध करता है (विकहं करेज्जा) धर्म विरोधी स्त्री आदि की विकथायें करता है (कलहं वेर विकह करेज्जा) कलह वैर और विकथा इन तीनों को करता है (सच्च हणेज्ज) सत्य को नष्ट करता है (सीलं हणेज्ज) शील-पवित्र आचार या मर्यादा का हनन करता है (विणयं हणेज्ज) विनय का हनन करता है (सच्च सील विणय हणेज्जा) सत्य शील और विनय इन तीनों का हनन करता है (वेसो भवेज्ज) असत्य भाषी लोक में द्वेष-अप्रिय होता है (वत्थु भवेज्ज) दोष का घर होता है (गम्मो भवेज्ज) अनादर का स्थान होता है (वेसो वत्थु गम्मो भवेज्ज) द्वेष के पात्र दोष का घर

और अनादर का स्थान तीनों होता है (एयं अन्नं च एवमादियं) यह असत्य और कूट लेखन आदि अन्य इस प्रकार के वचन (कोहग्गि संपलित्तो) क्रोधानल से जले हृदय वाला,) भणेज्ज) बोलता है (तम्हा) इसलिये (कोहो) क्रोध (न सेवियव्वो) सेवन नही करना चाहिए (एवं) इस प्रकार (खंतीइ) क्षमासे (भाविओ) युक्त (अंतरप्पा) अन्त. करण वाला (संजय कर चरण नयण वयणो) कर, चरण, नेत्र और मुख के सयमयुक्त साधु (सूरो) शूर तथा (सच्चज्जव संपन्नो) सत्य और सरलता से सम्पन्न (भवति) होता है (ततियं) तृतीय भावना लोभ निग्रहरूप (लोभो) लोभ (न सेवियव्वो) नही करना चाहिए क्योंकि (लुद्धो लोलो) लुब्ध—लोभी व्रतमें चचल बना हुआ (खेत्तस्स व वत्थुस्स व कतेण) क्षेत्र-जमीन या घर के लिये (भणेज्ज अलिय) असत्य बोलता है ॥ १ ॥ (लुद्धो लोलो) लोभी तथा चंचल व्रत वाला (कित्तीए लोभस्स व कएण) कीर्ति अथवा लोभ-धन प्राप्ति के लिये (भणेज्ज अलियं) झूठ बोलता है ॥ २ ॥ (लुद्धो लोलो) लोभी व चचल व्रती (रिद्धीय व सोक्खस्स व कएण) ऋद्धि या सुख के लिये (भणेज्ज अलियं) झूठ बोलता है ॥ ३ ॥ (लुद्धो लोलो) लोभी व चञ्चल व्रत वाला (भत्तस्स व पाणस्स व कएण) भोजन व पानी के लिये (भणेज्ज अलियं) झूठ बोलता है ॥ ४ ॥ (लुद्धो लोलो) लोभी व चंचल (पीठस्सव फलगस्स व कएण भणेज्ज अलियं) पीठ व फलक—पाट के लिये झूठ बोलता है ॥ ५ ॥ (लुद्धो लोलो) लोभी व चंचल (सेज्जाए व संथारकस्स व कएण) शय्या अथवा संस्तारक-छोटे बिस्तर के लिये (भणेज्ज अलिय) झूठ बोलता है ॥ ६ ॥ (लुद्धो लोलो) लोभी व चचल (वत्थस्स व पत्तस्स व कएण) वस्त्र अथवा पात्र के लिये (भणेज्ज अलिय) झूठ बोलता है ॥ ७ ॥ (लुद्धो लोलो) लोभी व चंचल (कंबलस्स व पायपुंछणस्स व कएण) कंबल या पादप्रोञ्छन रजोहरण के लिये (भणेज्ज अलिय) झूठ बोलता है ॥ ८ ॥ (लुद्धो लोलो) लोभी व चंचल (सोसस्स व सिस्सीणीए व कएण) शिष्य अथवा शिष्यिणी के लिये (भणेज्ज अलिय) झूठ बोलता है ॥ ६ ॥ (लुद्धो लोलो) लोभी व चचल (अन्नेसुय एवमादिसु) फिर अन्य इस प्रकार के (बहुसु कारणसतेसु) बहुत से सैकड़ो कारणों में (भणेज्ज अलियं) झूठ बोलता है (लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं) लोभी व चंचल प्रकृति मनुष्य झूठ बोलता है, (तम्हा लोभो न सेवियव्वो) इसलिये लोभ

का सेवन नहीं करना चाहिए। (एवं) इस प्रकार (मुत्तीय भाविओ) मुक्ति-निर्लोभिता से युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (संजय कर चरण नयण वयणो) हाथ पैर आंख और मुख का संयमी साधु (सूरो) शूरवीर (सच्चज्जवसंपन्नो) सत्य व सरलता से युक्त (भवति) होता है।

मूल—" चउत्थं न भाइयव्वं भीतं खु भया अइंति, लहुयं भीतो अबि-तिज्जओ मणूसो भीतो भूतेहिं घिप्पइ, भीतो अन्नं पिहु भेसेज्जा, भीतो तव संजमं पिहु मुएज्जा भीतो य भरं न नित्थरेज्जा सप्पुरिसनिसेवियं च मग्गं भीतो न समत्थो अणुचरिउं, तम्हा न भातियव्वं भयस्स वा वाहिस्स वा रोगस्स वा जराए वा मच्चुस्स वा अन्नस्स वा एगस्सवा (एवमादियस्स) एवं धेज्जेण भाविओ भवति अंतरप्पा संजयकर चरण नयण वयणो सूरो सच्चज्जव संपन्नो। पंचमकं हासं न सेवियव्वं अलियाइं, असंतकाइं जंपंति हासइत्ता परपरिभव कारणं च हासं परपरिवायप्पियं च हासं पर पीलाकारगं च हासं भेदविमुत्तिकारकं च हासं अन्नोन्नजणियं च होज्जहासं अन्नोन्नगमणं च होजमम्मं अन्नोन्नगमणं च होजकम्मं कंदप्पाभियोगगमणं च होज्जहासं आसुरियं किव्विसत्तणं च जणेज्जहासं तम्हा हासं न सेवियव्वं एवं मोणेण भाविओ भवइ अंतरप्पा संजय कर चरण नयण वयणो सूरो सच्चज्जव संपन्नो, एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं इमेहिं पंचहिवि कारणेहिं मण वयण काय परिरक्खिएहिं निच्चं आमरणं तं च एस जोगो णेयव्वो धितिमया मतिमया अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकलिट्ठो (सुद्धो) सव्वजिणमणुन्नाओ, एवं बितियं संवर दारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं अणुपालियं आणाए आराहियं भवति, एवं नायमुणिणा भगवया पन्नवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धवर सासणमिणं आघवितं सुदेसितं पसत्थं बितियं संवरदारं समत्तं तिबेमि ॥ सू० ॥ २५ । इति बितियंदारं ।

छाया—"चतुर्थं न भेतव्यम्, भीतंखलु भयान्यायान्ति लघुकम्, भीतोऽद्वितीयको मनुष्यः, भीतो भूतैः क्षिप्यते गृह्यते, भीतोऽन्यानपिभेषयेत् भीतस्तपः संयमानपि-मुञ्चेत्, भीतश्चभारं न निस्तारयेत् सत्पुरुष निषेवितं च मार्गं भीतो न समर्थोऽनुचरि-

तुम् , तस्मान्नभेतव्यम् , भयस्य वा व्याधेर्वा रोगस्य वा जराया वा मृत्योर्वाऽन्यस्य वा एवमादे' । एवं धैर्येण भावितो भवत्यन्तरात्मा सयतकर चरणनयनवदनः शूरः सत्या र्जवसम्पन्न । पञ्चमकं हास्यं न सेवितव्यम् अलीकान्यसत्कानि जल्पन्ति हास्यायत्ता. परपरिभवकारणञ्चहास्यं परपरिवादप्रियञ्च हास्यं परपीडाकारकं च हास्यं भेदविमुक्तिकारकं च हास्यमन्योऽन्यजनितं च भवेद्धास्यम् अन्योऽन्यगमनञ्च , भवेत्मर्म अन्योऽन्यगमनं च भवेत्कर्म कन्दर्पाभियोगगमनञ्च भवेद्धास्यम् आसुरं किल्विपित्वं च जनयेद्धास्य तस्माद्धास्य न सेवितव्यम् एवं मौनेन भावितो भवत्यन्तरात्मा संयतकर चरण नयन वदन' शूरः सत्यार्जवसम्पन्न. । एवमिदं संवरस्य द्वारं सम्यक् संवृतं भवति सुप्रणिहितमेतै. पञ्चभि कारणैर्मनोवचन काय परिरक्षितै र्नित्यमामरणान्तं चैष योगोनेतव्यो धृतिमता मतिमताऽनास्रवोऽकलुषोऽच्छिद्रोऽपरिस्रावी-असंक्लिष्टः सर्वजिनाऽनुज्ञात । एव द्वितीय संवरद्वारं स्पृष्टं पालितं शोधितं तीर्णं कीर्तितमनुपालितमाज्ञयाऽऽराधितं भवति । एवं ज्ञातमुनिना भगवता प्रज्ञप्त प्ररूपितं प्रसिद्धं सिद्धवर शासनमिदमाज्ञप्त सुदेशित प्रशस्त द्वितीय सवरद्वारं समाप्तमिति ब्रवीमि । इति द्वितीयं द्वारम । सूत्र । २५ ।

अन्व०-"(चउत्थ) चौथी भावना भय का त्यागना रूप (न भाइयव्वं भय नही करना चाहिए (भीतंखु) भयभीत मनुष्य को (भया अइति लहुयं) शीघ्र ही भय प्राप्त कर लेते है (भीतो अवितिज्जओमणूसो) डरा हुआ मनुष्य अद्वितीय-सहायता रहित होता है (भीतो भूतेहिं घिप्पइ) भीत मनुष्य भूत प्रेतो से घर लिया जाता है (भीतो अन्न पिहु भेसेज्जा) डरा हुआ दूसरो को भी डरा देता है (भीतो तव सजम पिहु मुएज्जा) डरा हुआ मनुष्य तप सयम को भी छोड देता है (भीतो य भर न नित्थरेज्जा) और भीत मनुष्य कर्तव्य भार को भी पाल नही सकता है (सप्पुरिसनिसेवियंच) और सत्पुरुपो से सेवित (मग्ग) मार्ग को (भीतो) डरा हुआ मनुष्य (अणुचरिउ) आचरण मे जाने के लिये (न समत्थो) समर्थ नही होता है (तम्हा न भातियव्व इसलिये भय नही करना चाहिए । (भयरसवा) भय हेतु-दुष्ट मनुष्य आदि से वाहिस्स वा रोगस्स वा) अथवा रोग से या व्याधि से अर्थात ज्वर आदि से या दीर्घ कालिक कुष्ठ आदि से (जराए वा) अथवा वृद्धावस्था से (मच्चुस्स वा) अथवा मृत्यु से (अन्नस्स वा एवमाइयस्स) अथवा ऐसे ही दूसरे कारणो से ड ना न ही चाहिए (एव) इस प्रकार (धेज्जेण) धैर्य से.

(भाविओ) युक्त (अंतरप्पा) अन्तः करण वाला–(संजय कर चरण नयण वयणो) हाथ पैर आंख और मुख का संयमी साधु (सूरो) शूर (सच्चज्जवसंपन्नो) सत्य य सरलता से सम्पन्न (भवति) होता है। (पंचमकं) पाचवी भावना हास्य त्याग (हासं न सेवियव्वं) हास्य का सेवन नही करना चाहिए क्योकि (हासइत्ता) हास्यरस के वशीभूत नर (अलियाइं) सत्य अर्थ को छिपाने रूप अलीक और (असंतकाइं) मिथ्या बात बनाने रूप असत्य वचन को (जंपंति) बोलते है (परपरिभवकारणं च हासं) और हास्य दूसरो के अनादर का कारण है (परपरिवायप्पियं च हासं) और हास्य दूसरे के दूषण कथन को प्रिय समझने वाला है (च) फिर (हासं पर पीला कारगं) हास्य दूसरे को पीडा देने वाला है (च) और (हासं भेदविमुत्तिकारकं) हास्यचारित्रभेद और शरीर को विकृत–विकारयुक्त करने वाला है जो मोक्ष मार्ग का भेद करने वाला है (अन्नोन्नजनियं च हासं) और हास्य अन्योन्य–एक दूसरे से किया हुआ (होज्ज) होता है (अन्नोन्नगमनं च होज्ज मम्मं) और फिर हास्य परस्पर मे परदार गमन आदि मर्म कुचेष्टा का कारण होता है (अन्नोन्नगमनं च होज्जकम्मं) फिर हास्य परस्पर गमन योग्य कर्म रूप होता है (कंदप्पाभियोग गमणं च होज्जहासं) कन्दर्प हास्यकारी और आभियोगिक–आज्ञाकारी देव जाति विशेष मे गमन का हास्य हेतु होता है (आसुरियं) असुर जाति के देवपन को (किब्बिसत्तणंच) और किल्विषिक–नीच जाति के देवपन को (जणेज्ज हासं) हास्य–हंसी मजाक उत्पन्न करता है (तम्हा) इसलिए (हास न सेवियव्वं हास्य-परिहास नही करना चाहिए (एव मोणेण भाविओ) इस प्रकार मौन से युक्त (अंतरप्पा) अन्त करण वाला (संजय कर चरण नयण वयणो) हाथ पैर आख और मुख का संयमी साधु (सूरो) शूर (सच्चज्जव संपन्नो) सत्य सरलता से युक्त (भवति) होता है (एवं मिणं) इस प्रकार यह (संवरस्सदारं) संवर का दूसरा द्वार (सम्मं) सम्यक्–अच्छी तरह से (संवरिय) सुरक्षित (होइ) होता है, (इमेहिं पंच हिवि कारणेहि) इन ऊपर कही गई पाच भावना रूप कारणो से (मण वयण काय परिरक्खिएहि) जो मन वाणी और काय से सुरक्षित है उनसे (सुप्पणिहिय) उत्तम निधान की तरह (निच्चं) सदा (आमरणंत) मरण पर्यन्त (एसजोगो) यह योग (धितिमया मतिमया) धीर तथा बुद्धिमान् साधु को (णेयव्वो) पार ले जाने योग्य है (अणासवो) आस्रव रहित (अकलुसो) पाप रूप मल रहित

(अच्छिद्दो) कर्म ग्रहण के योग्य छिद्र रहित (अपरिस्सावी) कर्म जल को नही बहाने वाला तथा (असंकिलिट्ठो) संक्लेश रहित और (सव्वजिणमणुन्नाओ) सब तीर्थङ्करो से अनुज्ञात है (एव) इस प्रकार (बितियं संवरदारं) दूसरा सत्यव्रत रूप संवरद्वार (फासियं) वचन से स्पर्श-स्वीकार किया हुआ (पालियं) मन से पाला गया (सोहियं) दोष के निवारण करने से शुद्ध किया गया (तिरियं) पूर्णता तक पहुँचाया हुआ, (किट्टियं) सद् भाव से प्रशसा योग्य किया गया (अणुपालियं) अनुकूलता से पाला गया (आणाए आराहियं भवति) आज्ञा की आराधना करने वाला होता है (एवं) ऐसा (नाय मुणिणा भगवया) ज्ञात मुनि भगवान महावीर ने (पन्नविय) कहा है (परूवियं) उदाहरण पूर्वक समझाया है (पसिद्धं सिद्धवर सासण मिणं) यह प्रसिद्ध और उत्तम सिद्ध पुरुषों का शासन है (आघवित) देव आदि का सम्मान पात्र (सुदेसिय) पूर्ण ज्ञानिओ से सम्यक् कहा गया है तथा (पसत्थ) प्रशस्त है ऐसा यह (बितियं) दूसरा (संवरदारं) संवरद्वार (समत्तं) पूर्ण हुआ (तिबेमि) ऐसा मैं कहता हूँ ॥ २ ॥ २५ ॥

भावार्थ-"सत्यव्रत का पूर्व कथित,यह प्रवचन भगवान् महावीर ने असत्य कटु आदि अवाच्य वचनों से आत्मा को रक्षित रखने के लिये कहा है। जो कि आत्मा के लिये हितकारी व परलोक और भविष्य के कल्याण का कारण है। शुद्ध न्याय युक्त यावत् सब दुःखों का शमन करने वाला है। असत्य वचन त्यागरूप उस दूसरे व्रत की पाच भावना व्रत की रक्षा के लिये कही गई है। इनमे प्रथम भावना-सत्य व्रत के स्वरूप को सुनकर तथा परमार्थ को सम्यक् जानकर बोलना चाहिए। वेग युक्त आदि सावद्य वचन नहीं बोलना, किन्तु सत्य और हितकारी आदि परिमित वचन ही साधु को समय पर बोलना चाहिए। इस प्रकार विचार पूर्वक बोलने वाला संयमी सत्य और आर्जव से युक्त होता है।

दूसरी भावना क्रोधवश नहीं बोलना। क्रोधवश मनुष्य असत्य बोलता है, पैशुन्य और कठोर वचन बोलता है। वैर, कलह और धर्मविरुद्ध कथा को क्रोधी करता है। सत्य और शील का हनन करता, विनय को भंग करता, और लोकमें अप्रीति का भाजन बनता है। क्रोध से सन्तप्त हृदय वाला मनुष्य इस प्रकार अन्य भी अवाच्य बोलता है इसलिये क्रोध नहीं करना चाहिए। क्षमायुक्त साधु सत्य का पालन करने वाला होता है।

तीसरी भावना–लोभके वश होकर नहीं बोलना,क्योंकि लोभी चंचलचित्त होकर खेतबाडी व घरके लिये झूठ बोलता है। ऐसे ही कीर्ति और अर्थ प्राप्ति के लिये ऋद्धि तथा सुख सामग्री के लिये और खान पान के साधनों के लिये अथवा पाट आदि आसनों के लिये तथा अनेक प्रकार शय्याओं के कारण या वस्त्र पात्र आदि के लिये अथवा कंबल और रजोहरण तथा शिष्य आदि ऐसे सैकडों कारणों पर असत्य बोलता है। इसलिये लोभ नही करना चाहिए। निर्लोभतायुक्त साधु सत्यव्रत का आराधक होता है।

चौथी भावना–भय त्यागरूप है–'डरा हुआ मनुष्य अनेक प्रकार के भयों को पाकर असहाय अकेला हो जाता है। भयभीत को ही भूत भी पकडते हैं। भय-भीत दूसरों को भी डरा देता है। डरा हुआ तप संयमको भी त्याग देता है। भयभीत मनुष्य सत्पुरुषों से सेवित सत्यमार्ग पर नहीं चल सकता है। इसलिये रोग, व्याधि जरा, मृत्यु आदि ऐसे किसी भी भय के हेतु से नहीं डरना चाहिए। धैर्ययुक्त संयमी सत्यव्रत का पालक होता है।

पांचवी भावना परिहास त्यागरूप–क्रोध, लोभ, भय और अविचार की तरह हंसी भी असत्य का कारण है। हंसी करने वाले असत्य या मिथ्या बोलते हैं। परिहास का वचन दूसरे के अपमान का कारण, निन्दाप्रिय पीडाकारक और चारित्रभेद आदि का कारण है। एक दूसरे से किया गया हास्य परस्पर की कुचेष्टा और परदार गमन आदि दुष्कर्म का प्रवर्तक होता है। हंसी करने वाला साधु देवगतियोग्य आयु सञ्चय करके भी कान्दर्पिक या आभियोगिक रूप कुदेवपन मे जाता है। असुरभाव और किल्विषिकपन को हास्यरस उत्पन्न करता है। इसलिये हास्य का सेवन नही करें। इस प्रकार वचन के संयम वाला साधु सत्यव्रती होता है। इस प्रकार यह सत्यव्रतरूप संवर का दूसरा द्वार इन पांच कारणों से सुरक्षित होता है आदि उपसंहार पूर्ववत्। यह दूसरा संवरद्वार पूर्ण हुआ।

॥ समाप्तं द्वितीयंसंवरद्वारम् ॥

॥ सत्कारं गान्त्रयार्थ भावार्थम् ॥

तृतीय संवर द्वार

सम्बन्ध-द्वितीय अध्ययन मे मृषावाद-असत्य-निवृत्तिरूप दूसरे संवर का प्रतिपादन किया है, उस सत्यव्रत का पालन चौर्य कर्म के त्यागने पर ही सुकर होता है, इसलिये इस अध्ययन मे अदत्तादान विरमणरूप संवर का वर्णन किया जायगा। सूत्र क्रम से सम्बन्धित उस अस्तेयव्रत का स्वरूप दिखाते हुए शास्त्रकार इस प्रकार कहते हैं-

मूल-"जंबू ! दत्तमणुन्नाय संवरो नाम होति ततियं सुव्वता ! महव्वतं। गुणव्वतं परदव्व हरण-पडिविरइ-करणजुत्तं, अपरिमिय मणंत-तण्हाणुगय-महिच्छ-मण-वयण-कलुस-आयाण सुनिग्गहियं। सुसंजमिय मणो[1] हत्थ-पायनिभियं, निग्गंथं णेट्ठिकं निरुत्तं निरासवं निब्भयं विमुत्तं। उत्तम-नरवसभ-पवरबलवग-सुविहित जणसंमतं, परमसाहुधम्मचरणं, जत्थ य गामागर-नगर-निगम-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-संवाह-पट्टणासमगयंच, किंचि दव्वं मणि-मुत्त[2]-सिलप्पवाल-कंस-दूस-रयय-वर कणग-रयणमादिं, पडियं पम्हुट्ठं विप्पणट्ठं, न कप्पति कस्सति कहेउं वा, गेण्हिउं वा। अहिरन्न सुवन्निकेण समलेट्ठु कंचणेणं अपरिग्गह संवुडेणं लोगंमि विहरियव्वं। जंपिय होज्जाहिदव्वजातं खलगतं खेत्तगतं रन्नमंतरगतं वा किंचि पुप्फ-फल-तय-प्पवाल-कंद-मूल-तण-कट्ठ-सक्करादि, अप्पं च बहुं च, अणुं च थूलगं वा, नकप्पति उग्गहंमि अदिण्णंमि गिण्हिउं जे। हणि हणि उग्गहं अणुन्नविय गेण्हियव्वं। वज्जेयव्वो य सव्वकालं अचियत्त घरप्पवेसो। अचियत्त भत्त पाणं। अचियत्त-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पत्त-कंबल-दंडग रयहरण-निसेज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुंछणाइ-भायणभंडोवहि उवकरणं, परपरिवाओ,

---

1-मणहत्थ पा. 2-मुत्ति आ० मं०

परस्स दोसो, पर-ववएसेणं जं च गेण्हइ। परस्स नासेइ जं च सुकयं, दाणस्स य अंतरातियं, दाण विप्पणासो, पेसुन्नं चेव मच्छरित्तं च।

छाया-"जम्बूः ! दत्ताऽनुज्ञातसंवरो नाम भवति तृतीयम् सुव्रत ! महाव्रतं। गुणव्रतं परद्रव्यहरण-प्रति विरति-करणयुक्तम् अपरिमिताऽनन्त-तृष्णाऽनुगत-महेच्छ-मनो-वचन-कलुषाऽऽदानसुनिगृहीतं, सुसंयमित मनोहस्त पादनिभृतं, निर्ग्रन्थं नैष्ठिकं निरुक्तं निरास्रवं निर्भयं विमुक्तम्। उत्तम नर वृषभ-प्रवर-बलवत्सु विहितजन संमतं, परमसाधु धर्मचरणम्। यत्र च ग्रामाकर नगर-निगम-खेट-कर्बट मडम्ब-द्रोणमुख-संवाह-पट्टणाऽऽश्रमगतं च किञ्चिद् द्रव्यं मणि-मुक्ता-शिला प्रवाल-कांस्य-दूष्य-रजत-वर कनक-रत्नादि पतितं प्रमुष्टं विप्रणष्टं, न कल्पते कस्यापि कथयितुं वा ग्रहीतुं वा। अहिरण्य सौवर्णिकेन समलेष्टुकाञ्चनेन अपरिग्रह संवृतेन लोकेविहर्तव्यम्। यदपि च भवेद् द्रव्यजातं खलगत क्षेत्रगतमरण्याऽन्तर्गतं वा किञ्चित् पुष्प-फल-त्वक्-प्रवाल-कन्द-मूल-तृण-काष्ठ-शर्करादि अल्पं च बहु च, अणु च स्थूलकं वा, न कल्पतेऽवग्रहेऽदत्ते ग्रहीतुम्। अहन्यहनि अवग्रह-मनुज्ञाप्य ग्रहीतव्यम्। वर्जयितव्यः सर्वकालमप्रीत गृहप्रवेशः। अप्रीतिकारक भक्त पानम्। अप्रीतिकारक पीठ फलक-शय्या-संस्तारक-वस्त्र-पात्र-कम्बल-दण्डक-रजोहरण-निषद्या-चोल पट्टक-मुखवस्त्रिका-पादप्रोञ्छनादि-भाजनभण्डोपध्युपकरणं परपरीवादः, परस्य दोषः, परव्यपदेशेन यच्च गृह्णाति, परस्य नाशयति यच्च सुकृतं, दानस्य चान्तरायिकं, दानविप्रणाशः, पैशुन्यञ्चैव मत्सरित्वं च।

तृतीय संवर द्वारम्

सम्बन्ध-द्वितीय अध्ययन में मृषावाद-असत्य-निवृत्तिरूप दूसरे संवर का प्रतिपादन किया है, उस सत्यव्रत का पालन चौर्य कर्म के त्यागने पर ही सुकर होता है, इसलिये इस अध्ययन मे अदत्तादान विरमणरूप संवर का वर्णन किया जायगा। सूत्र क्रम से सम्बन्धित उस अस्तेयव्रत का स्वरूप दिखाते हुए शास्त्रकार इस प्रकार कहते हैं-

मूल-"जंबू! दत्तमणुन्नाय संवरो नाम होति ततियं सुव्वता! महव्वतं। गुणव्वतं परदव्व हरण-पडिविरइ-करणजुत्तं, अपरिमिय मणंत-तण्हाणुगय-महिच्छ-मण-वयण-कलुस-आयाण सुनिग्गहियं। सुसंजमिय मणो[1]हत्थ-पायनिभियं, निग्गंथं णेट्ठिकं निरुत्तं निरासवं निब्भयं[2]विमुत्तं। उत्तम-नरवसभ-पवरबलवग-सुविहित जणसंमतं, परमसाहुधम्मचरणं, जत्थ य गामागर-नगर-निगम-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-संवाह-पट्टणासमगयंच, किंचि दव्वं मणि-मुत्त-सिलप्पवाल-कंस-दूस-रयय-वर कणग-रयणमादि,पडियं पम्हुट्ठं विप्पणट्ठं, न कप्पति कस्सति कहेउं वा, गेण्हिउं वा। अहिरन्न सुवन्निकेण समलेट्ठु कंचणेणं अपरिग्गह संवुडेणं लोगंमि विहरियव्वं। जंपिय होज्जाहिदव्वजातं खलगतं खेत्तगतं रन्नमंतरगतं वा किंचि पुप्फ-फल-तय-प्पवाल-कंद-मूल-तण-कट्ठ-सक्करादि, अप्पं च बहुं च, अणुं च थूलगं वा, नकप्पति उग्गहंमि अदिण्णंमि गिण्हिउं जे। हणि-हणि उग्गहं अणुन्नविय गेण्हियव्वं। वज्जेयव्वो य सव्वकालं अचियत्त घरप्पवेसो। अचियत्त भत्त पाणं। अचियत्त-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पत्त-कंबल-दंडग रयहरण-निसेज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुंछणाइ-भायणभंडोवहि उवकरणं, परपरिवाओ,

---

1—मणहत्थ पा. 2—मुत्ति आ० मं०

परस्स दोसो, पर-ववएसेणं जं च गेण्हइ। परस्स नासेइ जं च सुकयं, दाणस्स य अंतरातियं, दाण विप्पणासो, पेसुन्नं चेव मच्छरित्तं च।

छाया-"जम्बूः! दत्ताऽनुज्ञातसंवरो नाम भवति तृतीयम् सुव्रत! महाव्रतं। गुणव्रतं परद्रव्यहरण-प्रति विरति-करणयुक्तम् अपरिमिताऽनन्त-तृष्णाऽनुगत-महेच्छ-मनो-वचन-कलुषाऽऽदानसुनिगृहीतं, सुसंयमित मनोहस्त पादनिभृतं, निर्ग्रन्थं नैष्ठिकं निरुक्तं निरास्रवं निर्भयं विमुक्तम्। उत्तम नर वृषभ-प्रवर-बलवत्सु विहितजन संमतं, परमसाधु धर्मचरणम्। यत्र च ग्रामाकर नगर-निगम-खेट-कर्बट मडम्ब-द्रोणमुख-संबाह-पट्टणाऽऽश्रमगतं च किञ्चिद् द्रव्यं मणि-मुक्ता-शिला प्रवाल-कांस्य-दूष्य-रजत-वर कनक-रत्नादि पतितं प्रमुष्टं विप्रणष्टं, न कल्पते कस्यापि कथयितुं वा ग्रहीतुं वा। अहिरण्य सौवर्णिकेन समलेष्टुकाञ्चनेन अपरिग्रह संवृतेन लोकेविहर्तव्यम्। यदपि च भवेद् द्रव्यजात खलगतं क्षेत्रगतमरण्याऽन्तर्गतं वा किञ्चित् पुष्प-फल-त्वक्-प्रवाल-कन्द-मूल-तृण-काष्ठ-शर्करादि अल्पं च बहु च, अणु च स्थूलकं वा, न कल्पतेऽवग्रहेऽदत्ते ग्रहीतुम्। अहन्यहनि अवग्रहमनुज्ञाप्य ग्रहीतव्यम्। वर्जयितव्य. सर्वकालमप्रीत गृहप्रवेश.। अप्रीतिकारक भक्त पानम्। अप्रीतिकारक पीठ फलक-शय्या-संस्तारक-वस्त्र-पात्र-कम्बल-दण्डक-रजोहरण-निषद्या-चोल पट्टक-मुखवस्त्रिका-पादप्रोञ्छनादि-भाजनभण्डोपध्युपकरणं पर परीवादः, परस्य दोष., परव्यपदेशेन यद्गृह्णाति, परस्य नाशयति यच्च सुकृतं, दानस्य चान्तरायिकं, दानविप्रणाशः, पशुन्यञ्चैव मत्सरित्व च।

अन्व०-(सुव्वया जंबू) हे सुव्रत जम्बू! (ततियं) तीसरा (दत्तमणुन्नायसंवरो नाम होति) दिये गए अन्न आदि और ग्रहण करो इस प्रकार आज्ञा पाये हुए पीठ आदि जिसमे लिये जांय वह दत्तानुज्ञात नामका संवर होता है (महव्वयं) यह महाव्रत है (गुणव्वयं) सद्गुणों का कारण होने से गुणव्रत है (परदव्वहरण पडि विरइकरणजुत्त) पर द्रव्य के हरण की निवृत्ति वाला (अपरिमिय मणंततण्हा णुगय महिच्छ मण वयण कलुस आयाण सुनिग्गहियं) अपरिमित असीम द्रव्यों में अनन्त-समाप्ति रहित जो तृष्णा उससे अनुगत-युक्त और अतिशय इच्छा वाले विचार तथा वचन से मलिन जो अदत्त ग्रहण उसका सम्यक्-निग्रह करने वाला (सुसंजमिय मण हत्थ पाय निभियं) अशुभ भावना में संकोच शील मन के कारण परधन ग्रहण से रुके हुए हैं हाथ पैर जहा पर ऐसा (निग्गथं) बाह्य आभ्यन्तर

ग्रन्थि रहित (णेट्ठिकं) सब धर्मों में पर्यन्तवर्ती याने यह सब धर्म की निष्ठा वाला है (निरुत्तं) सर्वज्ञों के द्वारा अच्छी तरह कहा गया अतः निरुक्त (निरासवं) चोरी के आस्रव से रहित (निब्भयं) निर्भय (विमुत्तं) लोभ रूप दोषसे मुक्त छूटा हुआ (उत्तम नर नसभ पवर बल वगसुविहियजण समतं) प्रधान बलधारी उत्तम मनुष्य और क्रियापात्र साधु साध्विओं से सम्मत तथा (परमसाहु धम्मचरणं) उत्तम साधुओं का धर्माचरण है (जत्थ य) और जिस तृतीय संवर में (गामागर-नगर-निगम-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-सवाह-पट्टणासमगयंच) ग्राम, आकर-सुवर्ण आदि के उत्पत्ति स्थान, नगर, निगम-वणिग् वसति, खेट, कर्वट, मडम्ब, द्रोणमुख,सवाह, पत्तन और आश्रम मे रहा हुआ (किंचिदव्वं) कोई भी द्रव्य (मणि-मुत्त-सिलप्पवाल-कंस-दूस-रयय-वर कणग-रयणमादिं) मणि-चन्द्र-कान्त आदि, मौक्तिक-मोती, शिला प्रवाल-मूंगा, कांस्य-कासी के पात्र आदि, दूस-उत्तम वस्त्र, रजत-चांदी, उत्तम सोना और रत्न आदि (पडियं) किसी का गिरा हुआ हो। (पम्हुट्ठं) भूला हुआ हो (विप्पणट्ठं) खोजने पर भी मालिक को नहीं मिला हो, वैसा द्रव्य (कस्सति) किसी गृहस्थ आदि को (कहेउं वा) कहना (गेण्हिउं वा) अथवा ग्रहण करना (न कप्पति) योग्य नहीं है। (अहिरन्न-सुवन्निकेण) हिरण्य सुवर्ण को नही रखने वाले साधु को (लोगंमि) लोक में (समलेट्ठु कचणेणं) पत्थर और सुवर्ण में समदृष्टि तथा (अपरिग्गह संवुडेणं) अपरिग्रह-धन आदि के संग्रह रूप से व मूर्च्छा से रहित व संवरयुक्त होकर (विहरियव्व) विचरना चाहिए (जंपिय) और जो भी (होज्जहि) होते हैं (दव्व जातं) द्रव्य समूह (खलगतं) खले मे रहा हुआ, (खेत्तगतं) खेत में पड़ा हुआ (वा) या (रन्नमतरगतं) अरण्य-जंगल के भीतर पडा हुआ (किंचि) कोई (पुप्फ-फल-तय-प्पवाल-कंद-मूल-तण कट्ठ-सक्करादि) फूल, फल, त्वचा-छाल, प्रवाल, कन्द, मूल तृण, काष्ठ और बालू-धूलि आदि पदार्थ है (अप्पं च बहुं च) थोडा या बहुत (अणुं च थूलगं) छोटा या बड़ा (उग्गहंमि अदिन्नंमि) घर तथा जंगल आदि अवग्रह स्थान मे स्वामी के नही देने पर या आज्ञा नहीं मिलने पर (गिण्हिउं न कप्पति) कोई भी वस्तु ग्रहण करने को नही कल्पती याने विना दिये ग्रहण करना योग्य नहीं है। इसलिये (हणि हणि) प्रतिदिन (उग्गहं अणुन्नविय) अवग्रह की आज्ञा लेकर अर्थात् आपके स्थान पर अमुक वस्तु है जो कि आज्ञा देते

घर ले सकते हैं, ऐसा पूछकर (गेण्हियव्वं) ग्रहण करना चाहिए। (सव्वकालं) सर्वदा (अचियत्त घरप्पवेसो) अप्रीति कारक घर में प्रवेश (वज्जेयव्वो) छोड़ना चाहिए, और (अचियत्त भत्तपाणं) अप्रीति कारक के घर का आहार पानी और (अचियत्त-पीठ- फलग- सेज्जा- संथारग- वत्थ- पत्त- कंबल- दंडग- रय हरण-निसेज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पाय पुंछणाइ) अप्रीति करने वाले के पीठ, फलक-पाट, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कंबल, दण्ड-सकारण लेने योग्य लाठी, रजोहरण, निषद्या-आसन, चोल पट्टक-पहने का वस्त्र, मुख पोतिका-मुख वस्त्रिका और पादप्रोञ्छन आदि (भायण भंडोवहि उवकरणं) पात्र मिट्टी के भाण्ड और वस्त्र आदि उपकरण 'वर्जन करना चाहिए' (परपरिवाओ) दूसरे की निन्दा (परस्स दोसो) दूसरे के साथ द्वेष करना (जं च पर ववएसेण) और जो आचार्य आदि दूसरे के नाम से (गेण्हइ) ग्रहण करता है (जंच) और जो (परस्स) दूसरे के (सुकयं) उपकार या सुकृत को (नासेइ) नष्ट करता या छिपाता है (दाणस्स य अंतराइयं) और दान में अन्तराय करता (दाण विप्पणासो) दाता के नाम को छिपाता-अपलाप करता और (पेसुन्नं) पैशुन्य-चुगली (चेव) और (मच्छरित्तं) मत्सरता-द्वेष करता है।

मूल-"जेविय पीढ-फलग-सेज्जा- संथारग-वत्थ- पाय[1]-कंबल-दंडग-रयहरण-निसेज्ज-चोल पट्टग- मुहपोत्तिय- पायपुंछणादि- भायण भंडोवहि उवकरणं असंविभागी, असंगहरुती, तवतेणे य, वइतेणे य, आयारे चेव भावतेणे य। सद्दकरे, झंझकरे, कलहकरे, वेरकरे, विकहकरे, असमाहिकरे। सया अप्पमाणभोती, सततं अणुबद्धवेरे, य निच्चरोसी से तारिसए नाराहए वयमिणं। अहकेरिसए पुणाइं आराहए वयमिणं ?, जे से उवहि भत्तपाण-संगहण-दाणकुसले, अच्चंतबाल-दुब्बल-गिलाण-वुड्ढ-खमके, पवत्ति-आयरिय-उवज्झाए-सेहे-,साहम्मिके, तवस्सी-कुल-गण-संघ-चेइयट्ठे य निज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिस्सियं दसविहं बहुविहं करेति। न य अचियत्तस्स गिहं पवसइ। न य अचियत्तस्स गेण्हइ भत्तपाणं। न य अचियत्तस्स सेवइ पीढ-फलग- सेज्जा- संथारग-वत्थ- पाय-कंबल-डंडग-रयहरण-निसेज्ज-चोल पट्टय-मुहपोत्तिय-पायपुंछणाइ-भायण भंडोवहि

[1]- पत्त इत्यपि पाठ.।

ति क़ारक के पीठ, फलग, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, दण्ड, रजोहरण, आसन, परिधान वस्त्र, मुखवस्त्रिका और पादप्रोंछन सेवन नहीं करता है (भायण भडोवहि उवगरणं) पात्र, भाण्ड एवं वस्त्र आदि उपकरण भी नहीं लेता (नय परिवायं परस्स जंपति) और दूसरो की निन्दा नहीं करता है (न यावि दोसे परस्स गेण्हति) और दूसरे के दोषों को भी ग्रहण नहीं करता है (पर ववए सेणवि न किंचि गेण्हति) और जो दूसरे के नाम से भी कुछ नहीं लेता है (नय विपरिणामेति किंचिजणं) और न किसी मनुष्य को दान आदि धर्म से विमुख करता है (न यावि णासेति दिन्न सुकयं) और दूसरे के दानरूप सुकृत या धर्माचरण को नहीं मिटाता है (दाऊण य) और देकर (काऊणय) करके (पच्छाताविए) पश्चाताप करने वाला (न होइ) नहीं होता है (तारिसए) वैसा (से) वह (संभागसीले) आचार्य आदि समूह के लिये अन्न आदि का सविभाग करने वाला (संगहोवग्गहकुसले) संग्रह और आहार व ज्ञान आदि से उपकार करने में कुशल (वयमिणं आराहते) ऐसा साधु इसव्रत का आराधन करता है ।

भावार्थ–सुधर्म स्वामी महाराज अपने शिष्य जम्बू से कहते हैं कि हे जम्बू ! तीसरा संवर दत्तानुज्ञात नाम का है। यह महाव्रत सद्‌गुणों का कारण और पर द्रव्य हरण से निवृत्ति करने वाला है। अपरिमित द्रव्य में अनन्त तृष्णा वाला और कलुषित अदत्त ग्रहण का निग्रह करने वाला है। सयम युक्त मन के कारण यह हाथ पांव को अदत्त ग्रहण से रोकने वाला है। निग्रन्थ आदि विशेषण युक्त उत्तम पुरुष और क्रिया पात्र जनों से सम्मत तथा उत्तम साधुओं का धर्माचरण है । इसव्रत में ग्राम वगैरह क्षेत्रों में रहे हुए मणि मौक्तिक आदि कोई भी पदार्थपड़े हुए भूले हुए या खोजने परभी नहीं मिले हुए अगर दृष्टि में आजांय तो व्रती को न किसी से कहना चाहिये और न स्वयं ही लेना चाहिये। क्योंकि साधु सुवर्ण आदि का त्यागी है। उसको कंचन और मिट्टी पर समवुद्धि होकर रहना चाहिए। अपरिग्रह भाव उसका मुख्य धर्म है। चाहे कोई द्रव्य खले में हो खेतमें या जंगल में पडेहों वैसे, फूल फल आदि अल्पमूल्य वाले या बडी कीमत के, छोटा अथवा बडा कोई भी द्रव्य स्वामीके विना दिये ग्रहण करना मर्यादाके विरुद्ध है। इसलिये व्रती को प्रतिदिन गृहपति आदि की आज्ञा ग्रहण करनी चाहिये। जिस घरमें जाने से गृहपति को अप्रीति हो उस घर में व्रती को कभी प्रवेश नहीं करना चाहिए, तथा अप्रीति का कारण मालूम

हो तो वैसा आहार पानी पीठ पाट भाण्ड आदि उपकरण भी नही लेना चाहिए। दूसरे की निन्दा और परदोष कथन भी त्यागना चाहिए। क्योंकि तीर्थङ्करो से निषिद्ध होने के कारण इनका सेवन अदत्त[1] रूप है। अचौर्य व्रत वाले को दूसरे के नाम से कोई वस्तु ग्रहण करना और दूसरे के सुकृत को मिटाना तथा दान में अन्तराय देना दाता के नाम को छिपाना और दूसरे की चुगली या मत्सरता करना वर्जित है। ऐसा करने से अचौर्य व्रत मे दोषापत्ति होती है। फिर कैसा व्यक्ति अचौर्यव्रत को नहीं पाल सकता ? इसे दिखाते हुए कहा गया है कि जो पीठ आदि भण्डोपकरण का संविभाग नही करता। गच्छवासी होकर भी स्वधर्मियों के योग्य साधन संग्रह मे रुचि नही रखता। दूसरे के तपोबल व वाग्बल से अपनी ख्याति कराता है। सुसाधु के वेष आचार और ज्ञान आदि भावों की चोरी करता अर्थात् इन गुणों के अभाव मे भी वैसी महिमा चाहता एवं दूसरों के सामने वचन का छल करता है। प्रहर रात्रि के बाद जोर से बोलता और समूह में भेद डालता है। कलह तथा वैर को करने वाला, स्त्री आदि की कथा करने वाला एवं असमाधि करने वाला जो सदा बिना परिमाण के खाता है। निरन्तर वैर बांधता, तथा सदा रुष्ट रहता है वह अचौर्य व्रत का पूर्ण पालन नहीं कर सकता। कौन पालन कर सकता है ? इसको दिखाते हैं,-"उपधि और भक्त पान के योग्य संग्रह व दान मे कुशल, और जो बाल, वृद्ध, दुर्बल, ग्लान आदि की प्रसन्नता के लिये निर्जरार्थी होकर विविध प्रकार से सेवा करता है। जहा जाने से अप्रीति हो वैसे घर मे नही जाता और न वैसे घर के आहार पानी और पीठ आदि भण्डोपकरण ही लेता है। फिर जो दूसरे की बुराई नही करता और दूसरे के दोषों को ग्रहण नहीं करता है। दूसरे के नाम से स्वयं कुछ नही लेता है। न किसी को धर्म से विमुख करता है। दूसरे के दान आदि सत्कर्म को भी नही छिपाता और न देकर या करके स्वयं पश्चात्ताप ही करता है। संविभाग करने वाला और जो गच्छ समूह के उपयुक्त सामग्री का संग्रह कर;उसका उपकार करने वाला है। वह अचौर्यव्रत का पूर्ण पालन कर सकता है।

मूल-"इमं च परदव्वहरण वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहितं, अत्तहितं पेचाभावितं, आगमेसिभद्दं, सुद्धं नेयाउयं, अकुडिलं,

---

1—सामीजीवादत्तं तित्थयरेण तहेव य गुरुहिं,-स्वामि-अदत्त, जीव अदत्त, तीर्थङ्कर और गुरु का अदत्त इस तरह चार प्रकार के अदत्त हैं।

लिये (भगवया) भगवान् महावीर ने (सुकहिंयं) अच्छी तरह से कहा है जो (अत्तहितं) आत्म हितकारी (पेच्चाभाविर्तं, आगमेसिभद्दं) परलोक में शुभ फल-दाता और भविष्य में कल्याण का कारण है (सुद्धं नेयाउयं अकुडिलं) शुद्ध न्याय युक्त एवं कुटिलता रहित है (अणुत्तरं) सर्व श्रेष्ठ (सव्वदुक्ख पावाण विओवसमणं) सर्व दु ख एवं पापों का उपशमन करने वाला है (तस्स) उस अचौर्य व्रत की (इमा पंच भावणाओ) ये पाच भावनायें (ततियस्स परदव्वहरणवेरमण-परिरक्खणट्ठयाए) तीसरे परद्रव्य हरण विरति रूप व्रत की रक्षा के लिये (होंति) होती है। (पढम) पहली भावना-विविक्त वसति सेवन रूप जैसे (देवकुल-सभ-पवा वसह-रूक्खमूल-आराम-कंदरागर- गिरिगुहा-कम्म-उज्जाण जाण साला-कुविय साला-मंडव-सुन्नघर-सुसाण-लेण-आवणे) देउल-देव स्थान, सभा-विचार स्थान या व्याख्यान सभा, प्रपा-प्याऊ, आवसथ-परिव्राजकों का स्थान, वृक्ष मूल, आराम-लता मण्डप आदिसे युक्त वनविशेष,कन्दरा-गुफा,आकर-खान,गिरि-गुहा, कर्म-सुधा आदि बनाने का स्थान रसशाला आदि, उद्यान बगीचा, यानशाला-वाहनादि रखने का घर, कुपित शाला-तृण आदि सामान रखने का घर, मण्डप-विवाह आदि प्रसङ्ग में बना हुआ सभा मण्डप, शून्य घर, श्मशान, लयन-पहाड में बना हुआ घर और दुकान मे (अन्नमि य एव मादियंमि) और इस प्रकार के अन्य स्थान में जो (दग-मट्टिय वीज हरित-तस पाण-असंसत्ते) सचित्त जल, मिट्टी, बीज, दूब आदि हरी और त्रस प्राणिओं से रहित हो (अहाकडे) गृहस्थ ने अपने लिये जिसे बनाया हो, ऐसे (फासुए) प्राशुक-निर्जीव (विविते) एकान्त अतएव (पसत्थे उवस्सए) प्रशस्त-उत्तम उपाश्रय में (विहरियव्व होइ) विचरना चाहिये (आहाकम्म बहुले य जे) साधुओ के निमित्त जिसमें हिंसा की जाय वैसे आधा कर्म रूप दोप की अधिकता वाला और जो (आसित-संमज्जि-उस्सित्त-सोहिय-छायण-दूमण-लिंपण-अणुलिंपण-जलण भंड चालण-अंतो वहिं च) आसिक्त पानी से थोडा सींचा हुआ, संमार्जित-झाड़ से संमार्जन किया हुआ, उत्सिक्त-खूब पानी सींचा हो, शोभित-पुष्प माला आदि से शोभित हो, छादन-डाभ आदि से छान किया हो, दूमन-खडी आदि से पोता हो, लिंपन-गोबर आदि से लिपा हो, अनु लिंपन-लिपे हुए को पुन लीपा हो, ज्वलन-अग्नि जला कर तपाया हो या प्रकाशित किया हो, साधु के लिये भाडों को हटाया हो और घर के भीतर या बाहर

(जत्थ असंजमो वड्ढती) जहां असंयम-जीवों की विराधना बढ़ती हो (संजयाण अट्ठा से वज्जेयव्वो हु उवस्सओ) साधुओं के लिये वह उपाश्रय निश्चय से वर्जनीय है, क्योंकि (तारिसए) वैसा स्थान (सुत्तपडिकुट्ठे) सूत्र में निषिद्ध है (एवं विवित्त वास-वसहि समिति जोगेण) इस प्रकार निर्दोष वास स्थान में व सतिरूप समिति के योगसे (भावितो) पवित्र किये हुए (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला मुनि (निच्च अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्म विरतो) सदा, दुर्गति के कारण पापकर्म के करने व करवाने से निवृत्त (दत्तमणुन्नाय-ओग्गहरुती) दत्त अनुज्ञात अवग्रह में रुचि वाला (भवति) होता है।

(बितीय) दूसरी भावना-अनुज्ञात संस्तारक ग्रहण रूप, जैसे-(आरामुज्जाण काणण-वण-प्पदेस भागे) आराम, उद्यान-बगीचा, कानन-नगर के समीपवर्ती सामान्य वन, वन-नगर से दूर का वन प्रदेश इन सब स्थानों में (जं किंचि) जो कुछ भी (इक्कडं) इक्कडजाति का घास, तथा (कठिणगं) कठिन-तृण जाति (च) और (जंतुगं) जन्तुक-पानी में पैदा हुआ तृण (च) और (परामेर-कुच्च-कुस-डब्भ-पलाल-मूयग वक्कय-पुप्फ-फल-तय-प्पवाल-कंद-मूल-तण-कट्ठ-सक्करादी) परा-एक प्रकार का तृण, मेरा मुंज की तन्तु, कूर्च-जुलाहे के कूंची बनाने का तृण कुश और डाभ, पलाल-धान्य विशेष का डाट, मूयक-एक प्रकार का तृण, वल्कज, पुष्प, फल, त्वचा, प्रवाल, कन्द, मूल, तृण, काष्ठ और शर्करा आदि द्रव्य (गेण्हइ) ग्रहण करता है (सेज्जोवहिस्स अट्ठा) शय्या और उपधि के लिये (उग्गहे अदिन्नंमि) उपाश्रय के भीतर की ग्राह्य वस्तुओं को दाता के बिना दिये (गेण्हिउ) लेना (न कप्पए) नहीं कल्पता है इसलिये (हणिहणि) प्रति दिन (उग्गह अणुन्नविय) ग्राह्य वस्तु की आज्ञा लेकर (गेण्हियव्व) ग्रहण करना चाहिए। (एवं) इस प्रकार (उग्गहसमिति जोगेण) अवग्रह समिति योग से (भावितो) युक्त (अतरप्पा) अन्तःकरण वाला साधु (निच्चं) सदा (अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्म विरते) दुर्गति के कारण स्वरूप पाप कर्म के करने व कराने से विरक्त हुआ (दत्त मणुन्नाय य ओग्गहरुती) दत्त और अनुज्ञात अवग्रह-पदार्थ को रुचि वाला (भवति) होता है।

(ततियं) तृतीय भावना-शय्या परिकर्मवर्जन रूप, जैसे-(पीढ-फलग सेज्जा-संथारगट्ठयाए) पीठ, पाट, शय्या और संस्तारक के हेतु (रुक्खा) वृक्ष (न

लिये (भगवया) भगवान् महावीर ने (सुकहियं) अच्छी तरह से कहा है, जो (अत्तहियं) आत्म हितकारी (पेच्चाभाविर्त, आगमेसिभद्दं) परलोक में शुभ फल-दाता और भविष्य में कल्याण का कारण है (सुद्धं नेयाउयं अकुडिलं) शुद्ध न्याय युक्त एवं कुटिलता रहित है (अणुत्तरं) सर्व श्रेष्ठ (सव्वदुक्ख पावाण विओसमण) सर्व दुःख एवं पापों का उपशमन करने वाला है (तस्स) उस अचौर्य व्रत की (इमा पंच भावणाओ) ये पांच भावनायें (ततियस्स परदव्वहरणवेरमण-परि-रक्खणट्ठयाए) तीसरे परद्रव्य हरण विरति रूप व्रत की रक्षा के लिये (होंति) होती है। (पढम) पहली भावना-विविक्त वसति सेवन रूप जैसे (देवकुल-सभ-पवा वसह-रुक्खमूल-आराम-कंदरागर- गिरिगुहा-कम्म-उज्जाण जाण साला-कुविय साला-मंडव-सुन्नघर-सुसाण-लेण-आवणे) देउल-देव स्थान, सभा-विचार स्थान या व्याख्यान सभा, प्रपा-प्याऊ, आवसथ-परिव्राजको का स्थान, वृक्ष मूल, आराम-लता मण्डप आदि से युक्त वनविशेष, कन्दरा-गुफा, आकर-खान, गिरि-गुहा, कर्म-सुधा आदि बनाने का स्थान रसशाला आदि, उद्यान बगीचा, यानशाला-वाहनादि रखने का घर, कुपित शाला-तृण आदि सामान रखने का घर, मण्डप-विवाह आदि प्रसङ्ग में बना हुआ सभा मण्डप, शून्य घर, श्मशान, लयन-पहाड़ में बना हुआ घर और दुकान मे (अन्नमि य एव मादियंमि) और इस प्रकार के अन्य स्थान में जो (दग-मट्टिय बीज हरित-तस पाण-असंसत्ते) सचित्त जल, मिट्टी, बीज, दूब आदि हरी और त्रस प्राणिओं से रहित हो (अहाकडे) गृहस्थ ने अपने लिये जिसे बनाया हो, ऐसे (फासुए) प्राशुक-निर्जीव (विवित्ते) एकान्त अतएव (पसत्थे उवस्सए) प्रशस्त-उत्तम उपाश्रय में (विहरियव्वं होइ) विचरना चाहिये (आहाकम्म बहुले य जे) साधुओ के निमित्त जिसमें हिंसा की जाय वैसे आधा कर्म रूप दोष की अधिकता वाला और जो (आसित-संमजि-उस्सित्त-सोहिय-छायण-दूमण-लिंपण-अणुलिंपण-जलण भंड चालण-अंतो बहिं च) आसिक्त पानी से थोडा सींचा हुआ, संमार्जित-झाडू से संमार्जन किया हुआ, उत्सिक्त-खूब पानी सींचा हो, शोभित-पुष्प माला आदि से शोभित हो, छादन-डाभ आदि से छान किया हो, दूमन-खडी आदि से पोता हो, लिंपन-गोबर आदि से लिपा हो, अनु लिंपन-लिपे हुए को पुन लीपा हो, ज्वलन-अग्नि जला कर तपाया हो या प्रकाशित किया हो, साधु के लिये भांडो को हटाया हो और घर के भीतर या बाहर

(जत्थ असंजमो वड्ढती) जहां असयम-जीवों की विराधना बढती हो (संजयाण अट्ठा से वज्जेयव्वो हु उवस्सओ) साधुओ के लिये वह उपाश्रय निश्चय से वर्जनीय है, क्योकि (तारिसए) वैसा स्थान (सुत्तपडिकुट्ठे) सूत्र से निषिद्ध है (एवं विवित्त वास-वसहि समिति जोगेण) इस प्रकार निर्दोष वास स्थान मे व सतिरूप समिति के योगसे (भावितो) पवित्र किये हुए (अंतरप्पा) अन्त.करण वाला मुनि (निच्च अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्म विरतो) सदा, दुर्गति के कारण पापकर्म के करने व करवाने से निवृत (दत्तमणुन्नाय-ओग्गहरुनी) दत्त अनुज्ञात अवग्रह मे रुचि वाला (भवति) होता है।

(बितीय) दूसरी भावना-अनुज्ञात संस्तारक ग्रहण रूप, जैसे-(आरामुज्जाण काणण-वण-प्पदेस भागे) आराम, उद्यान-बगीचा, कानन-नगर के समीपवर्ती सामान्य वन, वन-नगर से दूर का वन प्रदेश इन सब स्थानो मे (जं किंचि) जो कुछ भी (इक्कडं) इक्कडजाति का घास, तथा (कठिणगं) कठिन-तृण जाति (च) और (जंतुगं) जन्तुक-पानी मे पैदा हुआ तृण (च) और (परामेर-कुच्च-कुस-डब्भ-पलाल-मूयग वक्कय-पुप्फ-फल-तय-प्पवाल-कंद-मूल-तण-कट्ठ-सक्करादी) परा-एक प्रकार का तृण, मेरा मुंज की तन्तु, कूर्च-जुलाहे के कूंची बनाने का तृण कुश और डाभ, पलाल-धान्य विशेष का डाट, मूयक-एक प्रकार का तृण, वल्कज, पुष्प, फल, त्वचा, प्रवाल, कन्द, मूल, तृण, काष्ठ और शर्करा आदि द्रव्य (गेण्हइ) ग्रहण करता है (सेज्जोवहिस्स अट्ठा) शय्या और उपधि के लिये (उग्गहे अदिन्नंमि) उपाश्रय के भीतर की ग्राह्य वस्तुओं को दाता के बिना दिये (गेण्हिउ) लेना (न कप्पए) नहीं कल्पता है इसलिये (हणिहणि) प्रति दिन (उग्गह अणुन्नविय) ग्राह्य वस्तु की आज्ञा लेकर (गेण्हियव्व) ग्रहण करना चाहिए। (एव) इस प्रकार (उग्गहसमिति जोगेण) अवग्रह समिति योग से (भावितो) युक्त (अतरप्पा) अन्तःकरण वाला साधु (निच्चं) सदा (अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्म विरते) दुर्गति के कारण स्वरूप पाप कर्म के करने व कराने से विरक्त हुआ (दत्त मणुन्नाय य ओग्गहरुती) दत्त और अनुज्ञात अवग्रह-पदार्थ की रुचि वाला (भवति) होता है।

(ततियं) तृतीय भावना-शय्या परिकर्मवर्जन रूप, जैसे-(पीठ-फलग सेज्जा-संथारगट्ठयाए) पीठ, पाट, शय्या और संस्तारक के हेतु (रुक्खा) वृक्ष (ण

छिंदियव्वा) नहीं छेदन करना चाहिए (छेदणेण) वृक्ष आदि के छेदन व (भेयणेण) भेदन से (सेज्जा) शय्या (न कारेयव्वा) नहीं करवानी चाहिए (जस्सेव उवसस्ते) जिसी के उपाश्रय मे (वसेज्ज) ठहरे (तत्थेव) वहा पर ही (सेज्जं) शय्या की (गवेसेज्जा) गवेषणा करे (य) किन्तु (विसमं समं न करेज्जा) विषम को सम नहीं बनावे (न निवाय पवाय उस्सुगत्त) पवन वाला या वायु रहित स्थान मे उत्सुकता नहीं करे (न डंस-मसगेसु खुभियव्व) डांस और मच्छर आदि के विषय में क्षुब्ध नहीं होना चाहिए (अग्गी धूमो न कायव्वो) डास आदि हटाने के लिये अग्नि अथवा धूंआं नहीं करना चाहिए (एवं) इस प्रकार (संजम बहुले) सयम-जीव रक्षा की प्रधानता वाला (संवर बहुले) संवर की अधिकता वाला (संवुडबहुले) कषाय व इन्द्रियो के सवृतपन की प्रचुरता वाला (समाहिबहुले) अत. समाधि सम्पन्न (धीरे) धीर साधु (काएण फासयंतो) शरीर से इस व्रत का पालन करता हुआ (सययं) निरन्तर (अज्झप्प-ज्झाणजुत्ते) अध्यात्म ध्यान से युक्त (समिए) समिति वाला (एगे धम्मं चरेज्ज) रागादि रहित एकाकी होकर धर्म का आचरण करे (एवं) इस प्रकार (सेज्जा-समिति जोगेण) शय्या समिति के योग से (भावितो) युक्त (अतरप्पा) अन्त.करण वाला (निच्च) सदा (अहिकरण-करण-कारावण-पाव कम्म विरते) अधिकरण को करने व कराने रूप पाप कर्म से विरत (दत्तमणुन्नाय-उग्गहरुती) दिये गए और आज्ञा प्राप्त अवग्रह की रुचि वाला (भवति) होता है।

मूल-" चउत्थं-साहारण पिंडपातलाभे भोत्तव्वं संजएण समियं, न साय सूयाहिकं, न खद्धं, ण वेगितं, न तुरियं, न चवलं, न साहसं, न य परस्स पीलाकरं, सावज्जं, तह भोत्तव्वं जहसे ततियवयं न सीदति। साहारण पिंडपात लाभे सुहुमं अदिन्नादाण वय-नियम वेरमणं [विरमण वय नियमणो] एवं साहारण पिंडवाय लाभे समितिजोगेण भावितो भवति अंतरप्पा, निच्चं अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्मविरते दत्तमणुन्नाय उग्गहरुती। पंचमगं-साहम्मिए विणओ पउंजियव्वो, उवगरण पारणासु विणओ पउंजियव्वो, वायण परियट्टणासु विणओ पउंजियव्वो, दाण गहण पुच्छणासु विणओ परउंजियव्वो, निक्खमण पवेसणासु विणओ पउंजियव्वो। अन्नेसु य एवमादिसु बहुसु कारणसएसु विणओ पउंजियव्वो। विणओवितवो

तवोविधम्मो, तम्हा विणओ पउंजियव्वो । गुरुसु साहूसु तवस्सीसु य । एवं विणतेण भाविओ भवति अंतरप्पा णिच्चं अधिकरण-करण-कारावण पावकम्मविरते दत्तमणुन्नाय उग्गहरुई । एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं संवरियं होइ सुपणिहियं एवं जाव आघवियं सुदेसितं पसत्थं ॥ तृतीयं संवरदारं समत्तं तिबेमि ॥ सू० २ । २६ ॥

छाया–"चतुर्थं साधारण पिण्डपात्रलाभे भोक्तव्यं संयतेन सम्यक्– नशाकसूपादिकं, नाऽधिकं न वेगितं, न त्वरितं, न चपलं, न साहसं, न च परस्य पीडाकर सावद्यं, तथा भोक्तव्यं यथा तस्य तृतीयं व्रतं न सीदति । साधारण पिण्डपात्र लाभे सूक्ष्ममदत्ताऽऽदानव्रतनियम विरमणम् । एवं साधारण पिण्ड पात्रलाभे समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण करण,कारणा पाप कर्मविरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचि । पञ्चमकं साधर्मिके विनयः प्रयोक्तव्य उपकरण पारणासु विनयः प्रयोक्तव्यो, वाचनपरिवर्तनासु विनय प्रयोक्तव्य. । दान ग्रहण पृच्छासु विनयः प्रयोक्तव्यो निष्क्रमण प्रवेशेषु विनय प्रयोक्तव्य. । अन्येषु चैवमादिकेषु बहुषु कारणशतेषु विनय प्रयोक्तव्य. । विनयोऽपितपः, तपोऽपिधर्मः तस्माद्विनयः प्रयोक्तव्यो गुरुषु साधुषु तपस्विषु च । एवं विनयेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण–करण–कारणा पापकर्म विरतो दत्त ऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचिः । एवमिदं संवरस्य द्वारं सम्यक् संवृतं भवति सुप्रणिहितम् एवं यावत् आज्ञप्तं सुदेशितं प्रशस्तम् । तृतीयं संवरद्वारं समाप्तमिति ब्रवीमि । २ । सू० २६ ।

अन्व०–"(चउत्थ) चतुर्थ भावना–अनुज्ञात भक्तादि भोजन रूप (साहारण पिंडपातलाभे) सब साधुओ के लिये सम्मिलित आहार आदि के मिलन पर (संजएण) साधु को (समियं) सम्यक् यतना पूर्वक (भोत्तव्वं) आहार करना चाहिए, जैसे (न सायसूयाहिकं) शाक और सूप की अधिकता वाला नहीं खाना चाहिए (न खद्ध) साथ बैठकर स्वयं अधिक या जल्दी २ नहीं खावे (न वेगितं) वेग युक्त नहीं खाना (न तुरियं) जल्दी २ भी नहीं खाना (न चवलं) न चंचलता युक्त (न साहस) न बिना विचारे खाना चाहिए (न य परस्स पीलाकर सावज्जं) और दूसरे को पीड़ाकारक तथा सदोष रीति से नहीं खाना चाहिए (तह भोत्तव्वं जह से ततिय वय न सीदति) इस प्रकार आहार करना चाहिए जिस प्रकार से उस साधु का तीसरा अचौर्य व्रत नष्ट नहीं हो (साहारणपिंड-

पायलाभे) साधारण पिण्डपात के लाभ में (सुहुमं) यह सूक्ष्म (अदिन्नादाण-वय नियमवेरमण) अदत्तादान को व्रतनियम से रोकने वाला अथवा अदत्तादान विरमणव्रतसे आत्मा का नियमन करने वाला है (एवं) इस प्रकार (साहारणपिंड वायलाभे) साधारण पिण्ड पातके लाभमे (समितिजोगेण समिति के योग से (भावितो अंतरप्पा) युक्त अन्त करण वाला साधु (निच्चं) सदा (अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्मविरते) अधिकरणरूप पापकर्म के करने कराने रूप कर्म से विरत (दत्तमणुन्नाय उग्गहरुती) दत्त और अनुज्ञात अवग्रह की रुचि वाला (भवति) होता है।

(पंचमग) पाचवी भावना-साधर्मिक विनय करने रूप, जैसे-(साहम्मिए विणओ पउंजियव्वो) साधर्मिक के सम्बन्ध में विनय करना चाहिए (उवकरण पारणासु) उपकार और तपस्या की पारणा-पूर्ति-मे (विणओ पउंजियव्वो) विनय-प्रयोग करना चाहिए (वायण-परियट्टणासु) सूत्र ग्रहणरूप वाचना मे और सूत्र की आवृति में-पुन. पठन मे (विणओ पउंजियव्वो) विनय करना चाहिए, (दाणग्गहणपुच्छणासु विणओ पउंजियव्वो) मिले हुए अन्न दि साधुओ को देने में और दूसरो से ग्रहण करने एवं विस्मृत सूत्रार्थ की पुन. पृच्छामे विनय करना चाहिए (निक्खमण पवेसणासु विणओ पउंजियव्वो) स्थान से निकलने व प्रवेश करने मे आवश्यकीय आदि विनय करना चाहिए (अन्नेसु य एवमादिसु) और इत्यादि-इस प्रकार के दूसरे (बहुसु कारणसएसु) बहुत से सैकडों कारणों में (विणओ पउंजियव्वो) विनय करना चाहिए। (विणओ वि-तवो) विनय भी तप और (तवो वि धम्मो) तप भी धर्म है (तम्हा विणओ पउ-जियव्वो) इसलिये विनय करना चाहिए।

किनके सम्बन्ध में विनय कर्तव्य है ?

उत्तर-(गुरुसु साहूसु तवस्सीसु य) गुरुओ मे, साधुओ मे और तपस्विओ मे। (एव) इस प्रकार (विणतेण भावितो) विनय से युक्त (अंतरप्पा) अन्त. करण वाला साधु (णिच्च) सदा (अहिकरण-करण-कारावण पावकम्म विरते) अधिकरणरूप पाप के करने व कराने से विरत (दत्तमणुन्नाय उग्गहरुती) दत्त और अनुज्ञात अवग्रह में रुचिवाला (भवति) होता है (एवमिणं संवरस्स दारं) इस प्रकार अचौर्यव्रतरूप यह संवरद्वार (सम्म) अच्छी तरह (संवरियं) पालन

किया गया (सुपरिणिहियं) सुरक्षित (होइ) होता है । (एवं जाव) इस प्रकार यावत् (आघवियं सुदेसितं) देव आदिओ के माननीय ज्ञानियो के द्वारा अच्छी तरह कहा हुआ (पसत्थं) प्रशस्त है ।

(ततियं संवरदारं समत्तं तिबेमि) तीसरा संवरद्वार समाप्त हुआ ऐसा मै कहता हूं । सूत्र २ । २६ ।

भावार्थ–"पर द्रव्य हरण से निवृत्तिरूप इस व्रत की रक्षा के लिये यह प्रवचन भगवान् महावीर ने अच्छी तरह कहा है । जो आत्महितकारी और यावत् सबदुःख एवं पापो का उपशमन करने वाला है । व्रत की रक्षा के लिये इस तीसरे व्रत की पांच भावनायें है, जैसे–

पहली भावना गृहस्थ के द्वारा उनके अपने लिये बनाये गए, सचित्त जल आदि त्रस स्थावर जीव रहित प्राशुक, स्त्री आदि विकारी साधन शून्य एकान्त और प्रशस्त उपाश्रय मे रहना चाहिए । देवकुल, सभा आदि १८ प्रकार के और ऐसे अन्य निर्दोष स्थान मे ठहरना चाहिए । जो मकान साधु के लिये आरम्भ करके बनाया हो, या पानी से सीचा हो, फूल माला आदि से सजाया हो, डाभ आदि से छत बनाना, चूने खडी से पोतना, गोबर से लीपना, अग्नि जलाना, और भाण्ड बर्तन बासन इधर उधर करना ये सब क्रियायें जहां घर के भीतर या बाहर साधु के लिये की गई हो, साधुओ को वैसा हिंसायुक्त उपाश्रय वर्जन करना चाहिए, क्योंकि ऐसा स्थान सूत्राज्ञा से निषिद्ध है । इस प्रकार यह विविक्त–पवित्र वास वसतिरूप प्रथम भावना है ।

ऐसे बगीचे आदि के वन प्रदेश मे जो कुछ इक्कड आदि घास और फूल, फल त्वचा आदि वनस्पति के अङ्ग तथा काष्ठ आदि कोई ग्रहण करता है व्रती-साधु को उनमे से कोई भी पदार्थ स्वामी की आज्ञा लिये बिना ग्रहण करना योग्य नहीं है । इसलिये प्रति दिन ग्राह्य पदार्थो की आज्ञा लेकर ही ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार अवग्रह समिति रूप दूसरी भावना है ।

पाट पाटिया व शय्या के लिए वृक्ष नहीं कटाने चाहिए । छेदन भेदन से पाट आदि शय्या नहीं बनवानी चाहिए, किन्तु जिस उपाश्रय मे ठहरें वहा पर ही शय्या की गवेषणा करनी चाहिए । विषम स्थान को सम नहीं बनाना, वायु रहित अथवा अधिक वायु वाले स्थान में उत्सुकता नहीं करना । डांस मच्छर

आदि से क्षुब्ध न.ी होना और उनके निवारणार्थ अग्नि या धूम का प्रयोग भी नहीं करना, इस प्रकार संयम आदि भाव की प्रधानता से समाधियुक्त धीर मुनि शरीर से सदा अचौर्य व्रत का पालन करे। आत्मध्यानसे युक्त सम्यक् प्रवृत्ति वाला और राग द्वेष रहित होकर धर्मका आचरण करे। यह शय्या समिति रूप तृतीय भावना है।

चौथी भावना–साधु समूह के लिये साधारण पिण्ड के मिलने पर व्रती को यतना पूर्वक सेवन करना चाहिए। शाक आदि से प्रचुर भोजन को अधिक अथवा जल्दी २ नहीं करे चपलता युक्त बिना विचारे और दूसरे के लिए पीडा कारक सदोष आहार का वर्जन करे। साधु को उस प्रकार खाना चाहिए जिस प्रकार से अचौर्य व्रत का भङ्ग नहीं हो। यह अदत्तादान विरमण व्रत का सूक्ष्म नियम है। यह साधारण पिण्ड लाभ की समिति रूप चौथी भावना है।

साधर्मिक साधुओ के साथ योग्य विनय करना चाहिए। उपकार और पारणक आदि विभिन्न प्रसङ्गों पर गुरु,सामान्य साधु–व्रती और तपस्विओके विषयमें विनय करना चाहिए। क्योकि विनय भी एक प्रकार का तप है औरतप भी धर्म है। इसलिए विनय साधन करना चाहिए। इस प्रकार विनयसमितिरूप पांचवी भावना होती है।

इस प्रकार प्रत्येक भावना से युक्त अन्त करण वाला साधु सदा अधिकरण रूप पाप कर्म के करने व कराने से विरत होकर दत्तानुज्ञात अवग्रह अर्थात् अचौर्य व्रत की रुचि वाला होता है। इस प्रकार यह अचौर्य व्रत तृतीय संवर का द्वार है। उपरोक्त भावनाओ के द्वारा अच्छी तरह पाला जाता है। उत्तम है। इस प्रकार सुधर्म स्वामी कहते हैं कि यह तीसरा सवरद्वार पूर्ण हुआ। सू० ॥ २ ॥ २६ ॥

सारांश–इस अध्ययन मे द्रव्य और भाव दोनो प्रकार के चौर्यकर्म का निषेध किया गया है। क्योकि काव्य के पद और साहित्य का अंश लेकर अपनी विद्वत्ता बताना भी एक प्रकार की चोरी है। इस व्रत की रक्षा के लिये पांच बातें परम अपेक्षित हैं। निर्दोष व एकान्त स्थान का सेवन करना, विना दिये तृण तक भी नहीं करना, शय्या आदि के लिये वृक्ष आदि नहीं कटवाना, औ[illegible]तिकूल स्थिति मे भी क्षुब्ध नहीं होना भिक्षा से प्राप्त आहार का विधिवत् [illegible] और साधुओंमें यथा योग्य विनय करना, साधकको इन्हें ध्यानमें र[illegible]

॥ समाप्तं तृतीयंसंवरद्वार ॥

[illegible] सान्वयार्थ भावार्थं [illegible]

चतुर्थ संवरद्वार

सम्बन्ध—तृतीय संवर में अचौर्यव्रत का विधान किया गया है। वह ब्रह्मव्रत के धारण करने पर ही निर्बाध पाला जा सकता है, इसलिये चतुर्थ अध्ययन मे सूत्र क्रम से सम्बन्धित ब्रह्मचर्यव्रत का निरूपण करते हैं—

मूल—"जंबू ! एत्तो य बंभचेरं उत्तम—तव—नियम—णाण—दंसण—चरित्त—सम्मत्त—विणयमूलं, जम—नियम—गुणप्पहाणजुत्तं, हिमवंत महंत—तेयमंतं, पसत्थ—गंभीर—थिमित—मज्झं, अज्जव—साहुजण चरितं, मोक्ख-मग्गं, विसुद्ध—सिद्धिगति—निलयं, सासयमव्वाबाहमपुणब्भवं, पसत्थं सोमं सुभं सिवमचलमक्खयकरं। जतिवर—सारक्खितं, सुचरियं सुभासियं, नवरि मुणिवरेहिं महापुरिस—धीर—सूर—धम्मिय—धितिमंताण य सया विसुद्धं, भव्वं भव्वजणाणुचिन्नं, निस्संकियं, निब्भयं, नित्तुसं, निरायासं, निरुवलेवं, निव्वुतिघरं, नियम निप्पकंपं तव संजम—मूल—दलियणेम्मं, पंच महव्वय सुरक्खियं, समिति गुत्ति गुत्तं, झाणवर—कवाड—सुकयमज्झप्प दिन्नफलिहं, संनद्धोच्छइयदुग्गइपहं, सुगतिपहदेसगं च, लोगुत्तमंच व-यमिणं, पउमसरतलाग—पालिभूयं, महासगड अरगतुंब भूयं, महा-विडिमरुक्खक्खंधभूयं, महानगर पागार कवाडफलिहभूयं, रज्जु पिणिद्धो व इंदकेतू विसुद्ध णेग गुण संपिणद्धं। जंमिय भग्गमि होइ सहसा सव्वं संभग्ग—मथिय—चुन्निय— कुसल्लिय—पल्लट्ट—पडिय—खंडिय—परिसडिय-विणा-सियं, विणयसील—तव—नियम गुणसमूहं, तं बंभं भगवंतं—गहगण न क्खत्त तारगाणं वा जहा उडुपती १, मणिमुत्त-सिल—प्पवाल—रत्त रयणा-गराणं व जहा समुद्दो२, वेरुलिओ चेव जहा मणीणं३. जहा मउडो चेव भूसणाणं४, वत्थाणं चेव खोम जुयलं५. अरविंदं चेव पुप्फजेट्ठं६. गोसी-सं चेव चंदणाणं७, हिमवंतो चेव ओसहीणं८, सीतोदा चेव निन्नगाणं६,

उदहीसु जहा सयंभु रमणो१०, रुयगवरे चेव मंडलिक पव्वयाण पवरे११, एरावण इव कुंजराणं१२, सीहोव्व जहा मिगाणं पवरे१३, पव्वकाणं चेव वेणु देवे१४, धरणो जह पएणगइंदराया१५, कप्पाणं चेव बंभलोए१६, सभासु य जहा भवे सुहम्मा१७, ठितिसु लव सत्तमव्व पवरा१८, दाणाणं चेव अभयदाणं१६, किमिराउ चेव कंबलाणं२०, संघयणे चेव वज्जरिसभे२१, संठाणे चेव समचउरंसे२२, झाणेसु य परम सुक्कज्झाणं२३, णाणेसु य परम केवलं तु सिद्धं२४, लेसासु य परम सुक्कलेस्सा२५ तित्थंकरे जहा चेव मुणीणं२६, वासेसु जहा महाविदेहे२७, गिरि राया चेव मंदरवरे२८ वणेसु जहा नंदण वणं पवरं२६, दुमेसु जहा जंबू सुदंसणा, वीसु यजसा जीय नामेण य अयं दीवो३०, तुरगवती गयवती, रहवती नरवती जह वीसुए चेव राया३१, रहिए चेव जहा महा रहगते३२। एवमणेगा गुणा अहीणा भवंति एक्कंमि बंभचेरे जं मिय आराहियं मि आराहियं वयमिणं सव्वं। सीलं तवो य विणओ य संजमो य खंती गुत्ती मुत्ती तहेव इहलोइय पार लोइय जसे य कित्ती य पच्चओ य। तम्हा निहुएण बंभचेरं चरियव्वं, सव्वओ विसुद्धं जावज्जी वाए जाव सेयट्ठि संजउत्ति एवं भणियं वयं भगवया।

छाया–"हे जम्बू: ? इतश्च ब्रह्मचर्यमुत्तमतपो–नियम–ज्ञान–दर्शन–चारित्र सम्यक्त्व–विनयमूलं, यम नियम गुण प्रधानयुक्तं, हिमवन्महातेजस्वि, प्रशस्त गम्भीर-स्तिमित मध्यम, आर्जव–साधुजनाचरितं मोक्षमार्गः। विशुद्ध–सिद्धिगति–निलयं, शाश्वत मव्याबाधमपुनर्भवम्, प्रशस्तं सौम्य शुभं शिवमचलमक्षयकरं, यतिवर–सुर-क्षित सुचरितं सुभाषितं। केवलं (न वरि) मुनिवरैर्महापुरुष–धीर–शूर–धार्मिक–धृतिमता च सदा विशुद्धं भव्यं भव्यजनानुचीर्णं निश्शङ्कितं निर्भयं निस्तुषं निरायासं निरुपलेप निर्वृतिगृह नियम निष्प्रकम्प तपः–संयम–मूल–दलिकनेमं, पञ्चमहाव्रत सुरक्षितं, समिति गुप्ति गुप्तं, ध्यानवर–कपाट–सुकृताध्यात्म–दत्तफलकं, संनद्धोच्छ्र-यित–दुर्गति पथं, सुगतिपथदेशकं च लोकोत्तमचव्रतमिदं, पद्मसरस्तडागपालीभूतं, महाशकटारक तुम्ब (नाभि) भूतं, महा विटपवृक्षस्कन्धभूतं, महानगर–प्राकार–कपाट परिघे भूतं, रज्जु–पिनद्ध इवेन्द्रकेतु., विशुद्धाऽनेकगुण सपिनद्धम्। यस्मिश्च भग्ने भवति सहसा सर्वं संभग्न–मथित–चूर्णित–कुशल्यित,–पर्यस्त–(पञ्चट्ट)–पतित–

खण्डित-परिशाटित-विनाशितं । विनयशील-तपो-नियमगुणसमूहं, तद्ब्रह्मचर्यं भगवद्,-ग्रहगण नक्षत्र तारकाणां वा यथोडुपतिः १, मणिमुक्ताशिला-प्रवाल-रक्त रत्नाऽऽकराणां च यथा समुद्रः २, वैडूर्यञ्चैव यथामणीनां ३, यथा मुकुटञ्चैव भूषणानां ४, वस्त्राणाञ्चैव क्षौमयुगलम् ५, अरविन्दञ्चैव पुष्पज्येष्ठं ६, गोशीर्षञ्चैव चन्दनानां ७, हिमवांश्चैव औषधीनां ८, शीतोदाचैव निम्नगानाम् ९, उदधिषु यथा स्वयम्भुरमणः १०, रुचकवरश्चैव माण्डलिक पर्वतानां प्रवरः ११, ऐरावत इव कुञ्जराणाम् १२, सिंहोयथा मृगाणां प्रवरः १३, पावकानां चैव वेणुदेवो १४, धरणो यथा पन्नगेन्द्रराजा १५, कल्पानाञ्चैव ब्रह्मलोकः १६, सभासु च यथा भवेत्सुधर्मा १७, स्थितिषु लवसप्तमावा प्रवरा १८, दानानाञ्चैवाऽभयदानम् १९, कृमिराग इव कम्बलानाम् २० संहननेषु चैव वज्रर्षभः २१, संस्थाने चैव समचतुरस्रम् २२, ध्यानेषु च परमशुक्ल ध्यानम् २३ ज्ञानेषु च परमकेवलं तु सिद्धम् २४ लेश्यासु च परमशुक्ल लेश्या २५, तीर्थङ्करो यथा चैव मुनीनाम् २६, वासेषु यथा महाविदेहो २७, गिरिराजश्चैव मन्दरवरः २८, वनेषु यथानन्दनवनं प्रवरम् २९, द्रुमेषु यथा जम्बूः सुदर्शना विश्रुतयशा यस्यानाम्नाचायं द्वीपः ३० तुरगपति गजपतीरथपतिर्नरपतिर्यथा विश्रुतश्चैव राजा ३१, रथिकश्चैव यथा महारथगतः ३२ । एवमनेके गुणा अहीनाभवन्ति एकस्मिन् ब्रह्मचर्ये । यस्मिन् चाराधिते आराधितं व्रतमिदं सर्वम् । शीलं तपश्चविनयश्च संयमश्च, क्षान्तिर्गुप्तिर्मुक्तिस्तथैव ऐहिलौकिक पारलौकिक यशश्च कीर्तिश्च प्रत्ययश्च तस्मान्निभृतेन ब्रह्मचर्यं चरितव्यम् । सर्वतो विशुद्धं यावज्जीवनं यावच्छ्वेतोऽस्थि संयमिनेति, एवं भणितं व्रतं भगवता ।

अन्व०''(जंबू !) हे जंबू ! (एत्तोय) फिर इस तृतीय व्रत के आगे (बंभचेरं) ब्रह्मचर्य व्रत है, जो (उत्तमतव-नियम-णाण-दंसण-चरित्त-सम्मत-विणयमूल) उत्तम अनशन आदि तप, नियम-उत्तर गुण ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यकत्व और विनय का मूल है (जम-नियम-गुणप्पहाणजुत्तं) अहिंसादि पांच यम और गुणों की प्रधानता वाले नियम से युक्त (हिमवत महत्ततेयमंतं) हिमवान् पर्वत के समान बड़ा और तेजस्वी (पसत्थगंभीरथिमितमज्झ) प्रशस्त गम्भीर और स्थिर मध्य याने मनुष्य के अन्तःकरण वाला, (अज्जव साहु जणा चरित) सरल भाव युक्त साधु पुरुषों से आसेवित (मोक्खमग्गं) मोक्ष का मार्ग (विसुद्ध सिद्धिगति निलयं) विशुद्ध रागादि रहित निर्मल सिद्धि गति रूप घर वाला (सासयमव्वाबाहमपुण

भवं) शाश्वत, बाधारहित और पुनर्जन्म को रोकने वाला (पसत्थं सोमं सुभं) प्रशस्त-उत्तम गुण वाला तथा सौम्य, शुभ अथवा सुख रूप (सिवमचलमक्खयकरं) शिव-निरुपद्रव अचल और अक्षय या पूर्ण पद को करने वाला (जतिवर सारक्खितं) प्रधान मुनिओं से सुरक्षित (सुचरियं सुभासियं) अच्छी तरह आचरण किया हुआ, सम्यक् प्रकार से उपदिष्ट नवरि) केवल (मुणिवरेहिं) उत्तम मुनिओं से 'उपदिष्ट है' (महा पुरिस-धीर-सूर-धम्मिय-धितिमंताण य) उत्तम महा पुरुष अत्यन्त साहसी और धार्मिक व धृति वाले पुरुषों का व्रत (सया) सदा (विसुद्धं) दोष रहित अथवा सभी अवस्थाओ में शुद्ध पाला गया है (भव्वं) कल्याण का कारण तथा (भव्वजणाणुचिन्नं) भव्यजनो से पाला गया है (निस्संकियं) यह शंकारहित (निब्भयं नित्तुसं) निर्भय और तुष-निस्सारता से रहित है (निरायासं निरुवलेवं) खेद रहित व स्नेह के उप-लेप से रहित (निव्वुतिघरं) चित्त शान्ति का घर (नियम निप्पकंपं) नियम से अविचल (तवसंजम-मूल-दलिय-णेम्मं) तप और संयम के मूल दलके समान (पचमहव्व यसुरक्खियं) पाच महाव्रतों में विशेष सुरक्षित (समिति-गुत्तिगुत्तं) पांच समिति और तीन गुप्तिओं से गुप्त (झाणवर-कवाड-सुकय-मज्झप्पदिन्नफलिहं) रक्षा के लिये उत्तम ध्यानरूप सुविरचित कपाटवाला और अध्यात्म-सद्भावनामय चित्त ही जहा दी हुई अर्गला है, ऐसा (सनद्धोच्छइय-दुग्गइपहं) बधे हुए और ढके हुए की तरह दुर्गतिमार्ग का प्रतिबन्धक (च) और (सुगतिपहदेसगं) सुगति के मार्ग को दिखाने वाला (लोगुत्तमच) और लोक मे उत्तम (वयमिणं) यह व्रत (पउमसर-तलाग-पालिभूयं) पद्म सरोवर के पालतुल्य (महासगड-अरग-तुंब-भूयं) बडे रथके चक्रमें लगे हुए छडिओं के लिये नाभितुल्य (महाविडिमरुक्ख-क्खंधभूयं) तथा अतिशय विस्तार वाले वडे वृक्ष के स्कन्ध के समान (महानगर-पागार-कवाड-फलिहभूयं) वड़े नगर के प्राकार में कपाट की आगल के समान, [धर्मरूपनगर कपाट की प्रबल आगल है] (रज्जुपिणद्धोव्व-इदकेतू) डोरी से बधेहुए इन्द्र ध्वजकी तरह (विशुद्धणेग-गुण-संपिणद्धं) अनेक विशुद्ध गुणों से युक्त है (जंमिय भग्गंमि) और जिसके भग होने पर (सहसासव्व) सहसा सब विणयशील-तव-नियम-गुणसमूह) विनय, शील, तप और नियम आदि गुणसमूह (सभग्ग-मथिय-चुन्निय कुसल्लिय पल्लट्ट-पडिय-खंडिय-परिसडिय-विणासियं) फूठे हुए घटकी तरह संभग्न,

दही के जैसे मथा हुआ, आंटे के जैसा चूर्ण किया हुआ, कांटा लगे शरीर के समान शल्ययुक्त, पर्वत से शिला की तरह धर्म से लुढका हुआ, गिरा हुआ, लकड़ी के जैसे दो भाग होकर टूटा हुआ, बुरी हालत मे पहुंचा हुआ और अग्नि मे जल कर छड़े हुए काष्ठ के समान विनष्ट (होइ) होता है, (तं बंभं भगवंतं) इस प्रकार का वह ब्रह्मचर्य भगवान् अतिशय सम्पन्न है।

अब ३२ उपमाओं से इस ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हैं—(गहगण-नक्खत्त-तारगाणं वा जहा उडुपती) ग्रह नक्षत्र अथवा तारको के बीच जैसे चन्द्र (मणि-मुत्त-सिलप्पवाल-रत्त-रयणागराणं च जहा समुद्दो) और मणि, मोती, विद्रुम अथवा पद्मराग आदि रत्न खानो में समुद्र के समान (वेरुलिओ चेव जहा मणीणं) और मणिओं के बीच जैसे वैडुर्यमणि प्रधान है (जहा मउडो चेव भूसणाणं) आभूषणो के बीच जैसे मुकुट और (वत्थाणं चेव खोमजुयलं) वस्त्रो के बीच जैसे क्षौमयुगल कपास का वस्त्र ही उत्तम है (अरविंदं चेव पुप्फजेट्ठं) फूलों मे जैसे अरविन्द-कमल ही श्रेष्ठ है (गोसीसं चेव चंदणाणं) चन्दनो मे गोशीर्ष जेसे प्रधान है और (हिमवंतो चेव ओसहीणं) औषधी-चमत्कारिक औषधिओं का जैसे हिमवान् उत्पत्ति स्थान है (सीतोदा चेव निन्नगाणं) और नदियों के बीच जैसे शीतोदानदी प्रधान है (उदहीसु जहा सयंभुरमणो) समुद्रों मे जैसे स्वयम्भुरमण समुद्र बडा है (रुयगवरे चेव मांडलिक पव्वयाणपवरे) माण्डलिक गोल पर्वतों में जैसे रुचकवर गिरि प्रधान है (एरावण इव कुंजराणं) हाथिओं के बीच जैसे ऐरावण प्रवर-श्रेष्ठ है (सीहोव्व जहा मिगाणं पवरे) मृग-जंगल के चतुष्पद प्राणिओं मे जैसे सिंह प्रधान है (पावकाणं चेव वेणुदेवे) सुवर्ण कुमारों के बीच जैसे वेणुदेव (धरणो जह पण्णग इदराया) नागकुमारों में जैसे धरणेन्द्र नागराजा प्रधान है (कप्पाणं चेव बंभलोए) कल्प-देवलोक में जैसे ब्रह्मलोक बडा और (सभासु य जहा भवे सुहम्मा) सभाओं मे जैसे सुधर्मा-देव सभा प्रधान है (ठेतिसु लव सत्त मव्व पवरा स्थितिओं में जैसे अनुत्तर विमान वासी देवों की स्थिति प्रधान व बड़ी है दाणाणं चेव अभय दाण) अनेक प्रकारों के दानों में जैसे अभयदान (किमिराउ चेव कंबलाणं) कम्बलों में जैसे कृमिराग-रक्त कम्बल प्रधान है (संघयणे चेव वज्जरिसभे) संहननों में जैसे वज्र ऋषभनाराच संहनन और (संठाणे चेव समचउरंसे) छः संस्थानों में जैसे समचतुरस्रसंस्थान प्रधान है (झाणेसु य परम सुक्कज्झाणं)

चार प्रकार के ध्यानों में जैसे परम शुक्ल ध्यान और (णाणेसु य परम केवल तु सिद्ध) पाच ज्ञानों में जैसे केवल ज्ञान पूर्ण रूप से प्रसिद्ध है और (लेसासु य परम सुक्कलेसा) छ लेश्याओं में परम शुक्ल लेश्या जैसे उत्तम है (तित्थकरे जहा चेव मुणीणं) मुनिओं में जैसे तीर्थङ्कर प्रधान हैं (व सेसु जहा महा विदेहे) वर्ष क्षेत्रों में जैसे महाविदेह क्षेत्र, (गिरिराया चेव मंदर वरे) पर्वतों में जैसे मन्दर पर्वत गिरिराज है, (वणेसु जहा नंदणवणं) वनों मे जैसे नन्दन वन (पवरं) श्रेष्ठ है (दुमेसु जहा जंबू सुदसणा वीसुय जसा) वृक्षों में जैसे जम्बू सुदर्शन वृक्ष विश्रुत-विख्यात कीर्ति वाला है (जीय नामेणय अयंदोवो) जिसके नाम से यह द्वीप-जम्बू द्वीप कहा जाता है (तुरगवती गयवती रहवती नरवती जह वीसुए चेव राया) अश्वपति, गजपति, रथपति और नरपति राजा जैसे विख्यात है, वैसे यह ब्रह्मव्रत भी उत्तम और विख्यात है (रहिए चेव जहा महा रह गए) बड़े रथ पर बैठा हुआ जैसे रथिक दूसरों का अभिभव करने वाला होता है (एवमणेगा गुणा अहीणा भवति) इस प्रकार अनेक गुण पूर्ण और स्वाधीन होते हैं (जमिय) और जिस (एक्कमिवभचेरे आराहियमि) एक ब्रह्मचर्य की आराधना करने पर (आराहिय वयमिणं सव्वं) यह सब निर्ग्रन्थव्रत पालित होता है। [व्रत गिनाते हैं] (सील) शील-समाधान (तवो य) और तप (विणओ य) विनय और (संजमा य) संयम तथा (खंती गुत्ती मुत्ती) क्षमा, गुप्ति, मुक्ति-निर्लोभ वृत्ति (तहेव) इसी तरह (इह लोइय पारलोइय जसे य कित्ती य) इहलोक और परलोक सम्बन्धी यश और कीर्ति-दान पुण्य के फल भूत अथवा एक दिगन्त व्यापिनो प्रसिद्धि और (पच्चओ य) प्रत्यय-विश्वास का कारण है (तम्हा) इसलिये (निहुएण) स्थिर चित्त से (सव्वओ विसुद्धं बभचेरं चरियव्वं) सर्वथा याने त्रिकरण त्रियोग से विशुद्ध दोष रहित ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। (जावज्जीवाए जाव सेयट्ठि संजउत्ति) आजीवन के लिये यावत् श्रेयोऽर्थी या तपस्या से निर्मांस होने के कारण साधु श्वेतास्थि कहाता है। (एवं भणियं वयं भगवया) इस प्रकार भगवान् महावीर ने ब्रह्मचर्य व्रत को कहा है।

भाव-हे जंबू ! तीसरे संवर के बाद चतुर्थ संवर ब्रह्मचर्य है। यह प्रधान तप, नियम और ज्ञानादि का मूल तथा यम नियम आदि प्रधान गुण वाला है। हिम-न् के समान बडा तेजस्वी प्रशस्तगम्भीर हृदयवाला आदि अनेक विशेषण स्पष्ट

है। जिस ब्रह्मचर्य के भङ्ग होने पर सहसा विनयशील और तपनियम आदि गुण समूह सब नष्ट भ्रष्ट हो जाते है। अतिशय सम्पन्न होने से वह ब्रह्मचर्य भगवान् है। बत्तीस उपमाओं से इसका महत्त्व कहा गया है।

जैसे-'नक्षत्र मण्डल में चन्द्रमा के समान १, मणि आदि रत्नों की खानों में समुद्र के समान २, मणिओं में वैडूर्य के समान ३, आभूषणों में मुकुट के समान ४, वस्त्रो मे चौमयुगल-कपास वस्त्र के समान ५, पुष्पो मे कमलके समान ६, चन्दनों में गोशीर्ष के समान ७, औषधि स्थानों में हिमवान् के समान ८, नदियो में शीतोदा नामकी नदी के समान ९, समुद्रों में स्वयम्भू रमण के समान १०, माण्डलिक पर्वतों में रुचकगिरि के समान ११, हाथिओं में ऐरावण हाथी के समान १२, जंगली पशुओ मे सिह के समान १३, सुवर्ण कुमारों मे वेणुदेव के समान १४, नागकुमारों मे धरणेन्द्र के समान १५, बारह देवलोकों में ब्रह्मदेवलोक के समान १६, सभाओं में सुधर्मा के समान १७, स्थितिओ में अनुत्तर विमानवासी देवों की स्थितिके समान १८, दानों में अभयदान के समान १९, कम्बलों में कृमिराग-रक्त कम्बलों के समान २०, शरीर के संहननो मे वज्रऋषभनाराच के समान २१, छः प्रकार के संठाणों में समचतुरस्र संस्थान के समान २२, चार ध्यानों मे शुक्ल ध्यान के समास २३, पांच ज्ञानों में केवल ज्ञान के समान २४, छः लेश्याओ में परमशुक्ल लेश्या २५, मुनिओं में जैसे तीर्थङ्कर २६, क्षेत्रों मे जैसे महाविदेह प्रधान है२७, पर्वतों में सुमेरुके समान २८, वनों में नन्दनवन के समान २९ वृक्षो में जंबू वृक्ष के समान ३०, तुरगपति आदिओ में जैसे चक्रवर्ती राजा ३१, रथिकों में जैसे महारथी उत्तम है ऐसे ही व्रतों में ब्रह्मचर्यव्रत बडा और प्रधान है ३२। इस प्रकार एक ब्रह्मचर्यव्रत में अनेक गुण पूर्ण तथा निवास किये रहते हैं। ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने पर यह निर्ग्रन्थ प्रव्रज्यारूपव्रत अखण्ड पालन किया होता है। शील, तप, विनय, संयम, क्षमा, गुप्ति और निर्लोभता तथा सिद्धि एवं इस लोक परलोक की यश कीर्ति का भी आराधन हो जाता है। इसलिये स्थिर भावसे ब्रह्मचर्य का त्रिकरण त्रियोग की शुद्धि पूर्वक पालन करना चाहिए। जीवन पर्यन्त इसमें स्थिर रहना आदि, इस प्रकार श्री महावीर प्रभु ने ब्रह्मचर्यव्रत को कहा है वह इस प्रकार है। जैसे-

चार प्रकार के ध्यानों में जैसे परम शुक्ल ध्यान और (णाणेसु य परम केवलं तु सिद्ध) पांच ज्ञानों में जैसे केवल ज्ञान पूर्ण रूप से प्रसिद्ध है और (लेसासु य परम सुक्कलेसा) छः लेश्याओं में परम शुक्ल लेश्या जैसे उत्तम है (तित्थकरे जहा चेव मुणीणं) मुनिओं में जैसे तीर्थङ्कर प्रधान हैं (वासेसु जहा महा विदेहे) वर्ष क्षेत्रों मे जैसे महाविदेह क्षेत्र, (गिरिराया चेव मंदर वरे) पर्वतों में जैसे मन्दर पर्वत गिरिराज है, (वणेसु जहा नंदणवणं) वनों में जैसे नन्दन वन (पवरं) श्रेष्ठ है (दुमेसु जहा जंबू सुदंसणा वीसुय जसा) वृक्षों में जैसे जम्बू सुदर्शन वृक्ष विश्रुत-विख्यात कीर्ति वाला है (जीय नामेणय अयंदीवो) जिसके नाम से यह द्वीप-जम्बू द्वीप कहा जाता है (तुरगवती गयवती रहवती नरवती जह वीसुए चेव राया) अश्वपति, गजपति, रथपति और नरपति राजा जैसे विख्यात है, वैसे यह ब्रह्मव्रत भी उत्तम और विख्यात है (रहिए चेव जहा महा रह गए) वडे रथ पर बैठा हुआ जैसे रथिक दूसरों का अभिभव करने वाला होता है (एवमणेगा गुणा अहीणा भवंति) इस प्रकार अनेक गुण पूर्ण और स्वाधीन होते हैं (जम्मिय) और जिस (एक्कम्मिबंभचेरे आराहियम्मि) एक ब्रह्मचर्य की आराधना करने पर (आराहिय वयमिणं सव्व) यह सब निर्ग्रन्थव्रत पालित होता है। [व्रत गिनाते हैं] (सील) शील-समाधान (तवो य) और तप (विणओ य) विनय और (संजमो य) संयम तथा (खंती गुत्ती मुत्ती) क्षमा,गुप्ति, मुक्ति-निर्लोभ वृत्ति (तहेव) इसी तरह (इह लोइय पारलोइय जसे य कित्ती य) इहलोक और परलोक सम्बन्धी यश और कीर्ति-दान पुण्य के फल भूत अथवा एक दिगन्त व्यापिनी प्रसिद्धि और (पच्चओ य) प्रत्यय-विश्वास का कारण है (तम्हा) इसलिये (निहुएण) स्थिर चित्त से (सव्वओ विसुद्धं बंभचेरं चरियव्वं) सर्वथा याने त्रिकरण त्रियोग से विशुद्ध दोष रहित ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। (जावज्जीवाए जाव सेयट्ठि संजउत्ति) आजीवन के लिये यावत् श्रेयोऽर्थी या तपस्या से निर्मांस होने के कारण साधु श्वेतास्थि कहाता है। (एवं भणियं वयं भगवया) इस प्रकार भगवान् महावीर ने ब्रह्मचर्य व्रत को कहा है।

भाव-हे जंबू ! तीसरे संवर के बाद चतुर्थ संवर ब्रह्मचर्य है। यह प्रधान तप, नियम और ज्ञानादि का मूल तथा यम नियम आदि प्रधान गुण वाला है। हिमवान् के समान वडा तेजस्वी प्रशस्तगम्भीर हृदयवाला आदि अनेक विशेषण स्पष्ट

है। जिस ब्रह्मचर्य के भङ्ग होने पर सहसा विनयशील और तपनियम आदि गुण समूह सब नष्ट भ्रष्ट हो जाते है। अतिशय सम्पन्न होने से वह ब्रह्मचर्य भगवान् है। बत्तीस उपमाओं से इसका महत्त्व कहा गया है।

जैसे-'नक्षत्र मण्डल में चन्द्रमा के समान १, मणि आदि रत्नों की खानों में समुद्र के समान २, मणिओं में वैडूर्य के समान ३, आभूषणों में मुकुट के समान ४, वस्त्रो में क्षौमयुगल-कपास वस्त्र के समान ५, पुष्पों मे कमलके समान ६, चन्दनों में गोशीर्ष के समान ७, औषधि स्थानो में हिमवान् के समान ८, नदियो में शीतोदा नामकी नदी के समान ९, समुद्रों में स्वयम्भू रमण के समान १०, माण्डलिक पर्वतों में रुचकगिरि के समान ११, हाथिओ में ऐरावण हाथी के समान १२, जंगली पशुओ मे सिंह के समान १३, सुपर्ण कुमारों में वेणुदेव के समान १४, नागकुमारों मे धरणेन्द्र के समान १५, बारह देवलोकों मे ब्रह्मदेवलोक के समान १६, सभाओं में सुधर्मा के समान १७, स्थितिओ मे अनुत्तर विमानवासी देवों की स्थितिके समान १८, दानों मे अभयदान के समान १९, कम्बलों में कृमिराग-रक्त कम्बलों के समान २०, शरीर के संहननो मे वज्रऋषभनाराच के समान २१, छः प्रकार के संठाणों में समचतुरस्र संस्थान के समान २२, चार ध्यानो मे शुक्ल ध्यान के समान २३, पांच ज्ञानों मे केवल ज्ञान के समान २४, छः लेश्याओ मे परमशुक्ल लेश्या २५, मुनिओं में जैसे तीर्थङ्कर २६, क्षेत्रों मे जैसे महाविदेह प्रधान है २७, पर्वतो में सुमेरुके समान २८, वनों में नन्दनवन के समान २९ वृक्षो में जंबू वृक्ष के समान ३०, तुरगपति आदिओ मे जैसे चक्रवर्ती राजा ३१, रथिकों में जैसे महारथी उत्तम है ऐसे ही व्रतों में ब्रह्मचर्यव्रत बडा और प्रधान है ३२। इस प्रकार एक ब्रह्मचर्यव्रत में अनेक गुण पूर्ण तथा निवास किये रहते हैं। ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने पर यह निर्ग्रन्थ प्रव्रज्यारूपव्रत अखण्ड पालन किया होता है। शील, तप, विनय, संयम, क्षमा, गुप्ति और निर्लोभता तथा सिद्धि एवं इस लोक परलोक की यश कीर्ति का भी आराधन हो जाता है। इसलिये स्थिर भावसे ब्रह्मचर्य का त्रिकरण त्रियोग की शुद्धि पूर्वक पालन करना चाहिए। जीवन पर्यन्त इसमें स्थिर रहना आदि, इस प्रकार श्री महावीर प्रभु ने ब्रह्मचर्यव्रत को कहा है वह इस प्रकार है। जैसे-

मूल—"तंच इमं—"पंच'महव्वय-सुव्वय—मूलं, समणमणाइल-साहुसुचिन्नं ।
वेर विरमण—पज्जवसाणं, सव्वसमुद्द—महोदधितित्थं ॥ १ ॥

तित्थकरेहि सुदेसिय-मग्गं, नरय-तिरिच्छ-विवज्जियमग्गं ।
सव्वपवित्ति—सुनिम्मियसारं, सिद्धिविमाण—अवंगुयदारं ॥ २ ॥

देव-नरिंद-नमंसियपूयं, सव्वजगुत्तम—मंगलमग्गं ।
दुद्धरिसं गुणनायगमेक्कं, मोक्खपहस्स वडिंसकभूयं ॥ ३ ॥

जेण सुद्धचरिएण भवइ सुबंभणो, सुसमणो सुसाहू, सइसी समुणी ससंजए सएवभिक्खू जो सुद्धं चरति बंभचेरं ।

इमं च रति-राग-दोस-मोह पवड्ढणकरं किमज्झ—पमाय—दोसपासत्थ-सीलकरणं अब्भंगणाणिय तेल्ल मज्जणाणि य अभिक्खणं कक्खा—सीस—कर चरण—वदण—धोवण—संवाहण—गायकम्म— परिमद्दणाणुलेवण— चुन्नवास-धूवण—सरीर परिमंडण—बाउसिक (य) हसिय—भणिय—नट्टगीय—वाइय-नड-नट्टक-जल्ल-मल्ल पेच्छण—वेलंबक जाणिय सिंगारागाराणि य अन्नाणिय एवमादियाणि तव—संजम—बंभचेर-घातोवघातियाइं अणुचर माणेणं बंभचेरं वज्जेयव्वाइं सव्वकालं ।

भावेयव्वो भवइ य अंतरप्पा इमेहिं तव-नियम-सील-जोगेहिं निच्चकालं, किंते !—अण्हाणक—अदंतधावण—सेय—मल—जल्ल—धारणं मूणवय-केसलोए य खम—दम—अचेलग—खुप्पिवास लाघव—सीतोसिणकट्ठसेज्जा—भूमिनिसेज्जा परघर पवेस—लद्धावलद्ध-माणावमाण—निदण—दंस—मसगफास नियम—तव—गुण विणयमादिएहिं जहा से थिरतरगं होइ बंभचेरं । इमं च अबंभचेर-विरमण परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं (अत्तहितं) पेच्चाभा-विकं आगमेसिभद्दं सुद्धं नेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्ख पावाण विउसमणं ।

छाया—"तच्चेदं—" पञ्चमहाव्रत सुव्रतमूल समनस्काऽनाविल साधुसुचीर्णम् ।
वैर विरमणपर्यवसानं, सर्वसमुद्रमहोदधि तीर्थम् ॥ १ ॥

---

१ दोधक छन्दसा ग्रथितान्यमूनि पद्यानि ।

घातियाइं) तप, संयम और ब्रह्मचर्य के घात व उपघात को करने वाली याने तप आदि का आंशिक वा सर्वथा नाश करने वाली हैं (बंभचेरं अणुचर माणेणं) ब्रह्मचर्य के आसेवन करने वाले को उपरोक्त बातें (सव्वकालं) सर्वदा (वज्जेयव्वाइ) वर्जन करने योग्य हैं। (इमेहिं तव-नियम-सील-जोगेहिं) इन आगे कहे जाने वाले तप नियम और शील के व्यापारों से (निच्चकालं) सदा (अंतरप्पा) अन्तः करण भावेयव्वो भवइ) भावित करने योग्य होता है (किंते ?) वे व्यव-हार कौनसे है ?

उत्तर—(अण्हाणक-अदंतधावणसेय-मल्ल-जल्लधारणं) स्नान नहीं करना, दन्त धावन नहीं करना, पसीना और मल को धारण करना (मूणवय-केस लोए य) और मौनव्रत व केश का लुञ्चन करना, (खम-दम-अचेलग-खुप्पिवास-लाघव-सीतोसिण-कट्ठसेज्जा-भूमिनिसेज्जा-परघर पवेस-लद्धावलद्ध-म णावमाण-निंदण दंस मसग फास-नियम तव-गुण विणयमाइएहिं) क्षमा, दम-इन्द्रियनिग्रह, अचेलक-अल्पवस्त्र रखना, या वस्त्र रहित होना, भूख, प्यास, उपधि से हल्कापन, ठंडी और गर्मी, काष्ठशय्या-पाट-आदि की शय्या, भूमि निषद्या-भूमि का आसन तथा पर घर में जाने पर कुछ मिलना या नहीं मिलना मान अपमान, निन्दा और डांस मच्छर आदि का कष्ट सहना, द्रव्य आदि के अभिग्रह रूप नियम, तप, मूल व्रत आदि गुण और विनय आदि से अन्तःकरण को भावित करना चाहिए (जहा से थिर तरंग होइ बंभचेरं) जैसे उस व्रती का ब्रह्मचर्य अत्यन्त स्थिर हो। (इमंच) और यह (अबंभचेर-विरमण-परिरक्खणट्ठयाए) अब्रह्म-मैथुन के निवृत्तरूप व्रत की रक्षा के लिये (पावयणं) प्रवचन (भगवया) भगवान महावीर ने (सुकहियं) अच्छी तरह कहा है 'जो कि' (पेच्चाभाविकं) परलोक में शुभ फलदायक (आग-मेसिभद्दं) भविष्य मे कल्याण का कारण (सुद्धं) शुद्ध (नेयाउयं) न्याययुक्त (अकुडिलं) कुटिलता रहित (अणुत्तरं) सर्व श्रेष्ठ और (सव्वदुक्ख पावाण विउसवणं) सब दुःख व पापों का उपशमन करने वाला है।

मूल—"तस्स इमा पंच भावणाओ चउत्थयस्स होंति अबंभचेर वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए, पढमं सयणासण-घर-दुवार-अंगण-आगास-गवक्ख-साल-अभिलोयण-पच्छवत्थुक-पसाहणक-ण्हाणिकावकासा अवकासा

जे य वेसियाणं, अच्छंति य जत्थ इत्थिकाओ, अभिक्खणं मोह-दोस-रति-राग वड्ढणीओ कहिंति य कहाओ बहुविहाओ, तेऽवि हु वज्जणिज्जा, इत्थि संसत्त-संकिलिट्ठा अन्नेवि य एवमादी अवकासा तेहु वज्जणिज्जा, जत्थ मणोविब्भमो वा, भंगो वा भंसणा (भंसणो) वा अट्टं रुद्दं च हुज्जझाणं तं तं वज्जेज्ज वज्जभीरू अणायतणं। अंत पंतवासी एवमसंसत्त-वास-वसही समितिजोगेण भावितो भवति अंतरप्पा आरतमण-विरय-गामधम्मे जितें-दिए बंभचेर गुत्ते ॥ १ ॥

बितियं नारीजणस्स मज्झे न कहेयव्वा कहा, विचित्ता विब्बोय-विलास-संपउत्ता हास-सिंगार लोइयकहव्व मोहजणणी, न आवाह-विवाह-वरकहाविव इत्थीणं वा सुभग, दुभग कहा, चउसट्ठिं च महिला गुणा, न वन्न-देस-जाति-कुल-रूव-नाम-नेवत्थ परिजणकहा (व्व) इत्थि-याणं अन्नाविय एवमादियाओ कहाओ सिंगार कलुणाओ तव-संजम-बंभचेर-घातोवघातियाओ, अणुचरमाणेणं बंभचेर न कहेयव्वा, न सुणे यव्वा, न चिंतेयव्वा। एवं इत्थी कह विरति समिति जोगेणं भावितो भवति अंतरप्पा आरत-मण-विरय गामधम्मे जितिंदिए बंभचेर गुत्ते ॥ २ ॥

ततीयं नारीण हसित भणितं चेट्ठिय विप्पेक्खित-गइ-विलास-कीलियं, विब्बोतिय-नट्ट-गीत-वातिय-सरीर संठाण-वन्न-कर-चरण-नयण-ला-वण्ण रूव-जोव्वण-पयोहराधर-वत्थालंकार-भूसणाणि य गुज्झोवका-सियाइं अन्नाणि य एवमादियाइं तव-संजम-बंभचेर-घातोवघातियाइं अणुचरमाणेणं बंभचेरं न चक्खुसा, न मणसा, न वयसा पत्थेयव्वाइं पाव कम्माइं। एवं इत्थीरूव विरति-समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा आरतमण विरय गामधम्मे जितेंदिए बंभचेरगुत्ते ॥ ३ ॥

चउत्थं पुव्वरय-पुव्वकीलिय-पुव्व संगंथ-गंथ संथुया, जेते आवाह-

वाला (सव्व-पविति-सुनिम्मियसारं) सब पवित्र अनुष्ठानों को सार युक्त करने वाला (सिद्धि विमाण अवंगुयदारं) सिद्धि और वैमानिक गति के द्वार को खोलने वाला ॥ २ ॥ (देव नरिंद नमसियपूयं) देव तथा नरेन्द्रों से नमस्कृत मनुष्य के लिये पूजनीय (सव्वजगुत्तम-मगलमग्गं) जगत् के सब मङ्गलों का मार्ग या उनमे प्रधान है (दुद्धरिसं) दुर्द्धर्ष-किसी से पराभव नहीं पाने वाला, अथवा दुष्कर (गुण नायगमेक्कं) अद्वितीय गुणो का नायक (मोक्ख पहस्स) सम्यग् दर्शनादि मोक्ष मार्ग का (वडिंसकभूयं) शेखर भूत है ॥ ३ ॥ (जेण सुद्ध चरिएण) जिसके शुद्ध आसेवन करने से (भवइ सुबंभणो सुसमणो सुसाहू) ब्राह्मण-सच्चा ब्राह्मण यथार्थ तपस्वी और निर्वाण साधक सच्चा साधु होता है तथा (जो सुद्ध चरति बंभचेरं) जो शुद्ध रीति से ब्रह्मचर्य का पालन करता है । (स इसी) वह ऋषि यथावत् वस्तु द्रष्टा है (स मुणी) वह यथोक्त मुनि तथा (स संजए) वह संयत-संयमवान और (स एव भिक्खू) वही भिक्षु है। अब ब्रह्मचर्य में त्यागने योग्य व्यवहारों को कहते हैं (इमंच) और इस (रति-राग-दोस-मोह-पवड्ढणकरं) रति-विषय राग-राग-स्नेह राग द्वेष और मोह को बढाने वाला (किंमज्झ-पमाय-दोस-पासत्थ-सील-करणं) निस्सार प्रमाद दोष और ज्ञानादि आचार से बहिर्भूत नकली साधुओ का सा व्यवहार करना (अब्भगणाणि य) घृत आदि की मालिश और (तेल मज्जणाणि य) तेल लगाकर स्नान करना तथा (अभिक्खण) वारम्बार (कक्ख-सीस-कर-चरण-वदण-धोवण-सवाहण गायकम्म-परिमद्दणाणुलेवण-चुन्नवास-धूवण-सरीर परिमडण-बाउसिक-हसिय-भणिय-नट्ट-गीय-वाइय-नड-नट्टक-जल्ल-मल्ल-पेच्छण वेलवक) काख-बगल, शिर, हाथ पाव और मुख को धोना, सवाहन-मर्दन करना, पैर आदि अङ्गों का चपन आदि करना, सब ओर से देह को मलना, और विलेपन करना, चूर्ण वास-सुगन्धित द्रव्य से शरीर को सुवासित करना, अगर आदि से धूप देना, शरीर का मण्डन करना, चारित्र को रंग विरगे करने वाली नख केश आदि की रचना करना,हसित-हास, व विकार युक्त बोलना, नाट्य गीत और भेरी आदि वाद्य की ध्वनि, नट-नाटक करने वाले, नर्तक-नृत्य करने वाले, जल्ल-डोरी पर खेलने वाले तथा मल्ल-कुश्ती लडने वाले-इन सबको देखना, और विदूषक सम्बन्धी हास्य चेष्टाएं (जाणि य) और जो (सिंगारागाराणि य) शृङ्गार रसके घरकी तरह (अन्नाणि य) और अन्य इस प्रकार की वस्तुये (तव-सजम-बंभचेर घातोव

कथक-प्लवक-ला (रा) सकाऽऽख्यापक-लंख-मङ्ख-तूणइल्ल-तुम्बवीणिक-तालाचर-प्रकरणानि च दू्नि मधुरस्वर गीत सुस्वराणि-अन्यानिचैवमादिनि तपः संयम ब्रह्मचर्य-घातोपघातिकानि-अनुचरता ब्रह्मचर्यं न तानि श्रमणेन लभ्यानि द्रष्टुं न कथयितुं, नापिस्मर्तुम् । एवं पूर्वरत-पूर्वक्रीडित-विरति समितियोगेन भावितो भवत्यन्तराऽऽत्मा आरतमना विरतग्रामधर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्त ॥ ४ ॥

पञ्चमकम्—आहार पानीय-स्निग्ध भोजनविवर्जक संयत. सुसाध्व्यपगत क्षीर-दधि-सर्पि-नवनीत-तैल-गुड़-खण्ड-मत्स्यण्डिक- मधु-मद्य -मांस-खाद्यक-विकृति परित्यक्त कृताऽऽहारो न दर्पणं, न बहुशो, न नैत्यिक. न शाक सूपाधिकं, न प्रभूतं । तथा भोक्तव्यम्, यथा तस्य यात्रामात्रायभवति । न च भवति विभ्रमो न भ्रंशना च धर्मस्य । एवं प्रणीताऽऽहार-विरति समिति-योगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा आरतमना विरतग्रामधर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्त ॥ ५ ॥

एवमिदं संवरस्य द्वार सम्यग् संवृतं भवति सुप्रणिहितम् । एतैःपञ्चभिः कारणै र्मनोवचन कायपरिरक्षितैर्नित्यमामरणान्तं चैष योगो नेतव्यो धृतिमता मतिमताऽना स्रवोऽकलुषोऽच्छिद्रोऽपरिस्रावी असंक्लिष्ट. शुद्धः सर्वजिनाऽनुज्ञातः । एवं चतुर्थं संवरद्वारं स्पृष्टं पालितं शोधितं तीर्णं कीर्तितम् आज्ञयाऽनुपालितं भवति । एवं ज्ञातमुनिना भगवता प्रज्ञप्त प्ररूपित प्रसिद्धं सिद्धवर शासनमिदमाख्यापितं सुदेशितं प्रशस्तम् । चतुर्थं संवरद्वारं समाप्तमिति ब्रवीमि ॥

अन्व०–"(तस्स) उस (चउत्थवयस्स) चतुर्थ ब्रह्मचर्य व्रत की (इमा) ये निम्नोक्त (पंचभावणाओ) पांच भावनायें (अबंभचेर-वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए) अब्रह्मचर्य के निवृत्तिरूप व्रत की रक्षा के लिये (होंति) होती हैं।

(पढमं) प्रथम भावना-स्त्री युक्त आश्रय वर्जन रूप जैसे—(सयणासण-घर-दुवार- अंगण- आगास-गवक्ख-साल-अभिलोयण- पच्छवत्थुक-पसाहणकण्हाणिकावकासा-अवकासा) शय्या, आसन-विस्तर, गृह द्वार, आंगन-घर का चौक आकाश ऊपर से खुला स्थान, गवाक्ष-जाली झरोखा, भांड आदि रखने की शाला, अभिलोकन-बैठकर देखने का ऊंचा स्थान, पश्चाद् गृह-पीछे का घर, प्रसाधन-शरीर के मंडन और स्नान करने के स्थान, स्त्री संसक्त त्यागने योग्य है (जे य) और जो (वेसियाणं अवकासा) वेश्याओं के आश्रय स्थान हैं (अच्छंति य जत्थ इत्थिकाओ) और जहां स्त्रियां बैठती है (अभिक्खणं) और बार बार (मोह दोस

विवाह–चोल्लकेसु य तिथि सुजन्ने सु उस्सवेसु य सिंगारागार–चारु वेसाहिं हाव– भाव–पललिय–विक्खेव–विलास –सालिणीहिं अणुकूल पेम्मिकाहिं सद्धिं अणुभूया सयण–संपओगा, उदुसुह–वरकुसुम सुरभिचंदण सुगंधि-वर वास–धूव–सुह फरिस–वत्थ–भूसणगुणोववेया, रमणिज्जा उज्जगेय पउर–नड नट्टक(ग)–जल्ल –मल्ल–मुट्ठिक–वेलंबग-कहग–पवग–लासग–आइक्खग–लंख–मंख–तूणइल्ल–तुंब वीणिय–तालायर–पकरणाणि य वहूणि महुर सर–गीत सुस्सराइं, अन्नाणि य एवमादियाणि–तव–संजम–वंभचेर–घातोवघातियाइं अणुचरमाणेणं वंभचेरं न तातिं समणेण लब्भा दट्ठुं न कहेउं, नविसुमरिउं जे। एवं पुव्वरय–पुव्वकीलिय–विरति समिति –जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा आरयमण–विरत–गामधम्मे जि इंदिए वंभचेर गुत्ते ॥ ४ ॥

पंचमगं आहार–पणीय–निद्ध भोयण–विवज्जते, संजते सुसाहू, ववगय–खीर–दहि– सप्पि–नव नीय–तेल्ल–गुल–खंड –मच्छंडिक– महु–मज्ज–मंस–खज्जक–विगति–परिचत्तकयाहारे ण दप्पणं, न, वहुसो, न नितिकं, न सायसूपाहिकं, न खद्धं तहा भोत्तव्वं जह से जाया माता य भवति। नय भवति विब्भमो न भंसणा य धम्मस्स। एवं पणीयाहार विरति समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा आरयमण विरत गाम धम्मे जिइंदिए वंभचेर गुत्ते ५। एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सु-पणिहितं इमेहिं पंचहिवि कारणेहिं मण–वयण–कायपरिरक्खिएहिं णिच्चं आमरणंतं च एसो जोगो णेयव्वो, धितिमता (या) मतिमता (या) अणासवो, अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो, सुद्धो सव्व जिणमणुन्नातो, एवं चउत्थं संवरदारं फासियं पालितं सोहितं तीरितं किट्टितं आणाए अणुपालियं भवति, एवं नायमुणिणा भगवया पन्नवियं परूवियं पसिद्धं

अणुचरमाणेण) ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले साधुओ को वैसी कथायें (न कहेयव्वा) नहीं कहनी चाहिए (न सुणेयव्वा) न सुननी चाहिए (न चितेयव्वा) न चिन्तन करनी चाहिए (एवं) इस प्रकार (इत्थी कह विरति-समिति जोगेण) स्त्री कथा से विरतिरूप समिति के योग से (भावितो अंतरप्पा) युक्त अन्तःकरण वाला (आरतमण विरतगामधम्मे) ब्रह्मचर्य मे लीन मन वाला, और स्त्री सम्भोग रूप इन्द्रिय विकार से दूर रहने वाला (जितिंदिए) जितेन्द्रिय (बंभचेरगुत्ते) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवइ) होता है ॥ २ ॥

(ततीयं) तीसरी भावना-स्त्रीरूप दर्शन के निषेधरूप है, जैसे-(नारीण) स्त्रियों के (हसितभणियं) हास्य और विकारयुक्त भाषण को तथा (चेट्ठिय-विप्पेक्खिय-गइ-विलास-कीलियं) हाथ आदि की चेष्टा, विप्रेक्षण- कटाक्षयुक्त देखना, गति-गज हंस के समान चलना तथा विलास और क्रीडा को (विब्बोतिय-नट्ट-गीत-वातिय-शरीर संठाण-वन्न-कर-चरण-नयण-लावण्ण-रूव-जोव्वण-पयोहरा धर-वत्थालंकार-भूसणाणि य) अनुकूल वस्तु मिलने पर अभिमान वश किया गया तिरस्कार भाव, नाट्य, नृत्य, गीत-गाना, [illegible] आदि बजाना, शरीर का आकार और गौर श्याम आदि वर्ण हाथ पैर [illegible] का लावण्य-मनोहरपन, रूप, यौवन स्तन अधर-नीचे के ओष्ठ, वस्त्र अलङ्कार और सौभाग्य चिन्ह भूत तिलक आदि भूषण इन सब को (य) और (गुज्झोवकासियाइं) गुह्य प्रदेशो को (अन्नाणि य और अन्य प्रकार के स्त्री सम्बन्धी चेष्टा व अङ्गोपाङ्ग आदि जो (तव-संजम-बंभचेर-घातोवघातियाइं) तप, संयम और [illegible] चर्य के घातोपघात करने वाले हैं ऐसे विकारी भावो को (बंभचेरं अणुच [illegible] ब्रह्मचर्य का पालन करने वालो को चाहिए कि (न चक्खुसा न मनसा न वयसा) आखो से न देखें, मन से न सोचें, और वचनो से न [illegible] और (न पत्थेयव्वाइं पावकम्माइं) पाप युक्त कर्मो की प्रार्थना-इच्छा भी नहीं करे (एवं) इस प्रकार (इत्थीरूव विरति समिति जोगेण) स्त्रियों के रूप दर्शन की विरति-विरमण रूप समिति के योग से (भावितो) युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला साधु (आरत मण विरत गाम धम्मे) ब्रह्मचर्य मे लीन मन वाला और स्त्री सभोग से निवृति वाला (जितिंदिए) जितेन्द्रिय (बंभचेर गुत्ते) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवति) होता है ॥ ३ ॥

(चउत्थं) चौथी भावना-कामोत्तेजक वस्तुओ के स्मरण दर्शन आदि का त्याग

(न वहेउ) कहने के योग्य भी नहीं है (न वि सुमरिउं) स्मरण करने के योग्य भी नहीं है (एवं) इस प्रकार (पुव्वरय-पुव्वकीलिय-विरति-समिति जोगेण) पूर्वरत, पूर्वक्रीडित-स्मरण विरतिरूप समिति के योग से (भावितो) युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (आरयमण-विरतगामधम्मे) ब्रह्मचर्याराधन मे लीन मन वाला और मैथुन से निवृत्त (जिइंदिए) जितेन्द्रिय,(बंभचेर गुत्ते) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवइ) होता है ॥ ४ ॥

(पचमगं पांचवीं भावना-प्रणीत भोजन त्याग रूप, जैसे—(आहारपणीय-णिद्ध-भोयण विवज्जते) प्रणीत भोजन-सरस आहार और स्निग्ध-चिकने भोजन का परिहार करने वाला (संजते) संयमी (सुसाहू) सुसाधु (ववगय-खीर-दहि-सप्पि-नवनीय-तेल- गुल-खंड-मच्छंडिक- महुमज्ज-मंस- खज्जक-विगतिपरिचत्त कयाहारे) दूध दही, घी, मक्खन, तेल, गुड़, खांड, मच्छंडी-मीसरी, मधु, मद्य, मांस, खाद्यक-पक्वान और विगई के भोजन रहित आहार करने वाला (ण दप्पणं) दर्प कारक आहार नहीं 'खावे' (न बहुसो न नितिकं) दिन मे बहुत बार नही 'खावे', लगातार नित्य नहीं 'खावे', (न साय सूपाहिकं) न दाल और सालनक-व्यञ्जन की अधिकता वाला (न खद्धं) और ज्यादा भी नहीं (तहा भोत्तव्वं) वैसे खाना चाहिए (जहा) जैसे (से) उस ब्रह्मचारी के (जाया माता य) व्रत निर्वाह मात्र के लिये (भवति) होवे। ऐसा आहार सेवन करने से (न य भवति विब्भमो) विभ्रम-मन की चंचलता नही होती (नय भसणा धम्मस्स) ब्रह्मचर्य धर्म का नाश भी नही होता (एवं) इस प्रकार (पणीयाहार-विरति-समिति जोगेण भावितो) प्रणीताहार विरति रूप समिति के योग से युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (आरयमण-विरत-गाम धम्मे) ब्रह्मचर्याराधन मे लीन मन वाला और मैथुन से निवृत्त अतएव (जिइंदिए) जितेन्द्रिय व (बंभचेरगुत्ते) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवति) होता है ॥ ५ ॥

(एवमिणं संवरस्स दारं) इस प्रकार यह ब्रह्मव्रत रूप संवरद्वार (सम्मं संवरियं) अच्छी तरह संवरण किया गया (सुप्पणिहियं) सुरक्षित (होइ) होता है (इमेहिं पंचहि वि कारणेहिं मण वयण-काय परिरक्खिएहिं) मन, वचन काय इन तीनों से सुरक्षित इन पूर्वोक्त पाच भावना रूप पाच कारणो से (णिच्चं आमरणं तं) सदा मरण पर्यन्त (एसो जोगो) यह योग-व्यवहार (धितिमता मतिमता)

जो इन्द्रियपोषक प्रसङ्ग है और अन्य भी ऐसे शृङ्गार रसके घरके समान तप संयम और ब्रह्मचर्य का घात करने वाले है ब्रह्मचारिओ को उन सबो का त्याग करना चाहिए। नीचे के इन तप नियमादि योगो से सदा आत्मा को युक्त रखना चाहिए। जैसे-१ स्नान व दन्त मंजन नही करना, स्वेद आदि को धारण करना, २ मौनव्रत और ३ केश का लुञ्चन करना, ४ वस्त्र के अभाव मे या उनकी अल्पता में तथा भूख, प्यास, ठंढी गर्मी मे सहिष्णुता व जितेन्द्रिय होना ५ काष्ठशय्या, भूमिशय्या। ६ भिक्षा आदि के हेतु घरो मे जाने पर लाभ अलाभ या मान अपमान आदि कुछ भी हो तथा डांश मच्छर आदि का प्रतिकूल स्पर्श सहन करना चाहिये। और तप नियम विनय आदि गुणो से आत्मा को पवित्र करना चाहिए। इस प्रकार उसका ब्रह्मचर्य स्थिर हो जाता है। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये प्रभु महावीर ने यह अच्छा प्रवचन कहा है, जो परलोक मे सुखदायी यावत् सब दु ख और पापो का शमनकरने वाला है। इस चतुर्थ व्रत की रक्षा के लिये पांच भावनायें होती हैं-जैसे-१ स्त्री सम्बन्ध रहित वसति का सेवन करे। स्त्री सम्बन्ध से संक्लेश युक्त शय्या, आसन, और घर द्वार आदि सब स्थान और जो वेश्याओ के स्थान हैं तथा जहा स्त्रियां रहती और मोह राग आदि दुर्भाव बढाने वाली अनेक प्रकार की कथायें बारंबार कहती हैं, ऐसे ही स्त्रियो के विशेष सम्बन्ध वाले अन्य स्थान भी वर्जनीय हैं। जहां मनकी स्थिरता या व्रत का भङ्ग हो, अथवा इष्ट वस्तु मिलाने और अनिष्ट निवारण की चिन्तारूप आर्त ध्यान व रौद्रध्यान हो। साधारण या इन्द्रियों के प्रतिकूल स्थान मे रहने वाला पाप भीरु साधु पूर्वोक्त स्थानो का त्याग करे।

२-स्त्री कथा त्यागरूप दूसरी भावना-व्रतों को स्त्रियो के बीच विचित्र प्रकार की कथा नहीं करनी चाहिए। जो कथा हास्य और शृङ्गाररस प्रधान लौकिक कथा की तरह बिब्बोक विलासयुक्त हो। आवाह और विवाह कथा की तरह मोह उत्पन्न करने वाली, तथा स्त्रियो के अच्छे बुरे भाग्य का वर्णन करने वाली हो और स्त्रियों की चौंसठ कलाओ के परिचयरूप या उनके रङ्ग रूप देश जाति और वेश आदि के वर्णन करने वाली हो। ऐसी अन्य भी जो शृङ्गाररस से भरी हुई और संयम की घातक हैं ब्रह्मचारी को वैसी कथायें न कहनी चाहिए, और न श्रवण व चिन्तन ही करना चाहिए।

३-रूप दर्शन विरति रूप तीसरी भावना-स्त्रियों का हंसना, विकार युक्त बोलना

पञ्चम संवरद्वारम्

सम्बन्ध-पूर्व अध्ययनमे मैथुन विरमण रूप चतुर्थव्रतका वर्णन किया। यह परिग्रह से निवृत्त होने पर ही सुलभ होता है। इसलिये अब सूत्र क्रमसे सम्बन्धित अपरिग्रह व्रतका इस अध्ययनमें वर्णन करते हैं। उसका पहला सूत्र निम्न लिखित है-,,

मूल-"जंबू! अपरिग्गह संवुडे य समणे आरंभ परिग्गहातो विरते, विरते कोहमाण माया लोभा। एगे असंजमे, दो चेव राग दोसा, तिन्नि य दंडगारवाय गुत्तीओ, तिन्नि, तिन्नि य विराहणाओ, चत्तारि कसाया, झाण-सन्ना-विकहा-तहा य हुंति चउरो,। पंच य किरियाओ, समिति-इंदिय-महव्वयाइंच। छज्जीव निकाया। छच्च लेसाओ, सत्त भया, अट्ठ य मया, नव चेव य बंभचेर य गुत्ती। दसप्पकारे य समण धम्मे। एक्कारस य उवासकाणं,। बारस य भिक्खु पडिमा। किरियठाणा १३, य भूयगामा, १४, परमा धम्मिया १५, गाहासोलस या असंजम १७, अबंभ-१८, णाय-१९, असमाहिठाणा, २०, सबला, २१, परिसहा, २२, सूयगड २३, ज्झयण-देव-२४, भावण २५, उद्देस-२६, गुण-२७, पकप्प-२८, पावसुत-२९, मोहणिज्जे, ३०, सिद्धातिगुणा ३१, य, जोगसंगहे, ३२, तित्तीसा ३३, आसातणा,। सुरिंदा आदिं एक्कातियं करेत्ता एक्कुत्तरियाए वड्ढिए (वुड्ढी) तीसातो जाव उ भवे, तिकाहिका विरती पणिहीसु, अविरतीसु य एवमादिसु बहुसु ठाणेसु जिणपसत्थेसु अवितहेसु सासयभावेसु अवट्ठिएसु संकं कंख निराकरेत्ता सद्दहते, सासणं भगवतो अणियाणे अगारवे अलुद्धे अमूढ मण वयण काय गुत्ते ॥ सूत्र १। २८॥

पञ्चम संवरद्वारम्

सम्बन्ध-पूर्व अध्ययनमे मैथुन विरमण रूप चतुर्थव्रतका वर्णन किया। यह परिग्रह से निवृत्त होने पर ही शुभ होता है। इसलिये अब सूत्र क्रमसे सम्बन्धित अपरिग्रह व्रतका इस अध्ययनमें वर्णन करते हैं। उसका पहला सूत्र निम्न लिखित है-,,

मूल-"जंबू! अपरिग्गह संवुडे य समणे आरंभ परिग्गहातो विरते, विरते कोहमाण माया लोभा। एगे असंजमे, दो चेव राग दोसा, तिन्नि य दंडगारवाय गुत्तीओ, तिन्नि, तिन्नि य विराहणा ओ, चत्तारि कसाया, झाण-सन्ना-विकहा-तहा य हुंति चउरो, । पंच य किरियाओ, समिति -इंदिय-महव्वयाइंच। छज्जी निकाया। छच लेसाओ, सत्त भया, अट्ठ य मया, नव चेव य बंभचेर य गुत्ती। दसप्पकारे य समण धम्मे। एक्कारस य उवासकाणं, । बारस य भिक्खु पडिमा। किरियठाणा १३, य भूयगामा, १४, परमा धम्मिया १५, गाहासोलस या असंजम १७, अबंभ-१८, णाय-१९, असमाहिठाणा, २०, सबला, २१, परिसहा, २२, सूयगड २३, ज्झयणा-देव-२४, भावणा २५, उद्देस-२६, गुण-२७, पकप्प-२८, पावसुत -२९, मोहणिज्जे, ३०, सिद्धातिगुणा ३१, य, जोगसंगहे, ३२, ति त्तीसा ३३, आसातणा, । सुरिंदा आदि एकातियं करेत्ता एक्कुत्तरियाए वड्ढिए (वृद्धी) तीसातो जाव उ भवे, तिकाहिका विरती पणिहीसु, अविरती सु य एवमादिसु बहुसु ठाणेसु जिणपसत्थेसु अवितहेसु सासयभावेसु अव-ट्ठिएसु संकं कंखं निराकरेत्ता सद्दहते, सासणं भगवतो अणियाणे अगार वे अलुद्धे अमूढ मण वयण काय गुत्ते ॥ सूत्र १ । २८ ॥

चेष्टा, कटाक्ष आदि क्रियायें और शरीर के अङ्गोपाङ्ग व आकार तथा वस्त्रालंकार आदि वेष भूषा और गोप्य अंग ऐसे अन्य भी ब्रह्मचारी को नहीं देखना चाहिए, न मन में इनका विचार करना चाहिए और न इन निन्दित कार्यों की प्रार्थना ही करनी चाहिए। क्योंकि इनके दर्शन स्मरण तप संयम के घातक हैं।

४–पूर्व क्रीडित भोग आदिके स्मरणका त्यागरूप चौथी भावना पूर्वजीवन की रति क्रीडा और पूर्व के जो विविध सम्बन्धी हैं तथा विवाह आदि विविध प्रसङ्गो पर सुन्दरी और प्रेमवती स्त्रियों के साथ जो सभोग आदि अनुभव किये हैं। ऋतु के अनुकूल सुखद उत्तम फूल आदि सुगन्धि और स्पर्श आदि अन्य गुण युक्त, वाद्य आदि के कई रमणीय साधन और गवैयों के मधुर गीत तथा ऐसे अन्य प्रसङ्ग जो तप सयम के घातक हैं, ब्रह्मचारी को उनका वर्णन करना, देखना और स्मरण करना योग्य नहीं है।

५–प्रणीत भोजन त्याग रूप पांचवीं भावना–सयमी सुसाधु सरस एवं स्निग्ध भोजन का त्यागी होता है। जो दूध दही घी आदि विकृति कारक पदार्थो का आहार नहीं करने वाला है। भोजन के विशेष नियम–काम वर्द्धक आहारनहीं करना १ एक दिन में बहुतवार नहीं खाना २ प्रति दिन लगातार नहीं खाना ३, शाक व दाल की अधिकता वाला भोजन भी नहीं करना, ४ मर्यादा से ज्यादा भी भोजन नहीं करना।५

सारांश–इस प्रकार खाना चाहिए जिससे व्रतीकी संयम यात्रा निर्बाध चलती रहे। ऐसा करने से मनकी अस्थिरता और व्रतका भङ्ग–नहीं होता। इस प्रकार प्रणीताहार विरति से युक्त अन्तःकरण वाला साधु ब्रह्मचर्य मे लीन तथा मैथुन से निवृत्त होता है। अतएव जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य गुप्त रहता है। ५। इस प्रकार सवर का यह चतुर्थद्वार सम्यक सवरण किया हुआ सुरक्षित रहता है। मन, वाणी और कायसे सुरक्षित इन पाच कारणों से सदा मरण पर्यन्त यह योग धीर बुद्धिमान् को निभाना चाहिए। यह आस्रव रहित यावत् सवतीर्थङ्करों से अनुज्ञात है। इस प्रकार चौथा संवर द्वार स्पर्शन किया गया यावत् तीर्थङ्करों की आज्ञासे पालित होता है। इस प्रकार ज्ञात मुनि प्रभुमहावीर ने इसे कहा है। यह अर्हन्तो का शासन यावत् उत्तम है॥ चौथा संवर द्वार पूर्ण हुआ।

॥ समाप्तं चतुर्थं संवरद्वारम् ॥

॥ सम्पूर्णं ब्रह्मचर्यं भावार्थम् ॥

पञ्चम संवरद्वार

सम्बन्ध-पूर्व अध्ययनमे मैथुन विरमण रूप चतुर्थव्रतका वर्णन किया। वह परिग्रह से निवृत्त होने पर ही शुभ होता है। इसलिये अब सूत्र क्रमसे सम्बन्धित अपरिग्रह व्रतका इस अध्ययनमें वर्णन करते हैं। उसका पहला सूत्र निम्न लिखित है-,,

मूल-"जंबू! अपरिग्गह संवुडे य समणे आरंभ परिग्गहातो विरते, विरते कोहमाण माया लोभा। एगे असंजमे, दो चेव राग दोसा, तिन्नि य दंडगारवाय गुत्तीओ, तिन्नि, तिन्नि य विराहणाओ, चत्तारि कसाया, झाण-सन्ना-विकहा-तहा य हुंति चउरो,। पंच य किरियाओ, समिति -इंदिय-महव्वयाइंच। छज्जीव निकाया। छच्च लेसाओ, सत्त भया, अट्ठ य मया, नव चेव य बंभचेर य गुत्ती। दसप्पकारे य समण धम्मे। एक्कारस य उवासकाणं,। बारस य भिक्खु पडिमा। किरियठाणा १३, य भूयगामा, १४. परमा धम्मिया १५, गाहासोलस या असंजम १७, अबंभ-१८, णाय-१९, असमाहिठाणा, २०, सवला, २१, परिसहा, २२, सूयगड २३, ज्झयणा-देव-२४, भावणा २५, उद्देस-२६, गुण-२७, पकप्प-२८, पावसुत -२९, मोहणिज्जे, ३०, सिद्धातिगुणा ३१, य, जोगसंगहे, ३२, तित्तीसा ३३, आसातणा,। सुरिदां आदि एकातियं करेत्ता एक्कुत्तरियाए वड्ढिए (छट्ठी) तीसातो जाव उ भवे, तिकाहिका विरती पणिहीसु, अविरती सु य एवमादिसु वहूसु ठाणेसु जिणपसत्थेसु अवितहेसु सासयभावेसु अवट्ठिएसु संकं कंखं निराकरेत्ता सद्दहते, सासणं भगवतो अणियाणे अगारवे अलुद्धे अमूढ मण वयण काय गुत्ते॥ सूत्र १।२८॥

छाया-"हे जम्बू ! अपरिग्रहसंवृतश्च श्रमण आरम्भपरिग्रहाद्विरतो, विरतः क्रोध मान माया लोभात् । एकोऽसंयमः, द्वौ च रागद्वेषौ, त्रीणि च दण्ड-गौरवाणि । तिस्रो गुप्तयः, तिस्रश्च विराधनाः । चत्वार कषायाः, ध्यान-संज्ञा-विकथास्तथा भवन्ति चत्वारः । पञ्च च क्रियाः समितीन्द्रिय-महाव्रतानि च । षड् जीवनिकायाः षड् लेश्याः । सप्तभयानि, अष्टौ च मदाः नव चैव ब्रह्मगुप्तयः । दशप्रकाराश्च श्रमण धर्माः । एकादश चोपासकानाम् । द्वादश च भिक्षुप्रतिमाः । क्रियास्थानानि च । भूतग्रामाः, परमाधार्मिकाः, गाथा षोडशकानि । असंयमाऽब्रह्म-ज्ञाताऽसमाधि स्थानानि । शबलाः परीषहाः सूत्रकृताऽध्ययनानि । देव-भावनो-द्देश-गुण-प्रकल्प-पापश्रुत-मोहनीयानि । सिद्धातिगुणाः च योग संग्रहाः । त्रयस्त्रिंशदाशातनाः । सुरेन्द्रादिकाः एकादिकां कृत्वा एकोत्तरिकया वृद्ध्या त्रिंशद्यावद् भवेत् त्रिकाऽधिका । विरति प्रणिधिषु अविरतिषु चैवमादिकेषु, बहुषु स्थानेषु जिनप्रशस्तेषु अवितथेषु शाश्वतभावेषु अवस्थितेषु शङ्काकांक्षां निराकृत्य श्रद्धत्ते, शासनं भगवतोऽनिदानोऽगौरवोऽलुब्धोऽमूढो मनोवचन कायगुप्तः ।। सू० १ । २८ ।।

अन्व०-"(जबू) हे जम्बू (अपरिग्गह संवुडे) मूर्च्छा रहित और इन्द्रिय व कषाय के संवरण वाला, फिर ब्रह्मचर्य आदि गुण युक्त तथा (आरंभ-परिग्गहातो) आरम्भ-हिंसा व बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह से (विरते) अलग है (समणे विरते कोह माण माया लोभा) और जो साधु क्रोध मान माया एवं लोभ से निवृत्त है । (एगे असंजमे) अविरति रूप असंयम एक है (दो चेव राग दोसा) और राग द्वेष रूप दो ही बन्धन हैं (तिन्नि य दंड गारवा) और तीन दंड और तीन गारव है (य) और (गुत्तीओ तिन्नि) तीन गुप्तियाँ (तिन्नि य विराहणाओ) और तीन विराधनायें है (चत्तारि कसाया) चार कषाय-क्रोध आदि (झाण-सन्ना) ध्यान, संज्ञा (विकहातहा य हुंति चउरो) और ऐसी ही विकथायें चार चार हैं (पच य किरियाओ) कायिकी आदि पाच क्रियाएं (समिति-इंदिय-महव्वयाइ) और समितियां, इन्द्रिएं व महाव्रत भी पाच ही हैं (च) और (छज्जीवनिकाया) पृथ्वी काय आदि जीव निकाय छः हैं (छच्च लेस्साओ) लेश्यायें भी छः हैं (सत्त भया) सात भय (अट्ठ य मया) और आठ मद स्थान (नव चेव य बंभचेर य गुत्ती) फिर नव ही ब्रह्मचर्यव्रत की गुप्तियां हैं (दसप्पकारे य समणधम्मे) और दश प्रकार का श्रमणधर्म (एकारस य उवासकाणं) फिर इग्यारह श्रावकों की पडिमा

और (बारस य भिक्खुपडिमा) बारह साधुकी पडिमा–अभिग्रह विशेष है (किरिय ठाणा) क्रिया स्थान तेरह है, फिर (भूयगामा) जीवों के १४ भेद (परमाधम्मिया) परमाधार्मिक (गाहासोलसया) सूत्र कृताङ्ग प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्ययन (असजम–अबंभ–णाय–असमाहिठाणा, सबला) १७ प्रकार के असंयम, अब्रह्म–१८ प्रकार का मैथुन, ज्ञात–ज्ञाताप्रथमश्रुतस्कन्ध के १६ अध्ययन, असमाधि–२० असमाधि स्थान, शबल दोष–२१ प्रकार के शबल दोष है (परीसहा) परीषह–क्षुधा आदि २२ परीषह (सूयगडज्झयण–देव–भावण–उद्देस–गुण–पकप्प–पावसुत–मोहणिज्जे) सूत्र कृताध्ययन सूत्रकृताङ्ग के २३ अध्ययन, देव–२४ प्रकार के देव, भावना–पांच महाव्रतो की पच्चीस भावनाये, उद्देश–२६ उद्देशन काल, गुण–मुनिवर के २७ गुण, प्रकल्प–२८ आचारप्रकल्प, पापश्रुत–२६ पापश्रुत और मोहनीय–३० मोहनीय स्थान (सिद्धातिगुणा) सिद्धाति गुण–सिद्धो के ३१ अतिशय गुण (य) और (जोग संगहे) योग सग्रह–बत्तीस योगसग्रह (तित्तीसा आसातणा) और तेतीस अशातनाये, (सुरिंदा आदिं, एक्कातियं करेत्ता एक्कुत्तरियाए वड्ढिए) सुरेन्द्र आदि को एक आदि सख्या युक्त करके फिर उत्तरोत्तर एक एक की वृद्धि से (तीसातो जाव उ भवेतिकाहिका) यावत् तीन अधिक तीस याने तेतीस–होते है, इन सब मे तथा (विरती पणिहीसु अविरती सु) विरति–प्राणातिपातादि से विरति तथा चित्त की विशिष्ट–एकाग्रता मे व अविरति और (एव मादिसु बहूसु ठाणेसु) इस प्रकार के बहुत से स्थानो मे जो (जिण–पसत्थेसु अवितहेसु सासय–भावेसु अवट्ठिए सु) तीर्थङ्करो के शासित, सत्य और शाश्वत–नित्यभाव अवस्थित–सदा समान रहने वाले है, उनमें (संकं कंख निरा करेत्ता) शङ्का–संशय और अन्यमत ग्रहण रूप कांक्षा को हटाकर (भगवतो सासणं सद्दहते) वह साधु भगवान के शासन की श्रद्धा करता है (अणियाणे) ऋद्धि प्रार्थनादि निदान रहित (अगारवे) ऋद्धि आदि तीन गारव रहित (अलुद्धे) लोभ रहित (अमूढ–मण–वयण–काय–गुत्ते) मूर्खता शून्य और मन वचन व शरीर से गुप्त है ॥ १ । २८ ॥

भावा०–अपरिग्रह के कारण और संवर युक्त साधु आरम्भ परिग्रह से निवृत्त तथा क्रोध, मान, माया, व लोभ से अलग रहता है, एक प्रकार का असयम राग द्वेष रूप दो बन्धन और मनोदण्ड आदि तीन दण्ड, ऋद्धि,रस, एवं सातारूप तीन गारव और मनोगुप्ति वगैरह तीन गुप्ति तथा ज्ञान विराधना आदि तीन विराधना, क्रोध

आदि चार कषाय, चार ध्यान, चार संज्ञा तथा चार ही विकथा होती है, कायिकी आदि पांच क्रियायें, ईर्यादि पांच समिति और श्रोत्रेन्द्रिय आदि पांच इन्द्रियां व अहिंसा आदि पांच महाव्रत हैं और पृथ्वी आदि छः जीव समूह और कृष्णनील आदि छः लेश्यायें यावत् तेंतीस अशातनाएं बत्तीस या चौंसठ देवेन्द्र हैं (विशेष परिचय टिप्पण मे देखे) एक आदि संख्या को प्रथम करके एक एक की आगे वृद्धि से यावत् तेंतीस होते है ऐसे अन्य भी चौंतीस आदि के वहुत से स्थान हैं, जिन प्रदर्शित सत्य शाश्वत और नित्य एक रूप रहने वाले उन भावो में तथा विरति आदि मे गुरु सेवा आदि से शंका कंखा को दूर कर वह प्रभु के शासन पर पूर्ण श्रद्धा करता है, निदान, गारव और लोभादि रहित मुनि मन वचन शरीर से गुप्त होता है ॥ १ । २८ ॥

अपरिग्रह व्रती साधु का स्वरूप कहा अब प्रस्तुत अध्ययन के विषय मूल अपरिग्रह को कहते है—

मूल—" जो सो वीर वर—वयण—विरति—पवित्थर—बहु विहप्पकारो सम्मत्त—विसुद्ध मूलो धितिकंदो विणयवेतितो निग्गत—तिलोक्क—विपुल जस निविड़—पीण—पवर-सुजातखंधो, पंचमहव्वय-विसालसालो, भावणतयं तज्झाण—सुभजोग—नाण पल्लव—वरंकुरधरो, बहुगुणकुसुमसमिद्धो, सील —सुगंधो अणण्हव—फलो, पुणोय मोक्खवर बीजसारो, । मंदरगिरि सिहर चूलिका इव इमस्स मोक्खवर—मुक्तिमग्गस्स सिहरभूओ संवर वर पादपो चरिमं संवरदारं । जत्थ न कप्पइ गामागर—नगर—खेड—कव्वड—मडंब —दोण—मुह—पट्टणासमगयं च किंचि अप्पं व बहुं व अणुं व थूलं व तस थावर. काय—दव्वजायं मणसावि परिघेत्तुं । ण हिरण्ण—सुवण्ण—खेत वत्थु, न दासी—दास—भयक—पेस—हय—गय—गवेलगं वा (च,) न जाण—जुग्ग सयणासणाइ, ण छत्तकं—न कुंडिया, न उवाणहा, न पेहुण—वीयण— तालियंटका, ण यावि. अय—तउय—तंब—सीसक—कंस—रयत—जातरूव— मणि—मुत्ता धार पुडक—संख—दंत—मणि—सिंग—सेल—कायवर—चेल पत्ताइं मह रिहाइं परस्स अज्झोववाय—लोभजणणाइं परियड्ढेउं, गुणवओ न

यावि पुप्फ–फल–कंद–मूलादियाइं सणसत्तरसाइं सव्वधन्नाइं तिहिवि जो-गेहिं परिघेत्तुं । ओसह–भेसज्जभोयणट्ठयाए संजए णं । किं कारणं ! अप-रिमितणाणदंसणधरेहिं सील–गुण–विणय–तव–संजम नायकेहिं तित्थय-रेहिं सव्वजगजीव–वच्छलेहिं तिलोयमहिएहिं जिणवरिंदेहिं एसजोणी जंग माणं दिट्ठान कप्पइ जोणिसमुच्छेदोत्ति, तेण वज्जंति समणसीहा । जंपिय ओदण–कुम्मासगंज–तप्पण–मंथु–भुज्जिय–पलल–सूप- सक्कुलि–वेढिम–वर सरक–चुन्न–कोसगपिंड–सिहरिणि–वट्ट–मोयग–खीर–दहि–सप्पि-नवनीत तेल्ल–गुल–खंड–मच्छंडिय–मधु–मज्ज–मंस– खज्जक– वंजण विधिमादिकं, पणीयं उवस्सए, परघरे व रन्ने न कप्पति तंपि सन्निहिं काउं सुविहियाणं जंपि य उद्दिट्ठ–ठविय रचियग–पज्जवजातं, पकिएण–पाउकरण–पामिच्चं, मीसकजायं, कीयकडपाहुडं च दाणट्ठ–पुन्नपगडं, समण–वणीमगट्ठयाए व कयं, पच्छाकम्मं पुरेकम्मं, निच्च कम्मं, मक्खियं, अतिरित्तं, मोहरं चेव सयग्गहमाहडं, मट्टिउवलित्तं, अच्छेज्जं चेव अणीसट्ठं जंतं तिहीसु जन्नेसु ऊसवेसु य अंतो व बहिं व होज्ज-समणट्ठयाए ठवियं, हिंसा सा वज्ज–संपउत्तं न कप्पति तंपि य परिघेत्तुं ।

छाया–"योऽसौ वीरवर–वचन–विरति–प्रविस्तर–बहुविधप्रकारः सम्यक्त्व–विशुद्धमूलो धृतिकन्दो विनय-वेदिक स्त्रैलोक्य-निर्गत-विपुलयशो निबिड–पीन–प्रवर सुजातस्कन्धः पञ्चमहाव्रत–विशालशालो भावना– त्वगन्तर्ध्यान–शुभयोग– ज्ञान पल्लव–वराङ्कुरधरो बहुगुण–कुसुमसमृद्धः शीलसुगन्धिः–अनास्रव फलः पुनश्च मोक्षवर बीजसारो, मन्दरगिरि–शिखर चूलिक इवास्य मोक्षवर–मुक्तिमार्गस्य शिखरभूतः संवर वरपादपः चरमं संवरद्वारम् । यत्र न कल्पते ग्रामाकर–नगर–खेड–कर्बट–मडम्ब द्रोणमुख–पट्टनाऽऽश्रमगतञ्च किञ्चिदप्यल्पंवा बहुवा, अणुवा स्थूलंवा, त्रस स्थावर काय द्रव्यजातं मनसापि परिग्रहीतुम् । न हिरण्य सुवर्ण क्षेत्रवस्तु, न दासी–दास भृतक–प्रेष्य–हय–गज–गवेलकञ्च, न यान–युग्य–शयनादि, न छत्रकं, न कुण्डिका, नोपानहौ, न मयूरपिच्छ–व्यजन–तालवृन्तकं न चाप्ययस्त्रपुक–ताम्र–सीसक–कांस्य

रजत-जातरूप-मणि-मुक्ताऽऽधार पुटक-शङ्ख-दन्त-मणि-शृङ्ग-शैल-काचवर-चेल चर्म पात्राणि महार्हाणि परस्याऽभ्युपपात-लोभजननानि परिकर्पयितुं गुणवतः। न चापि पुष्प-फल-कन्द-मूलादिकानि सन-सप्त-दशकानि सर्वधान्यानि, त्रिभि-रपि योगै परिग्रहीतुम्। औषध-भैषज्य-भोजनार्थं सयतेन (यतस्य)। किं कारणम्? अपरिमित-ज्ञानदर्शन धरै शील-गुण-विनय-तप. सयमनायकै स्तीर्थंकरः सर्व जगज्जीववत्सलैस्त्रिलोकमहितैर्जिनवरेन्द्रै.। एषायोनिर्जङ्गमानादृष्टा, न कल्पते योनिसमुच्छेद इति तेनवर्जयन्ति श्रमणसिंहा। यदपि च ओदन कुल्माष-गज-(भोज्य विशेष)-तर्पण-(सक्तु)-मन्थु-(बदरादिचूर्ण)-भर्जित-तिल पुष्पपिष्ठ सूप-शष्कुली-वेष्टिम-वर सरक-चूर्ण-कोशकपिण्ड शिखरिणी-वर्तक-(घनतीमन) मोदक-क्षीर-दधि-सर्पिर्नवनीत-तैल-गुड-खण्ड- मत्स्यण्डिका- मधु- मद्य-मास-खाद्यक-व्यञ्जन-विध्यादिक प्रणीतमुपाश्रये परगृहेऽरण्येवा न कल्पते तदपि सन्नि-धीकर्तुं सुविहितानाम्। यद्पिचोद्दिष्ट-स्थापित-रचितक-पर्यवजातं प्रकीर्णप्रादुष्क-रणाऽपमित्यं, मिश्रकजातं, क्रीतकृत-प्राभृतञ्च, दानार्थ-पुण्यप्रकृत, श्रमण-वनीप-कार्थं वाकृत, पश्चात्कर्म,पुर. कर्म, नित्यकर्म, म्रक्षितम्, अतिरिक्तं, मौखरं चैव, स्वयंग्राहम् आहृतम्, मृत्तिकोपलिप्तम्, आच्छेद्य चैव, अनिसृष्ट यत्तत्, तिथिषु यज्ञेषु उत्सवेषु चान्तर्वा बहिर्वा भवेच्छ्रमणार्थं स्थापित-हिंसा सावद्य-सम्प्रयुक्त न कल्पते तदपि परिग्रहीतुम्।

अन्व०"(जो) अपरिग्रह (वीरवर-वयण-विरति-पवित्थर-बहुविहप्पकारो) श्रीमहावीर के वचन से की हुई परिग्रह-निवृत्ति के विस्तार से जो वृक्ष अनेक प्रकार का है (सम्मत्त-विसुद्धमूलो) सम्यक्त्व रूप निर्दोष मूल वाला (धितिकंदो) चित्त की स्वस्थता ही जिसका कन्द (विणयवेतितो) विनय रूप चारो ओर वेदिका वाला (निग्गत-तिलोक्क-विपुल-जस-निविड-पीण-पवर-सुजात खधो) तीनो लोक मे फैला हुआ विस्तीर्ण यश रूप सघन मोटा और लम्बाई युक्त बडे स्कन्ध वाला (पंच महव्वय-विसालसालो) पाच महाव्रत रूपी विशाल शाखा-डाल वाला (भावण-तयत-ज्झाण-सुभजोग-नाणपल्लव-वरंकुर धरो) अनित्यता आदि भावना रूप त्वचा और धर्म ध्यान व शुभ योग तथा ज्ञान रूप प्रधान पल्लव के अकुरो को धारण करने वाला (बहुगुण-कुसुमसमिद्धो) बहुत से उत्तर गुण रूप फूलो से समृद्ध-भर पूर, (सील-सुगधो) शील की सुगध वाला[इस लोकके फलोंकी अपेक्षा रहित सम्य-

वृति ही जहां सुगन्ध है ।] (अणण्हवफलो) अनास्रव रूप फल वाला (पुणो य) और फिर 'मोक्खवर-बीजसारो) मोक्ष रूप उत्तम बीज के सार वाला (मंदर गिरि-सिहर चूलिका इव) मेरु पर्वत के शिखर पर चूलिका की तरह जो (इमस्स मोक्खवर मुत्तिमग्गस्स) इन कर्म क्षय रूप प्रधान मोक्ष के निर्लोभता रूप मार्ग का (सिहर भूओ) शिखर रूप है (संवर वर पादपो) अपरिग्रह रूप उत्तम संवर वृक्ष (सो) वह (चरिम संवरदारं) अन्तिम संवरद्वार है (जत्थ) जहां (गामा गर-नगर-खेड कब्बड-मडब-दोणमुह-पट्टणासमगयं) ग्राम, आकर, नगर, खेड, कर्वट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन और आश्रम मे पडा हुआ, (किंचि) कोई पदार्थ (अप्पं व बहुं व) मूल्य से अल्प हो या बहुत (अणु व थूलव) प्रमाण से छोटा हो या बडा (तस थावर-काय-दव्व जायं) त्रस-शंख आदि, स्थावर-रत्न आदि काय के द्रव्य समूह को (न कप्पइ मणसावि परिघेत्तुं) मन से भी ग्रहण करना नहीं कल्पता (न हिरण्ण सुवण्ण-खेत्त-वत्थु) चादी सोना क्षेत्र और वास्तु-गृह भी ग्रहण करना नहीं कल्पता (न दासी-दास-भयक-पेस-हय-ग य-गवेलगंच) दासी, दास, भृत्य-नियत वृत्ति पाने वाला सेवक, प्रेष्य-सन्देश ले जाने वाला दास, घोड़ा, हाथी और बैल आदि ग्रहण करना भी नहीं कल्पता है (न जाण-जुग्ग-सयणाइ ण छत्तकं) यान-रथ आदि, युग्य-डोली, शयन आदि और छत्र का ग्रहण करना भी नहीं कल्पता है (न कुंडिया न उवाणहा) न कमण्डलु, न जूता (न पेहुण-वीयण-तालियंटका) पेहुण-मोरपिच्छी, वास आदि का वीजना और तालवृन्त-तालपत्र के पखे इनका ग्रहण करना भी नहीं कल्पता है (न यावि अय-तउअ-तब सीसक कंस-रयत-जात रूव-मणि-मुत्ताऽऽधारपुडक-संख-दंत-मणि-सिंग-सेल-कायवर चेल चम्म पत्ताइं महरिहाइं) और लोह, त्रपु-वग, ताम्र, सीसा, कास्य, चादी, सोना, मणि और मोती का आधार-शुक्ति पुट, शंख, दन्तमणि-प्रधान दांत, शृङ्ग-सीग, पाषाण, उत्तम काच, वस्त्र और चर्मपात्र इन सबको भी नहीं ग्रहण करना (परस्स अज्झोव वाय-लोभजणणाइं परिअड्ढेउं) ग्रहण करने मे चित्त की एकाग्रता और लोभ को उत्पन्न करने वाले दूसरे के अधिक मूल्यवाले पदार्थों को बढाना या उनका बचाव करना (गुणवओ न) अपरिग्रहरूप गुण वाले को 'योग्य नही' (यावि पुप्फ-फल कंद-मूलादियाइ) और पुष्प, फल, कन्द, मूल आदि तथा (सण-सत्तरसाइं) सन जिनमे सत्तरवां है ऐसे (सव्वधन्नाइं) सब धान्यो को भी (संजए) साधु (ओसह

भेसज्ज-भोयणट्ठयाए) औषध, भैषज्य, और भोजन के लिये (तिहियिजोगेहिं परि-घेत्तुं) मन वचन और कायरूप तीनों योगोंसे ग्रहण नहीं करे।

(किं कारणं) नहीं लेने मे क्या कारण है ?

उत्तर-(अपरिमित-णाण-दसण धरेहिं) अपरिमित ज्ञान तथा दर्शन को धारण करने वाले (सीलगुण-विणय-तव-संजम-नायकेहिं) शील-चित्त शान्ति, गुण अहिंसा आदि, विनय, और तप सयम की उन्नति करने वाले (सव्वजगज्जीव वच्छलेहिं) जगत् भरके जीवों के वत्सल-(तिलोय-महिएहिं) त्रिलोकी से पूजित (तित्थयरेहिं) श्री तीर्थङ्कर (जिणवरिंदेहिं) जिनेन्द्र देवने (जंगमाणं) त्रस जीवो की (एसजोणी) यह पुष्प फलरूप-योनि-उत्पत्ति-स्थान (दिट्ठा) केवल ज्ञान से देखी है (न कप्पइ जोणि-समुच्छेदोत्ति) योनिओ का समुच्छेद-विनाश करना योग्य नही है। (तेण वज्जति समणसीहा) इसलिये श्रेष्ठ मुनि पुष्प आदि का वर्जन करते है (जपिय ओ णु-कुम्मास-गंज-तप्पण-मंथु-भुज्जिय-पलल-सूप-सक्कुलि वेढिम-घर सरक-चुन्न-कोसग-पिंड-सिहरिणि-वट्ट-मोयग-खीर-दहि-स-प्पि-नवनीत-तेल्ल-गुल-खंड-मच्छंडिय-मधु- मज्ज-मंस- खज्जक-वंजण विधिमा-दिक पणीय) और जो भी ओदन-कूर कुल्माष-उडद या थोडे उबाले हुए हुए मूग आदि, गज-एक प्रकार का धान्य, तर्पण-सक्तु-सत्तू मथू-बोर आदि का चूर्ण, भुज्जि,-भूजे हुए धानी आदि, पलल-तिलके फूलों का पिष्ट, सूप-दाल, शष्कुली-तिल पापडी, वेढिम-जलेबी आदि, वरसरक और चूर्ण कोश-खाद्यपदार्थ विशेष पिण्ड-गुड आदि के पिण्ड, सिर्हाणि दही मे शक्कर आदि देकर बना हुआ शिखरण, वट्ट-बडा, मोदक-लड्डू, दूध, दही, घी, मक्खन, तैल, गुड, खाड, मच्छंडी-मिसरी, मधु, मद्य, मास और अशोकवट्टी आदि खाद्य तथा अनेक प्रकार के शाक आदि प्रणीत-लाया हुआ (उवस्सए) उपाश्रय में (परघरे व) अथवा अन्य घरमे या (रन्ने) अटवी मे हो (तं) उसका भी (सुविहियाण) क्रियापात्र साधुओं को (सन्निहिं काउं) सञ्चय करना (न कप्पती) नहीं कल्पता (जपि य) और जो भी (उद्दिट्ठ-ठविय- चियग-पज्जवजातं) उद्दिष्ट-साधुमात्र के लिये बनाया हुआ, स्थापित-साधु के लिये रक्खा हुआ, और रचित-साधु के लिये तपाकर बनाये हुए मोदक आदि, पर्यवजात अवस्थान्तर को पाये हुए जैसे चावल और दही मिलकर बना हुआ करवा आदि (पकिण्ण-पाउकरण-पामिच्चं) प्रकीर्ण-गिराते

हुर दिया गया या बिखरा हुआ, प्रादुष्करण-प्रकाश करके दिया गया और अप-मित्र-साधु के लिये उधार लिया हुआ, (मीसकजायं) मिश्रजात-साधु व श्रावक दोनों के लिये सम्मिलित बनाया हुआ (कीयकड-पाहुडं) क्रीतकृत-साधु के लिये खरीदा हुआ और प्राभृत-भूमि में बलिलरीके डाला हुआ या भूमि से निकाला हुआ (च) और (दाणट्ठ-पुन्नपगडं) दान के लिये तथा पुण्य के लिये बनाया गया (समण-वणीमगट्ठयाएवकयं) पांच प्रकारके श्रमण तथा वनीपक-भिखारी के प्रयोजन से किया गया (पच्छाकम्मं) दानके बाद जहां हाथ आदि धोये जांय या अन्य आरम्भ हो वह पश्चात्कर्म (पुरे कम्मं) हाथ धोने आदि आरम्भ करके जो दिया जाय वह पुरः कर्म (नितिकम्मं) सदाव्रत की तरह जहां सदा साधुओं को आहार आदि दिया जाय अथवा नियमितरूपसे सदा एक घर से आहार लिया जाय वैसा (मक्खियं) सचित्तपानी आदि से भरे हुए हाथ या पात्र से दिया गया (अतिरित्तं) प्रमाण से अधिक (मोहरं चेव) और वाचालता से-अधिक बोलकर मिलाया हुआ (सयग्गहमाहडं) स्वयं अपने आप ग्रहण किया हुआ, और अपने गांव या घर आदि से सामने लाया हुआ (मट्टि उवलित्तं) मिट्टी आदि से लिपा हुआ (अच्छेज्जं चेव) और ऐसे ही आच्छेद्य-निर्बल से छीनकर दिया गया (अणीसट्ठं) अनिसृष्ट-अनेकों के हिस्से की वस्तु सबकी अनुमति के बिना दी गई हो (जं तं तिहिसु) जो आहार मदन त्रयोदशी आदि तिथि विशेष में (जन्ने सु ऊसवेसु य) यज्ञ और महोत्सवों में (अंतो व बहिं व होज्ज समणट्ठयाए ठवियं) उपाश्रय के भीतर या बाहर साधुओं को देने के लिये रक्खा हो (हिंसा-सावज्ज-संपउत्तं) हिंसारूप दोष से युक्त (तं पिय परिघेत्तुं न कप्पती) उस आहार को भी लेना नहीं कल्पता है।

मूल-" अहकेरिसयं पुणाइ कप्पति ? जंतं एक्कारस-पिंडवायसुद्धं, किणण-हणण-पयण-कय-कारियाणुमोयण-नव कोडीहिं सुपरिसुद्धं, दसहिय दोसेहिं विप्पमुक्कं, उग्गम-उप्पायणेसणाए सुद्धं, ववगय-चुय-चविय-चत्तदेहं च फासुयं ववगय-संजोग मणिंगालं, विगय धूमं, छट्ठाण निमित्तं, छक्काय परिरक्खणट्ठा हणि हणि फासुकेण भिक्खेण वाट्टियव्वं। जंपि य समणस्स सुविहियस्स उरोगायंके बहुप्पकारंमि समुप्पन्ने वाताहिक-

पित्त–सिंभ–अतिरित्त कुविय तह सन्निवातजाते व उदयपत्ते उज्जल–बल–विउल–तिउल–कक्खड–पगाढ–दुक्खे असुभ–कडुय फरुसे चंडफल-विवागे महब्भये जीवियंत करणे सव्वसरीर–परितावण करे न कप्पति तारिसे वि, तह अप्पणो परस्स वा ओसह भेसज्जं, भत्त–पाणं च तंपि संनिहिकयं। जंपि य समणस्स सुविहियस्स तु पडिग्गह धारिस्स भवति भायण–भंडोवहि उवगरणं, पडिग्गहो, पादबंधणं, पादकेसरिया, पादठवणं च, पडलाइं तिन्नेव, रयत्ताणं च, गोच्छओ, तिन्नेव, य पच्छाका, रयोहरण–चोल पट्टक–मुहणंतकमादीयं एयं पि य संजमस्स उववूहणट्ठयाए वाया-यव–दंस-मसग–सीय–परिरक्खणट्ठयाए उवगरणं रागदोसरहियं परिहरियव्वं संणजएण णिच्चं पडिलेहण-पप्फोडण–पमज्जणाए अहोय राओ य अप्पमत्ते ण होइ सततं निक्खिदियव्वं च गिण्हियव्वं च भायण, भंडोवहि उवगरणं एवं से संजते विमुत्ते निस्संगे निप्परिग्गहरुई निम्ममे निन्नेह–बंधणे सव्व–पाव–विरते वासी चंदण–समाणकप्पे सम–तिण–मणि–मुत्ता–लेट्ठु–कंचणे समे य माणावमाण-णाए, समिय-रते, समित रागदोसे, समिए समितीसु, सम्मदिट्ठी समेयजे सव्वपाण–भूतेसु, सेहु समणे सुय धारते उज्जुत्ते संजते। ससाहू सरणं सव्व भूयाणं सव्व जगवच्छले सच्चभासके य संसारंतट्ठिते य संसार–समु-च्छिन्ने सततं मरणाणुपारते, पारगे य सव्वेसिं संसयाणं पवयण मायाहिं अट्ठहिं, अट्ठकम्म गंठी विमोयके, अट्ठमय महणे, ससमय कुसले य भवति सुख दुक्ख निव्विसेसे अब्भितर बाहिरंमि सया, तवोवहाणंमि य सुट्ठुज्जुते, खंते दंते य हियनिरते, ईरियासमिते भासासमिते एसणासमिते आयाण भंड–मत्त–निक्खेवणा समिते उच्चार–पासवण–खेल–सिंघाण जल्ल–परिट्ठा-वणिया समिते मणगुत्ते, वयगुत्ते, कायगुत्ते, गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी,

चाई, लज्जू, धन्ने, तवस्सी खंतिखमे, जितिंदिए, सोधिए, अणियाणे, अव-हिल्लेस्से, असमे, अकिंचणे, छिन्नगंथे, निरुवलेवे। सुविमल-वरकंस भा यणं १, व मुक्कतोए, संखेविव २, निरंजणे, विगय,-राग-दोसमोहे, कुम्मो ३, इव इंदिएसु गुत्ते, जच्च-४, कंचणगंव जायरूवे, पोक्खरप त्तं ५, व निरुवलेवे, चंदो ६, इव सोमताए (भावयाए,) सूरोव्व ७, दित्ततेए, अचले जह मंदरे ८, गिरिवरे, अक्खोभे सागरो व्व, थिमिए, पुढवीव सव्व १०, फास सहे, तवसा ११, च्चिय भासरासि छन्निव्व जाततेए, जलियहु १२ यासणो वि व तेयसा जलंते, गोसीस चंदणं पिव सीयले सुगंधे य, हरयो १३ विव समिय भावे, उग्घोसिय सुनिम्मलं व आयंस १४ मंडलतलं व पागडं भावेण सुद्धभावे, सोंडीरे कुंजरोव्व १५, व सभेव्व १६ जाय थामे, सीहे १७ वाजहा मिगाहिवे होति दुप्पधरिसे, सारय १८ सलिलं व सुद्ध हियए, भारंडे १९ चेव अप्पमत्ते, खग्गि दिसाणं २० व एगजाते, खाणुं चेव २१ उड्ढकाए, सुन्ना २२ गारेव्व अप्पडिकम्मे, सुन्नागारावण-स्संतो २३ निवाय-सरण-प्पदीप-ज्झाणमिव निप्पकंपे, जहा २४ खुरो चेव एग धारे, जहा अही चेव २५ एगदिट्ठी, आगासं २६ चेव निरालंबे, विहगे २७ विव सव्वओ विप्पमुक्के, कय पर निलये जहा चेव २८ उरए, अप्पडिबद्धे अनिलोव्व २९, जीवोव्व ३० अप्पडिहयगती। गामे गामे एगरायं, नगरे नगरे य पंचरायं दूइज्जं ते य, जितिंदिए, जित परीसहे, निब्भओ, दिऊ सच्चिताचित्त-मीसकेहिं दव्वेहिं विरायंगते, संचयातो विरए, मुत्ते, लहुके, निरव कंखे, जीविय-मरणासविप्पमुक्के, निस्संधि, निव्वणं चरित्तं धीरे काएण फासयंते सततं अज्झप्पज्झाणजुत्ते निहुए एगे चरेज्ज धम्मं।२।२८

छाया०-"अथवीदृश पुनः कल्पते ? उत्तदेकादश पिण्डपात शुद्धं क्रयण-हनन-पचन-कृत-कारिताऽनुमोदन-नवकोटिभि सुपरिशुद्धं, दशभिर्दोषैर्विप्रमुक्तम्, उद्गमो त्पादनैषणया शुद्धम्, व्यपगत-च्युत-च्यावित-त्यक्त देहं च प्राशुकम्, व्यपगत

ताशनइव तेजसाज्वलन् १२, गोशीर्षचन्दन इव शीतलः सुगन्धश्च, ह्रदइव समितभाव उद्घृष्टसुनिर्मलमिव आदर्शमण्डल तलमिव प्रकटभावेन शुद्धभावः, शौण्डीरः कुञ्जर इव, वृषभइव जातस्थामा, सिंहोवा यथा मृगाधिपो भवति दुष्प्रधर्षः, शारद सलिल मिव शुद्धहृदयः, भारण्ड इवाऽप्रमत्तः, खड्गिविषाणमिवैकजातः, स्थाणुरिवोर्द्ध्व-कायः, शून्याऽऽगारमिवाऽप्रतिकर्मा, शून्यागाराऽऽसन्निवात-शरण-प्रदीपध्यानमिव निष्प्रकम्प,यथाक्षुरश्चैकधारः, यथाऽहिश्चैवैकदृष्टिः, आकाशमिव निरवलम्बः, विहगइव सर्वतो विप्रमुक्तः, कृतपर निलयो यथाचैवोरगः, अप्रतिबद्धोऽनिल इव, जीव इवाऽप्रतिहतगतिः । ग्रामे ग्रामे-एकरात्रम् , नगरे नगरे च पञ्चरात्रं दूयमानः-विहरंश्च, जितेन्द्रियो जितपरीषहो निर्भयः विद्वान् सचित्ताऽचित्तमिश्रकैर्द्रव्यैर्विरागं गतः, सञ्चयाद्विरतो, मुक्तो लघुको निरवकांक्षः, जीवितमरणाऽऽशाविप्रमुक्तः, निस्सन्धिर्निर्व्रणं चरित्रं धीरः कायेन स्पृशन् सततमध्यात्मध्यानयुक्तो निभृत एकश्च-रेद्धर्मम् ।

अन्व०"(अहकेरिसयं पुणाइ कप्पति ?) तब फिर कैसा ओदन आदि पदार्थ लेना कल्पता है ?

उत्तर-' जं तं) जो वह ओदन आदि पदार्थ (एक्कारसपिंडवायसुद्धं) इग्यारह पिंडपात से शुद्ध आचाराङ्ग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे प्रथम अध्ययनके एकादश उद्देशों मे कहे हुए दोषो से रहित (किणण-हणण-पयण-कय-कारियाणुमोयण-नवकोडी हिं सुपरिसुद्धं) खरीदना, हिंसा करना, और पकाने रूप क्रिया से कृत, कारित और अनुमोदन के द्वारा बनी हुई नवकोटिओं से पूर्ण शुद्ध हो (दसहिय दोसेहि विप्प-मुक्कं) और एषणा के दश दोषों से रहित (उग्गम उप्पायणेसणाए सुद्धं) उद्गम और उत्पादनारूप एषणा-गवेषणा व ग्रहणैषणा रूप एषणा से शुद्ध (ववगय-चुय-चविय-चत्तदेहं) सामान्यरूप से अचेतन बने हुए, जीवन क्रिया से भ्रष्ट, आयुक्षय के कारण जीवन क्रियाओ से गिराया गया और शरीर की वृद्धि रहित (फासुयं) अतएव प्रासुक-निर्जीव बना हुआ (ववगय-संजोगमणिंगालं) संयोग और अगार रूप मांडलिक दोष से दूर तथा (विगयधूमं) उत्तम आहार के प्रशंसारूप धूम्र दोष से रहित (छट्ठाणनिमित्तं) छः कारणो के निमित्त वाला (छक्काय परिरक्खणट्ठा) छः काय के जीवो की रक्षा के लिये (हणि हणि फासुएण भिक्खेण वट्टियव्वं) प्रति दिन निर्दोष भिक्षा से निर्वाह करना चाहिए (जपिय) और जो भी (समणस्स

सुविहियस्स) सुविहित साधु के (रोगायंके बहुप्पकारंमि) अनेक प्रकार के रोग या आतङ्क (समुप्पन्ने) उत्पन्न होने पर (वाताहिक-पित्त-सिंभ-अतिरित्त-कुविय) वात की अधिकता व पित्त कफ का अतिशय प्रकोप (तह) तथा (सन्निवात जाते वउदयपत्ते)सन्निपात-त्रिदोष उत्पन्न हुआ हो (उज्जलबल विउल कक्खड-पगाढ-दुक्खे) अथवा सुख रहित बलवान् कष्ट से भोगने योग्य विस्तीर्ण या मन वचन आदि तीनों योगों को तोलने वाले अत्यन्त कठोर दुःख के (उदयपत्ते) उदय प्राप्त होने पर (असुभ कडुय-फरुसे) अशुभ या कटु द्रव्य की तरह असुख अनिष्ट कठोर स्पर्श रूप तथा (चंडफलविवागे) दुःखरूप दारुण फल वाला (महब्भये) अत्यन्त भयङ्कर (जीवियंत करणे) जीवन के अन्त करने वाले और (सव्वसरीर-परिता-वणकरे) सब शरीर को परिताप करने वाले (तारिसेवि) वैसे रोगादि के प्रसङ्ग में भी (अप्पणो परस्सवा) अपने या पर केलिये (तह) तथा (ओसह-भेसज्ज) औषध भैषज्य (भत्त पाण च) और आहार पानी (तं पि संनिहिकयं) वह सब भी संचय करके रखना (न कप्पति) नहीं कल्पता-योग्य नहीं है। (जंपिय) और जो भी (पडिग्गह धारिस्स सुविहियस्स समणस्स) पात्रधारी सुविहित-क्रियापात्र साधु के पास (भायणभंडोवहिउवगरणं पात्र, मिट्टी के भांड और सामान्य उपधि तथा सकारण रखने के उपकरण (भवति) होते हैं, जैसे-(पडिग्गहो) पात्र (पाद-बंधणं) पात्र बंधन, (पादकेसरिया) पात्र केसरिका-पोछने का वस्त्र (पायठवणं च) और पात्र स्थापन-जिस पर पात्र रक्खे जांय (पडलाइं) पटल-पात्र ढकने के तीन वस्त्र (रयत्ताणच) और रजस्त्राण-पात्र लपेटने का वस्त्र (गोच्छओ गो छक पात्र वस्त्र आदि प्रमार्जन करने के लिये पूंजनी (तिन्नेवय पच्छाका और तीन ही प्रच्छाद-ओढने के वस्त्र (रयोहरण-चोलपट्टक-मुहणंतक मादीय) रजोहरण-ओघा, चोलपट्टक-पहनने का वस्त्र और मुखानन्तक-मुखवस्त्रिका आदि (एयं-पिय) यह सब भी (संजमस्स उववूहणट्ठयाए) संयम के उपबृंहण-वृद्धि के लिये हैं (वातायव-दंस-मसग-सीय-परिरक्खणट्ठयाए) वात-प्रतिकूल वायु सूर्य की ताप, डांस-मच्छर और शीत से संरक्षण करने के लिये (उवगरणं) रजो हरण आदि उप करण को (राग-दोस रहियं) राग द्वेष रहित होकर (संजएणं) साधु को (णिच्चं) सदा (परिहरियव्वं) धारण करना चाहिए (पडिलेहण-पप्फोडण-पमज्जणाए) प्रतिलेखना-आखों से देखना, प्रस्फोटन-झाडना और

प्रमार्जन रूप क्रिया मे (अहोयराओय) दिन और रात (अप्पमत्तेण सततं) निरन्तर प्रमाद रहित (भायण-भंडोवहि-उवगरण) भाजन भाण्ड और उपधिरूप उपकरण (निक्खिवियव्वं) नीचे रखना (च) और (गिण्हियव्वं) ग्रहण करना योग्य (होइ) होता है (एवं) इस प्रकार (सेसंजते) वह सयमी (विमुत्ते निसंगे) धनादि रहित, निस्सङ्ग-मोह रहित (निप्परिग्गहरुई) परिग्रहरुचि से दूर (निम्ममे) ममता रहित (निन्नेहबंधणे) स्नेह और बंधन से रहित (सव्व पाव विरते) सब पापो से निवृत्त (वासी-चदण-समाण कप्पे) वासी-कुल्हाड़ी मारने वाले और चन्दन का लेप करने वाले-दोनो पर समभाव रखने वाला (सम-तिण-मणि मुत्ता-लेट्ठु-कांचणे) तृण और मणि, मोती तथा पत्थर व सुवर्ण मे समबुद्धि रखने वाला (समे य माण वमाणणाए) और मान अपमान की क्रिया मे भी सम हर्ष विषाद रहित (समिअरते) उपशान्त पापरजवाला अथवा विषय रति के उपशम वाला या शान्त वेग वाला (समित राग दोसे समिए समितिसु) उपशान्त राग द्वेष वाला व पांच समितियो मे सम्यक् प्रवृत्ति वाला (सम्मदिट्ठी) सम्यग् दृष्टि (समे य जे सव्व-पाण-भूतेसु) और जो समस्त त्रस स्थावर जीवो मे समान भाव रखता है (से हु समणे) वही श्रमण (सुयधारते) श्रुत धारक (उज्जुत्ते) ऋजु-निष्कपट या आलस्य रहित (संजते) व संयमी है (ससाहू सरणं सव्व भूयाण) वह सुसाधु सर्वभूत-छकाय जीवोका शरण-रक्षक है (सव्व जग-वच्छले) सब जगत् का वत्सल-हितैषी है (सच्च भासके) सत्यवक्ता है (संसारंतट्ठिते) ससार के अन्त मे स्थित (य) और (संसारसमुच्छिन्ने) भव परम्परा रूप संसार का जिसने उच्छेद कर दिया है, ऐसा (सततं मरणाणुपारते सदा मरण के पार पाने वाला (पारगे य सव्वेसि ससयाणं) और सब संशयो का पारगामी (पवयण-मायाहिं अट्ठहिं) आठ प्रवचनमाता-पांच समिति तीन गुप्ति रूप से (अट्ठ कम्म-गंठी-विमोयके) आठ कर्मों की ग्रन्थि-गांठ को छुडाने वाला (अट्ठमय-महणे) आठ मदो को नाश करने वाला (ससमय कुसले) अपने सिद्धान्त मे निपुण (भवति) होता है (सुख-दुक्ख-निव्विसेसे) सुख दुःख मे विशेषता रहित अर्थात् हर्ष शोक रहित (अब्भितर-बाहिरम्मिसया तवोवहाणं मिय सुट्ठुज्जुत्ते) आभ्यन्तर और बाह्य तप रूप गुण की रक्षा करने वाले-उपधान मे सदा अच्छी तरह से उद्यम

करने वाला (खते दंते य) क्षमावान और जितेन्द्रिय (हियनिरते) स्वपर का हितकारी (ईरिया-समिते) ईर्या समिति युक्त (भासा समिते) भाषा समिति-निर्दोष वचन-बोलने वाला, (एसणासमिते) एषणा समिति युक्त (आयाण-भडमत्त-निक्खेवणा समिते) आदान भाड मात्र निक्षेपणा समिति वाला (उच्चार पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-परिट्ठावणिया समिते) मलमूत्र, श्लेष्म, सघान-नाक का मल, जल्ल-देह का मल आदि परिठने की समिति वाला (मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते) मनो गुप्त, वचन गुप्त और काय गुप्त-शरीर के संयम वाला (गुत्तिदिंए) गुप्त इन्द्रिय-विषयो से इन्द्रिय का रक्षण करने वाला (गुत्त-बभयारी) ब्रह्मचर्य की गुप्ति से युक्त (चाईलज्जू) त्यागी-सर्वसग का त्याग करने वाला वा दानी, रज्जु के समान सरल (धन्ने तवस्सी) धन्य, तपस्वी-प्रशान्त तपोयुक्त (खतिखमे) क्षमा द्वारा सहने वाला (जिर्तिदिए) जितेन्द्रिय (सोधिए) गुणों से शोभित या शुद्ध हुआ (अणियाणे) निदान रहित (अबहिल्लेस्से) जिसकी चित्तवृत्ति संयम से बहिर्भूत नहीं है (असमे अकिंचणे) ममता से दूर व धन से रहित (छिन्नगंथे) स्नेह बधन को काटने वाला (निरुवलेवे) कर्म के उपलेप रहित याने कर्म का बध नहीं करने वाला। (सुविमल-वर कसभायण व मुक्कतोये) खूब निर्मल उत्तम कास्य भाजन की तरह स्नेहरूप जलसे दूर (सखेविव निरजणे) शङ्ख की तरह निर्मल-रागादि मल रहित (विगय-राग-दोस मोहे) राग द्वेष और मोह से दूर (कुम्मो इव इंदिएसुगुत्ते) कूर्म-कच्छप की तरह इन्द्रियो के विषय मे गुप्त-संयम वाला (जच्च-कंचणगं व जायरूवे) जाति सम्पन्न सुवर्ण की तरह जातरूप-रागादि कुभाव रहित अपने स्वरूप को पाया हुआ (पोक्खर पत्तं व निरुवलेवे) पद्म पत्र की तरह भोग के लेप रहित (चदो इव सोमभावयाए) सौम्य भाव से चन्द्रके समान (सूरोव्व दित्ततेए) सूर्य के जैसे तपस्या के तेज वाला (अचले जह मंदरे गिरिवरे) मन्दर-मेरु पर्वत के समान अचल (अक्खोभे सागरोव्व थिमिए) क्षोभ रहित सागर के जैसे स्तिमितभावो की तरङ्ग से दूर (पुढवी व सव्व फाससहे) पृथ्वी की तरह अनुकूल प्रतिकूल सब स्पर्शों को सहने वाला (तवसा विय भासरासिछन्नि वजाततेए) और तपस्या से भस्म की ढेर से ढकी हुई अग्नि के जैसा याने जैसे भस्म से ढकी हुई अग्नि भीतर जलती और बाहर से बुझीसी दिखती है, वैसे तपस्वी का शरीर बाहर से फीका किन्तु अन्तस्तेज मे दीप्त रहता है (जलिय-हुयासणो

विव तेजसा जलंते) जलती हुई अग्नि के जैसे ज्ञानरूप तेजसे जलता हुआ (गोसीस चंदणं पिव सियले सुगंवे) गोशीर्ष चन्दन की तरह शीतल-मानसिक तापरहित और शीलरूप सुगन्ध वाला (हरयांविव समिअभावे) ह्रद की तरह समभाव वाला वायु के अभाव मे जैसे तालाब का पानी समरूप मे रहता है, वैसे निन्दा सत्कार मे समभावयुक्त (उग्घोसिय-सुनिम्मलं व आयस-मंडल तलं व) अच्छा घिसा हुआ होने से अत्यन्त निर्मल दर्पण के तल की तरह (पागड भावेण सुद्धभावे) प्रकट भाव-निष्कपट भावसे शुद्ध हृदयवाला (सोंडीरे कुंजरोव्व) कुञ्जर-हाथी की तरह परीषह सैन्य के लिये शूर (वसभेव्व जायथामे) वृषभ के समान जात स्थाम-स्वीकार किये हुए व्रतभार के निर्वाह में समर्थ (सीहे वा जहा मिगाहिवे) मृगपति सिंह के जैसे (दुप्पधरिसे होति) परीषहरूप मृगों के लिये जो दुर्द्धर्ष होता है (सारय सलिलं व सुद्धहियए) शरत्काल के पानी की तरह शुद्ध हृदय वाला (भारंडे चेव अप्पमत्तो) और भारंड पक्षी के समान प्रमाद रहित (खग्गि-विसाणं व एगजाते) खड्ग-गैंडा के सींग की तरह एकभूत-रागादि के सहाय रहित (खाणुं चेव उड्ढ काए) स्थाणु-खूटे की तरह कायोत्सर्ग मे शरीर को स्थिर खड़ा रखने वाला (सुन्ना गारेव्व अपडिकम्मे) शून्य घरकी तरह देह की सम्भाल नहीं करने वाला (सुन्ना गारावणस्सतो) शून्य घर या सूनी दुकान मे वर्तमान-रहा हुआ (निवाय-सरण-प्पदीपज्झाणमिव निप्पकंपे) वायु रहित घर में दीप की बत्ती की तरह दिव्य आदि उपसर्ग में भी शुभ ध्यानरूप कोष्ठकमे अकम्प-निश्चल चित्त वृत्ति वाला (जहा खुरो चेव एगधारे) क्षुर-छूरे के जैसे विधिमार्गरूप एक धार वाला (जहा अही चेव एगदिट्ठी) फिर सर्प के जैसे मोक्ष साधन रूप एक दृष्टि वाला (आगास चेव निरवलंबे) आकाश की तरह बाह्य आलबन रहित (विहगे विव सव्वओ विप्प मुक्के) विहग-पक्षी की तरह सबसे विप्रमुक्त (कय-पर-निलये जहा चेव उरए) जैसे सर्प दूसरे के बनाये घरमें रहता है वैसे साधु परगृह में रहने वाला (अप्पडिबद्धे अनिलोव्व, जीवोव्व अप्पडिहयगति) वायु की तरह प्रतिबन्ध रहित और जीव की तरह अप्रतिहतगति-रुकावट रहित गति-वाला (गामे गामे एगरायं) गाव गांव मे एकरात (य) और (नगरे नगरे पचरायं) नगर नगर में पाचरात[1] (दूइ-

१—गांव मे एक रात्रि और नगर मे पच रात्रि का परिमाण पडिमधारी साधु की अपेक्षा है। —टीका०

वजंते य) विचरता-भ्रमण करता-हुआ और (जिंतिंदिए) जितेन्द्रिय (जित परीसहे) परीषहो को जीतने वाला (निब्भओ) निर्भय (विऊ) विद्वान् (सचित्ता चित मीसकेहिंदव्वेहिं) सचित्त अचित्त व मिश्र-द्रव्यो से (विरायगते) विराग प्राप्त (संचयाओ विरए) अतएव सग्रह से दूर (मुत्ते) मुक्त की तरह बन्धन रहित (लहुके) गौरव रहित होने से लघु-हल्का (निरवकंखे) आकाक्षा रहित (जीविय मरणास-विप्पमुक्के) जीवन मरण की आशा से दूर, तथा (धीरे) धीर (निस्सधि निव्वण चरित्त) सन्धि चारित्र परिणाम के विच्छेद रहित, निर्दोष चरित्र को (काएण फासयंते) शरीर से पालन करता हुआ (अज्झप्प ज्झाणजुत्ते) अध्यात्म ध्यान-शुभ विचार से युक्त तथा (निहुए) उपशान्त कषाय वाला साधु (एगे) एकाकी रागादि, रहित होकर (सततं) सदा (धम्म चरेज्ज) धर्म का आचरण करे।

भाव-"सूत्र मे अपरिग्रह को वृक्ष की उपमा दी गई है जो तीर्थङ्कर की आज्ञानुसार की गई निवृत्ति के विस्तार से बहुत प्रकार का है। वृक्ष के साथ अपरिग्रह की समता करते हुए उसके अङ्गो का परिचय दिया है। जैसे—अपरिग्रह-वृक्ष का सम्यक्त्व ही निर्दोष मूल है और धैर्य रूप कन्द, विनय ही चतुरस्र वेदिका और त्रिलोकी मे फैला हुआ विमल यश ही बड़ा स्कन्ध है, महाव्रत ही पाच शाखाये और भावना रूप छाल है। धर्म ध्यान शुभ योग तथा ज्ञान रूप पल्लवाङ्कुर और विविध गुण ही अपरिग्रह वृक्ष के फूल है। शील उसकी सुगन्धि और अनास्रव ही फल है। कर्म बन्ध से मुक्ति इसके बीजों का सार है। इस प्रकार मेरु की चूलिका के समान यह मोक्ष मार्ग का शिखर भूत अपरिग्रह अन्तिम सवरद्वार है। अपरिग्रहव्रत की यह मर्यादा है कि ग्राम आदि मे रहा हुआ कोई भी पदार्थ थोडा या बहुत, छोटा या बडा द्रव्य मात्र मन से भी ग्रहण करना योग्य नही है। ऐसे चादी सोना व दासी दास आदि निर्जीव या सजीव द्रव्यो को, तथा लोह आदि धातु एव विविध प्रकार के पात्र जो अधिक मूल्य वाले और दूसरे के चित्त की आसक्ति एवं लोभ को उत्पन्न करने वाले है। उनका सञ्चय करना योग्य नहीं है और पुष्प फल आदि वनस्पति तथा १७ प्रकार के धान्यों का भी औषध भैषज और भोजन के लिये साधु का संग्रह करना योग्य नही है। क्योकि अनन्त ज्ञानी तीर्थङ्कर देव ने ज्ञान बल से इस पुष्प आदिके समूहको त्रस जीवोंकी उत्पत्तिका स्थान कहा है और किसी योनिका विनाश

करना ठीक नही है। इसलिये प्रधान साधु इसका वर्जन करते है। फिर जो भी ओदन आदि निर्जीव द्रव्य उपाश्रय मे लाये गये या गृहस्थ के घर या जगल मे रक्खे है, क्रिया पात्र साधु को उन द्रव्यो का भी सञ्चय नही करना चाहिए। फिर जो आहार आदि उद्दिष्ट, स्थापित तथा मोदकादि रूप से साधु के लिये बनाया गया है, नीचे गिरता हुआ या साधु के लिये अन्धेरे से बाहर लाया हुआ एव श्रमण या भिखारी के लिये बनाया गया है। उधार लाया हुआ, मिश्र, क्रीतकृत, प्राभृत, और दान पुण्य के लिये निकाला हुआ, तथा जो पश्चात्कर्म आदि अन्य दोषों से युक्त है। वह आहार तिथि, यज्ञ तथा उत्सव के प्रसङ्गो मे उपाश्रय के भीतर या बाहर साधु के लिए रक्खा हो तो हिंसा रूप दोष वाले उस आहारादि को व्रती साधु ग्रहण नही करे। तब फिर कैसे आहार आदि को ग्रहण करना योग्य है, इसको दिखाते है-'जो पिण्डैपणा के ११ उद्देशो से शुद्ध और खरीदना १, खरीदवाना २, एवं खरीदने वाले को अनुमोदन करना ३, ऐसे हिंसा करना ४, कराना ५, व करने वाले का अनुमोदन करना ६, पकाना ७, दूसरे से पकवाना ८ और पकाते को अच्छा जानना ९, इन नव कोटिओ से शुद्ध हो। एषणा के दश दोषो से रहित तथा जो उद्गम आदि एषणा से शुद्ध है। चेतनता से रहित और प्रासुक तथा सयोग आदि मडल दोष से जो रहित है, प्रतिदिन वैसी प्रासुक भिक्षा का ग्रहण करना चाहिए। वह भी केवल वेदना आदि छ कारणो से जीव रक्षा के लिए ग्रहण करे। फिर क्रिया पात्र साधु को अनेक प्रकार के वात आदि से होने वाले रोगातङ्क उत्पन्न हो जाय तो भी अपने व परके लिये औषध भेषज तथा भक्त पान रात्रि मे पास रखना नही कल्पता।

फिर पात्र धारी साधु को भाजन आदि उपकरण होते, वे भी सहेतुक होते हैं। उपकरण और उनके धारण करने की विधि बताते हैं। जैसे—पात्र १, पात्र बन्ध २, पात्र पोछने का वस्त्र ३, पात्र स्थापन-मण्डल ४, पटल तीन ५, रजस्त्राण ६ और गोच्छक-पूजनी ७, प्रच्छादन के वस्त्र ८, रजो हरण ९, चोल पट्टक १०, और मुख वस्त्रिका आदि उपकरण भी सयम की रक्षा के लिये तथा वातादि कष्ट से देह के सरक्षण के लिये राग द्वेष रहित धारण करना चाहिए, और रात दिन सदा प्रति लेखन आदि क्रिया मे अप्रमत्त होकर निरन्तर भाजनादि को रखना एवं ग्रहण करना योग्य है। इस प्रकार जो संयमी विमुक्त आदि १९ विशेषण युक्त है वही साधु श्रुत

धारक ऋजु व संयमी है। सुसाधु आदि अनक विशेषण युक्त यावत् वह कर्म लेप से रहित होता है। साधु की ३१ उपमायें जैसे–१ निर्मल कासी के भाजन की तरह स्नेह जल से अलिप्त, २ शङ्ख के जैसे उज्ज्वल याने राग द्वेष आदि रंग रहित, ३ कूर्म-कच्छप की तरह गुप्तेन्द्रिय, ४ उत्तम सोना जैसे शुद्ध स्वरूप वाला, ५ पद्म पत्र की तरह काम रूप मल के लेप रहित, ६ चन्द्र जैसे सौम्य, ७ सूर्य जैसे तेजस्वी, ८ मेरु पर्वत जैसे अचल, ९ अक्षोभ्य सागर के समान विचारो की चचलता रहित, १० पृथ्वी के समान सबके स्पर्श को सहने वाला, ११ भस्म से ढकी हुई आग के समान बाहरी शरीर से फीका व भीतर से तेजस्वी, १२ जाज्वल्यमान वह्नि जैसे तेजस्वी १३ गोशीर्ष चन्दन के जैसे शीतल व शील की सुवास वाला, १४ जातिमान् गज के समान परीषह सहने मे शूर, १५ ह्रद जैसे सम स्वभाव वाला, १६ स्वच्छ दर्पण जैसे प्रकट शुद्ध स्वभाव वाला, १७ धोरी बैल के जैसे उठाये हुए कार्य भार को निर्वाह करने वाला, १८ सिंह के जैसे दूसरे से पराभव नहीं पाने वाला, १९ शरत्काल के पानी के समान निर्मल, २० भारण्ड पक्षी जैसे सदा चकित रहता है वैसे प्रमाद रहित, २१ गैंडे के सींग की तरह एक-राग द्वेष रहित, २२ स्थाणु–खूटे के जैसे ऊंचे-सीधे ध्यान में खड़े, २३ शून्य घर के जैसे शोभा सस्कार रहित, २४ निर्वात घर के दीपक के जैसे ध्यान मे अकम्प, २५ छुरे के जैसे विधि रूप एक धार वाला २६ सर्प के जैसे मोक्ष मार्ग रूप एकलक्ष्यवाला, २७ आकाश के जैसे बाहरी आलम्बन रहित, २८ पक्षी के जैसे संग्रह रहित या सर्वत्र गति वाला, २९ सर्प के जैसे पर घर में रहने वाला, ३० वायु के जैसे प्रतिबन्ध रहित, ३१ जीव के जैसे निर्बाध सर्वत्र गति वाला, इन इकतीस उपमाओ से युक्त साधु प्रति ग्राम में एक रात और नगर मे पाच रात के प्रमाण से वास करते हुए भ्रमण करता है। जितेन्द्रिय, जित परीषह, निर्भय यावत् जीवन की आशा व मरण भय से दूर मुनि निर्दोष चरित्र को शरीर से पालन करता हुआ निरन्तर आत्म ध्यान से युक्त स्थिरमति होकर राग द्वेष रहित धर्म का आचरण करे।

मूल–"इमं च परिग्गह-वेरमण–परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं, पेच्चाभाविकं, आगमेसिभद्दं, सुद्धं, नेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्खपावाण विओसमणं, तस्सइमा पंचभावणाओ चरिमस्स

वयस्स होंति परिग्गह वेरमण–रक्खणट्टयाए । पढमं–सोइंदिएण सोच्चा सद्दाइं मणुन्नभद्दगाइं, किंते ?, वरमुरय–मुइंग–पणव–दद्दुर–कच्छभि–वीणा–विपंची–वल्लयि–वद्धीसक–सुघोसनंदि–सूसर–परिवादिणि–वंसतूणक पव्वक–तंती–तल–ताल–तुडिय–निग्घोसगीयवाइयाइं, नड–नट्टक–जल्ल–मल्ल मुट्ठिक–वेलंवक–कहक–पवक–लासग–आइक्खक–लंख–मंख–तूणइल्ल–तुंव वीणिय–तालायर–पकरणाणि य बहूणि, महुरसर–गीत–सुस्सराति, कंची मेहला–कलावपत्तरक–पहेरक–पायजालग–घंटिय– खिंखिणि–रयणोरुजा–लिय–छुद्दिय–नेउर–चलण–मालिय–कणग–नियल–जाल–भूसणसद्दाणि, लीलाचंकम्ममाणाणुदीरियाइं, तरुणीजणहसिय–भणिय–कलरिभित–मंजु–लाइं, गुणवयणाणि व बहूणि महुरजणभासियाइं, अन्नेसु य एवमादिएसु सद्देसु मणुन्नभद्दएसु ण तेसु समणेण सज्जियव्वं, न रज्जियव्वं, न गिज्झि–यव्वं, न मुज्झियव्वं, न विनिग्घायं आवज्जियव्वं, न लुभियव्वं, न तुसि–यव्वं, न हसियव्वं, न सइं च मइं च तत्थकुज्जा । पुणरवि सोइंदिएण सोच्चासद्दाइं अमणुन्न–पावकाइं, किंते ? अक्कोस–फरुस–खिंसण–अवमा णण–तज्जण–निब्भंछण–दित्तवयण–तासण–उक्कूजिय–रुन्न–रडिय– कंदिय निग्घुट्ठरसिय–कलुणविलवियाइं, अन्नेसु य एवमादिएसु सद्देसु अमणुन्न पावएसु न तेसु समणेण रूसियव्वं, न हीलियव्वं, न निंदियव्वं, न खिंसि–यव्वं, न छिंदियव्वं, न भिंदियव्वं, न वहेयव्वं न दुगुंछावत्तियाएलब्भा उप्पाएउं । एवं सोतिंदिय–भावणा भावितो भवति अंतरप्पा मणुन्नाऽम–णुन्न–सुब्भि–दुब्भिरागदोस–पणिहियप्पा साहू, मण–वयण–कायगुत्ते संवुडे पणिहितिंदिए चरेज्ज धम्मं ॥ १ ॥

छाया–"इदञ्च परिग्रह विरमण–परिरक्षणार्थं प्रवचनं भगवता सुकथितमात्महितं प्रेत्यभाविकम्, आगमिष्यद्भद्रं, शुद्धं, न्यायोपेतमकुटिलमनुत्तरं सर्वदुःखपापानां व्युपशमन, तस्येमा पञ्चभावनाश्चरमस्य व्रतस्य भवन्ति परिग्रह–विरमण–रक्षणार्थम् ।

प्रथमं-श्रोत्रेन्द्रियेण श्रुत्वा शब्दान् मनोज्ञभद्रकान् । कांस्तान् ?-वर मुरज-मृदङ्ग-पणव-दर्दुरक-कच्छभी-वीणा-विपञ्ची-वल्लकी-वद्धीसक-सुघोष-नन्दी-सूसर परिवादिनी-वंश तूणक-पर्वक-तन्त्री-तल-ताल-तुर्य निर्घोष-गीतवाद्यम्, नट-नर्तक-जल्ल-मल्ल-मौष्टिक- विडम्बक-कथक- प्लवक- लासकाऽऽचक्षक-(आख्यायक)-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुम्बवीणिक-तालाऽऽचर-प्रकरणानि च बहूनि, मधुरस्वरगीत सुस्वराणि, काञ्ची-मेखलाकलाप-प्रतरक-प्रहेरक- पादजालक-घण्टिका-किङ्किणी-रत्नोरुजालिका क्षुद्रिका-नूपुर-चरणमालिका-कनक-निगड जालक-भूषणशब्दान्, लीलाचङ्क्रम्यमाणोदीरितान् तरुणीजन-हसित-भणित-कलरिभित-मञ्जुलान्, गुण वचनानि च बहूनि मधुरजन भाषितानि, अन्येषु चैवमादिकेषु शब्देषु मनोज्ञकेषु न तेषु श्रमणेन सक्तव्यम्, न रक्तव्यम्, न गर्द्धितव्यम्, न मूर्च्छितव्यम्, न विनिघातमापत्तव्यम्, न लोभितव्यम्, न तोष्टव्यम्, न हसितव्यम्, न स्मृतिश्चमतिश्च तत्र कुर्यात्। पुनरपि श्रोत्रेन्द्रियेण श्रुत्वा शब्दान् अमनोज्ञपापकान्, कास्तान् ?-आक्रोश-परुष-खिंसणाऽवमानन-तर्जन-निर्भर्त्सन-दीप्तवचन त्रासनोत्कूजित-रुदिताऽऽरटित-क्रन्दित-निर्घुष्ट-रसित-करुण-विलपितान्, अन्येषु चैवमादिकेषु शब्देष्वमनोज्ञपापकेषु न तेषु श्रमणेन रोषितव्यं, न हीलितव्यं, न निन्दितव्यं, न खिंसितव्यं, न छेत्तव्यं न भेत्तव्यं, न हन्तव्यं, न जुगुप्सा-वृत्तिका लभ्योत्पादयितुम्। एवं श्रोत्रेन्द्रियभावना-भावितो भवत्यन्तरात्मा मनोज्ञाऽमनोज्ञ-सुरभि-दुरभि-रागद्वेष प्रणिहितात्मा साधुर्मनो-वचन-कायगुप्तः संवृतः प्रणिहितेन्द्रियश्चरेद्धर्मम् ॥ १ ॥

अन्व०-"(च) और (परिग्गहवेरमण-परिरक्खणट्ठयाए) परिग्रह विरमण व्रत की रक्षा के लिये (भगवया) प्रभु महावीर ने (इम पावयणं) यह प्रवचन (सुकहियं) अच्छी तरह कहा है (अत्तहियं, पेच्चा भाविकं) जो आत्महितकारी व परलोक में शुभ का कारण है (आगमेसि भद्दं) भविष्य में कल्याण कारक (सुद्ध) शुद्ध (नेयाउयं) न्याययुक्त (अकुडिलं) कुटिलता रहित (अणुत्तरं) सर्व श्रेष्ठ और (सव्वदुक्ख-पावाण) सब दुःख एवं पापों का (विओसमणं) उपशमन करने वाला है (तस्स चरिमस्स वयस्स) उस अन्तिम अपरिग्रह व्रत की (इमा पंच भावना) ये पांच भावनाये (परिग्गहवेरमण-रक्खणट्ठयाए) परिग्रह विरमण व्रत की रक्षा के लिये (होंति) है।

जैसे-(पढम) प्रथम भावना-(सो इन्दिएण) श्रोत्रेन्द्रिय से (मणुन्नभद्दगाइं)

"मनोज्ञता के कारण सुन्दर (सद्दाइं) शब्दों को (सोचा) सुनकर, (निते?) कौन से वे शब्द है?

उत्तर–(वर मुरय– मुइंग– पणव– दद्दुर– कच्छभि– वीणा– विपंची–वल्लयि– वद्धीसक– सुघोसनंदि– सूसर– परिवादिणि–वंस–तूणक पव्वक–तंती–ताल–तुडिय– निग्घोस गीयवाइयाइं) प्रधान मुरज–मर्दल मृदङ्ग, पणव–छोटा पडह, दर्दुर–चर्म से बंधे हुए मुख वाले कलस जैसा वाद्य विशेष, कच्छभि–वाद्य विशेष, वीणा, विपंची और वल्लकी–एक प्रकार की वीणा, वद्धीसक–एक प्रकार का वाद्य, सुघोषा–घण्टा, नन्दी–बारह प्रकार के तुर्य[1] का निर्घोष, सुसर परिवादिनी–वीणा वंश–बांसरी, तूणक और पर्वक–वाद्य का एक प्रकार, तन्त्री–वीणा विशेष, तल–हस्त तल, ताल–कास्य ताल इन सब वाद्यो के निर्घोष तथा सामान्य गीत और वाद्य को (य) और (नड–नट्टक–जल्ल–मल्ल–मुट्ठिक–वेलंबक–कहक पवक–लासग–आइक्खक–लंख–मंख–तूण इल्ल–तुंब वीणिय–तालायर पकरणानि) नट, नर्तक, जल्ल–वास या डोरी पर खेलने वाले, मल्ल, मौष्टिक मल्ल, विटम्बक–विदूषक, कथा करने वाला, प्लवक–उछलने वाला, रास गाने वाले तथा पूर्वोक्त अर्थ वाले, लख, मख, तूण इल्ल, तुंबवीणिक और तालचर इनसे किये नाटक आदि प्रकरणो को तथा (बहुणि महुर–सर–गीत सुस्सराति) बहुत से मधुर ध्वनि वाले गायकों के सुस्वर गीतों को 'सुनकर' फिर (कंची–मेहला–कला वपत्तक–पहेरक पाय जालक–घंटिय– खिंखिणि–रयणोरुजालिय–छुद्दिय–नेउर–चलण मालिय–कणग नियल–जाल भूसण–सद्दाणि) काची–कमर का भूषण कंदोरा, मेखला–उसी का एक भेद, कलापक–गरदन का आभरण, प्रतरक और प्रहेरक–आभरण विशेष, पाद जालक–पांव के नूपुर आदि आभरण, घण्टिका–घुघरू, खिंखिनी छोटी घुघुरी वाला भूषण, रत्नोरुजालक–रत्न सम्बन्धी जंघा के आभरण, क्षुद्रिका–एक प्रकार का आभरण नेउर–नेपुर, चरण मालिका तथा कनक निगड–पैर के आभरण विशेष, और जाल भूषण इन सबके शब्दो को जो (लील चकम्म माणाणु दीरियाइं) लीला से चलती हुई स्त्रियो के गमन से उत्पन्न हुए हैं, (तरुणी

---

[1] तूर्य के बारह प्रकार—(१) भभा, (२) मृदग, (३) मार्दल (४) हुडुक्क, (५) तिलिमा, (६) करड, (७) कसाल (८) काहल, (९) वीणा, (१०) वंश, (११) शंख, (१२) पणवक।

जण- हसिय- भणिय- कलरिभित- मंजुलाइं) तरुणी स्त्रियों के हास्य वचन, तथा स्वर के घोलना युक्त मधुर व सुन्दर शब्दों को (गुणवयणाणि य बहूणि महुरजण-भासियाइ) अथवा मधुर जन-प्रेमी जनों से बोले हुए बहुत से स्तुति वचनों को (अन्नेसु य एवमादिएसु सद्देसु मणुन्न-भद्दएसु) और अन्य इस प्रकार के मनोहरता से शुभ रूप जो विशिष्ट शब्द हैं (न तेसु समणेण सज्जियव्वं) उन शब्दों में साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए (न रंजियव्वं) राग नहीं करना चाहिए (न गिज्झियव्वं) गृद्धि-नहीं मिलने वाले शुभ शब्दों को आकांक्षा नहीं करनी चाहिए (न मुज्झियव्वं) न बेभान होकर मोह करना चाहिए, (न विनिग्घायं आवज्जियव्वं) न उसके लिये अपना व परका नाश करना चाहिए (न लुभियव्वं) न लोभ करना चाहिए (न तुसियव्वं) प्राप्ति होने पर प्रसन्न भी नही होना चाहिए (न हसियव्व) न विस्मय से हास्य करना चाहिए (न सइंच मइंच तत्थकुज्जा) और न वहां-उन शब्दों में-स्मृति या मति अर्थात् स्मरण या उनका विचार भी नही करना चाहिए (पुणरवि) फिर भी-शब्द गत विचार को कहते हैं (सोइंदिएण अमणुन्न पावकाइं सद्दाइं सोच्चा) श्रोत्र इन्द्रिय से अमनोज्ञ और बुरे शब्दों को सुनकर [रोष आदि नहीं करना] (किंते ?) कौन से वे अमनोज्ञ शब्द हैं ?,

उत्तर-(अक्कोस-फरुस-खिंसण-अवमाणण- तज्जण- निब्भंछण- दित्तवयण-तासण-उक्कूजिय-रुन्न-रडिय-कंदिय-निग्घुट्ठ रसिय-कलुण-विलवियाइ) आक्रोश मरजा आदि प्रकार की गाली, परुष वचन-मूर्ख आदि कहना, खिंसन-निन्दा, अपमान और तर्जना-भय सूचक शब्द, निर्भर्त्सना-सामने से हट जा इत्यादि तिरस्कार वचन दीप्त-क्रोध युक्त, त्रासकारी, उत्कूजित-अव्यक्त जोर की ध्वनि, रोने के शब्द, रटित-रडने के शब्द, क्रन्दन-वियोग वगैरह का आक्रन्दन, निर्घुष्ट-निर्घोष रूप, रसित-जानवर के समान चीत्कार, करुणा उत्पन्न करनें वाले और विलाप रूप, (अन्नेसु य एवमदिएसु सद्देसु अमणुन्न पावएसु) और इस प्रकार के अन्य अमनोज्ञ जो शब्द हैं (न तेसु समणेण रुसियव्वं) उन शब्दों मे साधु को रोष नहीं करना चाहिए (न हीलियव्वं) हीलना नहीं करनी चाहिए (न निंदियव्वं) निन्दा नहीं करनी चाहिए (न खिंसियव्व) लोक समक्ष उनको बुरा नहीं कहना चाहिए (न छिंदियव्वं) अमनोज्ञ शब्द के कारण द्रव्य का छेदन नहीं करना चाहिए

(नभिंदियव्वं) न उसका भेदन-दो भाग करना चाहिए (न वहेयव्वं) न वध-हनन-करना चाहिए (न दुगुंछा वत्तियाए लब्भा उप्पाएउं) अपने या दूसरे के हृदय में जुगुप्सा-उत्पन्न करनी भी योग्य नहीं है (एवं) इस प्रकार (सोइंदिय भावणा भाविती) श्रोत्र इन्द्रिय की भावना से युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (मणुन्नाऽमणुन्नऽ सुब्भि-दुब्भि-राग-दोस-पणिहियप्पा) मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूप वाले शुभाऽशुभ शब्दों में राग द्वेष के प्रणिधान-संवर-वाला-साधु (मण-वयण-कायगुत्ते) मन वाणी और काय से गुप्त (संवुडे) संवरवान् (पणिहिंदिदिय) गुप्त इन्द्रिय वाला होकर (चरेज्ज धम्मं) धर्म का आचरण करे ॥ १ ॥

मूल-"बितियं-चक्खिदिएण पासिय रूवाणि मणुन्नाइं भद्दकाइं, सचित्ताऽचित्त-मीसकाइं, कट्ठे पोत्थे य, चित्तकम्मे, लेप्पकम्मे, सेले य, दंतकम्मे य, पंचहिं वण्णेहिं अणेग संठाण संठियाइं, गंथिम वेढिम-पूरिम-संघातिमाणि य मल्लाइं बहुविहाणि य अहियं नयण-मणसुहकराइं, वण संडे पव्वते य गामागरनगराणि य खुद्दि यपुक्खरिणि-वावी-दीहियगुंजालिय- सरसर पंतिय-साग-बिल पंतिय-खादिय-नदी-सर-तलाग-वप्पिणी-फुल्लुप्पल-पउम-परिमंडियाभिरामे, अणेग- सउणगण- मिहुणविचरिए, वर मंडव-विविह-भवण-तोरण-चेतिय-देवकुल-सभ-प्पवा वसह-सुकय सयणासण-सीय-रह-सयड-जाण-जुग्ग-संदण-नर नारिगणे य, सोम पडिरूवदरिसणिज्जे, अलंकितविभूसिते, पुव्वकयतवप्पभाव-सोहग्ग संपउत्ते, नड-नट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबग-कहक-पवग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंबवीणिय-तालायर पकरणाणि य बहूणि सुकरणाणि, अन्नेसु य एवमादिएसु रूवेसु मणुन्नभद्दएसु न तेसु समणेण सज्जियव्वं, न रज्जियव्वं, जाव न सइंच मइंच तत्थकुज्जा। पुणरवि चक्खिदिएण पासिय रूवाइं अमणुन्नपावकाइं, किंते?-गंडि-कोढिक-कुणि-उदरि कच्छुल्ल-पइल्ल-कुज्ज-पंगुल-वामण-अंधिल्लग-एगचक्खु-विणिहय-सप्पि-

सल्लग-वाहिरोग-पीलियं, विगयाणि अ मयक कलेवराणि, सकिमिण कुहियं च दव्वरासिं, अन्नेसु य एवमादिएसु अमणुन्न पावतेसु न तेसु समणेण रूसियव्वं, जाव न दुगुंछावत्तियावि लब्भा उप्पातेउं । एवं चक्खिदिय भावणा-भावितो भवति अंतरप्पा जाव चरेज्ज धम्मं ॥ २ ॥

ततियं घाणिंदिएण अग्घाइय-गंधाति मणुन्न भद्दगाइं, किंते ?—जलय थलय-सरस-पुप्फ—फल—पाण—भोयण—कुट्ठ-तगर-पत्त-चोय-दमणक —मरुय-एलारस—पिक्कमंसि—गोसीस—सरसचंदण—कप्पूर— लवंग— अगर—कुंकुम—कक्कोल उसीर—सेय चंदण—सुगंध—सारंग—जुत्ति—वर धूववासे, उउय पिंडिम णिहारिम—गंधिएसु अन्नेसु य एवमादिएसु गंधेसु मणुन्न—भद्दएसु-न तेसु समणेण सज्जियव्वं, जाव न सतिं च मइं च तत्थकुज्जा । पुणरवि घाणिंदिएण अग्घातिय गंधाणि अमणुन्न पावकाइं । किंते ! अहिमड अस्समड-हत्थिमड—गोमड—विग-सुणग—सियाल—मणुय—मज्जार—सीह दीविय—मय-कुहिय-विणट्ठ-किविण-बहुदुरभि-गंधेसु अन्नेसु य एवमादिएसु गंधेसु अमणुन्न-पावएसु न तेसु समणेण रूसियव्वं, जाव पणि हिय-पंचिंदिए चरेज्ज धम्मं ॥ ३ ॥

चउत्थं-जिब्भिदिएण साइय रसाणि उ मणुन्नभद्दकाइं, किंते !—उग्गाहिम-विविह-पाण भोयण-गुलकय-खंड कय तेल्ल-घयकय-भक्खेसु बहुविहेसु लवणरस-संजुत्तेसु महु-मंस-बहुप्पगार-मज्जिय- निट्ठाणग- दालियंब- सेहंब दुद्ध-दहि-सरय-मज्ज-वर वारुणी-सीहु-काविसायण-सायट्ठारस- बहुप्पगारेसु भोयणेसु य मणुन्न-वन्न-गंध-रस-फास-बहु दव्व-संभितेसु अन्नेसु य एवमादिएसु रसेसु, मणुन्न-भद्दएसु न तेसु समणेण सज्जियव्वं, जाव न सइं च मइं च तत्थ कुज्जा । पुणरवि जिब्भिदिएण साथिय रसातिं अमणुन्नपावगाइं, किंते !—अरस-विरस-सीय—लुक्ख-णिज्जप्प-पाण-भोयणाइं, दोसीण-वावन्न

मृत-कुथित-विनष्ट-कृमि-बहुदुरभिगन्धेषु अन्येषु चैवमादिकेषु गन्धेषु अमनोज्ञपाप केषु न तेषु श्रमणेन रोषितव्यं, यावत् प्रणिहित-पञ्चेन्द्रियश्चरेद्धर्मम् ॥ ३ ॥

चतुर्थं-जिह्वेन्द्रियेण स्वादयित्वा रसांस्तु मनोज्ञभद्रकान्, कांस्तान्?-अवगाहिम-विविध-पान भोजन-गुडकृत-खण्डकृत-तैलघृत-कृतभक्ष्येषु बहुविधेषु, लवण रससंयुक्तेषु, मधु-मांस-बहुप्रकार-मज्जिक-निष्ठानक-दालिकाम्ल, सैन्धाम्ल, दुग्ध दधि-सरक-मद्य-वर वारुणी-सीधु-कापिशायन-शाकाष्टादश-बहुप्रकारेषु-भोजनेषु च, मनोज्ञ वर्ण-गंध रस-स्पर्श बहुद्रव्य संभृतेषु, अन्येषु चैव मादिकेषु रसेषु मनोज्ञभद्रकेषु न तेषु श्रमणेन सज्जितव्यं, यावत् न स्मृतिं च मतिं च तत्र कुर्यात्। पुनरपि जिह्वेन्द्रियेण स्वादयित्वा रसान् मनोज्ञपापकान्, कांस्तान्? अरस विरस-शीत-रुक्ष-निर्याप्यपान-भोजनानि, दोषान्न-व्यापन्न-कुथित-पूतिकाऽमनोज्ञ विनष्टप्रसूत-बहुदुरभिगन्धान्, तिक्त-कटुक-कषायाम्ल-रस-लिन्द्रनीरसान्, अन्येषु चैवमादिकेषु रसेषु अमनोज्ञपापेषु न तेषु श्रमणेन रोषितव्यं, यावच्चरेद्धर्मम् ॥ ४ ॥

अन्व० (बितियं) दूसरी भावना-चक्षुरिन्द्रिय संवर रूप, जैसे-(चक्खिदिएण) चक्षु इन्द्रिय से (मणुन्नाइं) मनोज्ञ (भद्दकाइं) सुन्दर-शुभ (सचित्ताऽचित्त-मीसकाइ, सचित्त, अचित्त तथा मिश्र द्रव्य-सम्बन्धी (रूवाणि) रूपों को (पासिय) देखकर, जो रूप-(कट्ठे, पोत्थे) काष्ठ के पटिया पर, वस्त्र पर (य) और (चित्तकम्मे) चित्रकर्म मे (लेप्पकम्मे) गोबर मिट्टी आदि के लेप से बनाये हुए लेप्यकर्म मे (सेले य) पत्थर पर और (दंतकम्मे) दांत की कोरणी में (पचहिं वण्णेहिं अणेग संठाण संठियाइ) पांचवर्ण से युक्त व अनेक प्रकार के आकार वाले (गंथिम) गूंथकर माला की तरह बनाए हुए (वेढिम-पूरिम-संघातिमाणि) वेष्टिम-वेष्टन से बनाये हुए, पूरिम-चिपडी आदि भरकर बनाये गये, तथा संघातिम-फूल आदि को एक दूसरे से मिलाकर उनके समूह से बनाये हुए (य) और (मल्लाणि बहुविहाणि य) बहुत प्रकार के माल्य-माला सम्बन्धी रूप, और (अहियं नयण-मण-सुहकराइं) नेत्र व मनको अधिक सुखकारी (वणसंडे) वनखंड (पव्वते) पर्वत और (गामागर-नयराणि) ग्राम, आकर तथा नगरों को (य) फिर (खुड्डिय-पुक्खरिणि-वावी-दीहिय-गुंजालिय-सर-सरपंतिय-सागर-बिलपंतिय-खादिय-नदी-सर-तलाग-वप्पिणी-फुल्लुप्पल-पउम-परिमंडियाभिरामे) क्षुद्रिका-तलाई, पुष्करणी-कमलयुक्त वापी, वापी-चौकोण बावडी, दीर्घिका-लम्बी,

गुंजालिका-वक्रसारणी, सरः सरः पंक्ति-परस्पर पानी के सम्बन्ध वाले अनेक सरोवरों की पंक्ति, सागर-समुद्र, बिलपंक्ति-कूपश्रेणि या लोह आदि की खान में खोदे हुए खड्ढो की श्रेणि, खातिका-खाई, नदी, सर-बिना खोदे सहज बना हुआ जलाशय, तडाग-तालाब, और वप्पिणी-केदार-पानी की क्यारी विकसित नीलोत्पल तथा सामान्य कमलों से मण्डित एवं जो रमणीय हैं (अणेग-सउण गण-मिहुण-विचरिए) अनेक प्रकार के पक्षि समूह के मिथुन-जोडे की गमनागमन क्रिया से युक्त (वरमंडव-विविह भवण-तोरण-चेतिय-देवकुल-सभ-प्पवा-वसह-सुकय-सयणासण-सीय-रह- सयड- जाण- जुग्ग- संदण- नर- नारिगणे) उत्तम मण्डप, अनेक प्रकार के भव्य भवन, तोरण, चैत्य-चितास्थान पर बने हुए स्मारक, देवकुल-देवालय, सभा-लोको के बैठने का स्थान, प्रपा-प्याऊ, आवसथ-परिव्राजको का आश्रम, सजाए हुए शयन-पलंग आदि, आसन-सिंहासन आदि, शिविका-ऊपर से ढकी हुई पालखी, रथ, गाडी, यान और युग्य-कुछ विशेषता वाले वाहन, स्यन्दन-घुघरूदार रथ या सांग्रामिकरथ, और स्त्री पुरुषो का समूह (सोम-पडिरूव दरिसणिज्जे) जो सौम्य-प्रत्येक दर्शक के अनुकूल रूपवाले और दर्शनीय है (अलंकित-विभूसिते) भूषणो से अलंकृतऔर वस्त्र आदि से विभूषित हैं। पुण्णकय-तवप्पभाव-सोहग्ग-संपउत्ते) पूर्व जन्म मे की हुई तपस्या के प्रभाव से प्राप्त सौभाग्य वाले (नड-नट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलवग-कहक-पवग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूण इल्ल-तुंब वीणिय-तालायर-पकरणाणि य) और नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल, मौष्टिक, विदूषक, कथा वाचक, प्लवक, रास कथक, वार्ता कहने वाला, चित्र पट लेकर घूमने वाला, वांस पर नाचने वाला, तथा तूण इल्ल, तुंबवीणिक और तालचर इनके विविध प्रयोग (वहूणि सुकरणाणि) वहुत से सुन्दर कार्यों को, देखकर आसक्त नही होना चाहिए। अन्नेसु य एवमादिएसु रूवेसु मणुन्न भद्दएसु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे मनोज्ञ व भद्ररूपों मे (न तेसु समणेणसज्जियव्वं) साधु को उन पूर्वोक्त शब्दो मे तल्लीन नही होना चाहिए (न रज्जियव्व न राग करना चाहिए (जाव न सइंच, मइंच तत्थ कुज्जा) यावत् स्मृति और मति-विचार भी उनमे नहीं करना चाहिए (पुणरवि) फिर भी चक्षुरिन्द्रिय विषय को कहते हैं-(चक्खिदिएण) चक्षु इन्द्रिय से (अमणुन्न-पावकाइ) अमनोज्ञ व पापकारी (पासिय रूवाइ) रूपों को देखकर रोष आदि नहीं करना, (किंते? कौन से वे अम-

नोज्ञ रूप हैं ? (गंडि-कोढिक-कुणि-उदरि-कच्छुल्ल- पइल्ल-कुज्ज-पंगुल-वामण-अंधिल्लग-एगचक्खु-विणिहय-सप्पि-सल्लग-वाहिरोग-पीलियं) वात पित्त कफ और सन्निपात से होने वाले गंडरोग वाला-गंडमालायुक्त, कुष्ठ-अठारह प्रकार के कुष्ठ रोग वाला, कुणि-गर्भ दोष से जिसका एक हाथ और एक पैर छोटा है, उदरी जलोदर युक्त, कच्छुल्ल-खुजली के रोग वाला, पइल्ल-श्लीपद रोग वाला, कुब्ज-कूबड पंगुल-पंगु-चलने मे असमर्थ, वामन अत्यन्त छोटे शरीर वाला, अन्धक-जन्मान्ध, एक चक्षु-काणा, विनिहत चक्षु जन्म के बाद किसी प्रकार के आघात से अन्धा या काणा बना हो, सर्पि शल्यक- पीठ के बलपर ससर के या लकडी के सहारे चलने वाला, अथवा पिशाच की तरह दुष्ट ग्रह से धरा हुआ तथा शूलादि शल्यवाला और व्याधि एवं रोग से पीडित, इनमे से किसी को (विगयाणि य मयकलेवराणि) और विकृत-बिगडे हुए मृतक के कलेवरो को (सकिमिण कुहिय च दव्वरासिं) कीडो से युक्त और सडे हुए द्रव्य राशि को देखकर (अन्नेसु य एवमादिएसु अमणुन्न पावतावतेसु) और इस प्रकार के अन्य अमनोज्ञ व पापकारी जो रूप है (न तेसु समणेण रूसियव्वं) उन सब अमनोज्ञ रूपो में साधु को रुष्ट नही होना चाहिए (जाव न दुगुंछावत्तिया वि लब्भा उप्पातेउ) यावत् स्वपर की दुगुछावृत्ति-घृणा भी उत्पन्न करना योग्य नहीं है (एवं चक्खिदिय भावणा भावितो) इस प्रकार चक्षु इन्द्रिय की भावना से युक्त (अंतरप्पा) अन्त करण वाला मुनि (भवति) होता है (जाव चरेज्ज धम्मं) यावत् गुप्त होकर धर्म का आचरण करे ॥ २ ॥

(ततियं) तीसरी भावना—घ्राणेन्द्रिय संवर रूप, जैसे-(घाणिंदिएण अग्घाइय गधाति मणुन्न-भद्दगाइ) घ्राण इन्द्रिय से मनोज्ञ व शुभ गधो को सूघकर (किते ?) वे सुगन्ध कौनसे हैं ?

उत्तर-(जलय-थलय-सरस-पुप्फ फल-पाण भोयण कुट्ठ- तगर- पत्त-चोद-दमणग-मरुय-एलारस-पिक्क मंसि गोसीस-सरस चंदण-कप्पूर-लवंग-अगर कुंकुम-कक्कोल-उसीर-सेय चदण सुगंध-सारंग-जुत्तिवर-धूववासे) जल एवं स्थल में उत्पन्न होने वाले सरस फूल, फल, पान तथा भोजन, कुष्ठ-उत्पलकुष्ठ, तगर, पत्र-तमालपत्र, चोय-सुगन्धी त्वचा, दमनक-पुष्प विशेष, मरुक-मरुआ, एलारस-इलायची का रस, पिक्कमंसी-पका हुआ मांसी नामक गन्ध द्रव्य, गोशीर्ष नामक सरस चन्दन, कपूर, लवंग-लूंग, अगर, कुंकुम, कक्कोल-गोलाकार सुगन्धि फल

उशीर-वीरणी वनस्पति के मूल, श्वेत चन्दन, श्री खण्ड, अथवा श्वेद-सुगन्धि रस और, मलयागिरी, तथा सुगन्धि युक्त प्रधान अङ्गो के योग वाला उत्तम धूप वास (उउय- पिडिम- णिहारिसि- गंधिएसु) जो ऋतु के अनुकूल-पिरडमय और वायु से उड़ने वाले गन्ध से सुगन्धि युक्त है (अन्नेसु य-एवमादिसु गंधेसु मणुन्नभद्दएसु) और इस प्रकार के अन्य मनोज्ञ तथा भद्र गंधो मे (न तेसु समणेण सज्जियव्वं) इनमें साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए (जाव सतिंच मइंच तत्थ कुज्जा) यावत् वहां-उन सुगन्धिओ मे स्मृति वा विचार भी नहीं करना चाहिये (पुणरवि) फिर भी घ्राणेन्द्रिय के विषय को कहते हैं-(घाणिन्दिएण अग्घातिय गधाणि अमणुन्न-पावकाइं) घ्राणेन्द्रिय से अमनोज्ञ और बुरे गन्धद्रव्यो को सूंघकर (किंते ?) कौन से वे दुर्गन्धिद्रव्य ? ।

उत्तर-(अहिमड- अस्समड- हत्थिमड- गोमड- विग-सुणग-सियाल-मणुय-मज्जार-सीह-दीविय-मय-कुहिय-विणट्ठ-किविण-बहुदुरभिगंधेसु) सर्प का कलेवर, घोड़े का कलेवर, हाथी का मृतक, गौ का कलेवर, वृक, व्याघ्र, कुत्ता, शृगाल, मनुष्य, मार्जार-बिल्ली, सिंह और चित्ता, इन सबके कलेवर जो सड़े हुए, पूर्व आकार से नष्ट तथा कीड़े युक्त है और अत्यन्त दुर्गन्धि वाले हैं (अन्नेसुय एवमादिएसु गधेसु अमणुन्न पावएसु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे अमनोज्ञ गंधो मे (न तेसु समणेण रूसियव्वं उन अशुभ गन्धों में साधु को रुष्ट नही होना चाहिए। (जाव पणिहिय-पचिंदिए चरेज्ज धम्मं) यावत् पाचो इन्द्रियों से संयम युक्त मुनि धर्म का आचरण करे । ३ ॥

(चउत्थं) चौथी भावना-रसनेन्द्रिय संवर रूप, जैसे-जिब्भिदिएण साइय रसाणि उ मणुन्न-भद्दकाइं) जिह्वा इन्द्रिय से मनोज्ञ व सुन्दर रसों का आस्वाद करके 'आसक्त नही होना' (किंते ?) वे मनोज्ञ रस कौन से है ?

उत्तर-(उग्गाहिम- विविह- पाण- भोयण- गुलकय- खंडकय- तेल्ल-घय-कय भक्खेसु) घी व तेल आदि मे डुबा कर पकाये गये पकान्न-खाजे आदि, अनेक प्रकार के पानक-द्राक्षापान आदि और भोजन, गुड़ या सक्कर के बनाये हुए, तेल अथवा घी के बने हुए मालपूआ आदि पदार्थों मे (बहुविहेसु लवण रस-संजुत्तेसु) जो अनेक प्रकार के लवण रस से संयुक्त है। (महु-मंस-बहुप्पागार-मज्जिय-निट्ठाणग-दालियंब-सेहंब-दुद्ध-दहि-सरय-मज्ज-वर वारुणी-सीहुका-विसायण-

सायट्ठारस बहुप्पगारेसु) मधु, मांस अनेक प्रकार की मज्जिका, निष्ठानक-अधिक मूल्य से बना हुआ, दालिकाम्ल-खट्टी दाल, सैन्धाम्ल-पदार्थ संमिश्रण से खट्टे किये गये रायता आदि, दूध, दही, सरकं, गुड़ और धातकी से बना हुआ मद्य, उत्तम वारुणी और सीधु का तथा पीशायन-एक प्रकार की मदिरा, तथा अठारह प्रकार के शाक वाले ऐसे अनेक प्रकार के (मणुन्न-वन्न-गंध-रस-फास-बहुदव्व-संभितेसु भोयणेसु) मनोज्ञ वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श युक्त अनेक द्रव्यों से बने हुए भोजनो मे (अन्नेसु य एवमादिएसु रसेसु मणुन्न भद्दएसु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे मनोज्ञ- सुन्दर रसो मे (नतेसु समणेण सज्जियव्वं) उन शुभ रसों मे साधु को आसक्ति नहीं करनी चाहिए (जाव न सइंच मइंच तत्थ कुज्जा) यावत् स्मृति व बुद्धि भी वैसे भोजन मे नही करना (पुणरवि) फिर भी जिह्वा इन्द्रिय के विषय को कहते है-(जिब्भिदिएण साथिय रसाति अमणुन्न-पावगाइं) जिह्वेन्द्रिय से अम- नोज्ञ व बुरे रसो का आस्वाद करके (किते ?) वे अशुभ कौन से ?,

उत्तर-(अरस-विरस-सिय-लुक्ख-णिज्जप्प-पाण मोयणाइ) रस से रहित- हिंग आदि से असंस्कृत-विरस-पुराना होने से विरस, शीत ठंढे, लूखे और निर्वाह करने मे असमर्थ पान भोजन को (दोसीण-वावन्न कुहिय-पूइय अमणुन्न-विणट्ठ- पसूय-बहु दुब्भिगंधियाइ) रात के वासी, व्यापन्न-रंग बदले हुए, सडे हुए तथा अपवित्र होने से जो अमनोज्ञ व अत्यन्त विकृत दशा को प्राप्त हैं, अतएव उनसे उत्पन्न बहुत दुर्गन्ध वाले हैं (तित्त-कडुय-कसाय-अंबिल रस, लिंडनीरसाइ) तीता, कटु-कडुआ, कषायला, खट्टा, लिन्द्र-शेवाल रहित पुराने जल की तरह और नीरस पदार्थों को (अन्नेसु य एवमातिएसु रसेसु अमणुन्न-पावएसु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे अशुभ रसो मे (न तेसु समणेण रूसियव्व) उन अशुभ रसों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए (जाव चरेज्ज धम्मं) यावत इन्द्रियों से गुप्त होकर धर्म का आचरण करना चाहिये ॥ ४ ॥

मूल-" पंचमगं-फासिंदिएण फासिय फासाइं मणुन्नभद्दकाइं, किंते?- दग-मंडव-हार-सेय चंदण-सीयल-विमलजल-विविह कुसुम-सत्थर- ओसीर-मुत्तिय-मुणाल-दोसिणा-पेहुण-उक्खेवग-तालियंट- बीयणग- जणियसुह-सीयले य पवणे, गिम्हकाले सुहफासाणि य बहूणि सयणाणि

आसणाणि य पाउरणगुणेय सिसिर काले अंगार–पतावणा य आयव–निद्ध–मउय–सीय–उसिण–लहुया यजे उदु सुहफासा, अंगसुह निव्वुइकरा ते, अन्नेसु य एवमादितेसु फासेसु मणुन्न भद्दएसु न–तेसु समणेण सज्जियव्वं, न रज्जियव्वं, न गिज्झियव्वं, न मुज्झियव्वं, न विणिग्घायं आवज्जियव्वं, न लुभियव्वं, न, अज्झोव वज्जियव्वं, न तूसियव्वं, न हसियव्वं, न सतिंच मतिंच तत्थकुज्जा । पुणरवि–फासिंदिएण फासिय फासातिं अमणुन्न पाव काइं, किंते?–अणेगवध–बंध–तालणंकण–अतिभारारोवणए, अंग भंजण–सूईनख–प्पवेस–गायपच्छणण– लक्खारस—खार–तेल्ल– कलकलंत-तउअ–सीसक–काललोह–सिंचण–हडिबंधण—रज्जुनिगल–संकल- हत्थंडुय– कुंभि पाक–दहण–सीहपुच्छण–उब्बंधण–सूलभेय–गयचलण–मलण– करचरण–कन्न–नासोट्ठ–सीसछेयण–जिब्भंच्छण–वसण–नयण–हियय– दंत– भंजण-जोत्त–लय–कसप्पहार–पाद–पण्हि—जाणु–पत्थरनिवाय– पीलण– कवि-कच्छु–अगणि–विच्छुयडक–वायातव-दंस–मसक निवाते, दुट्ठणिसेज्जदुनि सीहिय–दुब्भि–कक्खड-गुरु-सीय-उसिण-लुक्खेसु, वहुविहेसु अन्नेसु य एव-माइएसु फासेसु अमणुन्न पावकेसु न तेसु समणेण रूसियव्वं, न हीलियव्वं, न निंदियव्वं, न गरहियव्वं, न खिंसियव्वं, न छिंदियव्वं, न भिंदियव्वं, न वहेयव्वं, न दुंगुंछावचियं च लब्भा. उप्पाएउं । एवं फासिंदिय भावणा भावितो भवति अंतरप्पा मणुन्नामणुन्न-सुब्भि–दुब्भि-राग–दोस-पणिहियप्पा साहू, मण-वयण-कायगुत्ते संवुडे पणिहितिंदिए चरिज्ज धम्मं ॥ ५ ॥

एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं इमेहिं पंचहि वि. कारणेहिं मण-वय-काय-परिरक्खि एहिं निच्चं आमरणंतं च एस. जोगो नेयव्वो, धितिमया मतिमया अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो सुद्धो सव्व-जिणमणुन्नातो । एवं पंचमं संवरदारं फासियं

पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं अणुपालियं आणाए आराहियं भवति। एवं नायमुणिणा भगवया पन्नवियं, परूवियं, पसिद्धं, सिद्धं, सिद्धवरसासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं पंचमं संवरदारं समत्तं तिबेमि। एयाणि वयाइं पंचवि सुव्वय-महव्वयाइं, हेउसय-विचित्त-पुक्कलाइं, कहियाइं, अरिहंत सासणे पंच समासेण संवरा, वित्थरेणउ पणवीसति समिय-सहिय-संवुडे, सया जयण-घडण-सुविसुद्ध-दंसणे एए अणुचरिय संजते चरम सरीरधरे भविस्सती ति। १। २६।

छाया-"पञ्चमकं-स्पर्शेन्द्रियेण स्पृष्ट्वा स्पर्शान् मनोज्ञभद्रान्, कांस्तान्?-द्रवक मण्डप-हार-श्वेतचन्दन-शीतल-विमलजल-विविधकुसुम-संस्तरोशीर-मौक्तिक मृणाल-ज्योत्स्ना-पेहुणो-(मयूर पुच्छ)-त्क्षेपक-तालवृन्त-व्यजनक-जनित-सुख शीतलांश्च पवनान्, ग्रीष्मकाले सुखस्पर्शान् च, बहूनि शयनान्यासनानि च, प्रावरण गुणान् च, शिशिरकालेऽङ्गार-प्रतापना च, आतपस्निग्धमृदुक-शीतोष्ण-लघुकाश्च ये ऋतुसुख-स्पर्शा, अङ्गसुख-निर्वृतिकराः तान्, अन्येषु चैवमादिकेषु स्पर्शेषु, मनोज्ञभद्रकेषु न तेषु श्रमणेन सज्जितव्यं, न रक्तव्यं, न गर्द्धितव्यं, न मूर्च्छितव्यं, न विनिर्घातमापत्तव्यं, न लोभितव्य, नाध्युपपत्तव्य, न तोष्टव्य न हसितव्य, न स्मृतिं च मतिं च तत्र कुर्यात्। पुनरपि स्पर्शेन्द्रियेण स्पृष्ट्वा स्पर्शान् अमनोज्ञ-पापकान्, कांस्तान्?-अनेक-वध-बन्ध-ताडनाङ्कनाऽतिभारारोपणान्, अङ्गभञ्जन-सूचीनख प्रवेश-गात्रप्रक्षणन-जीरण-लाक्षारस-क्षार-तैल-कलकलायमानत्रपुप-सीसक-काल लोह-सिञ्चन-खोटकच्छेन-रज्जुनिगड सङ्कल-हस्ताण्डुक-कुम्भीपाक-दहन सिंह पुच्छ नोद्बन्धन-शूलभेद गजचरण-मलन-कर-चरण-कर्ण-नासिकौष्ठ-शीर्ष-छेदन-जिह्वा-छेदन-वृषण-नयन-हृदय-दन्त-भञ्जन-योक्त्र लता-कप-प्रहार-पाद-पार्ष्णि-जानु-प्रस्तर निपात-पीडनकपि-कच्छू-वह्नि वृश्चिक दश-मशक-निपातान्, (स्पृष्ट्वा) दुष्टनिषद्या[1] दुर्निषीधिकाः (स्पृष्ट्वा,) दुरभि-कर्कश-गुरु-शीतोष्ण-रूक्षेषु, बहुविधेषु अन्येषु चएवमादिकेषु स्पर्शेष्वमनोज्ञ-पापकेषु न तेषु श्रमणेनरोषितव्य, न हीलितव्य, न निन्दितव्य, न गर्हितव्य, न खिंसितव्य, न छेत्तव्य, न भेतव्य, न हन्तव्य, न घृणावृत्तिश्च लभ्योत्पादयितुम। एवं स्पर्शेन्द्रिय-भावना-भावितो-भवत्यन्तरा-

१ दुष्ट मामक शय्या च।

स्पर्शमनोज्ञाऽमनोज्ञ-सुरभि-दुरभि रागद्वेष प्रणिहितात्मा साधुर्मनोवचन कायगुप्तः संवृतः प्रणिहितश्चरेद्धर्मम । एवमिदं संवरस्य द्वारं सम्यग् संवृतं भवति सुप्रणिहित-म् । एभिः पञ्चभिरपिकारणैर्मनो-वचन-काय परिरक्षितै र्निरन्तरामरणान्त चैष योगो नेतव्यो, धृतिमता मतिमताऽनास्रवोऽकलुषोऽच्छिद्रोऽपरिस्रावी असंक्लिष्टः शुद्ध सर्वजिनैरनुज्ञातः । एव पञ्चमं संवरद्वारं स्पृष्टं, पालितं, शोधित, तीर्णं कीर्तित मनुपालितमाज्ञयाऽऽराधितं भवति । एवं ज्ञात मुनिना भगवता प्रज्ञप्त प्ररूपितं प्रसिद्धं सिद्धं सिद्धवर शासनमिदमाख्यातं, सुदेशितं, प्रशस्तं, पञ्चमं द्वारं समाप्तमित्यहं ब्रवीमि । एतानि व्रतानि पञ्चापि सुव्रत-महाव्रतानि हेतुशत-विचित्र-पुष्कलानि कथितानि अर्हच्छासने पञ्चसमासेन संवराः, विस्तरेण तु पञ्चविंशति समिति-सहित-संवृतः, सदा यतना-घटना-सुविशुद्ध-दर्शन., एतेनाऽनुचर्यः संयतश्चरमशरीरधरो भविष्यतीति । सू० १ । २६

अन्वय-"(पंचमगं) पांचवी भावना-स्पर्श-इन्द्रिय-संवरस्य-(फ सिंदियेण फासिय फासाइं मणुन्नभद्दक इं) स्पर्श इन्द्रिय से मनोज्ञ व सुन्दर स्पर्शों को छूकर, (किते ?) वे मनोज्ञ स्पर्श कौनसे है ?

उत्तर-(दगमंडव-हार-सेयचंदण-सीयल-विमलजल-विविह कुसुम-सत्थर-ओसीर-मुत्तिय-मुणाल-दोसिणा-पेहुण-उक्खेवग-तालियंट- विरणग-जणियसुहसीयलेय पवणे) उदक मंडप-जलमडप, गले वाले मरडर, उदवहार, श्वेतचन्दन-श्री खण्ड, शीतल और निर्मल पानी, अनेक प्रकार के फूलों के विस्तर, ओशीर-वीरण का मूल, मोती, पद्मनाल, चन्द्र की चांदनी, मोर पिच्छी का उत्क्षेप, ताड़वृन्त-पंखा और वीजना, इनसे की गई सुखकारी और शीतल हवा को (गिम्ह काले , ग्रीष्म कालमें (सुहफासाणि य बहूणि सयणाणि आसणाणिय) तथा सुख दायक स्पर्श वाले बहुत से शयन-शय्या और आसनो को फिर (पाउरण-गुणे य सिसिरकाले) आवरण गुण वाले वस्त्रादि को शीतकाल में (अंगार-पतावणा य) और अग्नि से देह को तपाना (आयव-निद्ध-मउय-सीय-उसिण-लहुया य) धूप, स्निग्ध-तैल आदि पदार्थ, कोमल और ठंडे, गर्म तथा हल्के (जे उउसुहफासा) जो ऋतु के अनुकूल सुखस्पर्श (अंगसुह-निव्वुइकरा) शरीर सुख और मनको स्वस्थ करने वाले है (ते) वे स्पर्श (अन्नेसु य एवमाइएसु फासेसु मणुन्न भद्दएसु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे मनोज्ञ व शुभ स्पर्शों में (न तेसु समणेण सज्जियव्वं) उन शुभ

स्पर्शों मे साधु को आसक्ति नहीं करनी चाहिए, (न रज्जियव्वं) राग नहीं करना चाहिए (न गिज्झियव्वं) गृद्धि-अप्राप्त की इच्छा भी नहीं करनी चाहिए, (न मुज्झियव्वं) न बे भान होकर मोह करना चाहिए, (न विणिग्घायं आवज्जियव्वं) न स्व पर का नाश ही करना चाहिए (न लुभियव्वं) न लोभ करना चाहिए (न अज्झोव वज्जियव्वं) तल्लीन चित्त वाला नहीं होना चाहिए (न तूसियव्वं) न उसमें सन्तुष्ट होना चाहिए (न हसियव्वं) न हंसना चाहिए (न सतिं च मतिं च तत्थकुज्ञा) स्मृति और वहाँ-उस विषयमें-विचार भी नहीं करना चाहिए (पुणरवि) फिर भी स्पर्शेन्द्रिय के विषय को कहते हैं-(फासिंदिएण फासिय फासातिं अमणुन्न-पावकाइं) स्पर्श इन्द्रिय से अमनोज्ञ व अशुभ स्पर्शों को छूकर (किंते ?) वे अशुभ स्पर्श कौनसे ?

उत्तर-(अणेग-वध-बंध-तालणं कण-अतिभारारोवणए) अनेक प्रकार का वध-नाश, डोरी आदि का बन्धन, ताडन-चपेटा आदि का प्रहार देना, अङ्कन-तपी हुई शलाका आदि से निशान करना, और अधिक भार लादना, (अंगभजन-सूती-नख-प्पवेस गाय पच्छणण-लक्खारस-खार-तेल-कलकलत-तउय-सीसक-काल लोह-सिंचण-हडिबंधण-रज्जु निगल-सकल-हत्थुंडु य-कुंभिपाक-दहण-सीह पुच्छण-उब्बधण-सूलभे य-गय चलण-मलण-कर-चरण-कन्न-नासोट्ठ-सीस छेयण-जिब्भंछण-वसण-नयण हियय-दंत भजण-जोत्त-लय-कसप्पहार-पाद पण्हि-जाणु-पत्थर-निवाय-पीलण-कवि कच्छु-अगणि-विच्छुय डक्क-वायातव-दंस मसग-निवाते) अंग तोड़ना शरीर में सुई या नख भोंकना, गात्र का प्रच्छण यानि हीन होना, लाख का रस, क्षार तैल तथा अत्यन्त तपने के कारण कल कल करते हुए सीसा या काले लोह से देह को सींचना याने तपे हुए लाक्षारस आदि शरीर पर डालना, काष्ठ के खोड़े में बाधना, डोरी के निगड बन्धनों से समेटना और हस्तान्दुक से बाधना, कुम्भि में पकाना, अग्नि से जलाना, पूछ तोडना, बांधकर ऊपर से लटकाना, शूल से पिरोना, हाथी के पैर नीचे दबाना, अथवा मलना, हाथ, पैर, कान, नाक, ओष्ठ और शिर में छेद करना, जिह्वा को खींच कर निकालना, अण्ड-कोश, नेत्र, हृदय और दांत या आंत को मोडना, या तोडना, गाडीमें जूएसे जोडना, वेंत या चाबुक का प्रहार करना, पादपर्ष्णि-पैर की एडी, घुटना तथा पत्थर को अङ्ग पर गिराना, पीडन-यन्त्र मे पीलना, कपिकच्छू-वन्दर जैसे अत्यन्त खुजली होना,

या खुजली करने वाले फल का छूना, और अग्नि आदि का स्पर्श, बिच्छू का डंक और वायु, धूप तथा डास मच्छरो का अङ्ग पर गिरना (दुट्ठ-णिसज्ज-दुनिसी हिय-दुब्भि-कक्खड-गुरु-सीय उसिण-लुक्खेसु) दुष्ट निषद्या-बुरे आसन और अयोग्य स्वाध्यायभूमिमें तथा अशुभ गन्ध युक्त,कर्कश,गुरु भारी औरठंडे,उष्ण व रूक्ष (बहु विहेसु) बहुत प्रकार के स्पर्शों मे (अन्नेसुय एव माइएसु फासेसु अमणुन्न-पावकेसु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे अमनोज्ञ स्पर्शों में (न तेसु समणेण रूसियव्वं) उन अशुभ स्पर्शों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए न हीलियव्वं न निंदियव्वं न गरहियव्वं) न हीलना करनी चाहिए, न निन्दा करनी चाहिए, तथा न लोक समक्ष गर्हा करनी चाहिए, (न खिंसियव्वं, न छिंदियव्वं, न भिंदियव्वं, न वहेयव्व) खिसना नही करना चाहिए, अशुभ स्पर्श वाले द्रव्य का छेदन नही करना चाहिए, न उसका भेदन-दो भाग ही करना चाहिए, स्व पर का हनन नही करना चाहिए (न दुगुंछावत्तियं च लब्भा उप्पाएउं) और स्व पर की घृणा वृत्ति भी उत्पन्न करना योग्य नहीं है (एवं फासिंदिय भावणा भावितो) इस प्रकार स्पर्शेन्द्रिय संवर की भावना से युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (मणुन्नामणुन्न-सुब्भि-दुब्भि-राग दोस पणिहियप्पा) मनोज्ञ व अमनोज्ञ-गन्धयुक्त, अच्छे या बुरे स्पर्शों से राग द्वेष का संवरण करने वाला (साहू साधु मण-वयण-कायगुत्ते) मन वचन एवं काय से गुप्त (भवति) होता है। (संवुडे पणिहिइंदिए) संवर युक्त संयतेन्द्रिय मुनि (चरिज्जधम्मं) धर्म का आचरण करे ॥ ५ ॥

(एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं सुप्पणिहियं होइ) इस प्रकार यह संवर का पंचमद्वार सम्यक् संवरण किया गया सुरक्षित होता है (इमेहिं पंचहि विकारणेहिं मण-वय-काय-परिरक्खिएहिं) मन वचन और काय के द्वारा सुरक्षित इन पांचों कारणों से (निच्च आमरणंतं) सदा और मरण पर्यन्त (एसजोगो) यह प्रवृत्ति (धितिमया मतिमया) धृतिमान् और बुद्धिमान् को (नेयव्वो) ले चलना योग्य है याने पालने योग्य है (अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो सुद्धो सव्वजिण मणुन्नातो) आस्रव रहित,निर्मल, मिथ्यात्व आदि छिद्र रहित,अतएव अपरिस्रावी, सक्लेश रहित,शुद्ध तथा सर्व तीर्थङ्करोसे अनुज्ञात है (एवं पंचमं) इस प्रकार पांचवां (संवरदारं) संवरद्वार (फासियं,पालियं,सोहियं,तीरियं,किट्टियं, अणुपालियं, आणाए आराहियं भवति) शरीर से स्पर्श किया हुआ, पालन किया

हुआ, अतिचार हटाकर शुद्ध किया हुआ, पूर्ण किया हुआ, वचन से कीर्तन किया हुआ, अनुपालित और तीर्थङ्करों की आज्ञा के अनुसार आराधित होता है (एवं नाय-मुणिना भगवया पन्नवियं) इस प्रकार-पूर्वोक्त रीति से ज्ञात मुनि भगवान् महावीर ने कहा है (परूवियं) प्ररूपणा-युक्ति से समझाया है (पसिद्धं, सिद्धं, सिद्धवर सासणमिणं) प्रसिद्ध, सिद्ध और अर्हत रूप भवस्थ सिद्धों का उत्तम शासन यह (आघवियं) कहा गया है (सुदेसियं) तीर्थङ्करों से अच्छी तरह उपदिष्ट और (पसत्थ पचम सवरदारं समत्त, त्तिबेमि) प्रशस्त है सुधर्माचार्य-पंचम संवरद्वार पूर्ण हुआ ऐसा मैं कहता हूँ ॥

उपसंहार—(एयाति वयाइं पंचवि) ये पांचों सवर रूप व्रत (सुव्वय ? महव्वयाइं) हे सुव्रत ? महा व्रत है (हेउ सय-विचित्त-पुक्कलाइं) निर्दोष या विचित्र सैकड़ों हेतुओं से विस्तीर्ण (अरिहंत सासणे) अर्हन्तों के शासन मे (कहियाइं) कहे गये है (पंच समासेण सवरा) संक्षेप से पाच सवर हैं। (वित्थरेणउ) विस्तार से तो (पणवीसति) प्रत्येक व्रत की भावनाओं को मिलाकर पचीस होते हैं, (समिय-सहिय-संवुडे) समितिओं से समित, पूर्वोक्त पचीस भावनाओ से सहित या ज्ञान दर्शन से युक्त और सुविहित कषाय आदि के सवर वाला, जो (सया जयण-घडण-सुविसुद्धदंसणे) सदा प्राप्त सयम योग में यत्न और अप्राप्त में प्रयत्न रूप घटना से अच्छी तरह निर्मल श्रद्धा वाला है (एए अणुचरिय-सजते चरम सरीर धरे भविस्सतीति इन पाच संवरों का आचरण करके वह साधु चरम शरीरी होगा अर्थात् ससार मे फिर से शरीर धारण नहीं करेगा ॥ १ २६ ॥

भाव- परिग्रह विरमण व्रत की रक्षा के लिये भगवान् महावीर ने यह उत्तम प्रवचन कहा है, जो आत्महितकारी यावत् सब दुःख और पापों का उपशमन करने वाला है। इस अपरिग्रहरूप अन्तिम व्रत की रक्षा के लिये ये पाच भावनाये होती हैं, जैसे-

प्रथम भावना श्रोत्रेन्द्रिय संवररूप, जिसमें कहा गया है कि प्रधान मुरज आदि वाद्य और मधुरगीत को तथा नट आदि के खेल प्रयोगों को एवं स्त्रियों के मञ्जीर मेखला आदि के मधुर ध्वनि को श्रवण से सुनकर इनमें व इस प्रकार के अन्य इष्ट शब्दों में साधुको आसक्त नहीं होना चाहिए। राग, गृद्धि, मूर्च्छा और इसके लिये स्वपर का नाश नहीं करना चाहिए। इनमें लोभ, मानसिक खुशी तथा हास्य भी

नहीं करना, और न मनसे उसका स्मरण और विचार ही करना चाहिये। ऐसे अप्रिय शब्दों को सुनकर द्वेष नहीं करे, जैसे गाली व रोने आदि के शब्द जो द्वेष व करुणाजनक हैं, ऐसे अन्य भी अमनोज्ञ-बुरे शब्दों में साधु को रोष नहीं करना चाहिए, और न उन शब्दों की हीलना, निन्दा व खिसना करनी चाहिए। छेदन, भेदन व वधभी नहीं करे और उन शब्दों के ऊपर स्व पर की घृणा भी उत्पन्न नहीं करे। इस प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय संवरयुक्त अन्तःकरण वाला अच्छे बुरे शब्दों में राग द्वेष रहित तीनों गुप्तियों से गुप्त होता है। संवरवान्, जितेन्द्रिय मुनि इस प्रकार अपरिग्रह धर्मका आचरण करे।

दूसरी भावनामें-चक्षु-इन्द्रियसे सुन्दर सचित्त अचित्त और मिश्र इन तीनों रूपों को देखकर राग नहीं करना चाहिए। जो रूप काष्ठपर, वस्त्रपर तथा लेप्यकर्म या पत्थर व दांत की कोरणी में बनाये गए हैं, तथा पांच रंग से अनेक प्रकार के आकारमें बने हुए और गांठ देकर तथा चिपड़ी आदि भरकर बनाएगए, अनेक प्रकार के माल्य और नेत्र व मनको प्रसन्न करने वाले हैं। वनखण्ड, पर्वत और ग्राम आदि अनेक स्थानों को जो जल एवं वनस्पति के लता मण्डप आदि से सुशोभित तथा पक्षी समूह से सुसेवित हैं। ऐसे उत्तम प्रासाद आदि भव्य भवन और शयन, आसन और वाहन आदि को, तथा प्राक्तन रुचित तपस्या से सौभाग्यशाली स्त्री पुरुषों को तथा नट आदि के विविध खेल व प्रयोगों को और इस प्रकार के अन्य सुन्दर रूपों को देखकर मुनि को उनमें आसक्त नहीं होना चाहिए। यावत् मनमें भी उस विषय का विचार नहीं रखना चाहिए। शुभ रूपों की तरह अशुभ रूपों को देखकर द्वेष भी नहीं करना चाहिए। जैसे गलगण्ड आदि अनेक रोगग्रस्त को व मरे हुए कलेवरों को जो सड़ गया हो, जिसमें कीड़े पड़े हो ऐसे पदार्थों को देखकर मुनि को रोष नहीं करना चाहिए। यावत् दूसरी भावनासे युक्त होकर धर्मका आचरण करना चाहिए।

तीसरी भावनामें-नाकसे सुगन्धित पदार्थों को सूंघकर हर्ष नहीं करना चाहिए। जैसे-जल-एवं थलके अनेक प्रकार के फूल, जिनके परिमल हवासे दूर दूर तक फैल रहे हैं, ऐसे अन्य सुरभि वाले पदार्थों मे भी मुनिको आसक्त नहीं होना चाहिए। यावत् उस विषय मे विचार भी नहीं करना चाहिए। ऐसे सर्प आदि इग्यारह कलेवर जो सड़े हुए व अत्यन्त दुर्गंध वाले हैं। ऐसी दुर्गन्ध को सूंघकर उनमें मुनि को द्वेष भी नहीं करना चाहिए, यावत् धर्मका आचरण करना चाहिए।

चौथी भावनामे-रसनेन्द्रिय से अनेक रसो को चखकर राग द्वेष नही करना चाहिए। जैसे-घी आदि में डुबाकर बनाये गए विविध पान भोजन तथा मधुर अनेक भक्ष्य पदार्थ जो लवण आदि रसो से सयुक्त है, इस प्रकार अच्छे वर्णरस गन्ध व स्पर्श वाले द्रव्यो से बने हुए भोजन में एव अन्य सुन्दर रसो में साधु को आसक्त नही होना चाहिए, और मनमे विचार भी नही करना चाहिए। इसी प्रकार नीरस, रुक्ष तथा विकृत दशा को प्राप्त ऐसे अन्य अशुभ पान भोजनो मे साधु को रोप भी नही करना चाहिये, यावत् धर्म का आचरण करना चाहिये।

पांचवी भावना मे-स्पर्श इन्द्रियो से विविध स्पर्शों को छूकर मुनि हर्ष नहीं करे। जैसे-ग्रीष्म काल में फुहारे के मण्डप आदि से शीतल व सुखदायी वायु को तथा सुखद स्पर्श वाले शयन आसन आदि को पाकर तथा शीत काल में दुशाले आदि प्रावरण, सीगडी का सेक, तथा सूर्य किरण के ताप आदि। ऐसे चिकने व कोमल ऋतु के अनुकूल सुख स्पर्श जो शरीर व मन को प्रसन्न करने वाले हैं, उन इष्ट स्पर्शों मे साधु आसक्ति नहीं करे, यावत् उनका विचार भी नहीं करे। फिर विरोधी स्पर्शों को छूकर मुनि रोष भी नही करे, वे विरोधी स्पर्श इस प्रकार हैं- अनेक प्रकार के वध, बन्धन ताडन व अतिभार और अङ्गो का भङ्ग, सुई भोकना आदि, तथा अयोग्य आसन वगैरह के स्पर्श होने वाले परीषहो मे साधु को रुष्ट नही होना चाहिए, यावत् किसी के मन में उनके लिये घृणा भी उत्पन्न नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार स्पर्शेन्द्रिय संवर की भावना से युक्त अन्तःकरण वाला अच्छे बुरे स्पर्शो मे राग द्वेष रहित व गुप्त होता है। इस प्रकार सयतेन्द्रिय मुनि को अनुकूल प्रतिकूल स्पर्श मात्र मे समभाव रखने हुए धर्म का आचरण करना चाहिये ॥ ५ ॥

इस तरह सवर का यह पञ्चमद्वार सम्यक् सवरण किया हुआ सुरक्षित होगा। इन पाच भावनाओं के साथ तीनों योग से धीर मेधावी साधु को यह प्रवृत्ति सदा जीवन पर्यन्त रखनी चाहिए। क्योंकि यह सवर कर्म बन्धके कारणो को रोकने वाला एव सब तीर्थंकरो से अनुज्ञात है। विधि पूर्वक यह पञ्चम संवरद्वार देह से फरसा गया यावत अनुकूल रूप से पालन किया गया तीर्थंकरो की आज्ञा से आराधित होता है। ऐसा ज्ञात मुनि महावीर नें कहा व हेतु पूर्वक समझाया है। यह प्रसिद्ध, सिद्ध आदि विशेषण युक्त अपरिग्रह प्रशस्त उत्तम है। पञ्चम संवरद्वार पूर्ण हुआ।

निगमन-हे सुव्रत ? ये पांचो महाव्रत निर्दोष या विचित्र सैकड़ो हेतुओ से विस्तार वाले अर्हत्-शासन मे कहे गये है। संक्षेप से संवर पांच और विस्तार से भावनाओं को मिलाकर पचीस होते है। भावना रूप समिति वाला और ज्ञान दर्शन सहित जो संवरवान् मुनि सदा प्राप्त सयम योग में यतना और अप्राप्त में घटना करने से विशुद्ध श्रद्धा वाला है. वह इन पांच संवरो का पालन करके इस देह से ससार बन्धन का छेदन कर मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥ २६ ॥

मूल-"पण्हावागरणे णं एगो सुयक्खंधो, दस अज्झयणा, एक्कसरगा, दससु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति, एगंतरेसु आयंबिलेसु निरुद्धेसु, आउत्तभत्त पाणएणं । अंगं जहा आयारस्स । सू० १ । ३० ॥

पण्हावागरणं दसमं अंगं सुत्तओ समत्तम् । ग्रन्थमानं १३००

छाया-प्रश्नव्याकरणे एक: श्रुतस्कन्धो, दशाऽध्ययनानि,-एकसरकाणि, दशसुचैव दिवसेषु-उद्दिश्यन्ते,-एकान्तरेषु-आयंबिलेषु निरुद्धेषु आयुक्तपानभोजनेनाऽऽङ्ग' यथाऽऽचारस्य । सू० १ । ३०।

॥ इति प्रश्नव्याकरणाऽऽख्यं दशमाङ्ग' छायात: समाप्तम् ॥

सूत्र परिचय और वाचना विधि-

अन्व०-(पण्हावागरणे) प्रश्न व्याकरण नामक सूत्रमें (एगे सुयक्खंधो) एक श्रुत स्कन्ध (दस अज्झयणा) दश अध्ययन (एक सरगा) समान शैली वाले हैं (दस सु चेव दिवसेसु) और दश ही दिनो मे (एगंतरेसु आयम्बिलेसु निरुद्धेसु) एकान्तर आयम्बिलयुक्त दिनो मे (आउत्त-भत्त-पाणएण) उपयुक्त आहार पानी वाले साधु से (उद्दिसिज्जति) इसके उद्देश किये जाते हैं। (अगं जहा आयारस्स) अङ्ग जैसे आचाराङ्ग का वर्णन है. विशेष वैसा समझना चाहिये ॥ सू० १ । ३० ॥

इति प्रश्न व्याकरणाख्य दशमाङ्ग समाप्तम् । ग्रन्थाग्र' १३०० ।

भाव-अन्त में सूत्र का परिचय और वाचन की विधि कही गई है। प्रश्न व्याकरण सूत्रके एक ही श्रुतस्कन्ध तथा एकसरके दश अध्ययन हैं। इसकी वाचना लेने वाले साधु को एकान्तर आयम्बिल युक्त तपस्या से दश दिनों में वाचना को पूर्ण करना चाहिए। आचाराङ्ग जैसे शेष अङ्ग का वर्णन समझना चाहिए ॥ १ ॥ ३० ॥

इति श्री प्रश्न व्याकरण सूत्रस्य भाषा व्याख्या समाप्ता।

ग्रन्थान्त मङ्गलरूपा टीकाकारोक्तिः—

प्रश्न व्याकरणाभिधानमनघं सूत्रं गभीरार्थकं
श्रद्धेयाऽर्हत-विज्ञपुङ्गवगवी हैयङ्गवीनोपमम्।
भक्त्याऽहं मति शक्ति युक्ति निवहाद्रिक्तोऽप्यधांयंश्रमं
सन्त्वस्मात्परमेष्ठिनो मयि सदा पश्चानुकम्पाश्रिताः।

❀ सुधार्म्ना पंचम संवरद्वारम् ❀

❀ सच्छायं सान्वयार्थं भावार्थम् ❀

श्री प्रश्नव्याकरणसूत्रस्य

विशिष्टपद टिप्पणानि

प्रश्न व्याकरण सूत्रगत पारिभाषिक शब्दानां विशेषनाम्नां च सूची

अ

शब्द			अर्थ
अकारको	–	–	अकर्ता
अकिरिया	–	–	अक्रिया
अकिच्च	–	–	हिंसा का ५वां नाम
अगर	–	–	सुगन्धित द्रव्य विशेष
अगम्म गामी	–	–	लडकी बहन आदि मे गमन करने वाला
अगार	–	–	घर
अगुत्ती	–	–	अगुप्ति–परिगृह का २३वां भेद
अचक्खुसे	–	–	आंख से नही दिखने वाले
अच्छभल्ल	–	–	रिच्छ–भालू
अज्झप्पज्झाण	–	–	अध्यात्मध्यान
अंजणक सेल	–	–	अंजनक पर्वत
अट्टालग	–	–	अट्टालिका
अट्टं	–	–	आर्त
अट्ठ विह	–	–	आठ प्रकार
अट्टालग	–	–	अटारी
अट्ठि	–	–	हड्डी
अंडज	–	–	अण्डे से पैदा होने वाले
अणबल	–	–	कर्जदार
अणत्थको	–	–	अनर्थ करने वाला परिग्रह का २५वां भेद
अणत्थो	–	–	" " " "
अणज्जा	–	–	अनार्य

शब्द			अर्थ
अणकरो	–	–	हिंसा का २४वां नाम
अणक	–	–	अणक देश
अण्हय	–	–	आस्रव
अणारिओ	–	–	अनार्य
अणासवो	–	–	अनास्रव, अहिंसा का २५वां नाम
अणाहे	–	–	अनाथ
अणिट्ठकम्म	–	–	अनिष्टकर्म
अणिहुय	–	–	अस्थिर
अणुलेवणं	–	–	अनुलेपन
अत्थालियं	–	–	धन सम्बन्धी झूठ
अंत	–	–	आंत
अस्समड	–	–	घोडे का कलेवर
असातणा	–	–	आसातना
असि	–	–	तलवार
असंजम	–	–	असंयम
असजओ	–	–	संयम रहित हिंसा का १४वां नाम
असंतोसो	–	–	असन्तोष परिग्रह का ३०वां नाम
अहिमड	–	–	साप का कलेवर

आ

आगर	–	–	खान
आडा	–	–	आडपक्षी
आतोज्ज	–	–	बाजे
आधार	–	–	शुक्तिपुट
आभासिया	–	–	आभाषिक देश
आभिओग	–	–	वशीकरण आदि प्रयोग
आया	–	–	आत्मा
आयरो	–		वस्तुओ में आदर बुद्धि रखना, परिग्रहों का २१वां भेद

शब्द			अर्थ
आयतणं	–	–	आयतन–अहिंसा के ४७वां नाम
आयासो	–	–	खेद का कारण, परिग्रह का २४वां नाम
आयाण भंड निक्खेवणा समिते			आदान भांड मात्र निक्षेपना समिति वाला
आउय कम्मस्सुवद्दवो			हिंसा का १२वां नाम
आरब	–	–	अरब देश
आराम	–	–	बगीचा
आवण	–	–	दुकान
आवत्त	–	–	एक खुर वाला जीव
आवसह	–	–	परिव्राजकों का आश्रम
आसम	–	–	आश्रम
आसत्ती	–	–	आसक्ति
आसालिया		–	जीव विशेष

इ

इक्कड	–	–	इक्कड जाति का घास
इक्खुगार	–	–	इषुकार पर्वत
इट्टकाउ	–	–	ईंटे
इड्ढि	–	–	ऋद्धि
इंद केतु	–	–	इन्द्र केतु
इंदिय	–	–	इन्द्रियां

ई

ईरियासमिते	–	–	ईर्या समिति से युक्त

उ

उखल	–	–	ऊखल
उच्छू	–	–	इक्षु–सांठा
उट्ट	–	–	ऊंट
उडुपती	–	–	चन्द्रमा

शब्द			अर्थ
कलाय	–	–	सुनार
कलिकरंडो	–	–	कलह की पेटी, परिग्रह का १९वां नाम
कल्लाण	–	–	कल्याणकारी–अहिंसा का २६वां नाम
कणाय	–	–	गरदन का आभरण
कवड	–	–	कपट
कर्वड	–	–	खराब नगर
कवाड	–	–	कपाट-केवाड
कविल	–	–	कपिल पक्षी
कवोय	–	–	कबूतर
कस	–	–	चमडे का चाबुक
कसाय	–	–	कषायला
कहक	–	–	कथा करने वाला
काउदर	–	–	काकोदर–एक प्रकार का साप
काक	–	–	कौआ
काणा	–	–	काणे
कादम्बक	–	–	हंस विशेष
कायवर	–	–	उत्तम काच
कायगुत्ते	–	–	कायगुप्त
कारडग	–	–	कारंडक पक्षी
कारुइज्जा	–	–	छीपें–शिलूरी
कालोदधि	–	–	कालोदधि समुद्र
कित्ती	–	–	कीर्ति अहिंसा का ५ वां नाम
किन्नर	–	–	किन्नर देव, वाद्य विशेष
किन्नरी	–	–	किन्नर देव की देवियां
किमिय	–	–	कृमि–कीडे
किरिया	–	–	प्रशस्त कार्य
किरियाठाण	–	–	क्रिया स्थान

शब्द			अर्थ
कीव	–	–	कीव पक्षी
कुक्कड	–	–	मुर्गा
कुकूलाऽनल	–	–	कोयले की आग
कुज्ज	–	–	कूबड
कुडिल	–	–	कुटिल-टेढा
कुणी	–	–	कर से हीन
कुद्धा	–	–	क्रोधी
कुम्मास	–	–	उडद्
कुरर	–	–	कुरर पक्षी
कुरंग	–	–	हिरण
कुलल	–	–	कुलल पक्षी
कुलक्ख	–	–	कुलल पक्षी की एक जाति
कुलिंगी	–	–	कुतीर्थी
कुलिय	–	–	खुला
कुली कोस	–	–	कुटी क्रोश पक्षी
कुवित साला	–	–	तृण आदि रखने का घर
कुस	–	–	कुश-तृण विशेष
कुसंघयण	–	–	कमजोर अस्थिर
कुसठिया	–	–	खराब आकार वाले
कुहण	–	–	कुहण देश
कूर्च	–	–	कूंची बनाने का तृण
कूडमाणी	–	–	झूठा माप करने वाले
कूरकम्मा	–	–	क्रूर कर्म करने वाले
कूव	–	–	कूआं
केकय	–	–	केकय देश
केवल नाणी	–	–	केवल ज्ञानी
केवलीण ठाणं	–	–	केवलियों का स्थान अहिंसा का ३६ वां नाम
केसरिमुहविप्फारगा		–	सिंह का मुंह फाड़ने वाले

शब्द			अर्थ
कलाय	–	–	सुनार
कलिकरंडो	–	–	कलह की पेटी, परिग्रह का १६वां नाम
कल्लाण	–	–	कल्याणकारी–अहिंसा का २६वां नाम
कलाव	–	–	गरदन का आभरण
कवड	–	–	कपट
कब्बड	–	–	खराब नगर
कवाड	–	–	कपाट-केवाड
कविल	–	–	कपिल पक्षी
कवोय	–	–	कबूतर
कस	–	–	चमडे का चाबुक
कसाय	–	–	कषायला
कहक	–	–	कथा करने वाला
काउदर	–	–	काकोदर–एक प्रकार का साप
कारु	–	–	कौआ
काणा	–	–	काणे
कादम्बक	–	–	हंस विशेष
कायवर	–	–	उत्तम काच
कायगुत्ते	–	–	कायगुप्त
कारंडग	–	–	कारंडक पक्षी
काकइल्ला	–	–	छीपें–शिलूरी
कालोदधि	–	–	कालोदधि समुद्र
कित्ती	–	–	कीर्ति अहिंसा का ५ वां नाम
किन्नर	–	–	किन्नर देव, वाद्य विशेष
किन्नरी	–	–	किन्नर देव की देवियां
किमिय	–	–	कृमि–कीड़े
किरिया	–	–	प्रशस्त कार्य
किरियाठाण	–	–	क्रिया स्थान

शब्द			अर्थ
कीव	–	–	कीव पक्षी
कुक्कुड	–	–	मुर्गा
कुकूलाऽनल	–	–	कोयले की आग
कुज्ज	–	–	कूबड
कुडिल	–	–	कुटिल–टेढा
कुणी	–	–	कर से हीन
कुद्धा	–	–	क्रोधी
कुम्मास	–	–	उडद
कुरर	–	–	कुरर पक्षी
कुरंग	–	–	हिरण
कुलल	–	–	कुलल पक्षी
कुलक्ख	–	–	कुलक्ष पक्षी की एक जाति
कुलिंगी	–	–	कुतीर्थी
कुलिय	–	–	खुला
कुली कोस	–	–	कुटी क्रोश पक्षी
कुविय साला	–	–	तृण आदि रखने का घर
कुस	–	–	कुश–तृण विशेष
कुसघयण	–	–	कमजोर अस्थिर
कुसंठिया	–	–	खराब आकार वाले
कुहण	–	–	कुहण देश
कूर्च	–	–	कूंची बनाने का तृण
कूडमाणी	–	–	झूठा माप करने वाले
कूरकम्मा	–	–	क्रूर कर्म करने वाले
कूव	–	–	कूआं
केकय	–	–	केकय देश
केवल नाणी	–	–	केवल ज्ञानी
केवलीण ठाण	–	–	केवलियों का स्थान अहिंसा का ३६ वां नाम
केसरिमुहविप्फारगा		–	सिंह का मुंह फाडने वाले

शब्द			कोश
कोइल	–	–	कोकिल
काकंसिय	–	–	लोमड़ी
कोट्ठागारं	–	–	कोठार
कोढिक	–	–	कुष्ठ रोगी
कोणालग	–	–	कोणालक पक्षी
कोद्दाल	–	–	कुदाली
कोरंग	–	–	कोरंग पक्षी
कोल	–	–	कोल चूहे के समान जीव
कोल सुणक	–	–	बड़ा सूअर
कोसिकार कीडो	–	–	रेशम के कीड़े,
कंक	–	–	कंक पक्षी
कंचणक	–	–	काञ्चनक पर्वत
कंचणा	–	–	कञ्चना, एक नारी
कची	–	–	काञ्ची-कन्धोरा
कुंडिया	–	–	कुण्डी कमण्डलु,
कंती	–	–	कान्ति-चमक, अहिंसा का ६ ठा नाम
कंद मूलाई	–	–	कन्द मूल
कंस	–	–	कांस्य-कांसी के पात्र
किंकरा	–	–	नोकर
कुंकुम	–	–	कुंकुम
कुंच	–	–	क्रौंच पक्षी
कुंटा	–	–	खराब हाथ वाला
कुंडल	–	–	कुण्डकाकार पर्वत
कुंत	–	–	भाला अस्त्र विशेष
कोंकणग	–	–	कोंकण देश,
कोंत	–	–	भाले
कोंच	–	–	क्रौंच देश

शब्द			अर्थ
छविच्छेओ	–	–	हिंसा का २१वां नाम
छीरल	–	–	बाहुओ से चलने वाला जीव
छुट्टिय	–	–	आभरण विशेष

ज

जग	–	–	यकृत-पेट के दाहिनी तरफ रहने वाली मांस ग्रन्थि
जणवय	–	–	देश
जतनं	–	–	यजन अभयदान अहिंसा का ४८ वां नाम
जन्नो	–	–	यज्ञ, अहिंसा का ४६ वां नाम
जम पुरिस	–	–	यम पुरुष
जमकवर	–	–	यमकवर पर्वत
जराउय	–	–	जरायुज-जड़ के साथ उत्पन्न होने वाला
जरासिंध माण महणा	–		जरासन्ध राजा के मान को मथने वाला
जलयर	–	–	जलचर
जलगाए	–	–	जल मे रहने वाले कीडे आदि
जलमए	–	–	जल के जीव
जल्ल	–	–	जल्लदेश या डोडी पर खेलने वाला
जलूय	–	–	जलूका
जवण	–	–	यवन लोग
जवा	–	–	जौ-जव
जाण	–	–	यान
जाण साला	–	–	यान शाला, वाहन आदि रखने का घर
जातरूव	–	–	सोना
जाल	–	–	ज्वाला
जालक	–	–	जालिया
जाहक	–	–	काटे से ढका हुआ शरीर वाला जन्तु
जिणेहिं	–	–	जिनेन्द्र देव
जीव निकाया	–	–	जीव निकाय

शब्द			अर्थ
जुय	–	–	युग
जीवियंत करणो	–	–	हिंसा का २२ वां नाम
जीवंजीवक	–	–	चकोर पक्षी
जूईकरा	–	–	जुआरी
जोग संगहे	–	–	योग संग्रह
जोणी	–	–	योनि-जन्म स्थान
जंत	–	–	यन्त्र
जंतुगं	–	–	पानी में पैदा होने वाला तृण विशेष

झ

झस	–	–	जल जन्तु
झाण	–	–	ध्यान

ठ

ठिति	–	–	स्थिति, अहिंसा का २२वां भेद

ड

डब्भ	–	–	डाभ-तृण विशेष
डोंव	–	–	डोंव जाति
डोंविलग	–	–	डोंविलक देश

ढ

ढेणियालग	–	–	ढेणिकालग पक्षी
ढिंक	–	–	ढंक पक्षी

ण

णउल	–	–	नकुल
णक्क	–	–	नक्र (नकार)
णग	–	–	पर्वत
णगर	–	–	नगर
णह	–	–	नख

शब्द			अर्थ
ण्हणं	–	–	सौभाग्य स्नान
ण्हारूणि	–	–	स्नायु
णिग्घिणो	–	–	घृणा रहित
णिस्सेणि	–	–	निस्सरणी
णिस्संसो	–	–	नृशंस क्रूर
णेउर	–	–	नूपुर
णंबर	–	–	अम्बर कपड़े

त

तउय	–	–	त्रपु
तक्करा	–	–	चोर
तण्हा	–	–	तृष्णा परिग्रह का २७वां भेद
तत	–	–	वीणा
तप्पण	–	–	सत्तू
तय	–	–	त्वचा
तय ताल	–	–	वाद्य विशेष
तरच्छ	–	–	जंगली पशु
तलाग	–	–	तालाब
तव	–	–	तप
तस	–	–	त्रस जीव
तारा	–	–	तारा
तालयंट	–	–	ताल पत्र के पंखे
तित्त	–	–	तीतारस
तित्ती	–	–	तृप्ति अहिंसा का १०वां नाम
तित्तिय	–	–	तित्तिक देश
तित्तिर	–	–	तीतर पक्षी
तिमि	–	–	बड़े मत्स्य
तिमिंगिल	–	–	बहुत बड़े मत्स्य

शब्द			अर्थ
तिरिय	–	–	तिर्यञ्च
तिल	–	–	तिल धान्य
तिवायणा	–	–	हिंसा का १०वां नाम
तिहि	–	–	तिथि
तूणक	–	–	वाद्य विशेष
तेन्दिय	–	–	तीन इन्द्रिय वाले जीव
तेल्ल	–	–	तेल
तोमर	–	–	बाण
तोरण	–	–	तोरण
तंती	–	–	तन्त्री वीणा
तंब	–	–	ताम्र

थ

थलयर	–	–	स्थलचर
थावरकाए	–	–	स्थावर काय
थूभ	–	–	स्तूप

द

दईवतप्पभावओ	–	–	भाग्य के प्रभाव से
दगतुंड	–	–	दग तुंड पक्षी
दद्दुर	–	–	वाद्य विशेष
दब्भ पुप्फ	–	–	एक प्रकार का सर्प
दया	–	–	दया अहिंसा का ११वां भेद
दरदड्ढ	–	–	कुछ जला हुआ
दव्वसारो	–	–	द्रव्यसार वाला परिग्रह का १०वां भेद
दविल	–	–	द्रविड
दह	–	–	ह्रद
दहपति	–	–	ह्रदपति-पद्म-ह्रद आदि
दहि	–	–	दही

शब्द			अर्थ
	ख		
खग	—	—	पक्षी
खग्ग	—	—	खड्ग-गेंडा
खग्ग	—	—	खड्ग-तलवार
खचर	—	—	आकाश में चलने वाले जीव
खर	—	—	गधा
खस	—	—	खस देश
खाडहिल	—	—	गिलहरी-टिलोंडी
खातिय	—	—	खाई
खासिय	—	—	खासिक देश
खिल भूमि	—	—	बिना जोती हुई भूमि
खील	—	—	खीलें
खुज्जा	—	—	कूबडा
खुद्दिय	—	—	तलाई
खुद्दो	—	—	क्षुद्र
खुरो	—	—	छुरा
खुल्लए	—	—	क्षुल्लक कौडी का जीव
खेड	—	—	खेडा-छोटा गाव
खंडरक्ख	—	—	चूंगी लेने वाला अथवा कोतवाल
खंड	—	—	खाड-शक्कर
खंती	—	—	क्षान्ति अहिंसा का १२ वा नाम
खिंखिणी	—	—	पायल आभूषण विशेष
	ग		
गंडि	—	—	गंड माला
गय	—	—	हाथी
गयकुल	—	—	गज कुल
गय	—	—	गदा अस्त्र विशेष

शब्द			कोश
गरुलवूह	–	–	गरुड–व्यूह
गरुल	–	–	गरुड पक्षी
गवय	–	–	रोझ नीली गौ
गवालियं	–	–	गाय सम्बन्धी झूंठ
गवेलग	–	–	बकरे
गागर	–	–	घडा
गाय	–	–	गौ
गालणा	–	–	हिंसा का एक नाम
गाहा	–	–	ग्राह–जल जन्तु
गुत्ती	–	–	गुप्ति
गुणाणं विराहणत्ति		–	गुणो की विराधना हिंसा का ३० वां नाम
गुरुतप्पओ	–	–	गुरु पत्नीगामी
गुल	–	–	गुड़
गोउर	–	–	गोपुर–नगर का मुख्य द्वार
गोकण्ण	–	–	दोखुर वाला चौपाया जानवर
गोच्छओ	–	–	पूंजनी
गोंड	–	–	गौड देश
गोण	–	–	गाय बैल
गोणस	–	–	बिना फण का सांप
गोध	–	–	गोधा
गोमड	–	–	गाय का कलेवर
गोमिया	–	–	गाय रखने वाला गवालिया
गोहा	–	–	गोधा
गोसीस सरस चदन		–	गोशीर्ष नामका शीतल चन्दन
गंज	–	–	एक प्रकार का धान्य
गडूलय	–	–	गिंडोला जन्तु
गंथि भेदग	–	–	गांठ काटने वाला

शब्द			अर्थ
गंध	–	–	कपूर
गंध हारग	–	–	गन्धहारक देश

घ

घय	–	–	घी,
घायणा	–	–	हिंसा क छट्ठा भेद,
घीरोली	–	–	घरमे रहने वाली गोह,
घंटिय	–	–	घंटिका–घुंघुरू।

च

चउरंग	–	–	चकोरपक्षी
चउरिंदिए	–	–	चार इन्द्रिय वाला जीव
चक्कवाग	–	–	चक्रवाक
चक्क	–	–	चक्र चक्रव्यूह
चक्कवट्टी	–	–	चक्रवर्ती
चक्खुसे	–	–	चाक्षुष–आंख से देखने योग्य
चटुल	–	–	चचल
चंद सालिय	–	–	चन्द्रशाला, महल के ऊपर की शाला
चमर	–	–	चमरी गाय
चम्म	–	–	चमडा
चम्मट्ठिल	–	–	चमगादर
चम्म पात्र	–	–	चर्म पात्र
चम्मेट्ठ	–	–	चमडे से मढा पत्थर
चय	–	–	वस्तुओं की ढेडी परिग्रहों का ३रा भेद
चरिया	–	–	नगर और कोट के मध्य का मार्ग
चलण मालिय		–	भूषण विशेष
चवल	–	–	चपल
चाडुयार	–	–	खुशामदी
चाणूर	–	–	चाणूर मल्ल

शब्द			अर्थ
चारक	–	–	वन्दी खाना
चार	–	–	गुप्त दूत
चारित्तमोह	–	–	चारित्र को रोकने वाली मोह कर्म की प्रकृति
चाव	–	–	धनुप
चास	–	–	चाश पक्षी
चिडिग	–	–	चिडी
चित्त	–	–	चित्रकूट पर्वत
चित्तसभा	–	–	चित्र सभा
चिति	–	–	भित्ति आदि का वनाना
चिल्लग	–	–	लीन
चिल्लल	–	–	चीता या दो खुर वाला पशु विशेष
चीण	–	–	चीन देश
चिलाय	–	–	चिलात देशवासी
चुन्नकोसग	–	–	चूर्ण कोश– धान्य विशेष
चूलिया	–	–	चूलिका
चेतिय	–	–	चैत्य
चेल	–	–	वस्त्र
चोक्ख	–	–	चोक्ष अहिंसा का ५४वा भेद
चोरिक्ककरणं	–	–	चोरी करना
चोलग	–	–	बच्चे का प्रथम मुण्डन
चोल पट्टक	–	–	चोल पट्टा-साधु के पहनने का वस्त्र
चगेरी	–	–	फूल की डाली या वाद्य विशेष
चडो	–	–	उद्धत
चदनक	–	–	कौडी
चुचुया	–	–	चुंचुक

छ

छगल	–	–	वकरे की एक जाति

शब्द			अर्थ
दहिमुह	–	–	दधिमुख पर्वत
दसविहं	–	–	दश प्रकार का
दाढि	–	–	दाढ
दाण	–	–	दान
दामिणी	–	–	डोरी
दार	–	–	दरवाजा,
दालियंब	–	–	खट्टीदाल,
दीविया	–	–	चीता,
दीविय	–	–	दीमक पक्षी
दीहिया	–	–	बावडी,
दुकयं	–	–	दुष्कृत.
दुद्ध	–	–	दुग्ध
दुरप्पा	–	–	दुष्ट आत्मा
दुरित नाग दप्प महणा		–	पाप रूप गज के दर्प को मथने वाले
दुवालस विहा	–	–	बारह प्रकार के
दुस्सील	–	–	दुश्शील
दुहण	–	–	द्रुघन-वृक्षों को गिराने वाला मुद्गर द्रुहना
देवकुल	–	–	देव मन्दिर
देवई	–	–	देवकी रानी
दोण मुह	–	–	जल मार्ग और स्थल मार्ग दोनों से जाने योग्य नगर
दोणि	–	–	छोटी नौका
दंतट्ठा	–	–	दात के लिए
दंतमणि	–	–	प्रधान दात
दसण	–	–	सामान्य बोध श्रद्धागुण

ध

धणित	–	–	अर्द्धर्घ
धत्तरिट्ठग	–	–	धार्तराष्ट्र-हंस विशेष

शब्द			अर्थ
घमणि	–	–	नाडी
घमण	–	–	भैंस आदि के देह में हवा भरना
धिती	–	–	धृति अहिंसा का २८वां नाम-

न

शब्द			अर्थ
नक्क	–	–	नांक
नक्खत्त	–	–	नक्षत्र
नगर गोत्तिग्र	–	–	नगर रक्षक
नट्टक	–	–	नर्तक
नड	–	–	नट
नयण	–	–	नेत्र
नवनीत	–	–	मक्खन
नह	–	–	नख
नाराय	–	–	लोहे का बाण
निक्किओ	–	–	निष्क्रिय
निगम	–	–	वणिकों का निवास स्थान
निगड	–	–	लोहे की बेडी
निग्गुणो	–	–	निर्गुण
निच्चो	–	–	नित्य
निजवणा	–	–	हिंसा का २८वां नाम
नत्थिश्रवादिणो	–	–	नास्तिक वादी
निम्मलतर	–	–	खूब स्वच्छ, अहिंसा का ६०वां नाम
निल्लंछण	–	–	खसी करना, नपुंसक बनाना
निव्वाण	–	–	निर्वाण-मोक्ष, अहिंसा का १म नाम
निव्वुइ	–	–	निर्वृति, अहिंसा का २रा नाम
निहाण	–	–	निधान, परिग्रह का ४वां भेद
नूम	–	–	नूम-ढक्कन
नेउर	–	–	नूपुर

शब्द			अर्थ
नेरइय	–	–	नरक के जीव
नेट्ठुर	–	–	नेट्ठर देश
नेह	–	–	स्नेह
नंगल	–	–	हल
नंदमाणग	–	–	नन्दमानक पक्षी
नंदा	–	–	समृद्धि दायक अहिंसा का २४वां नाम
नंदि	–	–	वाद्य विशेष
नंदिमुह	–	–	नन्दि मुख पक्षी

प

पइल्ल	–	–	श्लीपद-फीलपांव
पउमावई	–	–	पद्मावती रानी
पएणीमारा	–	–	विशेष रूपसे प्राणियोंको मारनेके लिये फिरने वाले
पकप्प	–	–	प्रकल्प-अध्ययन विशेष
पकान्न	–	–	सरस भोजन
पक्कणिय	–	–	पक्कणिक देश
पच्चक्खाणं	–	–	प्रत्याख्यान
पच्छाया	–	–	ढकने का वस्त्र
पज्जत्त	–	–	पर्याप्त
पट्टिस	–	–	प्रहरण विशेष
पडगार	–	–	जुलाहा
पउम	–	–	पद्म व्यूह
पेहुण	–	–	मोर पिच्छी
पोक्कण	–	–	पोक्कण देश
पोक्खरणी	–	–	पुष्करिणी चौकोनी बावड़ी
पोत घाया	–	–	पक्षियों के बच्चे को मारने वाला
पोतज	–	–	पोतज-हाथी वगैरह
पोय वत्था	–	–	नौका के व्यापारी

शब्द			अर्थ
घमणि	–	–	नाडी
घमण	–	–	भैंस आदि के देह में हवा भरना
धिती	–	–	धृति-अहिंसा का २८वां नाम

न

शब्द			अर्थ
नक्क	–	–	नाक
नक्खत्त	–	–	नक्षत्र
नगर गोत्तिय	–	–	नगर रक्षक
नट्टक	–	–	नर्तक
नड	–	–	नट
नयण	–	–	नेत्र
नवनीत	–	–	मक्खन
नह	–	–	नख
नाराय	–	–	लोहे का बाण
निक्किओ	–	–	निष्क्रिय
निगम	–	–	वणिकों का निवास स्थान
निगड	–	–	लोहे की बेडी
निग्गुणो	–	–	निर्गुण
निच्चो	–	–	नित्य
निज्जवणा	–	–	हिंसा का २८वां नाम
नत्थिकवादिणो	–	–	नास्तिक वादी
निम्मलतर	–	–	खूब स्वच्छ, अहिंसा का ६०वां नाम
निल्लंछण	–	–	खसी करना, नपुंसक बनाना
निव्वाण	–	–	निर्वाण-मोक्ष, अहिंसा का १म नाम
निव्वुइ	–	–	निर्वृति, अहिंसा का २रा नाम
निहाण	–	–	निधान, परिग्रह का ४वां भेद
नूमं	–	–	नूम-ढक्कन
नेउर	–	–	नूपुर

शब्द	अर्थ
नेरइय	नरक के जीव
नेहुर	नेहुर देश
नेह	स्नेह
नंगल	हल
नंदमाणग	नन्दमानक पक्षी
नंदा	समृद्धि दायक अहिंसा का २४वां नाम
नंदि	वाद्य विशेष
नंदिमुह	नन्दि मुख पक्षी

प

शब्द	अर्थ
पइल्ल	श्लीपद-फीलपांव
पउमावई	पद्मावती रानी
पएणीमारा	विशेष रूपसे पक्षियोंको मारनेके लिये फिरने वाले
पकप्प	प्रकल्प-अध्ययन विशेष
पकान्न	सरस भोजन
पक्कणिय	पक्कणिक देश
पच्चक्खाणं	प्रत्याख्यान
पच्छाया	ढकने का वस्त्र
पज्जत्त	पर्याप्त
पट्टिस	प्रहरण विशेष
पडगार	जुलाहा
पउम	पद्म व्यूह
पेहुण	मोर पिच्छी
पोक्कण	पोक्कण देश
पोक्खरणी	पुष्करिणी चौकोनी बावडी
पोत घाया	पक्षियों के बच्चे को मारने वाला
पोतज	पोतज-हाथी वगैरह
पोय सत्था	नौका के व्यापारी

शब्द			अर्थ
धमणि	–	–	नाडी
धमण	–	–	भैंस आदि के देह में हवा भरना
धिती	–	–	धृति-अहिंसा का २८वां नाम

न

शब्द			अर्थ
नक्क	–	–	नांक
नक्खत्त	–	–	नक्षत्र
नगर गोत्तिय	–	–	नगर रक्षक
नट्टक	–	–	नर्तक
नड	–	–	नट
नयण	–	–	नेत्र
नवनीत	–	–	मक्खन
नह	–	–	नख
नाराय	–	–	लोहे का बाण
निक्किओ	–	–	निष्क्रिय
निगम	–	–	वणिकों का निवास स्थान
निगड	–	–	लोहे की बेडी
निग्गुणो	–	–	निर्गुण
निच्चो	–	–	नित्य
निज्जवणा	–	–	हिंसा का २८वां नाम
नत्थिकवादिणो	–	–	नास्तिक वादी
निम्मलतर	–	–	खूब स्वच्छ, अहिंसा का ६०वां नाम
निल्लंछण	–	–	खसी करना, नपुंसक बनाना
निव्वाण	–	–	निर्वाण-मोक्ष, अहिंसा का १म नाम
निव्वुइ	–	–	निर्वृति, अहिंसा का २रा नाम
निहाण	–	–	निधान, परिग्रह का ४वां भेद
नूमं	–	–	नूम-ढक्कन
नेउर	–	–	नूपुर

शब्द			अर्थ
नेरइय	—	—	नरक के जीव
नेहुर	—	—	नेहुर देश
नेह	—	—	स्नेह
नंगल	—	—	हल
नंदमाणग	—	—	नन्दमानक पक्षी
नंदा	—	—	समृद्धि दायक अहिंसा का २४वां नाम
नंदि	—	—	वाद्य विशेष
नंदिमुह	—	—	नन्दि मुख पक्षी

प

पइल्ल	—	—	श्लीपद-फीलपांव
पउमावई	—	—	पद्मावती रानी
पएणीमारा	—	—	विशेष रूपसे प्राणियोंको मारनेके लिये फिरने वाले
पकप्प	—	—	प्रकल्प-अध्ययन विशेष
पकान्न	—	—	सरस भोजन
पक्कणिय	—	—	पक्कणिक देश
पच्चक्खाणं	—	—	प्रत्याख्यान
पच्छाया	—	—	ढकने का वस्त्र
पज्जत्त	—	—	पर्याप्त
पट्टिस	—	—	प्रहरण विशेष
पडगार	—	—	जुलाहा
पउम	—	—	पद्म व्यूह
पेहुण	—	—	मोर पिच्छी
पोक्कण	—	—	पोक्कण देश
पोक्करणी	—	—	पुष्करिणी चौकोनी वावडी
पोत घाया	—	—	पक्षियों के बच्चे को मारने वाले
पोतज	—	—	पोतज-हाथी वगैरह
पोय सत्था	—	—	नौका के व्यापारी

शब्द			अर्थ
पावसुत	–	–	पाप श्रुत
पावलोभो	–	–	हिंसा का २०वां नाम
पासाय	–	–	प्रासाद
पिक्कमंसी	–	–	पका हुआ मंसी नाम का द्रव्य
पिच्छ	–	–	पूंछ
पित्त	–	–	शरीर का एक दोष
पिट्टण	–	–	पीटना
पियरो	–	–	पिता आदि
पिसुण	–	–	चुगल खोर
पिपीलिय	–	–	पपीहा पी पी करने वाला पक्षी
पीसण	–	–	पीसना
पोक्खरिणी	–	–	कमल वाली बावडी
पुरवर	–	–	प्रधान नगर
पुट्ठी	–	–	पुष्टि अहिंसा का २३वां नाम
पुरिसकारो	–	–	पुरुषार्थ
पुलय	–	–	पुलक एक प्रकार का ग्राह
पुलिंद	–	–	पुलिंद देश
पूया	–	–	अहिंसा का ५५वां नाम

फ

फलक	–	–	बिस्तर-कुर्सी आदि
फलिहा	–	–	परिघा-आगल
फासुयं	–	–	प्रासुक निर्जीव
फिप्फिस	–	–	फुप्फस देह का भीतरी भाग

ब

बक	–	–	बगुला
बलाका	–	–	बगुली

शब्द			अर्थ
बलदेवा	–	–	बलदेव
बहलीय	–	–	बाह्लीक देशवासी
बहिरा	–	–	बहरे
बादर	–	–	बादर नामक-कर्म
बिल्लल	–	–	बिल्वल देश
बुद्धी	–	–	बुद्धि अहिंसा का १६वां नाम
बेंदिए	–	–	दो इन्द्रिय वाला
बेलवक	–	–	विडम्बक
बोही	–	–	बोधि अहिंसा का १६वां नाम
बंजुल	–	–	बजुल पक्षी
बंभचेर	–	–	ब्रह्मचर्य

भ

भट्ठ भज्जणाणि	–	–	भाड में चना के जैसे भूंजना
भडग	–	–	भडक जाति
भडा	–	–	सैनिक
भत्तपाणं	–	–	आहार पानी
भद्दा	–	–	भद्रा कल्याणकारी, अहिंसा का २५वां नाम
भमर	–	–	भंवरा
भयक	–	–	नोकर
भयंकरो	–	–	हिंसा का २३वां नाम
भरह	–	–	भरत क्षेत्र
भल्ल	–	–	भाला
भवण	–	–	भवन
भाइल्लका	–	–	सेवक
भायण	–	–	पात्र
भारो	–	–	भार आत्मा विशेष भारी करने वाला, परिग्रह का १७वां भेद

शब्द			अर्थ
भावण	–	–	भावना
भाविश्रो	–	–	भावित-सुसंस्कार वाला
भास	–	–	भाष पक्षी
भासा समिते	–	–	भाषा समिति वाला
भिक्खु पडिमा	–	–	साधु की पडिमा
भिगारग	–	–	भिंगारक पंखी
भिंगार	–	–	झारी
भुज्जि	–	–	भूंजे हुए धानो
भूमि घर	–	–	तल घर
भूय गामा	–	–	जीवों के समूह
भेयणिट्ठवग	–	–	हिंसा का एक नाम
भेसज्ज	–	–	भेषज्य
भोमालियं	–	–	भूमि सम्बन्धी झूंठ
भंडोवगरण	–	–	मिट्टी के भांड
भिंडिमाल	–	–	भिंडिपाल

म

मइयं	–	–	मतिक खेत जोतने के बाद ढेला फोड़ने का मोटा काष्ठ
मउलि	–	–	फण वाले सर्प
मगर	–	–	मगर मच्छ
मच्छबंधा	–	–	मछली पकड़ने वाला
मच्छरि	–	–	मत्सरी लोग
मच्छि	–	–	मच्छर हिंसा का १२वा नाम
मच्छडी	–	–	मिश्री
मज्ज	–	–	मद्य
मज्जण	–	–	मज्जन

शब्द			अर्थ
मद्दुर	–	–	मद्दुर देश
महोरग	–	–	बड़ा सर्प
माइ	–	–	मक्खि
माण	–	–	मान
माणुसोत्तर	–	–	मनुषोत्तर पर्वत
माया	–	–	माया-कपट
माया मोसो	–	–	माया मृषा
मारणा	–	–	हिंसा का ७वां नाम
मारुय	–	–	मारुत-वायु
मालव	–	–	मालव देश
मास	–	–	माष देश
मिच्छदिट्ठी	–	–	मिथ्या दृष्टि वाला
मिय	–	–	मृग
मुइंग	–	–	मृदङ्ग
मुगुंस	–	–	मगूस-भुज परिसर्प जन्तु
मुट्ठिअ	–	–	मौष्टिक देश
मुट्ठिय	–	–	मौष्टिक मल्ल
मुत्त	–	–	मोती
मुद्धा	–	–	मोह
मुम्मुर	–	–	अग्नि के कण
मुरय	–	–	मर्दल
मुरुंड	–	–	मुरुंड देश
मुसल	–	–	मूसल
मुसावादी	–	–	झूठ बोलने वाला
मुसुंढि	–	–	प्रहरण विशेष-मुशुंडी
मुहणंतक	–	–	मुख वस्त्रिका
महंती	–	–	महती महिता-सम्पन्न, अहिंसा का १५वां भेद

शब्द			अर्थ
मूका	–	–	गूंगा
मूढा	–	–	मूर्ख
मूयक	–	–	एक प्रकार का तृण
मूलकम्मं	–	–	गर्भ पात आदि मूल कर्म
मेय	–	–	मेद-धातु
मेत	–	–	मेद देश
मेर	–	–	मूंज के तन्तु
मेहला	–	–	मेखला
मोक्खो	–	–	मोक्ष
मेहुण	–	–	मैथुन
मोग्गर	–	–	मुद्गर
मोयग	–	–	मोदक
मोसं	–	–	मिथ्या
मोहणिज्जो	–	–	मोहनीय
मौलि	–	–	मुकुली सर्प
मौस्टिक	–	–	मुष्टि प्रमाण पत्थर
मंगल	–	–	मङ्गलकारी, अहिंसा का ३०वां नाम
मंडवाण	–	–	मण्डपों के
मंडव	–	–	मंडप
मंथु	–	–	बोर आदि का चूर्ण
मंदर	–	–	मेरु पर्वत
मंडुक्क	–	–	मेंढक
मंडुय	–	–	मन्डुक-जल
मंमण	–	–	तूतली बोलने वाला
मंस	–	–	मांस
मिंजा	–	–	मज्जा
मुंगुस	–	–	मंगुस

शब्द			अर्थ
	र		
रक्खा	–	–	रक्षा, अहिंसा का ३३वा नाम
रत्त सुभद्रा	–	–	रक्त सुभद्रा
रतिकर	–	–	रतिकर पर्वत
रती	–	–	रति-प्रेम
रत्तीय	–	–	सन्तोष, अहिंसा का ७वा नाम
रयण	–	–	रत्न
रयय	–	–	चांदी
रयत्ताणं	–	–	रजों से रक्षक
रयणोरुजालिय	–	–	जंघो का भूषण
रयोहरण	–	–	रजोहरण
रवि	–	–	सूर्य
रह	–	–	रथ
रायहस	–	–	राजहंस
राया	–	–	राजा
रिट्ठवसभ	–	–	अरिष्ट नामक बैल
रिद्धि	–	–	ऋद्धि, अहिंसा का २०वां नाम
रिसओ	–	–	ऋषि
रुक्खमूल	–	–	वृक्ष मूल
रुचकवर	–	–	मण्डलाकार रुचक गिरि
रुप्पिणी	–	–	रुक्मिणी
रुद्दो	–	–	रौद्र
रुहिर महिमा	–	–	रुधिरेच्छु
रूव	–	–	रूप
रूरू	–	–	रूरू देश
रोम	–	–	रोम देश, बाल
रोहिय	–	–	रोहित पशुविशेष

शब्द			अर्थ
रोहिणी	–	–	रोहिणी
	ल		
लउड	–	–	लकुट-छोटा डंडा
लद्धी	–	–	लब्धि अहिंसा का २७वां नाम
लवण	–	–	लवण समुद्र
लवग	–	–	लौंग
लावक	–	–	लवे
लासग	–	–	रास गाने वाले
ल्हासिय	–	–	ल्हासिक देश
लुद्धा	–	–	लोभ
लेट्ठु	–	–	पत्थर
लेण	–	–	पहाड में बना घर
लेस्साओ	–	–	लेश्या
लोह संकल	–	–	लोह की बेडी
लोह पंजर	–	–	लोह के पंजे
लोहप्पा	–	–	लोभात्मा, परिग्रह का १३वां भेद
लछण	–	–	लांछन चिह्न बनाना
लुंपणा	–	–	हिंसा का २६वां नाम
	व		
वइ जोगस्स	–	–	वचन का व्यापार,
वइर	–	–	वज्र
वउस	–	–	बकुशदेश,
वक्कय	–	–	वल्कल
वग्गुली	–	–	वागुल
वज्ज रिसह नाराय संघयण		–	वज्र ऋषभनाराच संहनन,
वज्जो	–	–	हिंसाका २५ वां नाम.
वट्टक	–	–	वत्तक

शब्द	अर्थ
वट्ट पव्वय	गोलाकार पर्वत
वण चरगा	जंगल में घूमने वाले
वएण	बछड़ा
वणस्सइ	वनस्पति
वद्धीसक	वाद्यविशेष
वप्पणि	पानी की नाली
वप्पिणि	बावड़ी
वय	व्रत
वयगुत्ते	वचनगुप्त
व्यजन	वींजना
वरत्त	चमड़े की डोरी
वर पोत	जहाज
वरहिण	मयूर
वराहि	दृष्टिविष–सर्प
वल्लकी	वीणा
वल्लर	खेत विशेष
ववसाओ	व्यवसाय, अहिंसाका ४४ वां नाम
वव्वर	बर्बर देश
वसा	चरबी
वहण	नौका
वहणा	हिंसाका ८ वां नाम
वाउप्पिय	भुजपरिसर्प
वाउरिय	जाल लेकर घूमने वाले
वाणियगा	वणिक लोग
वानर कुल	वन्दर जाति
वानर	वन्दर
वामलो कवादी	विपरीत बोलने वाला

शब्द			अर्थ
वामण	–	–	छोटेशरीर वाला
वायर	–	–	बादर–स्थूल
वायस	–	–	कौवा
बालरज्जुय	–	–	बालकी रस्सी
वावि	–	–	कमल रहित या गोल वावडी
वासहर	–	–	वर्षधर हिमवान आदि
वासि	–	–	वसूला
वासुदेवा	–	–	वासुदेव
वाहण	–	–	गाडी आदि
वाहा	–	–	व्याध
विकप्प	–	–	एक तरह का महल
विकहा	–	–	विकथा
विग	–	–	भेडिया व्याघ्र
विग्घ	–	–	व्याघ्र
विचित्त	–	–	विचित्र कूट पर्वत
विच्छुय	–	–	विच्छू
विडंग	–	–	कबूतरों का घर
विणासु	–	–	हिंसा का २७वां नाम
विण्हुमयं	–	–	विष्णुमय
वितत	–	–	ढोल
विततपक्खि	–	–	वितत पक्षी
विद्धि	–	–	वृद्धि, अहिंसा का २१वां नाम
विपची	–	–	वीणा
विभूती	–	–	विभूति, अहिंसा का ३२वां नाम
विमुत्ती	–	–	विमुक्ति, अहिंसा का १२वां नाम
विमल	–	–	विमल, अहिंसा का ५८वां नाम
वियल	–	–	वीजना

शब्द			अर्थ
वट्ट पव्वय	–	–	गोलाकार पर्वत
वण चरगा	–	–	जंगल मे घूमने वाले
वण्णा	–	–	बछड़ा
वणस्सइ	–	–	वनस्पति
वद्धीसक	–	–	वाद्यविशेष
वप्पणि	–	–	पानी की नाली
वप्पिणि	–	–	बावड़ी
वय	–	–	व्रत
वयगुत्तो	–	–	वचनगुप्त
व्यजन	–	–	वींजना
वरत्त	–	–	चमड़े की डोरी
वर पोत	–	–	जहाज
वरहिण	–	–	मयूर
वराहि	–	–	दृष्टिविष–सर्प
वल्लकी	–	–	वीणा
वल्लर	–	–	खेत विशेष
ववसाओ	–	–	व्यवसाय, अहिंसाका ४४ वां नाम
वव्वर	–	–	वर्वर देश
वसा	–	–	– चरवी
वहण	–	–	नौका
वहणा	–	–	हिंसाका ८ वां नाम
वाउप्पिय	–	–	भुजपरिसर्प
वाउरिय	–	–	जाल लेकर घूमने वाले
वाणियगा	–	–	वणिक लोग
वानर कुल	–	–	वन्दर जाति
वानर	–	–	वन्दर
वामलो कवादी	–	–	विपरीत बोलने वाला

शब्द			अर्थ
वामण	–	–	छोटे शरीर वाला
वायर	–	–	बादर–स्थूल
वायस	–	–	कौवा
बालरज्जुय	–	–	बालकी रस्सी
वावि	–	–	कमल रहित या गोल बावडी
वासहर	–	–	वर्षधर हिमवान आदि
वासि	–	–	वसूला
वासुदेवा	–	–	वासुदेव
वाहण	–	–	गाडी आदि
वाहा	–	–	व्याध
विकप्प	–	–	एक तरह का महल
विकहा	–	–	विकथा
विग	–	–	भेडिया व्याघ्र
विग्घ	–	–	व्याघ्र
विचित्त	–	–	विचित्र कूट पर्वत
विच्छुय	–	–	विच्छू
विडंग	–	–	कबूतरो का घर
विणासु	–	–	हिंसा का २७वां नाम
विण्हुमयं	–	–	विष्णुमय
वितत	–	–	ढोल
विततपक्खि	–	–	वितत पक्षी
विद्धि	–	–	वृद्धि, अहिंसा का २१वां नाम
विपंची	–	–	वीणा
विभूती	–	–	विभूति, अहिंसा का ३२वां नाम
विमुत्ती	–	–	विमुक्ति, अहिसा का १२वां नाम
विमल	–	–	विमल, अहिसा का ५८वां नाम
वियल	–	–	वीजना

शब्द			अर्थ
वियग्ध	–	–	व्याघ्र के बच्चे
विरतीय	–	–	हिंसा रूप पाप से विरत
विरल्ल	–	–	विरल्ल-मकडी
विराहणाओ	–	–	विराधना
विलउलि कारकाणं	–		दूसरे को व्यामोह में डालने के लिये विस्वर बोलने वाला
विस्संभ वाइओ	–	–	विश्वासघाती
विसिट्ठ दिट्ठो	–	–	विशिष्ट दृष्टि, अहिंसा का २८वा नाम
विसुद्धी	–	–	विशुद्धि, अहिंसा का २९वां नाम
विसाण	–	–	हाथी का दांत
विहार	–	–	मठ
विहंग	–	–	पक्षी
विदंसग पास हत्था	–	–	संडास और जाल हाथ मे रखने वाला
वीसासो	–	–	विश्वास, अहिंसा का ५१वां भेद
वीही	–	–	व्रीही-चावल
वेढिम	–	–	वेष्टिम-जलेबी
वेतिय	–	–	वेदिका चबूतरा
वेदको	–	–	भोक्ता
वेसर	–	–	पक्षी विशेष
वोरमणं	–	–	हिंसा का १९वा नाम
वंजुल	–	–	एक प्रकार का पक्षी
वंस	–	–	बांसुरी

स

सउण	–	–	शकुन पक्षी
सक	–	–	शकदेश या जाति
सक्करा	–	–	धूलि
सक्कुलि	–	–	तिल पापडी
सढ	–	–	मायावी

शब्द			अर्थ
सगड	–	–	शकट–गाडी
सण	–	–	आसन
सणप्फ	–	–	नखयुक्त पैर वाले
सतग्घि	–	–	तोप
सत्ति	–	–	शक्ति त्रिशूल
सत्ती	–	–	शक्ति, अस्त्र भेद अहिंसा का ४र्थ नाम
सद्दूल	–	–	शार्दूल सिंह
सब्बल	–	–	भाला
सन्नी	–	–	सञ्ज्ञी
सपरिग्गह	–	–	परिग्रह के साथ
सप्पि	–	–	घी
सबर	–	–	शबर भिल्ल जाति
सभा	–	–	सभा
समणधम्मे	–	–	श्रमण धर्म
सम चउरंससंठाण		–	सम चतुरस्र चारो कोण बराबर
समय	–	–	सिद्धान्त
सम्मत्त विसुद्ध मूलो		–	सम्यक्त्व रूप विशुद्ध मूल वाला
सम्मद्दिट्ठी	–	–	सम्यग्दृष्टि
सम्मत्ताराहणा	–	–	सम्यक्त्व की आराधना, अहिंसा का १५वां नाम
समाहि	–	–	समाधि-समता, अहिंसा का ३रा नाम
समिई	–	–	समिति, अहिंसा का ३८वां नाम
समिद्धि	–	–	समृद्धि, अहिंसा का १६वां नाम
सागपत्तं	–	–	शाकपत्र
साण	–	–	श्वान-कुत्ता
सामलिपोंड	–	–	शाल्मली वृक्ष के फल
सामली	–	–	नरक का शाल्मली वृक्ष
सारस	–	–	सारस पक्षी

शब्द			अर्थ
साली	–	–	शाली धान्य विशेष
साहारण सरीर	–	–	साधारण शरीर
सिद्धातिगुणा	–	–	सिद्धो के गुण
सिद्धावासो	–	–	मोक्षवास अहिंसा का ३४वा नाम
सिप्पकला	–	–	शिल्पकला
सियाल	–	–	श्रृगाल
सिरियद्दलग	–	–	श्रीवन्दलक
सिलप्प	–	–	प्रवाल
सिव	–	–	शिव-उपद्रव रहित अहिंसा का ३७वां नाम
सिस्सा	–	–	शिष्य
सिहर	–	–	शिखर
सिहरिणि	–	–	दही और शक्कर से बना
सीमागार	–	–	एक प्रकार का ग्राह
सीया	–	–	बडी पालकी सीता
सील	–	–	शील अहिंसा का ३६वा नाम
सील परिघरो	–	–	शील परिग्रह अहिंसा का ४१वां नाम
सीसक	–	–	सीसा
सीह	–	–	सिंह
सीहल	–	–	सिहल देश
सुइमुह	–	–	सूचीमुख-तीखी चोच वाला पक्षी
सुघोस	–	–	घटा
सुक	–	–	तोता
सुकयं	–	–	सुकृत
सुणग	–	–	कुत्ता
सूय	–	–	तोता
सुयनाणी	–	–	श्रुत ज्ञानी
सुप्प	–	–	सुपड़ा

शब्द			अर्थ
संख	–	–	शङ्ख
सचयो	–	–	वस्तुओ की अधिकता परिग्रह का २रा भेद
संजमो	–	–	संयम, अहिंसा का ४ वा नाम
सडास तोड	–	–	संडास की आकृति की तरह मुह वाला जीव
संथवो	–	–	बाह्य पदार्थों का अधिक परिचय, परिग्रह का २२वा भेद
संधि छेदक	–	–	खात खोदने वाला
सपाउप्पायको	–	–	झूठ आदि पाप को करने वाला, परिग्रह का १८ वा भेद
संपुड	–	–	सम्पुट
संदण	–	–	युद्ध तथा देव रथ
संबर	–	–	सांभर
संभारो	–	–	संभार जो अच्छी तरह से धारण किया जाय परिग्रह का ६ठा भेद
समुच्छिम	–	–	सम्मूर्च्छिम बिना गर्भ के उत्पन्न होने वाला जीव
संवरो	–	–	संवर, अहिसा का ४२ नाम
संवट्टगसंखेवो	–	–	हिंसा का एक नाम
संसेइम	–	–	पसीने से पैदा होने वाला
संरक्खणा	–	–	संरक्षणा-मोहवश शरीर आदि की रक्षा करना परिग्रह का १६वा भेद
सिंग	–	–	सींग
सुंसुमार	–	–	जलचर जन्तु विशेष

ह

हडि	–	–	काष्ठ का घोड़ा
हत्थि	–	–	हाथी
हत्थिमड	–	–	हाथी का कलेवर

शब्द			अर्थ
हत्थंदुय	–	–	हस्तान्दुक एक प्रकार का बन्धन
हय	–	–	घोड़ा
हय पुंडरिय	–	–	हद पुण्डरीक पत्ती
हरिएसा	–	–	चाण्डाल
हल	–	–	हल
हस्स	–	–	हास्य
हितयंत	–	–	हृदय और आंत
हिरण्ण	–	–	चांदी
हुरब्भ	–	–	भेड आदि ऊन वाले जीव
हुलियं	–	–	शीघ्र
हूण	–	–	हूण जाति
हंस	–	–	हंस
हिंसविहंसा	–	–	हिंसा का ४था नाम
हुंड	–	–	बेडोल शरीर–कुरूप

प्रश्नव्याकरण सूत्रस्य विशिष्टपद टिप्पणानि

१. आस्रव, संवर—

आस्रव और संवर प्रश्नव्याकरण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। प्रथम सूत्र में आस्रव तथा संवर पर कहने की प्रतिज्ञा की गई है। अतएव टिप्पण मे भी प्रथम स्थान इन्हीं दो को दिया जाता है। आस्रव का अर्थ है कि जिसके द्वारा आत्मा में कर्म प्रवेश करे, अथवा जिसके द्वारा कर्म का उपार्जन हो वह आस्रव है। जैसे सरोवर में प्रवाह रूप से पानी का आगमन होता है और जल के आने से सरोवर लबालब भर जाता है वैसे ही आत्मरूप सरोवरमें जिस मार्गसे कर्म प्रवाह आता है, वह मार्ग एवं कर्मों का आना आस्रव है। इसके मुख्य भेद दो हैं। द्रव्यास्रव और और भावास्रव। नौका मे छिद्र के द्वारा जल का प्रविष्ट होना द्रव्यास्रव और इन्द्रिय आदि से जीव में कर्म का आना भावास्रव है। यहां केवल कर्मास्रव से अभिप्राय है। कर्मागमन के हेतु मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ऐसे पाच हैं। इनमे योग सबका आधार है, जो तीन प्रकारका है। मनोयोग, वाग्योग, और काय-योग। मानसिक प्रवृत्ति को मनोयोग, वाचिक को वचन योग तथा कायिक प्रवृत्ति को काय योग कहते हैं। योग के साथ जब कषाय क्रोध आदि भाव का सम्बन्ध होता है तब उसे साम्परायिक आस्रव कहते हैं और कषाय रहित केवल योग प्रवृत्ति को ऐर्यापथिक आस्रव कहते हैं। इन दोनों मे साम्परायिक आस्रव के ५ इन्द्रिय ४ कषाय, ५ अव्रत, २५ क्रिया और ३ योग मिलकर ४२ भेद होते हैं। प्रकारान्तर से आस्रवके २०भेद भी होते हैं। इन्द्रिय और मनमें विकार पैदा करने वाले बाह्य पदार्थ संसार मे अगणित हैं परन्तु वे सब कर्म बन्धमें नियत हेतु नही हैं। क्योंकि बन्ध या निर्जरा में हेतु बनाना आत्मा के अधीन हैं। अज्ञानी जिन स्रक्चन्दनादि पदार्थों

कर्म निरोध के उपाय तरीके 'संवर' के ५७ भेद होते है—"जैसे-५ समिति, ३ गुप्ति, १० यतिधर्म, १२ भावना, २२ परीषह और ५ चारित्र कुल ५७। शुभाशुभ कर्मास्रव को रोकने के कारण संयम या चारित्र को भी संवर कहते हैं। आस्रव की विपरीत सारी प्रवृत्ति संवर का कारण है। इसके मुख्य भेद सम्यक्त्व, व्रत, अप्रमाद, अकषाय और अयोग रूप से पांच हैं। मिथ्यात्व आदि पांच हेतुओ से होने वाला कर्मास्रव थोडी देर के लिये कल्पना कीजिए कि ११११११ का है। जब मिथ्यात्व का द्वार बन्द कर दिया जाय, तब ११११ बांकी रहते हैं। दश हजार का कर्ज कम हो गया। ऐसे अव्रत का दूसरा द्वार बन्द कर देने पर एक हजार कम हो गया, और प्रमाद एवं कषाय के संवरण कर लेने पर तो योग निमित्तक एक रुपया जितना ही कर्ज बाकी रहता है। अतएव जो प्राणी मिथ्यात्व का द्वार बन्द कर चुके है, उनके लिये यहा हिंसा असत्य आदि त्याग रूप पांच संवर कहे गये हैं।

इन पाच संवरो के द्वारा अव्रत रूप दूसरा द्वार बन्द हो जाता है, और प्रमाद कषाय एवं योग के संकुचित हो जाने से उनके द्वारा होने वाला आस्रव भी अल्प हो जाता है। आस्रव घटने से आत्मा कर्मभार से हल्की रहती है। अतएव ये पांच संवर उपादेय हैं।

३. प्राणवध—

हिंसा का एक प्रसिद्ध नाम प्राणवध है, जिसको प्रकारान्तर से प्राणातिपात भी कहते है। प्राणवध का अर्थ है-प्राणों का नाश–अर्थात् अपने २ कायाधिष्ठान मे सुघटित दश प्राणों को विघटित करना। लोक व्यवहार मे जिसे जीव हिंसा कहते हैं उसको यहा प्राणवध के नाम से कहा गया है। कारण यह है कि आत्मा अरूप होने से किसी से मारी नहीं जा सकती केवल उसके प्राणो का नाश किया जा सकता है।

पाठक सोचेंगे कि हिंसा ऐसा सरल नाम न देकर प्राणवध ऐसा क्यो लिखा ? यदि स्पष्टता के लिये लिखना था तब भी जीव हिंसा लिखते ? क्योंकि प्राण तो मारे जाते नहीं फिर प्राणवध कैसा ?

उत्तर यह है कि वास्तव मे आत्मा अमर है। यदि वही मर जाय तब तो भूत-वादियो के कथनानुसार पुण्य पाप और परलोक का भी अभाव हो जायगा। दृष्टान्त के रूप मे सोचिए कि आपने किसी गृहस्थ को घर से बाहर कर दिया है,

उसके शरीर को कुछ भी क्षति नहीं पहुँचाई, फिर भी जब तक उसका जीवन है वह अन्यत्र रहकर भी आपसे बदला लेना चाहेगा। उसका हृदय वैर को नही भूल सकेगा, क्योंकि आपने उसका आश्रय छुडाया है। असमर्थ होकर भी जैसे जर्मन ब्रिटिश के साथ वैर नही भूला वैसे ही जिस प्राणी के प्राणों का अपहरण किया गया है वह जन्मान्तर मे जाने पर भी अपने प्राण घातक के साथ वैरानुबन्ध नही भूलता। दूर बसे हुए भी शरणार्थिओ की तरह उसका हृदय वैर से कलुषित रहता है। प्राण छूटने पर भी उसके आश्रित जीने वाले प्राणी अमर रहते है। इस लिये कहा है कि--"पञ्चेन्द्रियाणित्रिविधं बलञ्च, उच्छ्वास निश्वासमथान्यदायुः प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्ता--स्तेषा वियोगी करणं तु हिसा॥ पाच इन्द्रियां, ३ बल श्वास और आयु रूप दश प्राणो का जीव से वियोग करना ही हिसा है। इसलिये हिसा को प्राणवध कहा गया।

किन्तु इससे यह नही समझना चाहिए कि दूसरो को कष्ट पहुंचाना हिंसा नही है। प्राण नाश का कारण होने से दु ख या क्लेश पहुँचाना भी वध कहा गया है। जैसे कि--'तप्पज्जाय विणासो, दुक्खुप्पातो य सकिलेसो य। एस वहो जिण भणिओ वज्जेयव्वो पयत्तेणं॥ शरीर पर्याय का नाश और दु ख एवं संक्लेश उत्पन्न करना इसको तीर्थङ्करो ने वध कहा है जो प्रयत्न पूर्वक त्यागना चाहिए।

प्राणिवध भी व्यवहार दृष्ट्या प्राणवध को कहते है।

४. हिंसा के कारण—

अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग रूपसे हिसा के प्रमुख दो कारण हैं। उनमे अन्तरङ्ग कारण क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति. अरति, शोक, वैदिक अनुष्ठान अर्थ, धर्म, काम और जीत-रूढि पालन के लिये हिंसा की जाती है।

बहिरङ्ग कारण—

चमडा १ चरबी २ मांस ३ मेद ४ रक्त ५ यकृत ६ फिफ्फस-फेफडा ७ मस्तुलुंग-कपाल का भेजा ८, हृदय ९, आंत १० पित्त ११ फोफस १२ दात १३, अस्थि १४ मज्जा १५, नख १६ नेत्र १७, कान १८ स्नायु-नसे १९, नाक २० धमनी-नाडी २१ सीग २२, दाढ २३, पिच्छ या पूछ २४, विष २५, विषाण-हाथी दात २६ और बाल २७ इनके लिये गो महिष आदि पञ्चेन्द्रिय जीवो की हिंसा होती है। मधु-आदि के लिये चतुरिन्द्रिय भ्रमर आदि की, शरीर और उपकरण शुद्धि के लिये

तेइन्द्रिय जीवो की और घर वस्त्र की सफाई रंगाई तथा रेशम आदि के लिये बेइन्द्रिय जीवो की हिंसा होती है।

इसके उपरान्त स्थावर जीवो की हिंसा के सैकडों कारण पृथक है खेती, देवल, चैत्य आदि पृथ्वीकाय की हिंसाके कारण बताए गये है। इस प्रकार धर्म आदि अर्थ या अनर्थ से अबुध लोग हिंसा करते है। यज्ञ याग एव देवोपासना मे की जाने वाली हिंसा को भी कर्मबन्ध का कारण कहा है। जैसे कि परतैर्थिक ने भी कहा- हिंसाजन्यञ्च पापञ्च लभते नात्र संशय' 'अर्थात् धर्म के नाम पर भी की गई हिंसा पाप पैदा करती है। वधकर्ता हिंसा के बदले पापको पाता है, इसमे कोई सन्देह नही है। इस आशय को तत्त्वज्ञ विद्वानों ने जोर तोर से समर्थन किया है। जैसेकि,-' देवोपहार व्याजेन यज्ञ व्याजेन येऽथवा। घ्नन्ति जन्तून् गतघृणा', घोरां ते यान्ति दुर्गतिम्॥ वेदान्ती भी कहते हैं -" अन्धे तमसि मज्जाम' पशुभिर्ये यजामहे। हिंसा नाम भवेद्धर्मो-नभूतो न भविष्यति।

व्यासने भी कहा है -" प्राणिघातात्तु यो धर्म-मीहते मूढ मानसः। स वाञ्छति सुधावृष्टिं, कृष्णाऽहिमुख कोटरात्॥ .

इत्यादि सहस्रो प्रमाण मनु स्मृति आदि ग्रन्थो के दिये जा सकते हैं, जो विस्तार भय से नही दिये गये हैं।

५. प्रमाद—

जिसके कारण लोक कर्तव्य का भान भूले, उसे प्रमाद कहते है। कोषकार अमरसिंह ने प्रमाद के लिये अनवधानता पद का प्रयोग किया है। जैसे कि-- प्रमादोऽनवधानता-इत्यमर, द्रव्य और भाव भेद से प्रमाद दो प्रकार का है। बोध की सुलभता के लिये आचार्यों ने प्रमाद के ५ एव ८ भेद भी किये हैं। जैसे मद्य १ विषय-शब्दादि २, कषाय ३, निद्रा और विकथा ४। ५ ये प्रमाद के पाच प्रकार है। आठ भेद में प्रथम अज्ञान, दूसरा संशय, ३ रा मिथ्या ज्ञान, ४ राग, ५ द्वेष, ६ मति भ्रंश, ७ धर्म में अनाचार और ८ मन वचन एवं काय की अशुभ प्रवृत्ति, यह आठवा प्रमाद है। कहा भी है--

अन्नाण १ ससओ २ चेव, मिच्छानाणं तहेव य। रागो दोसो ५ मइब्भंसो ६, धम्मम्मिय अणायरो। अप्पसत्थाण जोगाण, पमाओ होइ अट्ठहा॥

कुलकोडि—

जीवो की जाति विशेष को कुल कोटि कहते हैं। एकेन्द्रिय की ५७ लाख कुल कोटि है।

जैसे कि— पृथ्वी काय की १२ लाख कुल कोटि,
अप्काय की ७ लाख,
तेउ काय की ३ लाख,
वायु काय की ७ लाख,
वनस्पति काय की २८ लाख,
बेइन्द्रिय की ७ लाख कुल कोटि,
तेइन्द्रिय की ८ लाख,
चौरिन्द्रिय जीवो की ६ लाख कुल कोटि है।

पञ्चेन्द्रिय जीवो मे जलचर की १२॥ साढे बारह लाख कुलकोटि खेचरों-पक्षिओ-की १२ लाख कुलकोटि। चतुष्पाद-हाथी घोड़ो आदि की १० लाख कुलकोटि। उर.परिसर्प-छाती के बल से ससरने वाले सर्प आदि की १० लाख कुलकोटि। मनुष्य पञ्चेन्द्रिय की १२ लाख कुलकोटि भुजा से चलने वाले चूहा आदि की ६ लाख कुल कोटि॥ देवो की २६ लाख कुलकोटि। नारक जीवो की २५ लाख कुलकोटि है। इन सब संख्याओ को मिलाकर एक करोड सतानवे लाख पचास हजार कुल कोटियाँ होती है।

जैसे कि कहा गया है " एगिंदिएसु पंचसु, बारस सत्त तिगसत्त अट्ठवीसा य। बिगलेसु सत्त अडनव जल खह चउप्पय उरग भूयगे॥ १॥ अट्ठ-तेरस बारस दस दस नवगं नरामरे नरए। बारस छव्वीस. पणवीस हुंति कुल कोडी लक्खाइं॥ २॥

६. मृषावादी—

हिंसा की तरह मृषावाद भी पाप बन्ध का एक बड़ा कारण है। इसके बोलने वालो की कोई स्वतन्त्र जाति नही होती। उच्च से उच्च कुल मे जन्मा हुआ भी यदि झूठ बोलता है तो वह मृषावादी है। सूत्र मे असत्य पूर्ण व्यवहार और झूठे सिद्धान्तो की अपेक्षा मृषावादियो के दो वर्ग किये गये हैं। एक लोक व्यवहार में

आजीविका निमित्त या मोह वश झूठ बोलने वाले और दूसरे सैद्धान्तिक जगत में तत्वो का मिथ्या स्वरूप बताने वाले।

प्रथम प्रकार के मिथ्यावादी इस प्रकार हैं--क्रोध, लोभ, भय, और हास्य ये झूठ के मूलकारण है। क्रोध द्वेष का और लोभ राग का अंश है, और राग द्वेष मोह के प्रधान अङ्ग है। अतएव मोह अज्ञानादि सारे हेतु इनमे समाविष्ट हो जाते है। अर्थ, धर्म और काम को इन्हीं क्रोध लोभ रूप दो भागों मे अन्तर्हित समझना चाहिए।

क्रोध लोभादि वृत्ति वाले लोगो को गिनाते हैं---१ असंयमी, २ अविरती, ३ कपट से कुटिल और चञ्चल भाव वाले, ४ साक्षी, ५ चोर, ६ चारभट, ६ खडरक्षक, ८ चूंगी लेने वाले, ९ जीतने वाला जुआरी, १० धरोहर दवाने की इच्छा वाले, ११ वञ्चना के लिये मीठे बोलने वाले, १२ कुतीर्थिक---वेष मात्र धारी, १३ वणिक्-वाणिज्य करने वाले, १४ कूटतुल कूटमानी-खोटा तोल माप करने वाले, १५ नकली सिक्के से जीने वाले या कूट धर्म से जीविका करने वाले, १६ पटकार-बुनकर, १७ सुवर्णकार-सुनार, १८ कारुक-कारीगर, १९ वञ्चक-ठग, २० चारिक-चोर की खोज निकालने वाले, २१ चाटुकार-खुशामद करने वाले, २२ नगर गुप्तक-कोतवाल, २३ परिचारक-मैथुन कर्म में दलाली करने वाले, २४ दुष्टवादी-असत्य पक्ष लेने वाले, २५ सूचक-चुगलखोर २६ ऋणबल भणिता-बल से ऋण लेने वाले-कर्जदार, २७ पूर्व कालिक वचन दक्ष-बोलने वाले के पहले ही अनुमान करके कहने वाले, २८ साहसिक-बिना सोचे बोलने वाले, २९ लघु-तुच्छ हृदय वाले, ३० दुर्जन, ३१ गौरविक-ऋद्धि आदि के गारव वाले, ३२ असत्य की स्थापना मे चित्त वाले, ३३ उच्च छन्द-बडप्पन में ऊंचे अभिप्राय वाले, ३४ निरङ्कुश वचन वाले, ३५ नियम रहित या स्वजन रहित, ३६ इच्छानुसार बोलने वाले, अथवा स्वेच्छा से अपने को सिद्ध कहने वाले, निन्दक मत्सरी आदि ये लौकिक मृषावादी है।

लोकोत्तर मृषावादियो का परिचय दिया जाता है--

७. नास्तिक वादी--

नास्तिकवाद में असत्यांश की अधिकता है, अत प्रथम नास्तिकवादी को कहा गया है। दृष्ट जगत से भिन्न जो आत्मा परमात्मा और धर्म अधर्म आदि तत्वो को नहीं मानते उनको नास्तिक कहते है, जैसे कि--"नास्तिजीव परलोको वा इत्येवं

मतिर्यस्य स नास्तिकः ।" जो जीव और परलोक को नही मानता है वह नास्तिक है। लोकायतिक या सद् भूत भी जीवादि पदार्थों को नही मानने से वामलोक वादी कहाते है। दिखने वाले भौतिक जगत के अतिरिक्त ये परलोक को नही मानते। न पञ्च भूतो से पृथक् आत्मा नाम का पदार्थ ही मानते है। जैसा कि, उन्होने कहा है-

एतावानेव लोकोऽयं, यावानिन्द्रिय गोचरः ।

भद्रे ! वृक पदं पश्य, यद्वदन्त्यविपश्चितः ॥ १ ॥

पिव, खाद च चारु लोचने ! यदतीतं वरगात्रि ! तन्न ते ।

नहि भीरु ! गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरम् ।२।

भाव यह है कि जितना प्रत्यक्ष दिखता है, उतना ही यहलोक है इससे भिन्न जो स्वर्ग नरक आदि कहे जाते है वे सब मात्र प्रलोभन या भय के लिये ही है। उनमे कुछभी तत्त्व नही है। इसलिये ये लोग खाना, पीना और मौज मनाना ही जीवन का सार समझते है। इन नास्तिकों का-यह सिद्धान्त है-" यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतंपिवेत् । भस्मीभूतस्य-भूतस्य पुनरागमन कुतः॥ अर्थात्-जबतक जीओ, सुखसे जीओ ऋण लेकर भी घी पीओ, देह भस्मीभूत होने पर फिर मिलने का कहा है ? । और भी इन का कहना है-" स्वागमार्थेऽपि मास्थाऽस्मिन्, तीर्थिका विचिकित्सथ । ततमाचरताऽऽनन्द स्वच्छन्दं यं यमिच्छथ ॥ . अपने आगम रूप अर्थ मे संशयात्मा बनकर स्थिर न रहो। उसी आचरण को करो जो कि तुम करना चाहते हो। इस प्रकार स्वच्छन्द आचरण को करो, आगम के विधि निषेध मे न पडो।

ये नास्तिक वादी अपने पक्ष की सिद्धि मे कहते है कि प्रत्यक्ष आदि किसी प्रमाण से आत्मा की सिद्धि नही होती और न परलोक की सत्ता ही साबित होती है। जिसका प्रत्यक्ष नहीं उसका अनुमान भी नहीं होता । अत. पञ्चभूत का बना यह जगत ही सत्य है। पञ्चभूत-पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश-से पृथक् आत्मा कोई स्वतन्त्र पदार्थ नही है

उनका कहना है कि पञ्चभूतो मे प्रत्यक्ष नहीं दिखने वाली भी चेतना शक्ति-' किण्वादिभ्यो मदशक्ति वत्' जैसे गुड महुआ आदि के मिलने पर मादकता आती

आजीविका निमित्त या मोह वश झूठ बोलने वाले और दूसरे सैद्धान्तिक जगत में तत्वो का मिथ्या स्वरूप बताने वाले।

प्रथम प्रकार के मिथ्यावादी इस प्रकार हैं--क्रोध, लोभ, भय, और हास्य ये झूठ के मूलकारण है। क्रोध द्वेष का और लोभ राग का अंश है, और राग द्वेष मोह के प्रधान अङ्ग है। अतएव मोह अज्ञानादि सारे हेतु इनमे समाविष्ट हो जाते है। अर्थ, धर्म और काम को इन्ही क्रोध लोभ रूप दो भागों में अन्तर्हित समझना चाहिए।

क्रोध लोभादि वृत्ति वाले लोगो को गिनाते है--१ असंयमी, २ अविरती, ३ कपट से कुटिल और चञ्चल भाव वाले, ४ साक्षी, ५ चोर, ६ चारभट, ६ खडरक्षक, ८ चूगी लेने वाले, ९ जीतने वाला जुआरी, १० धरोहर दबाने की इच्छा वाले, ११ वञ्चना के लिये मीठे बोलने वाले, १२ कुतीर्थिक---वेष मात्र धारी, १३ वणिक्-वाणिज्य करने वाले, १४ कूटतुल कूटमानी–खोटा तोल माप करने वाले, १५ नकली सिक्के से जीने वाले या कूट धर्म से जीविका करने वाले, १६ पटकार-बुनकर, १७ सुवर्णकार-सुनार, १८ कारुक–कारीगर, १९ वञ्चक-ठग, २० चारिक–चोर की खोज निकालने वाले, २१ चाटुकार–खुशामद करने वाले, २२ नगर गुप्तक–कोत-वाल, २३ परिचारक-मैथुन कर्म में दलाली करने वाले, २४ दुष्टवादी–असत्य पक्ष लेने वाले, २५ सूचक–चुगलखोर २६ ऋणबल भणिता–बल से ऋण लेने वाले-कर्जदार, २७ पूर्व कालिक वचन दक्ष–बोलने वाले के पहले ही अनुमान करके कहने वाले, २८ साहसिक–बिना सोचे बोलने वाले, २९ लघु–तुच्छ हृदय वाले, ३० दुर्जन, ३१ गौरविक–ऋद्धि आदि के गारव वाले, ३२ असत्य की स्थापना में चित्त वाले, ३३ उच्च छन्द–बडापन मे ऊंचे अभिप्राय वाले, ३४ निरङ्कुश वचन वाले, ३५ नियम रहित या स्वजन रहित, ३६ इच्छानुसार बोलने वाले, अथवा स्वेच्छा से अपने को सिद्ध कहने वाले, निन्दक मत्सरी आदि ये लौकिक मृषावादी है।

लोकोत्तर मृषावादियों का परिचय दिया जाता है--

७. नास्तिक वादी--

नास्तिकवाद मे असत्यांश की अधिकता है, अत प्रथम नास्तिकवादी को कहा गया है। दृष्ट जगत से भिन्न जो आत्मा परमात्मा और धर्म अधर्म आदि तत्वो को नही मानते उनको नास्तिक कहते है, जैसे कि--"नास्तिजीव परलोको वा इत्येवं

मतिर्यस्य स नास्तिक.।" जो जीव और परलोक को नहीं मानता है वह नास्तिक है। लोकायतिक या सद्भूत भी जीवादि पदार्थों को नहीं मानने से वामलोक वादी कहाते है। दिखने वाले भौतिक जगत के अतिरिक्त ये परलोक को नहीं मानते। न पञ्च भूतों मे पृथक् आत्मा नाम का पदार्थ ही मानते है। जैसा कि, उन्होंने कहा है-

एतावानेव लोकोऽयं, यावानिन्द्रिय गोचरः।
भद्रे ? वृक पदं पश्य, यद्वदन्त्यविपश्चितः ॥ १ ॥
पिब, खाद च चारु लोचने ? यदतीतं वरगात्रि ? तन्न ते।
नहि भीरु ? गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरम् ।२।

भाव यह है कि जितना प्रत्यक्ष दिखता है, उतना ही यह लोक है इससे भिन्न जो स्वर्ग नरक आदि कहे जाते हैं वे सब मात्र प्रलोभन या भय के लिये ही है। उनमें कुछभी तत्त्व नहीं है। इसलिये ये लोग खाना, पीना और मौज मनाना ही जीवन का सार समझते है। इन नास्तिकों का -यह सिद्धान्त है-" यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य-भूतस्य पुनरागमन कुत.॥ अर्थात्- जबतक जीओ, सुखसे जीओ ऋण लेकर भी घी पीओ, देह भस्मीभूत होने पर फिर मिलने का कहा है ?। और भी इन का कहना है-" स्वागमार्थेऽपि मास्थाऽस्मिन्, तीर्थिका विचिकित्सथ'। तंतमाचरताऽऽनन्द स्वच्छन्दं यं यमिच्छथ ॥. अपने आगम रूप अर्थ मे सशयात्मा बनकर स्थिर न रहो। उसी आचरण को करो जो कि तुम करना चाहते हो। इस प्रकार स्वच्छन्द आचरण को करो, आगम के विधि निषेध मे न पडो।

ये नास्तिक वादी अपने पक्ष की सिद्धि मे कहते है कि प्रत्यक्ष आदि किसी प्रमाण से आत्मा की सिद्धि नहीं होती और न परलोक की सत्ता ही साबित होती है। जिसका प्रत्यक्ष नहीं उसका अनुमान भी नहीं होता। अतः पञ्चभूत का बना यह जगत ही सत्य है। पञ्चभूत-पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश-से पृथक् आत्मा कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है

उनका कहना है कि पञ्चभूतों मे प्रत्यक्ष नहीं दिखने वाली भी चेतना शक्ति-' किण्वादिभ्यो मदशक्ति वत् जैसे गुड महुआ आदि के मिलने पर मादकता आती

है, वैसे-ही पञ्चभूतो के सम्मिलित होने पर प्रकट होजाती है। शरीर ही प्राण वायु से युक्त सभी क्रियाओ को करते दिखाई देता है। हिंसा, झूठ, चोरी और पर दार गमन मे कोई पाप नही है।

कहा जाता है कि बृहस्पति ने अपने पुत्र की रक्षा के लिये जब मृत्युञ्जय मन्त्र और सञ्जीवनी का साधन कर के भी सफलता प्राप्त नहीं की। तब पुत्र वियोग से विकल उनके हृदयने पुण्य पाप और जप तप आदि को झूठा घोषित किया। जैसे कि उसने कहा है-

> अग्नि होत्रं त्रयीदण्डं, त्रिदण्डं भस्म पुण्ड्रकम्।
> प्रज्ञा पौरुषहीनानां, जीवो जल्पति जीविकाम्॥

भाव यह है कि-

अग्नि होत्र-नियमपूर्वक हवन करना, त्रयी ऋक् यजुः, साम-इन तीनो वेदोंका साङ्ग अध्ययन करना, दण्डी यात्रिदण्डी बनना, भस्म लगाना, और मुद्रा अङ्कित करना ये सब बुद्धि और पुरुषार्थ से हीन लोको की जीविका-जीवन यापन की योजना मात्र है और कुछ इन मे सार नही है, ऐसा बृहस्पति कहता है। बृहस्पति से प्रचालित होने के कारण-इस मत को वार्हस्पत्य मत भी कहते है। व्यक्तिगत रूप से तो आज नास्तिक वाद का प्रचार हजारो मनुष्यो मे मिलेगा। पश्चिमी-साम्यवाद की वायुने सर्वत्र यह प्रचार कर रक्खा है कि भूतवाद और दृष्टजगत्से भिन्न आत्मा परमात्मा तथा परलोक वास्तव मे नही है। नैतिक नियमो का पालन भी ये लोग समाज व्यवस्था के लिये ही करते है।

आज के प्रचलित कुंडा पंथ और वाम मार्ग इसी नास्तिक मत के रूपान्तर हैं अथवा इसी के भयङ्कर परिणाम हैं। आस्तिक दर्शनों से इसकी चाल सर्वथा भिन्न है। इन नास्तिको की दुश्चर्या जानकर "साक्षरा विपरीताश्चेद् राक्षसा एव केवलम्" यह संस्कृतोक्ति याद आती है। ये लोग अधिकता से साक्षर है। ये शिव को देव मानते। इनकी चक्रपूजा ही उपासना है। इस चक्र पूजा में नर नारी उपस्थित होते हैं। इनका कहना है अन्य मत से निर्वाण कीटिका-गति से कदाचित् होता है किन्तु वाम मार्ग से वह निर्वाण गरुड गति से अवश्य प्राप्त होता है। इनके पांच मकार मोक्षप्रद माने गये हैं।

जैसे--"मद्य मांसं च मीनञ्च, मुद्रा मैथुनमेव च।

एते पञ्च मकाराः स्युर्मोक्षदाहि युगे युगे॥ १॥ (काली तन्त्र)

इनके अनेकों तन्त्र ग्रन्थ है। वाम मार्ग की साधना—इसके साधक गण किस रीति से करते थे? ऐसा परिचय जिन्हे प्राप्त करना हो, वे बाणभट्टकृत कादम्बरी मे चन्द्रा पीड के कैलास गमन प्रकरण को पढे।

• स्वानुभूति से सिद्ध योग शक्ति निष्णातो के वचनों से प्रमाणित विश्व प्रसिद्ध ऐसे आत्म तत्त्व एवं धर्माधर्म का निषेध करने से ये मृषावादी कहे गये है।

८. पञ्चस्कन्ध–

कुछ लोग पञ्चस्कन्ध को ही सब कुछ मानते है उनके विचारानुसार पञ्च-स्कन्ध से भिन्न आत्मा कोई स्वतन्त्र वस्तु है ही नहीं। पञ्चस्कन्ध—"विज्ञान १, वेदना २, संज्ञा ३, संस्कार ४, और रूप ५, ये पांचस्कन्ध ही सब कुछ हैं। जैसेकि रूप स्कन्ध मे पृथ्वी आदि सभी धातु सारे रस आदि आजाते है, वेदना स्कन्ध मे सुख दुःख आदि वेदनाये तथा विज्ञान स्कन्ध मे रूपरसादि विज्ञानो का समावेश हो जाता है, संज्ञास्कन्ध मे-प्रत्ययात्मक बोध आता है और संस्कार स्कन्धमे पुण्य पाप आदि अच्छे बुरे विचार आते है, इस प्रकार जगत् के पदार्थ मात्र इनमे अन्तर्निहित होते है इनसे भिन्न आत्मा नामका कोई छट्ठा तत्त्व नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष या अनुमान मे से किसी भी प्रमाण द्वारा उसकी सिद्धि नहीं होती। पञ्च स्कन्ध भी क्षण योगी है अर्थात् क्षणमात्र स्थायी–क्षणिक–है, इस मत को मानने वाले बौद्ध है।

कुछ बौद्धाचार्य शरीर को चतुर्धातुक मानते है। उनके सिद्धान्तानुसार पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन चार धातुओ से यह शरीर बना है और कायरूप से इनको परिणति को ही जीव नाम से कहा जाता है। जैसे कि कहा है–"चतुर्धातुक मिदं शरीरं नतद्व्यतिरिक्त आत्मास्तीति–चतुर्धातुक इस शरीर के अतिरिक्त आत्मा कोई तत्त्व नही है।

समय पाकर इन बौद्धों के चार भेद होगये–वैभाषिक १, सौत्रान्तिक २, योगाचार ३, और माध्यमिक ४। त्रिपिटक के मतानुसार वैभाषिक सभी तत्त्वों को प्रमाण मानते पदार्थ मात्र को क्षणिक तथा आत्मसन्तान परम्परा का छेद अर्थात्–आत्मा

का मिट जाना ही उनके यहाँ मुक्त माना गया है। प्रत्यक्ष और अनुमान को प्रमाण मानते हैं। सोत्रान्तिक-केवल अनुमान को ही प्रमाण मानते है। योगाचार सम्प्रदाय मे अद्वैत की तरह ससार की सभी वस्तुएँ मिथ्या मानकर केवल आत्मज्ञान को ही सत्य माना है। वह ज्ञान क्षणिक अवश्य है। माध्यमिक-मध्यम सम्प्रदाय के बौद्ध जगत् के पदार्थ मात्र को शून्य मानते हैं। शून्य न सत् है न असत्, न सदसत् है, न अनिर्वचनीय है। शून्य इन सभी विकल्पों से पृथक् तत्त्व है। आत्मा आदि सभी पदार्थ कल्पित अतएव भ्रमपूर्ण है। कुछ बौद्धाचार्यों ने आत्मा और कर्म आदि को माना है फिर भी अधिकांश बौद्ध अनात्मवादी हैं। बौद्ध भिक्षु राहुल ने तो अपने अनात्मवादी विचारों का स्पष्ट उल्लेख किया है। यद्यपि सत्य, संयम और अहिंसा का बौद्धाचार्यों ने भी उपदेश किया है फिर भी क्षणिक वाद इनका सर्व मान्य है। बौद्ध की दृष्टि से ससार के सभी पदार्थ क्षणिक है। प्रथमक्षण का कार्य दूसरे क्षण मे नही रहता। जैसे कि वे कहते है—"यत् सत् तत् क्षणिकम्" "क्षणिका सर्व सस्काराः आदि। आत्मा आदि मूल भूत तत्त्वो को नहीं मानने एवं सबको क्षणिक मानने से ये मृषावादी है। सबको क्षणिक मानने से ससार का कोई भी कार्य नहीं हो सकेगा, कार्य कारण व्यवस्था तो रहेगी ही नहीं, क्योंकि पूर्वक्षण का मृत्पिण्ड जब घडे बनने के उत्तर क्षणमें रहेगा ही नहीं तब वह मृत्पिण्ड उस घडे का कारण कैसे होगा? सिवाय इसके सबको क्षण स्थायी मान लेने पर देखे और सुने हुए का समयान्तर मे स्मरण न होना चाहिए, किन्तु देखा जाता है कि मनुष्य को बाल्यकाल की बात वृद्धावस्था मे भी याद रहती है। श्रोता का सुनना और वक्ता गुरु का उपदेश कथन भी ज्ञान लाभ का कारण नहीं होगा। क्षणिकवाद मे लौकिक आदान प्रदान और न्यायकर्ता का दण्ड विधान भी नही हो सकेगा। क्योंकि लेने व देने के क्षण तथा अपराध करने व दण्ड भोगने के क्षण भिन्न हैं। जब पूर्व क्षण का कार्य उत्तर क्षण मे रहता ही नही तब ऋण लेने वाला देने के क्षणमे और अपराधी दण्ड विधान की क्षणमे नही रहा। कृतकर्मों का भोग भी क्षण वाद में नहीं रहेगा, क्योंकि बन्धक्षण भोगक्षण से पहले ही नष्ट हो चुकी, फिर जप ध्यान और भिक्षुचर्या सारी व्यर्थ ठहरती है। अत मूल द्रव्य परिणामी होकर नित्य है। केवल उसके परिणाम रूपान्तर ही क्षणस्थायी है वहाँ सब पदार्थों को क्षणिक मानना मृषा है।

अंडकाओ संभूओलोको—

कर्तृत्व वादी कहा करते है कि यह संसार एक अंडे से उत्पन्न हुआ है और भगवान् स्वयम्भूने इस का निर्माण किया है। अंड सृष्टि के मुख्य दो प्रकार है। एक बहुत प्राचीन है, जो छान्दोग्योपनिषत् मे बताया गया है। दूसरा प्रकार मनुस्मृतिमें दिखलाया है। दोनो की प्रक्रिया भिन्न २ है और दोनो मे बडा अन्तर है। उपनिषत् मे अंड के साथ स्वयम्भू का कोई सम्पर्क नही है जबकि मनुस्मृति की सृष्टिमे स्वयम्भू अंडे मे प्रवेश करके सृष्टि का निर्माण करते है। "संभूओ अंडकाओ लोगो" प्रश्न व्याकरण के इस वचनानुसार प्रथम छान्दोग्योपनिषत् की प्रक्रिया ही उपयुक्त ज्ञात होती है। अतः उपनिषद् के अनुसार प्रथम स्वयम्भूत अंडसृष्टि का उल्लेख करके फिर मनुस्मृति की अंडसृष्टि बतायी जायगी। छान्दोग्योपनिषत् ३, १९ मे लिखा है-

असदेवेदमग्र आसीत्—

अर्थ–"सृष्टि से पहले प्रलय कालमे यह जगत असत् अर्थात् अव्यक्त नाम रूप वाला था। तत्सदासीत्-वह असत् जगत् सत् यानी नाम रूप कार्य की ओर अभिमुख हुआ।

तत्समभवत्–अङ्कुरी भूत बीज के समान कमसे कुछ थोडासा स्थूल बना। तदाण्डं निरवर्तत–आगे चल कर वह जगत् अंडे के रूपमे बना। तत्सवत्सरस्य मात्रामाशयत–" वह एक वर्ष पर्यन्त अण्डरूपमे रहा। तन्निरभिद्यत-वह अण्डा एक वर्ष के पश्चात् फूटा। ते अण्ड कपाले रजतं च सुवर्णञ्चाऽभवताम्–अंडे के दोनो कपालो मे से एक चांदी का और दूसरा सोने का बना। तद्यद् रजतं सेयं पृथिवी –उनमे जो चांदी का था उसकी पृथ्वी बनी। यत्सुवर्णं सा द्यौः–जो कपाल सोनेका था उसका ऊद्र्ध्वलोक स्वर्ग बना। यज्जरायु ते पर्वता.-जो गर्भका वेष्टन था उसके पर्वत बने यदुल्वं स मेघो नीहार –जो सूक्ष्म गर्भ परिवेष्टन था वह मेघ और तुषार बना। या धमनय', तानद्य.–जोधमनियां थी वे नदियां बन गईं। यद् वास्तेयमुदकं स समुद्रः जो मुत्राशय का जल था उसका समुद्र बना। अथ यत्तद् जायत सोऽसावादित्यः– अन्तर अंडे मे से जो गर्भ रूप मे पैदा हुआ वह आदित्य बना।

यह अंडे की आमूल चूल स्वतन्त्र सृष्टि है। इसमे स्वयम्भू-ईश्वर या विष्णु आदि का कुछ भी सम्बन्ध नही है। जहांतक वैदिक साहित्य से हमारा परिचय हुआ है यह इस रंग ढंग का वर्णन छान्दोग्योपनिषद् में उपलब्ध है।

सयंभुणा सयंच निम्मिओ—

महर्षि मनु की अंड सृष्टि

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं, प्रसुप्तमिव सर्वतः। ५।
ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः। ६।
योऽसावतीन्द्रिय ग्राह्यः, सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः, स एव स्वयमुद्बभौ। ७।
सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ, तासु बीजमवासृजत्। ८।
तदण्डमभवद्धैमं, सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा, सर्वलोक पितामहः। ९।
आपो नारा इति प्रोक्ता, आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः। १०।
यत्तत्कारणमव्यक्तं, नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते। ११।
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा। १२।
ताभ्यां स शकलाभ्यां च, दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्। १३।

मनु० प्र० अ०।

अर्थात्--पहले यह संसार अंधकार रूप था, न किसी से जाना जाता और न कोई इसका लक्षण था, तर्क से परे और चारो ओर से गाढ़ निद्रावान् की तरह अज्ञेय था ॥ ५ ॥

तब अव्यक्त रहे हुए भगवान स्वयंभू पंच महाभूतो को प्रकट करते हुए स्वयं प्रकट हुए ॥ ६ ॥

जो यह अतीन्द्रिय, सूक्ष्म, अव्यक्त, सनातन और सर्वान्तर्यामी अचिन्त्य परमात्मा है, वही स्वयं (इस प्रकार) प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

उसने ध्यान करके अपने शरीर से अनेक प्रकार के जीवों को बनाने की इच्छा से सर्व प्रथम जल का निर्माण किया और उसमे बीज डाल दिया ॥ ८ ॥

वह बीज सूर्य के समान प्रभावाला सुवर्णमय अंड बन गया। उससे सब लोक के पितामह ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुए ॥ ९ ॥

नर-परमात्मा से उत्पन्न होने के कारण जलको नार कहते हैं, वह नार इसका पूर्व घर (आयन) है इसलिये इसको नारायण कहते है ॥ १० ॥

जो सबका कारण है, अव्यक्त और नित्य है तथा सत् व असत् रूप वाला है, उससे उत्पन्न वह पुरुष लोक मे ब्रह्मा कहाता है ॥ ११ ॥

एक वर्ष तक उस अंड मे रहकर उस भगवान ने स्वयं ही अपने ध्यान से उस अंड के दो टुकड़े कर दिये ॥ १२ ॥

उन दो टुकड़ो से उसने स्वर्ग और पृथ्वी का निर्माण किया। मध्य भाग में आकाश, आठ दिशाएं और जल का शाश्वत स्थान निर्माण किया ॥ १३ ॥

इसमे बताया गया है कि पहले भगवान स्वयंभू प्रकट हुए और जगत बनाने की इच्छा से अपने शरीर से जल पैदा किया, उसमे बीज डालने से वह अंडाकार बन गया।

ब्रह्मा या नारायण ने अडे मे प्रकट होकर उसको फोड दिया, जिससे यह सारा संसार प्रकट हुआ।

पयावइणा इस्सरेण य कयंति---

प्रजापति-ब्रह्मा ने स्वयं तपस्या करके मनु के द्वारा संसार का निर्माण किया। जैसा कि मनुस्मृति में कहा है---

—"द्विधा कृत्वात्मनो देह—मर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ।

अर्द्धेन नारी तस्यां स, विराजमसृजत्प्रभुः । ३२ ।

ब्रह्मा ने अपने देह के दो टुकडे किए। एक टुकड़े का पुरुष बनाया और दूसरे आधे टुकड़े की स्त्री बनाई। फिर स्त्री में विराट् पुरुष का निर्माण किया।

मनु अ० १ श्लो० ३२

तपस्तप्त्वाऽसृजद् यं तु, स स्वयं पुरुषो विराट् ।

तं मां वित्ताऽस्य सर्वस्य, स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥

उस विराट पुरुष ने तप करके जिसका निर्माण किया वह मैं हूँ अर्थात् वही मै मनु हूँ हे श्रेष्ठ द्विजो ? निम्नोक्त समग्र सृष्टि का निर्माता मुझे समझो।

मनु अ० १ श्लो० ३३

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु, तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।

पतीन् प्रजानामसृजं महर्षी—नादितो दश। म० अ० १ श्लोक ३४।

मनु कहते है कि दुष्कर तप करके प्रजा सर्जन करने की इच्छा से मैंने प्रारम्भ में दश महर्षि प्रजापतिओ को उत्पन्न किया।

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।

प्रचेतसं वशिष्ठं च, भृगुं नारदमेव च। म० अ० १। ३५।

दश प्रजापतिओ के नाम ये है—(१) मरीचि (२) अत्रि (३) अङ्गिरस् (४) पुलस्त्य (५) पुलह (६) क्रतु (७) प्रचेतस् (८) वशिष्ठ (८) भृगु और (१०) नारद॥

एते मनूंस्तु सप्तान्यान्—असृजद्भूरितेजसः ।

देवान् देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजस । १। ३५।

अर्थ—इन प्रजापतिओ ने बहुत तेजस्वी दूसरे सात मनुओ को, देवो को, देवो के स्थान स्वर्गादिको को तथा अपरिमित तेज वाले महर्षिओ को उत्पन्न किया।

१०. ईश्वर सृष्टि

सूर्या चन्द्रमसौ धाता, यथा पूर्वमकल्पयत्—

दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः। ऋग् १०। १९०। ३॥

अर्थ--यथा पूर्व-पूर्व के समान विधाता ने सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी इन दोनो के मध्यवर्ती भुवन और बाद मे सब से ऊपर स्वर्लोक को बनाया।

न्याय दर्शन मे निम्न प्रकार से कहा है--

—"ईश्वरः कारणं पुरुष कर्मा फल्यदर्शनात्—न्या० सू० ४।१।१६ ॥

अर्थ--मनुष्य का प्रयत्न न जावे इसलिये कर्म फल प्रदाता के रूप मे ईश्वर को कारण मानना आवश्यक है।

—' न पुरुष कर्माभावे फलाऽनिष्पत्तेः। न्या० सू०।४।१।२०॥

अर्थ--वादी कहता है--यह बात अर्थात् कर्म फलदाता के रूप मे ईश्वर की सत्ता की बात नही है। क्योंकि पुरुष कर्तृक कर्म के अभाव मे फल प्राप्ति नही होती है इसलिये फल प्राप्ति मे कर्म कारण है किन्तु ईश्वर नहीं।

ईश्वर वादी का कथन--

—"तत्कारितत्वादहेतुः—न्या० सू० ४।१।२१।

वह कर्म भी तो ईश्वर प्रेरित ही होता है। इसलिये कर्ताधीन कर्म और कर्माधीन फल मानना हेत्वाभास है, सद्धेतु नही।

पुनश्च--

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म।५।
तै० उप० भृगुवल्ली अनु० १।

अर्थ- जिससे ये प्राणी उत्पन्न होते है और जिसी से जीवित रहते है। अन्त मे सदा के लिये जाते हुए, जिसमे सम्यक् प्रवेश करते है, उसी को जानो वही ब्रह्म है।

इस उपरोक्त अल्प उद्धरणो से उपनिषद् श्रुति, स्मृति एव न्याय सूत्रो से सृष्टि के विषय मे विचार प्रस्तुत किये गये। इनसे भिन्न भी वेद और पुराणो की प्रतिपाद्य विविध प्रकार की सृष्टियां है।

जैसे प्रजापति सृष्टि, आत्म सृष्टि, प्रस्वेद सृष्टि, परस्पर सृष्टि और ॐकारसृष्टि, आदि इसका परिचय अणु भाष्य मे है। इन विषयो को विशेषतया जानने के लिये भारत भूषण शतावधानीजी श्री रत्नचन्द्रजी महाराज कृत सृष्टिवाद और ईश्वर पढे।

कर्तृत्व वादिओ की विचारणा भ्रान्त और रुचि के अनुसार कल्पित हैं। युक्ति शून्य हो जाने से ये सारी धारणाये झूठी है।

इनकी असत्यता के लिये देखिए श्रीकृष्ण के उद्‌गार--

प्रकृतिं पुरुषञ्चैव, विद्ध्यनादी उभावपि,
विकारांश्च गुणांश्चैव, विद्धि प्रकृति सम्भवान्।
कार्य कारण कर्तृत्वे, हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते। गी० १३।१९।२०।

अर्थात्--प्रकृति और पुरुष ये दोनो अनादि हैं। विकार १६ और गुण २५ अथवा ३ इसी प्रकृति से उत्पन्न समझो। कार्य एवं कारण के कर्तृत्व मे प्रकृति ही कारण कही जाती है। सुख और दु खों को भोगने के लिये पुरुप हेतु है। इस प्रकार प्रकृति और पुरुष की अनादिता से सारा संसार अनादि सिद्ध होता है।

११. "विष्णुमय जगत"—

ईश्वर को सर्वव्यापक माननेवाले कहते हैं कि--

जले विष्णुः स्थले विष्णु र्विष्णुः पर्वत मस्तके।
ज्वाला मालाकुले विष्णुः, सर्वं विष्णुमयं जगत्॥१
अहंच पृथिवी पार्थ! वाय्वग्नि जलमप्यहम्।
वनस्पतिगतश्चाऽहं, सर्वभूतगतोऽप्यहम्।

अर्थात् जल में स्थल मे पर्वत के मस्तक पर और ज्वालायुक्त अग्नि में विष्णु है। सब जगत् विष्णुमय है। हे अर्जुन! मैं पृथ्वी हूँ और वायु अग्नि जल भी मैं ही हूँ। वनस्पति में और सब भूतों में भी मैं रहा हुआ हूँ। इस प्रकार ईश्वर को सब मे व्याप्त मानना बाधित है। यदि 'व्याप्नोतीति विष्णुः' इस व्युत्पत्ति से आत्मा को विष्णु मान कर कहा जाय तो सत्य हो सकता है, किन्तु दु खमय जगत् को सच्चिदानन्द रूप विष्णुमय मानना अनुभव विरुद्ध है। इसलिये जड़ चेतन-जगत् को एकान्त विष्णुमय कहनेवाले मृपावादी हैं।

"एक आत्मा अकारकः—

अद्वैतवादी कहते हैं कि—"एक एव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जल चन्द्रवत्॥ अर्थात्—प्रत्येक प्राणी मे एक ही आत्मा

रही हुई है, वह जल मे चन्द्रबिम्ब की तरह एक और अनेक रूप से दिखाई देती है वास्तव मे वह एक और अकारक है। आत्मा मे शुभाशुभ कर्म का कर्तृत्व नहीं है। वह मात्र भोक्ता है।

उनकी दृष्टि से आत्मा का स्वरूप निम्न प्रकार है—

अमूर्तश्चेतनो भोगी, नित्यः सर्वगतोऽक्रियः
अकर्ता निर्गुणः सूक्ष्म आत्मा कापिल दर्शने ॥षड्दर्शन

अर्थात् कपिल दर्शन मे आत्मा अमूर्त, चेतन, भोक्ता, नित्य सर्वव्यापी और अक्रिय है। अकर्ता सत्व, रजः, तम गुणो से रहित और अति सूक्ष्म है।

उपरोक्त कथन प्रमाण से बाधित है। संसार मे कोई सुखी तो कोई दुखी देखा जाता है। सब मे एक ही आत्मा हो तो सब की एक ही स्थिति होनी चाहिए, किन्तु ऐसा नही है। उस तरह आत्मा को कर्म का कर्ता न मान कर मात्र भोक्ता ही मानना विरुद्ध है। क्योंकि कर्तृत्व के विना भोक्तृत्व नहीं होता। विना किये भोग मानने पर कृत नाश और अकृताभ्यागम रूप दोषापत्ति हो जायगी जिससे चोरी न करने पर भी साहूकार को दण्ड पाना होगा जोकि अनुभव विरुद्ध है। दूसरी बात भोग भी तो एक क्रिया है। भोगते समय भी भोग क्रिया का कर्ता तो कहा ही जायगा। अत. आत्मा को एकान्त रूप से एक अकारक और भोक्ता कहनेवाले मृषावादी हैं।

सांख्य आचार्य भी इसी विचार सरणि के हैं। जैसे कि—"प्रकृतिः कर्त्री, पुरुषस्तु पुष्कर पलाशवन्निर्लेपः।

सग्रह नय की दृष्टि मे समानता को लक्षित कर के जैनागम में भी 'एगे आया, आत्मा को एक माना है। किन्तु व्यक्तित्व की दृष्टि से उनकी पृथक् सत्ता का निषेध नहीं किया गया है। अतएव वह सत्य है। ऐसे निश्चय नय की दृष्टि से शुद्ध आत्मा कर्मों का कर्ता और भोक्ता भी नहीं है, किन्तु अशुद्ध दशावाली यानी माया युक्त आत्मा कर्म का कर्ता और भोक्ता है। एकान्त कथन मे अपेक्षा नहीं रहती। अत. वह मिथ्या है।

टीकाकार ने इसका प्रतिवाद निम्न प्रकार से किया है—

तथा—अकारकः—'सुखदुःखहेतूनां पुण्य पापकर्मणामकर्ताऽऽत्मेत्यन्ये वदन्ति, अमूर्तत्व नित्यत्वाभ्यां कर्तृत्वाऽनुपपत्तेरिति। कुदर्शनता चास्य

संसार्यात्मनो मूर्तत्वेन परिणामित्वेन च कर्तृत्वोपपत्तेः। अकर्तृत्वे चाऽकृताभ्यागम प्रसंगात्। तथा वेदकश्च—प्रकृतिजनितस्य सुकृत दुष्कृतस्य च प्रतिबिम्बोदय न्यायेन भोक्ता। अमूर्तत्वेहि कदाचिदपि वेदकता न युक्ता आकाशस्येवेति कुदर्शनता चास्य। तथा सुकृत दुष्कृतस्य च कर्मणः करणानीन्द्रियाणि कारणानि हेतवः सर्वथा सर्वप्रकारैः सर्वत्र च देशे काले च न वस्त्वन्तरं कारणमिति भावः करणान्येकादश, तत्र वाक् पाणि पाद पायूपस्थ लक्षणानि पंच कर्मेन्द्रियाणि, स्पर्शनादीनि तु पंच बुद्धीन्द्रियाणि एकादशं च मन इति। एषां चाऽचेतनावस्थायामकारकत्वात्पुरुषस्यैव कारकत्वेन कुदर्शनत्वमस्य।

यदाह—"नैनं छिदन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥१॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एवच ।
नित्यःसर्वगतःस्थाणु–रचलोऽयं सनातनः ॥२॥

असच्चैतत्—'एकान्त नित्यत्वे हि सुख दुःख बन्ध मोक्षाद्यभावप्रसंगात्। तथा निष्क्रियः—सर्व व्यापित्वेनाऽवकाशाऽभावात्—गमनाऽऽगमनादि क्रियावर्जितः। असच्चैतत्—देहमात्रोपलभ्यमान तद् गुणत्वेन तन्नियतत्वात्। तथा निर्गुणश्च—सत्त्वरजस्तमोलक्षण गुणत्रय व्यतिरिक्तत्वात्। प्रकृतेरेव ह्येते गुणा इति। यदाह—'अकर्ता निर्गुणो भोक्ता आत्मा कापिलदर्शने। इति। असिद्धता चास्य सर्वथा निर्गुणत्वे, चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमित्यभ्युपगमात्। तथा अनुपलेपकः कर्मबन्धन रहितः। आहच—'यस्मान्न बध्यते नापि मुच्यते नापि संसरन्। संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः। इति। एतदप्यसत्—मुक्ताऽमुक्तयोरेवम विशेषप्रसंगात्॥ टी०

१२. अट्ठारस कम्मकारणा—

चोर और चोर के १८ प्रसूति स्थान—

चौरः १ चौरापको २ मन्त्री ३ भेदज्ञः ४ काणकक्रयी ॥

अन्नदः ६ स्थानदश्चैव ७ चौरःसप्त विधःस्मृतः ॥ टीका ॥

अर्थात् १ स्वयं चोरी करनेवाला, २ चोरी करानेवाला, ३ चोर को गुप्त सलाह देनेवाला, ४ चोरी के लिये भेद बतानेवाला या चोर के भेद को छिपाने वाला, ५ चोरी का माल खरीदनेवाला, ६ चोर को अन्न देनेवाला, ७ चोर को स्थान देकर रखनेवाला सात प्रकार के ये सब चोर कहे गये है।

१८ चोर के प्रसूति स्थान

भलनं१कुशलं२तर्जा३राजभागो४वलोकनम्५ ।
अमार्गदर्शनं६शय्या७पदभङ्गस्तथैव च ॥ १ ॥
विश्राम८पादपतनम्९आसनं१०गोपनं११तथा ।
खण्डस्य खादनं१२चैव तथाऽन्यन्माहराजिकम् ।
पद्याऽ१५ग्न्यु१६दक१७रज्जूनां१८प्रदानं ज्ञानपूर्वकम् ।
एता प्रसूतयो ज्ञेया अष्टादश मनीषिभि ॥ २ ॥

के लिये डोरी देना। ये अठारह कर्म करनेवाले भी चोर गिने जाते हैं। इसलिये इन कर्मों को चोरी के प्रसूति स्थान कहते है।

१३. अरिहंता—

राग द्वेष आदि विकारों को जीतकर जिन्होने वीतरागता प्राप्त की है, केवल ज्ञान विशिष्ट उन निर्ग्रन्थो को अरिहन्त कहते है। शब्दार्थ के अनुसार सामान्य केवली भी अरिहन्त होते हैं। किन्तु यहा उनसे अभिप्राय नही है। तीर्थङ्कर नाम कर्म को भोगने वाले धर्मोत्तम-पुरुषो से यहां प्रयोजन है। वे सुरेन्द्र व नरेन्द्र के पूजनीय एवं अष्ट महाप्रातिहार्य के धारक होते हैं। उनका जन्म माता-पिताओं का ही नही किंतु त्रिलोकी के सज्ञी मात्र को प्रमोद उत्पन्न करता है। ये जन्म काल से ही तीन ज्ञान कोलेकर आते है। दीक्षा ग्रहण करने पर चौथा मन पर्याय ज्ञान उत्पन्न होता है। फिर भी जब तक कैवल्य प्राप्त नही होता। तब तक उपदेश नहीं देते। तपस्या के द्वारा अज्ञान और मोह को जब सर्वथा क्षय कर लेते तब वीतराग दशा को पाकर ही कल्याण मार्ग का उपदेश देते है। और चतुर्विध तीर्थ की स्थापना करते हैं।

जगत के चराचर पदार्थ मात्र के ज्ञाता और द्रष्टा होने से ये सर्वज्ञ कहाते हैं। इनके ज्ञान पर किसी प्रकार का आवरण नही रहता। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में यहा क्रमश. २४ अरिहन्त होते है।

विदेह क्षेत्र में न्यूनातिन्यून भी २० तीर्थङ्कर सर्वदा विराजमान होते हैं जो विहरमान कहलाते है, किन्तु भारत भूमि मे सदा अरिहन्त नहीं होते। गत काल मे यहा २४ अरिहन्त हो गये है। उनके नाम प्रसिद्ध हैं। विशेष जानने के लिये समवायाङ्ग आदि शास्त्र देखना चाहिए।

१४. चक्कवट्टी—चक्रवर्ती—

चक्ररत्न के द्वारा दिग्विजय करनेवाले सार्वभौम राजा को चक्रवर्ती कहते हैं। ये षट्खण्ड रूप समस्त भारत के स्वामी होते हैं। लौकिक पुरुषो मे इनसे बढ़ कर पुण्यबलवाला दूसरा नही होता। भरत, ऐरवत, और महाविदेह, विजय—इन सब क्षेत्रो मे पृथक् २ चक्रवर्ती होते हैं।

भरत और ऐरवत की अपेक्षा एक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी काल में १२ चक्र-

वर्ती होते हैं। महाविदेह की तरह यहां सर्वदा इनकी सत्ता नही रहती। नव निधान, १४ रत्न और करोडों ग्रामों के ये अधिपति है। चक्रवर्ती की दो ही गति है। राज्य और कामभोगो को त्याग कर ये दीक्षा ग्रहण करले तो मोक्ष या देवलोक मे जाते है। जो दीक्षा ग्रहण नहीं करे तो नरक मे जाते है, किन्तु कुछ कर्म अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल के बाद तो वे भी मुक्ति प्राप्त कर लेते है। अभी गत काल मे यहां १२ चक्रवर्ती हो गये है। उनके नाम इस प्रकार है--

१ भरत, २ सगर, ३ मघवा, ४ सनत्कुमार, ५ शान्तिनाथ, ६ कुंथुनाथ, ७ अरनाथ, ८ सुभूम, ६ महापद्म, १० हरिषेण, ११ जय, १२ ब्रह्मदत्त। (समवायांग)

१५. चौदह रत्न

अपनी जाति के सर्व श्रेष्ट पदार्थ को रत्न कहने की रीति है। पार्थिव रत्न की तरह ये भी चौदह है। इनमे ७ पञ्चेन्द्रिय रत्न है और सात एकेन्द्रिय रत्न है।

जैसे--(१) सेनापति रूपरत्न, (२) गाथापति रत्न, (३) पुरोहित रत्न, (४) अश्व रत्न, (५) वर्द्धकि रत्न, (६) गज रत्न, (७) स्त्री रत्न, (८) चक्र रत्न, (६) छत्र रत्न, (१०) चर्म रत्न, (११) मणि रत्न, (१२) कागणि रत्न, (१३) खड्ग रत्न, (१४) दण्ड रत्न। प्रत्येक रत्न की हजार २ देव सेवा करते हैं। अतुल-पुण्य से ये चक्रवर्ती को प्राप्त होते है।

१६. नवनिहि—नवनिधि

विशाल एवं अक्षय खजाने को निधि कहते हैं। जो संख्या मे नौ प्रकार की है, और (ये निधियां) तपस्या के द्वारा चक्रवर्ती को सिद्ध होती है। देवाधिष्ठित होने के कारण पुण्य हीन को सुलभ नही होती।

गंगा नदी का आरम्भ इनका मूल स्थान है। इनके नाम इस प्रकार है--

नेसप्पे पंडुयए, पिंगलते सव्वरयण महापउमे।
कालेय महाकाले, माणवय महानिही संखे॥

जैसे--(१) नैसर्प निधि, (२) पाण्डु निधि, (३) पिङ्गल निधि, (४) सर्व रत्न, (५) महापद्म, (६) काल, (७) महा काल, (८) माणवक, (६) शंख निधि। विशेष परिचय के लिए स्थानाङ्ग सूत्र के नवमस्थान को देखे।

१७. वलदेवा—

ये त्रिखण्ड के भोक्ता वासुदेव के बडे भाई होते हैं इनके गर्भ मे आने पर माता को चार उत्तम स्वप्न दिखाई देते है। चक्रवर्ती की तरह ये भी प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल मे नौ होते है। वलदेव वासुदेव का भ्रातृ प्रेम आदर्श होता है। ये सब स्वर्ग या मोक्ष के ही अधिकारी होते है। इस अवसर्पिणी काल मे नौ वलदेव हो गये हैं। उनके नाम निम्न प्रकार है--

(१) अचल वलदेव, (२) विजय, (३) भद्र, (४) सुप्रभ, (५) सुदर्शन, (६) आनन्द, (७) नन्दन, (८) पद्म वलदेव (९) बलराम-वलदेव।

१८. वासुदेव—

अपने बलवीर्य से तीन खण्ड का साम्राज्य भोगने वाले धर्म-उत्तम पुरुष को वासुदेव कहते है। इनके जन्मकाल मे माताजी सात स्वप्न देखती हैं। इनकी ऋद्धि चक्रवर्ती से आधी होती है। १६ हजार राजा इनके अधीन होते हैं। वलदेव की तरह ये भी नौ होते है। १६ हजार देव इनकी सेवा करते है। प्रति वासुदेव को मार-कर ये राजा वनते है। पूर्व जन्म मे नियाणा करके ये वासुदेव होते है। इसलिये व्रत ग्रहण नही कर पाते हैं भारतवर्ष मे इस काल ९ वासुदेव हो गये है। उनके नाम निम्न लिखित हैं—

(१) त्रिपृष्ठ (२) द्विपृष्ठ (३) स्वयम्भू (४) पुरुषोत्तम (५) पुरुष सिंह (६) पुरुष पुण्डरीक (७) दत्त (८) लक्ष्मण और (९) श्रीकृष्ण।

१९. लक्खण वंजण—

लक्षण व्यञ्जन और गुणो से उत्तम होने पर ही उत्तम पुरुष कहाते है। वक्षस्थल आदि शरीर के अगो पर स्वस्तिक आदि जो शुभ चिन्ह होते उनको लक्षण कहते हैं। तिल और मष व्यञ्जन कहलाते है धैर्य। औदार्य गाम्भीर्य आदि गुण है। प्रकारान्तर से मान, उन्मान और प्रमाण से युक्त होना लक्षण कहा गया है।

जैसे कि–"माणुम्माणप्पमाणादि लक्खणं वंजणं तु मसमाई।
सहज च लक्खणं, वंजणं तु पच्छा समुप्पण्णं॥

अर्थात्—मान, उन्मान और प्रमाण आदि लक्षण तथा मष, तिल व्यञ्जन

कहाते है। अथवा सहज जन्म से होने वाले को लक्षण और पीछे होने वाले को व्यञ्जन कहते है।

माणुम्माण प्पमाण—

मनुष्य की श्रेष्ठता समझने के लिये तीन बाते बताई गई है। मान, उन्मान और प्रमाण। इन तीनो से जो परिपूर्ण हो वह श्रेष्ठ समझा जाता है। इनका स्वरूप निम्न प्रकार है—जिस पुरुष की परीक्षा करनी हो उसको जलसे भरे हुए कुण्ड मे बिठाया जाय। जब उस कुण्ड मे से एक द्रोण प्रमाण पानी बाहर निकल जाय, तब उस पुरुष को मानोपेत समझना चाहिए। दूसरी बात उन्मान--पुरुषो को तुला मे बैठा कर तोला जाय यदि वह तुलने मे अर्द्धभार प्रमाण हो तो उन्मान युक्त समझना चाहिए। तीसरी परीक्षा प्रमाण से है डोरी से नापने पर जो मनुष्य अपनी अङ्गुल से १०८ अङ्गुल ऊंचा हो तो उसे प्रमाणोपेत कहा गया है।

जैसे कि—"जलदोण १ अद्धभारं २, समुहाइं समूसिओवजो णवउ।
माणुम्माणप्पमाणं, तिविहं खलुलक्खणं एयं॥

इसी मानोन्मान प्रमाण- सम्पन्नता को लक्षण भी कहा गया है।

दसार

१ समुद्र विजय २ अक्षोभ ३ स्तिमित ४ सागर ५ हिमवन्त ६ अचल ७ धरण ८ पूरण ९ अभिचन्द और १० वसुदेव। ये दश दशार कहलाते है*।

२०. बहत्तर कलायें

कल्यते-सख्यायते वैशिष्ट्य मनया सा कला–जिसके द्वारा क्रिया मे विशिष्टता–सुन्दरता–समझी जावे उसको कला कहते है। पुरुष को बहत्तर कलाये कही गयी है। विभिन्न शास्त्रो मे उसके विभिन्न नाम मिलते है। इसके समाधान मे समवायाङ्ग के वृत्तिकार अभयदेव सूरि लिखते है कि—"बहुतराणि च सूत्रे तन्नामान्युपलभयन्ते, तत्र च कासाचित् कासुचिदन्तर्भावोऽवगन्तव्य इति।"

१ लेखन कला २ गणितकला ३ रूप निर्माणकला ४ नाट्यकला ५ गीत–गान कला ६ वाद्यकला ७ स्वर ज्ञान ८ पुष्कर–मृदग आदि सगीत ज्ञान ९ समताल ज्ञान १० द्यूतज्ञान ११ जनवाद १२ पुर काव्य–आशु कवित्वकला १३ अष्टपद ज्ञान

* मथुरा सूतक कथा ५ था परिशिष्ट मे देखे।

१४ दक मृत्तिका १५ पाक ज्ञान १६ पान विधि १७ वस्त्र विधि १८ शयन विधि १९ आर्या २० प्रहेलिका २१ मागधिका २२ गाथा २३ श्लोक निर्माण २४ गन्ध युक्ति २५ मधुसिक्त २६ आभरणविधि २७ तरुणी परिकर्म २८ स्त्री लक्षण २९ पुरुषलक्षण ३० हय (अश्व) लक्षण ३१ गज लक्षण ३२ गोण (गोजातीय) लक्षण ३३ कुर्कुट लक्षण ३४ मेढा लक्षण ३५ चक्र लक्षण ३६ छत्र लक्षण ३७ दण्ड लक्षण ३८ असि लक्षण ३९ मणि लक्षण ४० काकणी लक्षण ४१ चर्म लक्षण ४२ चन्द्र लक्षण ४३ रवि-चर्या ४४ राहुचर्या ४५ ग्रहचर्या ४६ सौभाग्यकर ४७ दुर्भाग्यकर ४८ विद्यागत ४९ मन्त्र गत ५० रहस्यगत ५१ सभा सचार ५२ व्यूह ५३ प्रतिव्यूह ५४ स्कंधावार निवेश ५५ नगरमान ५६ वस्तुमान ५७ वास्तु निवेश ५८ नगर निवेश ५९ इषु शास्त्र ६० च्छरु प्रवाद ६१ अश्व शिक्षा ६२ हस्ती शिक्षा ६३ धनुर्वेद ६४ हिरण्यपाक ६५ सुवर्णपाक ६६ मणिपाक ६७ धातुपाक ६८ युद्ध (बाहुयुद्ध, लतायुद्ध, मुष्टियुद्ध, मल्ल युद्ध, महायुद्ध) ६९ सूत्र खेल, वट्ट खेल, नालीका खेल, चर्म खेल ७० पत्र छेदन, कट छेदन, ७१ संजीवन, निर्जीवकरण ७२ शकुनरुत ।

(पंचम अ.सूत्र, समवायाग ७२ पृ. ७८)

समिति के समवायाग मे टीकाकार लिखते हैं कि कला विभाग लौकिक शास्त्रों से जानना चाहिये। यद्यपि निर्दिष्ट कलाओं से जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के दूसरे वक्षस्कार में ७२ कलाओं का उल्लेख कुछ भिन्न प्रकार से मिलता है, तथापि अर्थ की दृष्टि से दोनों का एक दूसरे मे अन्तर्भाव हो जाता है।

२१. महिला-गुण

१ नृत्य कला २ औचित्य कला ३ चित्रकला ४ वादित्र ५ मन्त्र ६ तन्त्र ७ ज्ञान ८ विज्ञान ९ दण्ड १० जलस्तम्भन ११ गीतगान १२ तालमान १३ मेघवृष्टि १४ फलाकृष्टि १५ आराम रोपण-बगीचा लगाना १६ आकार गोपन १७ धर्म विचार १८ शकुन विचार १९ क्रिया कल्पन २० संस्कृत भाषण २१ प्रसाद नीति २२ धर्म नीति २३ वाणी वृद्धि २४ सुवर्ण सिद्धि २५ सुरभि तैल २६ लीला सञ्चारण २७ गज तुरग परीक्षण २८ स्त्री पुरुष लक्षण २९ सुवर्ण-रत्न भेद ३० अष्टादश लिपि ज्ञान ३१ तत्काल बुद्धि ३२ वस्तु सिद्धि ३३ वैद्यक क्रिया ३४ कामक्रिया ३५ घटभ्रम ३६ सार परिश्रम ३७ अंजन योग ३८ चूर्णयोग ३९ हस्तलाघव ४० वचन पाटव ४१ भोज्य विधि ४२ वाणिज्य विधि ४३ मुख मण्डन ४४ शालि खण्डन ४५ कथा कथन ४६ पुष्प

प्रथन ४७ वक्रोक्ति जल्पन ४८ काव्य शक्ति ४९ स्फार वेश ५० सकल भाषा विशेष ५१ अविधान ज्ञान ५२ आभरण परधान ५३ नृत्योपचार ५४ गृहाचार ५५ शाठ्य करण ५६ परनिराकरण ५७ धान्यरन्धन ५८ केश बन्धन ५९ वीणादिनाद ६० वितण्डावाद ६१ अङ्कविचार ६२ लोकव्यवहार ६३ अन्ताक्षरिका ६४ प्रश्नप्रहेलिका।

(कल्पसूत्र ६ चतुर्थसूत्रगत २१०)

२२. नवकोटि

अहिंसा व्रत की शुद्धि के लिये साधु साध्वी नवकोटि विशुद्ध भिक्षा ग्रहण करते है। जैसे–१ हिंसा करना नही, २ कराना नही, ३ करते हुए का अनुमोदन करना नही, ४ स्वयं भोजन पकाना नही, ५ पकवाना नही, ६ पकानेवाले का अनुमोदन भी करना नही, ७ खरीदना नही, ८ खरीदवाना नही, ९ और खरीदनेवाले का अनुमोदन करना नही।

उपरोक्त नवकोटियां मन, वचन और काय रूप तीनों योग से समझनी चाहिए।

२३. एषणा के दश दोष—

आहार आदि ग्रहण करने को ग्रहणैषणा अथवा एषणा कहते हैं इसके दश दोष है। जैसे कि--'संकियमक्खिय-निक्खित्त,-पिहिय साहरिय-दायगुम्मीसे। अप-रिणय लित्त-छड्डिय, एसण दोसा दस हवंति ॥१॥

(१) संकिय-आधा कर्म आदि दोषो की शङ्कावाले आहार आदि को लेना शङ्कित दोष है। (२) मक्खिय-सचित्त वस्तु से स्पर्शयुक्त भरे हुए हाथ या चम्मच आदि से दिये गये आहार आदि को लेना म्रक्षित दोष है-म्रक्षित के दो भेद है, सचित्त म्रक्षित और अचित्त म्रक्षित। पृथ्वी, जल और वनस्पति की अपेक्षा सचित्त म्रक्षित के तीन प्रकार है। सचित्त मट्टी से हाथ आदि भर जाना पृथ्वीकाय म्रक्षित है। अप काय मे पुरःकर्म है--दान के पहले साधु के निमित्त हाथ आदि सचित्त पानी से धोना पुरःकर्म है। दान देकर यदि धोया जाय तो पश्चात्कर्म है। देते समय हाथ आदि थोडे से गीले हो तो स्निग्ध दोष है। जल का सम्बन्ध हाथ आदि पर स्पष्ट दिखे तो वह उदकार्द्र दोष है। हाथ आदि मे यदि कुछ समय पहले काटे हुए फल या पत्ती आदि का अंश लगा हो तो वनस्पतिकाय म्रक्षित है। अचित्त म्रक्षित दो तरह का है। गर्हित और अगर्हित। हाथ आदि में कोई घृणित वस्तु लगी हो तो

वह गर्हित है। घृत, दुग्ध आदि लगा हो तो वह अगर्हित है। सचित्त म्रक्षित साधु के लिये सर्वथा अकल्पनीय है। अचित्त म्रक्षित मे केवल घृणित वस्तुवाला गर्हित अकल्पनीय है, किन्तु घृतादि से स्पृष्ट अगर्हित नही।

(३) निक्खित्त--सचित्त पर रक्खी हुई वस्तु लेना निक्षिप्त दोष है, सचित्त के पृथ्वी आदि छ प्रकार है।

(४) पिहिय--देने योग्य वस्तु सचित्त के द्वारा ढकी हो तो उसे लेना पिहित दोष है।

(५) साहरिय--असूझती-सघट्टेवाली-वस्तु निकालकर उस बरतन से दिया हुआ आहार लेना साहरिय दोष है।

(६) दायक--बालक आदि अयोग्य दाता से आहार आदि लेना दायक दोष है। घर के मालिक स्वयं बालक से दिलावे तो दोष नही।

(७) उम्मीसे--सचित्त या मिश्र के साथ मिला हुआ आहार लेना उन्मिश्र दोष है।

(८) अपरिणत--जिसमे पूरा शस्त्र परिणत नही हुआ हो ऐसी वस्तु लेना अपरिणत दोष है।

(९) लित्त--तत्काल की लिपि हुई भूमि से लेना लिप्त दोष है। प्रवचन सारोद्धार में दूध-दही आदि लेपवाली वस्तु लेने मे लिप्त दोष माना है। किन्तु यह ठीक नही लगता। प्राचीन उदाहरण और परम्परा से वह बाधित ठहरता है, अत. प्रथम अर्थ ही ठीक है।

(१०) छड्डिय--जो अश रूप से नीचे गिर रहा हो, ऐसा आहार लेना छर्दित दोष है। इसमें जीव हिंसा का भय है।

ये दस दोष साधु और गृहस्थ दोनो के निमित्त से लगते है।

दायक दोष ४० प्रकार के कहे गये हैं जिसमें बाल, वृद्ध, उन्मत्त, अन्ध गुर्विणी बालवत्सा आदि प्रमुख हैं।

२४. उग्गमुप्पायणेसणासुद्धं

उद्गम, उत्पादन और एषणा दोषो से रहित शुद्ध भिक्षा ही मुनि को ग्रहण ग्रहण करनी चाहिए। यहा तीन प्रकार के दोष कहे गये हैं जो उद्गम, उत्पादना एषणा के नाम से समझे जाते हैं। इनको गवेषणा और ग्रहणैषणा के दोष भी

कहते है। उत्पत्ति स्थान मे गृहस्थो के द्वारा लगने वाले दोष उद्गम कहाते है। जो १६ प्रकार के हैं, जैसे कि--

आहाकम्मुद्देसिय पूईकम्मे य मीसजाए य।
उनखा पाहुडियाए, पाओयर कीय पामिच्चे॥ १॥
परियट्टिए अभिहडे, अब्भिन्न मालोहडे इय।
अच्छिज्जे अणिसिट्ठे, अज्झोयरए,य सोलसमे॥ २॥

(१) आधाकर्म--किसी एक खास साधु के निमित्त से पट्काय का आरम्भ करके सचित्त या अचित्त वस्तु को सिझाना आधाकर्म कहलाता है। यह दोष चार प्रकार मे लगता है। प्रति सेवन --आधा कर्मी आहार का सेवन करना। प्रति-श्रवण--आधाकर्मी आहार के लिये निमन्त्रण स्वीकार करना। संवसन-आधाकर्मी भोगने वालो के साथ वसना। अनुमोदन-आधाकर्मी भोगने वालो की प्रशंसा करना, यह आधाकर्म दोष है।

(२) औद्देशिक--समस्त याचको के लिये तैयार किये गये आहार को औद्देशिक कहते है। इसके दो भेद है। ओघ और विभाग। इनमे अपने लिये होती हुई रसोई मे भिक्षुओ के लिये भी और अधिक मिलाना ओघ है। विवाह आदि उत्सव मे याचको के लिये अलग निकाल कर रखना विभाग है। (यह उद्दिष्ट, कृत और कर्म के भेद से तीन प्रकार का है। फिर प्रत्येक के उद्देश, समुद्देश, आदेश और समादेश इस तरह चार २ भेद है।) किसी साधुके लिये बनाया गया। आहार अगर वही साधु ले तो आधा कर्म। दूसरा ले तो औद्देशिक है। आधा कर्म पहले मे ही किसी खास निमित्त से बनाया जाता है किन्तु औद्देशिक पहले या बाद मे साधारण दान के लिये कल्पित किया जाता है।

(३) पूतिकर्म--शुद्ध आहार मे आधाकर्मादि अशुद्ध-आहार का अंश मिलना पूतिकर्म है। पूतिकर्म दोष से दूषित आहार ही नही किन्तु वह पात्र भी संयमी के लिये अकल्पनीय है।

(४) मिश्र जात--अपने और साधु उभय के लिये पकाया हुआ आहार मिश्र जात है। यावदर्थिक, पाखडि मिश्र और साधु मिश्र ये मिश्रजात के तीन भेद है। अपने और सभी याचकों के लिए बना हुआ आहार यावदर्थिक है। स्व के निमित्त

और साधु सन्यासिओ के निमित्त बना हुआ पाखंडि मिश्र है तथा केवल अपने लिये और साधु के लिये बनाया हुआ आहार साधु मिश्र है।

(५) स्थापन--साधु को देने के लिये आहार को अलग रख देना स्थापना दोष है।

(६) प्राभृतिका--साधु को सरस आहार वहराने के लिये जीमनवार के समय को आगे पीछे करना प्राभृति का दोप है।

(७) प्रादुष्करण--अन्धेरे मे रक्खी हुई आहार की वस्तु लाने के लिये उजाला करना। अथवा अन्धेरे मे से प्रकाश मे लाना प्रादुष्करण दोप है।

(८) क्रीत--साधुओ के लिये आहार खरीद कर लाना क्रीत दोप है।

(९) प्रामित्य (पामिच्चे)--साधु के लिये उधार लिया हुआ आहार लेना प्रामित्य दोष है।

(१०) परिवर्तित--साधु के लिये अदल बदल करके लिये हुए आहार मे परिवर्तित दोष होता है।

(११) अभिहृत--साधु लिये गृहस्थ द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान में लाए हुए आहार मे अभिहृत दोप है।

(१२) उद्भिन्न--साधु को घी आदि देने के लिये कुप्पी आदि का मुख खोल देना उद्भिन्न दोष है।

(१३) मालापहृत--सुविधा से हाथ नही जा सके ऐसे ऊँचे नीचे स्थान से निसरणी आदि साधनों के द्वारा उतारकर देना मालापहृत दोप है। इसमे ऊपर-नीचे, वाम, दक्षिण इन चार स्थानों के होने से मालापहृत चार प्रकार का है। इन चारों में प्रत्येक के जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम रूप तीन २ भेद हैं। एडी उठाकर छींके आदि से उतारके देना जघन्य और नि.सरणी पर से लाकर देना उत्कृष्ट है। शेप मध्यम मालापहृत समझें।

(१४) आच्छेद्य- दुर्बलों से या आश्रितों से बल प्रयोग पूर्वक लेकर साधुजी को देना आच्छेद्य-दोप है। इसके तीन भेद हैं। स्वामिविपयक, प्रभुविपयक, और स्तेनविपयक। समस्त ग्राम का मालिक-स्वामी तथा अपने घर का मालिक प्रभु कहा जाता है। चोर और लुटेरो को स्तेन कहते है। इनमे कोई किसी से कुछ छीन कर साधुजी को दे तो क्रमश तीन दोप लगते हैं।

(१५) अनिसृष्ट--किसी वस्तु के एक से अधिक मालिक होने पर सब की इच्छा बिना देना अनिसृष्ट दोष है।

(१६) अध्यवपूरक--साधुओ का आगमन सुन कर अपने लिये होती रसोई मे अधिक सामग्री मिला देना अध्यवपूरक दोष है।

उपरोक्त उद्गम के १६ दोषों का निमित्त दाता होता है।

२५. गवेषणा उत्पादना के १६ दोष—

धाई दूई निमित्ते, आजीव वणीमगे तिगिच्छाय।
कोहे माणे माया, लोभे य हवंति दस एए॥ १॥
पूर्व्विं पच्छा संथव, विज्जा मंते य चुण्ण जोगेय।
उप्पायणाइ दोसा, सोलसमे मूलकम्मे य॥ २॥

(१) धात्री--धाई माता के जैसे कार्यों को स्वयं करके अथवा धाई माता को नौकरी दिला कर आहार लाभ करना धात्री दोष है।

(२) दूती--दूती कर्म--गुप्त या प्रकट सन्देश पहुंचाकर आहार पाना दूती दोष है।

(३) निमित्त--शास्त्र से या कल्पना से शुभ अशुभ निमित्त बता कर आहार लाभ करना निमित्त दोष है।

(४) आजीव--प्रकट या अप्रकट रीति से अपनी जाति एवं कुल का परिचय देकर आहार लाभ करना आजीव दोष है।

(५) वनीपक—जैन, बौद्ध, वैष्णव आदि मे जहां जिसका आदर हो, वहां वैसा बन कर अथवा अपनी दीनता दिखाकर आहार लाभ करना वनीपक दोष है।

(६) चिकित्सा--वैद्यवृत्ति से आहार पाना चिकित्सा दोष है।

(७) क्रोध--क्रोध कर के अथवा गृहस्थ को शाप आदि का भय दिखाकर आहार लाभ करना क्रोध दोष है।

(८) मान--अभिमान से अपने को प्रतापी, तेजस्वी, बहुश्रुत बताते हुए प्रभाव जमाकर आहार लाभ करना मान दोष है।

(९) माया--वञ्चना या छल आदि से आहार लाभ करना माया है।

(१०) लोभ--आहार मे लोभ करना, आहार के लिये जाते समय लालच से

निश्चय कर के जाना कि आज तो अमुक वस्तु ही खायेंगे उस वस्तु के न मिलने पर उसके लिये भटकना यह लोभ दोष है।

(११) प्राक पश्चात् संस्तव--आहार देने के पहले या पीछे देनेवाले के गुण को गाना अर्थात् प्रशंसा करना यह प्राक्पश्चात्सस्तव दोष है।

(१२) विद्या--देवी जिसकी अधिष्ठात्री हो और जप या हवन से जो सिद्ध हो, वह विद्या कही जाती है, उस विद्या के प्रयोग से आहार लाभ करना विद्यापिण्ड-दोष है।

(१३) मन्त्र--पुरुप प्रधान अक्षर रचना, जिसके जप मात्र से सिद्धि सुलभ हो, उसे मन्त्र कहते है। मन्त्र के प्रयोग से आहार लेना मन्त्रपिण्ड रूप दोष है।

(१४) चूर्ण--अदृश्य करनेवाले सुरमे आदि के प्रयोग से जो आहार लाभ किया जाय, उसे चूर्णपिण्ड दोप कहते हैं।

(१५) योग--पैर मे लेप आदि सिद्धियां दिखाकर जो आहार लाभ किया जाय, उसे योग पिण्डदोष कहते है।

(१६) मूल कर्म- गर्भस्तम्भ, गर्भाधान, गर्भपात आदि भव भ्रमण के हेतु भूत सावद्य कर्म मूल कर्म कहे जाते। इसके द्वारा आहार लाभ करना मूल कर्म दोष है।

उत्पादना के १६ दोप साधु को लगते हैं इनका निमित्त साधु ही होता है।

२६. दश विध सत्य-

—"जणवय १ समय २ ठ्वणा ३ नामे ४ रूवे ५ पडुच्च सच्चेय ६। ववहार भाव ७, ८, जोगी ९ य दसमे ओवम्मसच्चे १०॥ १॥

—जनपद समय स्थापना नामरूपं प्रतीतसत्यञ्च

व्यवहार भाव योगाश्च दशम मौपम्य सत्यञ्च ॥ १ ॥

जो वस्तु जिस रूप में हो उसी रूप से उसे कहना यह सत्य का स्वरूप है। वक्ता की इच्छा के भेद से यह सत्य दश प्रकार का होता है।

जैसे कि (१) जन पद सत्य किसी देश मे जल को पिच्छ, माता को आई और पिता को भाई कहते है यह उस देश के लिये सत्य है। इसे जनपद सत्य कहते हैं। (२) समय सत्य या सम्मत सत्य- जैसे पङ्कज -कीचड से पैदा होनेवाली वस्तु, जैसे कि मेंढक, शीप, शैवाल आदि है किन्तु पङ्कज से केवल कमल लिया जाता है, यह

सम्मत सत्य है। (३) स्थापना सत्य---रूप से मिले या न मिले किन्तु किसी भी पदार्थ मे किसी जीव अजीव का संकेत करना जैसे शतरञ्ज की मोहरो मे हाथी घोड़ा आदि कहना यह स्थापना से सत्य है। (४) नाम सत्य---जैसे किसी निर्धन को लक्ष्मीधर कहना कमजोर को भी महावीर कहना नाम सत्य है। (५) रूप सत्य---गुण न होने पर भी वेषमात्र से असाधु को साधु कहना यह रूप सत्य है। (६) प्रतीत-सत्य-अर्थात् अपेक्षा से सत्य जैसे हाथ की अंगुलि को एक की अपेक्षा बड़ी दूसरी की अपेक्षा छोटी कहना यह प्रतीत सत्य है। (७) व्यवहार सत्य---जैसे चल कर पहुँची है गाडी, किन्तु लोक कहते है कि गांव आ गया यह व्यवहार सत्य है। (८) भाव सत्य---गुणो की विविधता मे भी एक को प्रधान मान कर कहना जैसे शुक मे लाल वर्ण होने पर भी उसे हरा कहना भाव सत्य है। (९) योग सत्य---व्यक्ति कोई और है, किन्तु दण्ड छत्र पगडी आदि मे किसी के संयोग होने से उसे दण्डी, छत्री आदि नाम से पुकारना योग सत्य है। (१०) उपमा सत्य--जैसे तुलनात्मक दृष्टि से किसी का कोई अवयव जिससे मिलता हो उसे उसी नाम से पुकारना जैसे नाक ऊंची हो तो गरुड, गरदन लम्बा हो तो ऊट, आख बड़ी २ हो तो कमलनयन आदि कहना यह उपमा सत्य है।

२७. द्वादश भाषा—

बोलकर या लिखकर जिसके द्वारा अपने भाव समझाये जांय, उसको बोली या भाषा कहते है। इनमे कोई २ विद्वान् भेद कहते हैं जैसे कि साहित्यादि से अपुष्ट बोली है और साहित्य से परिपूर्ण भाषा है। जो कुछ हो, किन्तु यहां भारत की प्रसिद्ध भाषाओ से मतलब है। यों शास्त्रो मे १ सत्य भाषा, २ मृषाभाषा, ३ मिश्र और ४ व्यवहार भाषा, ऐसे चार प्रकार करके इनमे तीन को दश दश प्रकार की बताई है और व्यवहार भाषा को १२ प्रकार की कही है। लेकिन यहां प्राचीन समय की आर्य भाषा की गणना है, जो संस्कृत, प्राकृत, सौरसेनी, मागधी, पैशाची और अपभ्रंश, ये छ भाषाये गद्य तथा पद्य भेद से बारह प्रकार की गिनी गई है। १८ देशो की भाषा इनसे भिन्न प्रकार की हैं।

२८. सोलह वचन

उच्यतेऽनेन इति वचनम्---वाणी के प्रयोग को वचन कहते है। जैसे (१) एक

वचन--जैसे—जिणे, जिनः, द्रव्यम् आदि। इसके द्वारा एक ही पदार्थ का कथन होता है। (२ द्विवचन—यह द्विवचन दो संख्याओ मे वस्तु का कथन करता है। जैसे--पुरुषौ।

(३) बहुवचन--बहुत के लिये कहा गया वचन बहुवचन है जैसे-नमो जिणाणं, सिद्धा:, इत्यादि।

(४) स्त्री वचन--यह स्त्रीलिंगवाची पद को कहता है। जैसे नदी, वाणी आदि।

(५) पुरुष वचन- पुल्लिङ्ग को कहनेवाला पद पुरुष वचनहै जैसे—अयं जिनोऽयं थंशोक:।

(६) नपुसक वचन--गगन मण्डलम् आदि नपुसकलिगवाली वस्तु जिस वचन से कहा जाय।

(७) अध्यात्मवचन--बिना इच्छा के सहसा मन की बात निकल जाना अध्यात्म वचन है।

(८ उपनीत वचन--प्रशसा वचन जैसे यह साधु क्रिया पात्र है।

(९) अपनीत वचन--जिसके द्वारा वस्तु के दोष प्रकट किये जांय जैसे--यह शिष्य अवनी। है।

(१०) उपनीतापनीत वचन--प्रशसा के साथ निन्दा करना जैसे--मुनिराज व्याख्यानी अच्छे हैं किन्तु क्रिया मे शिथिल हैं।

(११) अपनीतोपनीत वचन--बुराई बता कर भलाई कहना। जैसे यह मुनि विद्वान् तो नहीं किन्तु क्रियापात्र हैं।

(१२) अतीत वचन--जिसके द्वारा भूतकाल की बात कही जाय। जैसे भगवान महावीर दीपावली को मोक्ष पधारे थे।

(१३) प्रत्युत्पन्न वचन—इसके द्वारा वर्तमान काल की बात कही जाती है जैसे- वन्दामि-वन्दन करता हूँ।

(१४) अनागत वचन--यह भविष्य काल की बात कहता है। जैसे कृष्ण १२वें तीर्थङ्कर होंगे।

(१५) प्रत्यक्ष वचन--जिसके द्वारा समक्ष की बात कही जाय। जैसे एष लोगो, अयं पुरुषः।

(१६) परोक्ष वचन—परोक्ष की बात कहना परोक्ष वचन है जैसे वह विदेह मे जन्म लेगा।

उपरोक्त सोलह वचनों से वस्तु का यथार्थ कथन किया जाता है। उपयोग पूर्वक इन वचनों का प्रयोग करने वाले मुनि उपदेश देने मे अधिकारी माने गये है।

देखिए आचाराङ्ग सूत्र।

२६. उपधि उवगरणं—

उप-सामीप्येन संयम दधाति-पोषयति वेत्युपधि:—अर्थात् संयम की साधना में सहायक होनेवाले पदार्थों को उपधि या उपकरण कहते है। कर्म-शरीर और वाह्य भाण्डोपकरण तथा सचित्त अचित्त और मिश्र रूप तीन प्रकार की उपधि मे से यहां वाह्य भाण्ड उपकरण रूप अचित्त उपधि से ही प्रयोजन है। अचित्त उपकरण भी औधिक और औपग्रहिक दो प्रकार के होते है। सामान्य रूप से सब के उपयोगी उपकरणो को औधिक और समय विशेष व व्यक्ति विशेष के लिये काम आनेवाले को औपग्रहिक कहते हैं। यहां स्थविर कल्पी की दृष्टि से औधिक उपकरण गिनाये हे। जैसे –१ पात्र, २ पात्र बन्धन झोली, ३ पात्र केसरिका–कम्बल का टुकड़ा, ४ पात्र स्थापन-पात्र रखने का कपडा, ५-६-७ तीन पटल–पात्र ढकने के वस्त्र, ८ रजस्त्राण–पात्र मे लपेटने का वस्त्र जिसको आज रस्तान कहते है, ९ गोच्छक-पूजनी, १०-११-१२ प्रच्छादक–ओढने के तीन वस्त्र जिनमे दो सूती और एक ऊनी, १३ रजोहरण, १४ चोलपट्टग धोती के स्थान पर बावने का वस्त्र, १५ मुखानन्तक–मुखवस्त्रिका आदि।

जिन कल्पी के लिये औधिक-उपकरणो का ही विधान मिलता है अधिक से अधिक उनके लिये १२ उपकरण बताये गये है। जैसे कि—१ पत्त २ पत्ता बंधो ३ पायट्ठवणंच ४ केसरिया। ५ पडलाइ ६ रयत्ताण ७ गोच्छओ ८-९-१० पायनिज्जोगे तिन्नेवय पच्छागा ११ रयहरण चेवहोइ १२ मुहपोत्ति। एसो दुवालसविहो, उवही जिणकप्पियाणतु ॥२॥

कम से कम भी रजोहरण मुहपत्ती तो विशेष प्रकार के जिन कल्पी को भी रखना ही चाहिए। कहा भी है—

> जिण कप्पिया उदुविधा, पाणीपाता पडिग्गहधराय।
> पाउरण मपाउरणा, एक्केक्का ते भवे दुविहा ॥

दुगतिग चतुछक्कं, पणगं णव दस एगदसगं।
एते अट्ठ विगप्पा, जिण कप्पे होंति उवहिस्स ॥

जिन कल्पी मुनि दो प्रकार के हैं, करपात्री और पात्रधारी। सवस्त्र एवं अवस्त्र ऐसे प्रत्येक के दो दो प्रकार होते है। जो करपात्री है उनके रजोहरण मुखवस्त्रिका रूप जघन्य दो उपधि हैं। पात्र नहीं रख कर भी जो वस्त्रधारी हैं उनके ३, ४ या ५ उपधि होती हैं। पात्रधारी जिन कल्पी के वस्त्र रहित ६ प्रकार की उपधि होती हैं। वस्त्रधारी जिन कल्पी के उत्कृष्ट १२ प्रकार की उपधि होती हैं।

स्थविरकल्पी साधुओ के लिये उपरोक्त १२ के अतिरिक्त एक प्रतिग्रह और चोलपट्ट ऐसे चौदह उपकरण बताए हैं। आर्यिकाओं के लिये ११ उपकरण विशेष है जैसे—अवग्रहानन्तक १ पट्ट २ अर्द्धोरुक ३ वलनिका ४ अभ्यन्तर निवसनी ५ बहिर्निवसनी ६ कम्बुक ७ औपकक्षिकी ८ एक कक्षिकी ९ संघाटी और स्कंधकरणी १०-११ सब मिल कर पच्चीस कहे गये हैं।

औपग्रहिक ग्रहिक उपकरण यष्टि आदि जो वृद्धावस्था आदि कारण से लिये जाते हैं, ये अनेक प्रकार के हैं। नखशोधनी, दन्तशोधनी आदि। जैसे कि कहा है--

डंडए लट्ठिया चेव, चम्मए चम्मकोसए।
चम्मच्छेयणपट्टे चिलिमिली धारएगुरु ॥

अर्थात् दण्ड, लाठी, चर्म, चर्मकोश, चर्मच्छेदन, चिलभिली गुरु धारण करते हैं।

फिर—'थेराण थेरभूमि पत्ताण कप्पति दंडएवा १ भंडएवा २ छत्तगवा ३ मत्तगंवा ४ लट्ठियाएवा ५ भिसिवा ६ चेलंवा ७ चलचिलि मिलियावा ८ चम्मएवा ९ चम्म कोसवा १० चम्मपलिच्छेयणाएवा ११ अविरहिए उवासि उवेत्ता गाहावतिकुल भत्ताएवा पाणाएवा प विसित्तएवा निक्खिमित्तएवा।

वर्तमान मे जो पुस्तक पट्टी लेखनी आदि रक्खे जाते हैं वे भी ज्ञानदर्शन की रक्षा मे साधन होने से औपग्रहिक उपकरण है।

३०. वेयावच्च—

सेवा भाव को वैयावृत्य कहते हैं। अर्थात धर्म साधना के लिये विधि पूर्वक अन्नपान व वस्त्रादि प्रदान करना यह वैयावच्च का भाव है। जैसे कि—

'वेयावच्चं वावडभावो इह्धम्म साहणनिमित्तं ।
अन्नाइमाण विहिणा सम्पायण मेस भावाओ ।'

सेवनीय की अपेक्षा सेवा-वैयावच्च के भी दस प्रकार है। जैसे कि-आयरिय १, उवज्झाए २, थेर ३, तवस्सी ४, गिलाण ५, सेहाण ६, साहम्मिय ७, कुल ८, गण ६, संघ १० संगवं तमिह कायव्वं।

अर्थात्—१ आचार्य, २ उपाध्याय, ३ स्थविर, ४ तपस्वी, ५ ग्लान-रोगी, ६ शिष्य, ७ स्वधर्मी, ८ कुल, ६ गण-अनेक कुल, १० संघ-गण समूह। इनकी योग्य सेवा करनी चाहिये।

शास्त्र मे सामान्य और विशेषरूप से अत्यन्त बाल आदि वैयावृत्य के क्षेत्र बताये है। आगे लिखा है कि बिना किसी मतलब के निर्जरार्थी मुनि दस प्रकार की वैयावच्च को बहुत तरह से करे। यहां 'गण संघ चेइयट्ठे य निज्जरट्ठी' पद दिया गया है। टीकाकार अर्थ करते हुए लिखते है कि 'गण-कुल समुदाय: कोटिकादिक: संघ स्तत्समुदाय रूप चैत्यानि-जिन प्रतिमा' एतासां योऽर्थः प्रयोजनं स तथा। तत्र च निर्जरार्थ कर्मक्षयकामः'। अर्थात् गण, संघ और जिन प्रतिमा के प्रयोजन पर निर्जरार्थी सेवा करे। ऐसा अर्थ किया है। लेकिन 'चेइयट्ठे य निज्जरट्ठी' इसमें चेइयट्ठे य और निज्जरट्ठी ऐसे तीन पद है, परन्तु उपरोक्त अर्थ से केवल दो पदो का ही बोध होता है, तीसरे का नही। अन्न पानादि से उपष्टंभ करने रूप वैयावच्च का अर्थ भी प्रतिमा के साथ घटित नही होता। इसलिये इसके वास्तविक अर्थ की गवेषणा करनी आवश्यक है। चित् सज्ञाने धातु से ण्यन्त मे चेतितं रूप बनता है और जिसका प्राकृतिक रूप 'चेइयं' होता है। जिसका अर्थ है ज्ञान। हरिभद्रसूरि ने चित्त से भी 'चित्तस्य भाव' कर्म वा' इस अर्थ मे ष्यन् करके चैत्य बनाया है। जैसे कि वे लिखते है—'चित्तम्-अन्तःकरणं तस्य भावे कर्मणि वाष्य-ञिकृते चैत्यं भवति, तत्राईता प्रतिमा-प्रशस्त समाधि चित्तोत्पादनादर्हच्चैत्यानि भण्यन्ते'। (आव० हरीभद्री वृ० पृ० प० ७८७)

अन्य टीकाकारो ने भी 'चित्ताल्हादकत्वाच्चैत्यम्' माना है। इस प्रकार प्रमोदभाव या चित्त मे हर्ष उत्पन्न करनेवाले साधु, ज्ञान और प्रतिमा आदि मे चैत्य शब्द का अर्थ घटित हो सकता है। यहा पर भी बहुतसे आचार्य 'चेइयट्ठे' आदि पदो का अर्थ ज्ञान के लिये निर्जरार्थी ऐसा करते है, किन्तु प्रीति भी चित्त का भाव

दुगतिग चतुछक्कं, पणगं णव दस एगदसगं।
एते अट्ठ विगप्पा, जिण कप्पे होंति उवहिस्स ॥

जिन कल्पी मुनि दो प्रकार के है, करपात्री और पात्रधारी। सवस्त्र एवं अवस्त्र ऐसे प्रत्येक के दो दो प्रकार होते हैं। जो करपात्री हैं उनके रजोहरण मुखवस्त्रिका रूप जघन्य दो उपधि हैं। पात्र नहीं रख कर भी जो वस्त्रधारी हैं उनके ३, ४ या ५ उपधि होती हैं। पात्रधारी जिन कल्पी के वस्त्र रहित ६ प्रकार की उपधि होती हैं। वस्त्रधारी जिन कल्पी के उत्कृष्ट १२ प्रकार की उपधि होती हैं।

स्थविरकल्पी साधुओ के लिये उपरोक्त १२ के अतिरिक्त एक प्रतिग्रह और चोल-पट्ट ऐसे चौदह उपकरण बताए हैं। आर्यिकाओं के लिये ११ उपकरण विशेष है जैसे—अवग्रहानन्तक १ पट्ट २ अर्द्धोरुक ३ चलनिका ४ अभ्यन्तर निवसनी ५ बहिर्निवसनी ६ कम्बुक ७ औपकक्षिकी ८ एक कक्षिकी ९ संघाटी और स्कंधकरणी १०-११ सब मिल कर पच्चीस कहे गये हैं।

औपग्रहिक ग्रहिक उपकरण यष्टि आदि जो वृद्धावस्था आदि कारण से लिये जाते हैं, ये अनेक प्रकार के हैं। नखशोधनी, दन्तशोधनी आदि। जैसे कि कहा है--

डंडए लट्ठिया चेव, चम्मए चम्मकोसए।
चम्मच्छेयणपट्टे चिलिमिली धारएगुरु ॥

अर्थात् दण्ड, लाठी, चर्म, चर्मकोश, चर्मच्छेदन, चिलमिली गुरु धारण करते हैं।

फिर—'थेराणं थेरभूमि पत्ताण कप्पति दंडएवा १ भडएवा २ छत्तगवा ३ मत्त-गंवा ४ लट्ठियाएवा ५ भिसिवा ६ चेलंवा ७ चलचिलि मिलियावा ८ चम्मएवा ९ चम्म कोसवा १० चम्मपलिच्छेयणाएवा ११ अविरहिए उवासि उवेत्ता गाहावति-कुल भत्ताएवा पाणाएवा प विसित्तएवा निक्खिमित्तएवा।

वर्तमान में जो पुस्तक पट्टी लेखनी आदि रक्खे जाते है वे भी ज्ञानदर्शन की रक्षा में साधन होने से औपग्रहिक उपकरण है।

३०. वेयावच्च—

सेवा भाव को वैयावृत्य कहते हैं। अर्थात धर्म साधना के लिये विधि पूर्वक अन्नपान व वस्त्रादि प्रदान करना यह वैयावच्च का भाव है। जैसे कि—

जैसे कि-१ क्षीर, २ दही, ३ सर्पि-घृत, ४ नवनीत, ५ तेल, ६ गुड-खाँड, ७ मत्स्यण्डी-मिश्री ८ मधु, ९ मद्य और १० मांस, इनमे नवनीत, मधु मद्य और मांस सर्वथा वर्जनीय है।

नोट—तीन दंड से लेकर ३३ आशातना तक के बोलों का परिचय श्रमणावश्यक सूत्र की टिप्पणी मे दिया है। अत जिज्ञासु पाठक उनको सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल (जयपुर) से प्रकाशित श्रमणावश्यक सूत्र में देखें।

३४. प्रवचन माता

द्वादशांग रूप प्रवचन को माता के समान रक्षण करने वाली प्रवृत्तियाँ प्रवचन माता कहाती हैं जो आठ हैं। जैसे— ईर्यासमिति २ भाषा समिति ३ एषणा समिति ४ आदान निक्षेपणा समिति ५ परिष्ठापनिका समिति ६ मनोगुप्ति ७ वाग्गुप्ति ८ कायगुप्ति। कल्याणमार्ग की साधना मे इनकी जानकारी अत्यावश्यक मानी गई है। क्षयोपशम की विचित्रता से किसी साधक को विशिष्ट श्रुत का ज्ञान नहीं हो तो भी इतना-अष्ट प्रवचन माता का-ज्ञान तो होना ही चाहिये।

विशेष परिचय के लिये उत्तराध्ययन का २४वाँ अध्याय देखें।

३५. अष्ट कर्मग्रन्थि—

१ ज्ञानावरणीय २ दर्शनावरणीय ३ वेदनीय ४ मोहनीय ५ आयु ६ नाम ७ गोत्र और ८ अन्तराय।

इन आठ कर्मों की आत्मा से सम्बन्धित वर्गणा ही ग्रन्थि कहाती है। इनमे ४ घाती कर्म हैं, जिनमें मोह प्रधान है। मोह कर्म के मन्द होने पर ही यह ग्रन्थि शिथिल पड़ती है। जैसेकि कहा है—

गंठिति सुदुब्भेओ, कक्खड-घण-रूढगूढ गंठिव्व।
जीवस्स कम्मजणिओ, घणरागदोस परिणामो॥

कथा-विभाग

सीता निमित्तक संग्राम कथा—

मिथिला नगरी के राजा जनक को विदेहा नामक भार्या और भामण्डल नामक पुत्र तथा जानकी सीता नाम की कन्या थी। विद्याधरो ने देवाधिष्ठित एक धनुष को स्वयवर मण्डप में लाकर रक्खा था। तथा सीता ने भी प्रतिज्ञा की कि जो इस धनुष को तोडेगा, मैं उसी को वरण करूंगी। अनेक आकाश विहारी और स्वर्गीय देव समूह भी इस प्रसग मे कुतूहल देखने को आये हुए थे। विविध भूपतियों के बल-प्रदर्शन के पश्चात् अयोध्यापति महाराज दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण ने सब के मनोरथ भग्न कर दिये और देखते ही देखते राम ने धनुष को गुण सहित तोड दिया, फिर क्या था, उसी समय साधुवाद के सग सीता राम के साथ व्याही गई।

महाराजा दशरथ वृद्ध हो चुके थे, अतएव वृद्धावस्था के कारण राम को राज्य देकर उन्होंने सन्यास ग्रहण करना चाहा। किन्तु भरत की मा कैकेयी ने छल पूर्वक राजा को पूर्व प्रतिज्ञात दो वरदानो की याद दिला कर उन्हें अपने वश मे कर लिये। पितृवचन को पालन करने के लिये श्रीराम ने सहर्ष वनवास स्वीकार किया और राज्य भरत के लिये छोड दिया। लक्ष्मण और सीता भी राम के वनविहार मे साथ थे। दण्डकारण्य मे विहार करते हुए लक्ष्मण ने एक आकाशस्थ खड्गरत्न देखा, क्षत्रियोचित स्वभाव से उन्होने खड्ग लेकर कुतूहल से वंश जाल पर मारा। सहसा उसके बीच मे चन्द्रनखा का बेटा और रावण का भागिनेय शम्बुक नाम का विद्याधर जो विद्या साधन कर रहा था कट गया। पश्चाताप करते हुए लक्ष्मण ने इस दुर्घटना का वर्णन राम को सुनाया। इधर चन्द्रनखा को पुत्र की मृत्यु से बड़ा क्रोध हुआ। वह खोज करते राम की कुटिया के पास आई। राम लक्ष्मण के रूप को देख कर मोहित हो गई। उसने राम और लक्ष्मण के सम्मुख अपनी मांग प्रस्तुत की। किन्तु उन दोनो ने चन्द्रनखा की याचना स्वीकार नहीं की। फलतः खरदूषण को उसने अपने रग मे रंग कर सारी घटना निवेदन कर दी। खरदूषण बदला लेने को लक्ष्मण से युद्ध करने चला आया। इधर परम्परा से रावण को भी अपने भानजे की मृत्यु की खबर प्राप्त हुई। आकाश मार्ग से आते हुए वन में अनिन्द्य

सुन्दरी सीता के रूप को देख कर वह सारा हाल भूल गया। काम की विकलता से उसने कुल की मर्यादा और सहज विवेक को छोड़ कर सीता के हरण का निश्चय किया। विद्या के प्रभाव से वह इच्छानुसार रूप बना सकता था। इसलिये लक्ष्मण के संग्राम स्थल मे राम को छलने के लिये उसने सिंहनाद किया। आवाज सुन कर जब राम उधर दौडे, तब रावण मायामृग के छल से अकेली सीता को हरण कर अपनी नगरी ले चला। मार्ग मे राम के प्रीत्यर्थ उससे जटायु ने युद्ध किया। उसको पक्षहीन कर दिया गया। रावण के द्वारा सीता को वश मे करने का हर प्रकार से प्रयत्न किया गया। लेकिन वह अनुकूल न हुई। पीछे राम ने सीता को गवेपणा करनी आरम्भ की। रत्नजटी के मुख से हनुमान ने सीता का कुशल समझ कर राम को निवेदन किया। राम भी भाई लक्ष्मण और हनुमान, सुग्रीव, भामण्डल आदि विद्याधरो के साथ समुद्र बाध लंका गये। वहां रावण के साथ सीता के लिए युद्ध किया। रावण को सकुल नाश कर अपने पक्ष मे स्थित उसके भाई विभीषण को लंका का राज्य देकर सीता के साथ अपनी नगरी लौट आये। यह सीता निमित्तक युद्ध का संक्षिप्त परिचय है।

२–"द्रौपदी के लिये संग्राम"

कंपिलपुर में द्रुपद नाम का राजा था। उसकी राणी का नाम चुलनी था। उसके पुत्र का नाम धृष्टार्जुन और पुत्री का नाम द्रौपदी था।

समय पाकर स्वयंवर विधि से युधिष्ठिर आदि पांच पाण्डो के साथ द्रौपदी का विवाह हुआ।

पूर्वकृत निदान कर्मके कारण पांच पाण्डवोंकी पत्नी होने परभी वह सती कहलायी। पाण्डु महाराज अपने अन्तःपुरमे बैठहुए एकदिन महारानी कुन्तीऔर पाण्डवो के साथ गोष्ठी कर रहे थे। इस बीच में वहां नारद ऋषि आकाश मार्ग से उतर आए। सपरिवार पाण्डु राज ने उनका उचित सत्कार किया। किन्तु द्रौपदी ने मिथ्यादृष्टि तथा वेपमात्र का ऋपि समझ कर उनका सम्मान नहीं किया। इस पर नारद बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होने अपना चमत्कार दिखाना चाहा। किसी समय वे धातकी खंड के पूर्व भरत मे अमरकंका नामक राजधानी के राजा पद्मनाभ की सभा मे जा पहुँचे। राजा ने ऋपि का अभ्युत्थान आदि सत्कार किया और बोला कि ऋपिवर ? आप विविध स्थानो में घूमते हो। क्या मेरे अन्त पुर जैसा अन्य

किसी के यहां स्त्री वर्ग का सौन्दर्य सार देखा है ? ऋषि ने उत्तर दिया-राजन् ! आप कूपमण्डूक सी बात कर रहे हो। हस्तिनापुर के राजा पाण्डु की पुत्र वधू के सामने तुम्हारी रानिया सौन्दर्य आदि प्रमदोचित गुणो मे नगण्य हैं। उसके चरणाङ्गुष्ठ के बराबर भी तुम्हारी रानिया नही हो सकती है।

यह सुनकर द्रौपदी के प्रति पद्मनाभ का अनुराग बढ गया और पूर्वसाङ्गतिक देव की सहायता से वह सोती हुई द्रौपदी को ला अपने बगीचे मे रखवा लिया। जागृत होने पर द्रौपदी ने देखा कि एक राजा कामुक बनकर सामने खड़ा है, और कुछ कह रहा है। उसकी प्रबल काम वृत्ति देखकर वह बोली कि राजन् ? मैं अपने घर से पृथक् होकर दुखी हूँ। मुझे कम से कम छः मास का अवकाश मिलना चाहिए। राजा ने स्वीकार किया। इधर द्रौपदी ने बेले की तपस्या और पारणे मे आयम्बिल की प्रतिज्ञा कर ली।

उधर हस्तिनापुर मे द्रौपदी के नहीं मिलने से सन्नाटा छा गया। कुन्तीजी ने द्वारिका जाकर श्रीकृष्ण को सब निवेदन किया। कृष्ण ने गवेषणा आरम्भ की। एक दिन नारद से मालूम हुआ कि पद्मनाभ के महल मे द्रौपदी के समान आकृति देख पडी थी। कृष्ण ने उनकी सारी बात समझली। वे पाण्डवों को साथ लेकर द्रौपदी को लाने के लिये चल पड़े और समुद्रतट पर जाकर समुद्र के अधिपति-सुस्थितदेव का आराधन किया। देवके द्वारा मार्ग मिलनेपर श्रीकृष्ण पांचों पाण्डवों को लेकर रथ सहित अमरकका के बाग मे जा पहुँचे। पद्मनाभ को जतलाने के लिये कृष्ण ने पहले दारुक सारथि को भेजा। पद्मनाभ ने दूत का तिरस्कार कर युद्ध के लिये भेरी बजवा दी। विशाल सैन्य और शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित हो उसने पाण्डवो के साथ भयङ्कर युद्ध किया, पाण्डव लोग घबरा कर श्रीकृष्ण के चरण में उपस्थित हुए। तब स्वय श्री कृष्ण युद्ध के लिये चल पडे। उन्होंने शख फूंका। जिससे सैन्य का तृतीयांश भाग छूटा। गाण्डीव धनुष पर प्रत्यञ्चा चढाकर टङ्कार करते ही दूसरा भाग भी मैदान छोड दिया। जब मात्र एक तिहाई बल शेष बचा तो पद्मनाभ प्राण भय से नगर मे प्रवेश कर गया। जब श्रीकृष्ण ने नरसिंह का रूप धारण कर भूमि पर पैर मारा तब नगर कोट कगुरे और राजमहल तक थर थरा कर भूमि पर गिर पडे। राजा भयभीत होकर द्रौपदी के चरण मे शरण रूप से आ गिरा। द्रौपदी के दिखाये हुए उपाय से जब पद्मनाभ ने कृष्ण के पास क्षमा मागी और द्रौपदी को

लौटा दी। तब कृष्ण ने भी उसे जीवन दान देकर मुक्त कर दिया। द्रौपदी को साथ लेकर पाण्डव अपनी नगरी में चले आये।

यह द्रौपदी के लिये युद्ध की सक्षिप्त कथा है।

३ "रुक्मिणी के लिए संग्राम"

कुण्डनपुर नगरी के नृपति भीष्मक को रुक्मिण नाम का पुत्र था, तथा रुक्मिणी नाम की कन्या थी। प्रसगवश किसी समय नारदजी कृष्ण की महाराणी सत्यभामा के घर द्वारिका आये। कार्यान्तर मे व्यग्र (लगी) रहने के कारण सत्यभामा ने ऋषि का समुचित सत्कार नहीं किया। इस पर सहज क्रोधी नारद अत्यन्त क्रुद्ध हो गए और कुण्डनपुर आकर रुक्मिणी को कहने लगे कि तुम कृष्ण की प्रियतमा बनो तभी तुम्हारे जीवन की सार्थकता है। नारद ने कृष्ण का वर्णन इस प्रकार से किया कि रुक्मिणी का अनुराग कृष्ण के प्रति सहज ही जग गया। साथ ही रुक्मिणी का चित्र द्वारिका लाकर कृष्ण को दिखाया। जिससे कृष्ण का अनुराग भी रुक्मिणी के प्रति जग गया।

कृष्ण ने रुक्मिणी के लिये याचना की, किन्तु उसके भाई रुक्मिण ने स्वीकार नहीं किया। उल्टे महाबली शिशुपाल को आमन्त्रित कर उसके साथ अपनी बहन के व्याह की तैयारी करने लगा। रुक्मिणी ने किसी तरह यह संवाद कृष्ण को भिजवाया। खबर पाकर बलदेव के सग कृष्ण भी उस नगर मे पहुँच गये। इधर रुक्मिणी भी देवपूजन के बहाने सखिओ के सग बाहर आई। दोनो के दिल मिले थे ही, फिर क्या था, कृष्ण रुक्मिणी को रथपर बैठाकर द्वारिका के लिए चल पडे। दूतिओ के द्वारा समाचार पाकर अभिमानी रुक्मिण ने कृष्ण से युद्ध करना चाहा, शिशुपाल ने भी विशाल सैन्य को लेकर साथ दिया। युद्ध मे बलदेव के हलमुसल रूप दिव्यास्त्र से दोनो के सैन्य भाग छूटे। रुक्मिण और शिशुपाल ने दीन भाव से अपने प्राण बचाये।

'यह रुक्मिणी के लिये युद्ध हुआ'।"

४ पद्मावती के लिये संग्राम—

अरिष्ट नगर मे महाराज हिरण्यनाभ नामक राजा राज्य करते थे ये बलराम के मामा थे। उनकी पुत्री का नाम पद्मावती था। बडी होने पर राजाने उसके लिये

स्वयंवर का आयोजन किया। निमन्त्रण पाकर बड़े २ राजा और राम केशव के साथ कई राजकुमार भी उस स्वयम्वर में उपस्थित हुए। हिरण्यनाभ की भ्रातृ सुता (भतीजी) का सम्बन्ध बलराम के साथ पहले ही कर दिया था। पद्मावती के लिये स्वयम्वर में उपस्थित सभी राजा अभिलाषी थे, किन्तु उसने कृष्ण के गले में वरमाला डाल दी। रुष्ट होकर सभी राजाओं ने युद्ध में कृष्ण को जीतकर पद्मावती लेना चाहा। परिणाम स्वरूप कृष्ण के साथ राजाओं का भयङ्कर संग्राम हुआ। कृष्ण ने मुहूर्त भरमे सभी को हरा दिया। पद्मावती को लेकर अपनी राजधानी गए।

यह पद्मावती के लिये संग्राम का संक्षिप्त वर्णन हुआ।

५ तारा निमित्तक युद्ध—

किष्किन्धापुर में आदित्यरथ नामक विद्याधर के दो लड़के थे, एक का नाम वालि और दूसरे का नाम सुग्रीव था। आदित्यरथ के पुत्र वालिने अपना राज्य सुग्रीव को देकर स्वयं दीक्षा धारण करली। राज्य का स्वामी सुग्रीव बना। उसकी स्त्री का नाम तारा था। वह बडी सुन्दरी थी। किसी समय तारा की ख्याति से खींचा हुआ साहसगति नामक विद्याधर ने सुग्रीव का रूप बनाकर उसके अन्तःपुर मे प्रवेश किया। तारा ने चिन्हों से जानकर मन्त्रि मण्डल को अवगत कराया। उसने अपनी काम सिद्धि के लिये आने वाले सुग्रीव को नकली कहकर रुकवा दिया। वे सब दोनों सुग्रीव के रूप को देखकर आश्चर्य मे पड गए। ठीक निर्णय नहीं होने से दोनों को घर से बाहर निकाल दिये। वे ईर्ष्यावश लडने लगे, लडने मे दोनों बराबर रहे। तब कृत्रिमरूपधारी असत्य सुग्रीव और सत्य सुग्रीव दोनों ने हनुमान नामक विद्याधर राजा के पास जाकर निवेदन किया, वह आया और दोनों को बराबर नहीं समझ सकने के कारण विना कुछ उपकार किये ही अपने घर लौट गया।

जब लक्ष्मण के द्वारा पाताल लङ्का जीत लेने पर श्रीराम वहां पर राज्य सम्भा-लने लगे, तब इस बात को जानकर श्रीराम के चरणों मे प्रार्थना की गई। तत्काल लक्ष्मण सहित राम-किष्किन्धापुर आये। उधर सुग्रीव ने भुजा पर ताल मारा जिसको सुनकर वह झूठा सुग्रीव रथारूढ़ हो रण रसिक बना हुआ चला आया। उन दोनों मे कोई अन्तर नहीं देखने से रामचन्द्र तटस्थ भावसे खड़े रहे। सत्य सुग्रीव का सहायता नहीं दे सके। जब सत्य सुग्रीव दूसरे से दुखी किया गया।

तब राम के पास आकर उसने निवेदन किया कि देव! आपके देखते भी मुझको कष्ट मिल रहा है तो मुझे कौन बचाएगा ? रामने कहा कि तुम अपना चिन्ह बता कर फिर युद्ध करो। वैसा करने पर झूठे सुग्रीव को रामने शर प्रहार से मार दिया। सत्य सुग्रीव बहुत दिनों तक तारा के स थ सॉसारिक सुख का अनुभव करता रहा। रामचन्द्र के द्वारा युद्ध मे कृत्रिम सुग्रीव के मारे जान पर तारा और सुग्रीव का संकट टल गया। वे रामका उपकार मानने लगे।

(यह तारा निमित्तक युद्ध का संक्षिप्त वर्णन है)

६ रक्त सुभद्रा के लिये संग्राम--

सुभद्रा कृष्ण वासुदेव की बहन थीं। वह पाण्डुपुत्र अर्जुन पर कामानुरक्त थी इसलिये उसका नाम रक्त सुभद्रा पडा। वह एक दिन अर्जुन के समीप आई। कृष्ण ने उसको लौटाने के लिये बलराम को भेजा। किन्तु सुभद्रा पर अनुरक्त हुए अर्जुन ने रण रसिकता से बलराम को हराकर सुभद्रा के साथ शादी करली। पीछे अभिमन्यु नामका बालक पैदा हुआ।

यह रक्त सुभद्रा के लिये संग्राम का संक्षिप्त वर्णन हुआ।

७ सुवर्ण-गुलिका के लिये संग्राम

सिन्धु सौवीर देश के नृपति उदायन की राजमहिषी का नाम प्रभावती था। देवदत्ता नामकी उसको एक दासी थी। किसी समय देवदत्ता को दिव्य प्रभाव वाली गुटिकायें प्राप्त हुईं, जो अद्भुत चमत्कार से भरी थी। उसके खाने से कुरूप सुन्दर तथा मूक वाचाल बन जाते थे। कल्पतरु के समान वह अभिलषित फल देने वाली थी। गोली मे से एक खाकर देवदत्ता स्वर्णवर्ण देह वाली हो गई। इससे लोग उसको स्वर्ण-गुलिका कहने लगे। देह की सुन्दरता पाकर वह चिन्ता करने लगी कि अब मैं किससे ब्याह करूंगी, क्योकि उदायन मेरे पिता तुल्य हैं और शेष लोग गुण की कमीके कारण मेरे योग्य है ही नही। इस तरह केवल उज्जयिनीपति राजा चण्डप्रद्योतन ही उसके मनमुताबिक जंचे। उनको ध्यानमे रखउसने फिर दूसरी गोली खाई। इधर गोली के चमत्कार से चण्डप्रद्योतन को भी सुवर्णगुलिका की कार्यवाही ज्ञात हुई। वे हाथी पर चढ़ रात में सुवर्णगुलिका के द्वार पर चले आये। बुलाकर उसको अपने साथ चलने को कहा। (कुछ शर्तों पर) वह भी राजी हो गई और चण्ड

प्रद्योतन के साथ उज्जयिनी चली गई। प्रात काल उदायन को पता चला कि सुवर्ण गुलिका का किसी ने अपहरण कर लिया और विशेष खोज से यह भी ज्ञात हुआ कि सारा खेल चण्डप्रद्योतन राजा का है। इससे उदायन बड़ा क्रुद्ध हुआ, और अन्य बली दश राजाओ के सग यह उज्जयिनी पर चढ़ आया। चण्डप्रद्योतन के द्वारा दासी को नही लौटाने पर दोनो मे भयङ्कर युद्ध हुआ। धनुर्वेद के प्रभाव से चण्डप्रद्योतन के हाथी पर चोटकर उदायन राजा ने चण्डप्रद्योतन को अपने वश कर लिया। जब उदायन विजय मिलाकर अपने देश की ओर पीछे जाने लगा तब पर्यूषण पर्व के दिन निकट आ गये थे। अत दशार्णपुर–मन्दसौर के पास उसने सैन्य सहित अपना पडाव किया। संवत्सरी के पहले दिन सैन्य को बुलाकर आदेश दिया कि देखो कल महापर्व है। अतएव किसी भी जीव को कष्ट नहीं पहुँ-चाना। फिर रसोइये से कहने लगे--कल सवत्सरी महापर्व होने से मैं तो दिन भर पौषधव्रत की आराधना करने वाला हूँ किन्तु यह चण्डप्रद्योतन जो अभी मेरे बधन मे है, फिर भी राजा होने से इसको भोजन मे कोई कष्ट नही होने देना। इसकी इच्छा के अनुसार भोजन बना देना। कितनी धर्म की निष्ठा? सुवर्णगुलिका के लिये लड़ने वाला उदायन भूपति पर्वाराधन में शत्रु को भी मित्र समझता है। क्षमा-पना करते समय उसने चण्डप्रद्योतन की प्रीति के लिये दासी सहित उसे बन्धन मुक्त करना स्वीकार किया और दूसरे दिन चण्डप्रद्योतन के मस्तक पर मयूरपिच्छ से दासीपति यह नाम अङ्कित कर (विदा किया) छोड़ दिया।

उदायन की क्षमापना आदर्श है।

८ रोहिणी के निमित्त संग्राम

अरिष्टपुर नगर में रुधिर नामका राजा राज्य करता था। उसकी सुमित्रा नाम की राणी तथा हिरण्यनाभ नाम का पुत्र और रोहणी नामकी एककन्या थी। राजाने पुत्रीके विवाह करनेको स्वयंवर करनेकी घोषणाकी। जरासंध और समुद्रविजय आदि विविध राजा स्वयंवर मे उपस्थित हुए। उचित आसन पर बैठकर रोहणी की प्रतीक्षा करने लगे। समय पर रोहिणी स्वयंवर मडप में आई और प्रतिबिम्ब में धाई मा के द्वारा राजाओ का परिचय लेती हुई आगे बढ़ी। गुप्त रूप से वसुदेव ने वाद्यध्वनि द्वारा उसको अपना परिचय दिया। जिससे उसने भी प्रेम भावसे वसुदेवके गलेमे वर मला डाल दी। इससे उपस्थित सभी राजा क्रुद्ध हुए। उन्होंने उस बाजे वाले से

लड़कर रोहणी को अधीन करना चाहा। वसुदेव भी रोहणी की सहायता से जोरों से लड़ा और सबको परास्त कर रोहणी को ले चला।

नोट--काञ्चना, अहिन्निका, किन्नरी, सुरूपा और विद्युन्मती की कथाएं अज्ञात हैं। ऐसा टीकाकार का कहना है। फिर भी विद्वानों को गवेषणा करनी चाहिए।

(अनुवादक)

म्लेच्छ जाति और अनार्य देश

१ आन्ध्र देश २ अरोप ३ अणक ४ आम्मापिक ५ अरव ६ उद्द ७ कुहण ८ कुलाच्च ६ केकय १० कोंकणक–कोकण ११ क्रौंच १२ खस १३ खासिक १४ गाय १५ गौड- बङ्गाल) १६ गंधहारक–गांधार १७ चिलात–किरात १८ चीन १६ चुंचुक २० चूलेक २१ जल्ल २२ डोंविलक २३ डोंघ २४ तित्तिक २५ द्राविड–द्रविड २६ नेहर २७ पक्कणि २८ पन्हव २६ पारस ३० पुलिन्द्र–पुलिंद भोपाल से उत्तर ३१ पोकण ३२ वकुश ३३ वर्वर ३४ वहलीक ३५ विल्वल ३६ भडक ३७ मलय ३८ मदुर ३६ महाराष्ट्र ४० मरुक ४१ मालव ४२ माष ४३ मुंड ४४ मूढ–मौष्टिक ४५ मेद ४६ यवन–(यूनान) ४७ रुरु ४८ रोम ४६ रोमन ५० ल्हासिक ५१ शक जाति ५२ शवर जाति ५३ सिंहल–लंका ५४ हूण जाति (चतुर्थ सूत्र)

इस प्रकार म्लेच्छ जाति और देशों को मिला कर ५४ संख्या गिनाए गए हैं।

महापुरुषों के उत्तम लक्षण

१ सूर्य २ चन्द्र ३ शंखवर ४ चक्र ५ स्वस्तिक ६ पताका ७ यव ८ मत्स्य ६ कूर्म १० रथ ११ योनि १२ भवन १३ विमान १४ तुरग १५ तोरण १६ गोपुर–पुरद्वार १७ मणि १८ रत्न १६ नन्दावर्त नवकोण का स्वस्तिक २० मूसल २१ हल २२ कल्प-वृक्ष २३ सिंह २४ भद्रासन २५ सुरूपि–आभरण २६ स्तूप २७ मुकुट २८ मुक्तावली २६ कुण्डल ३० गज ३१ वृषभ ३२ द्वीप ३३ मन्दिर अथवा मेरु ३४ गरुड ३५ ध्वजा ३६ इन्द्रकेतु ३७ दर्पण ३८ अष्टापद–पाशा ३६ धनुष ४० बाण ४१ नक्षत्र ४२ मेघ ४३ मेखला–कन्दोरा ४४ वीणा ४५ जुआ ४६ छत्र ४७ माला ४८ दामिनी ४६ कम-डलु ५० कमल ५१ घंटा ५२ जहाज ५३ सूची ५४ सागर ५५ कुमुद ५६ मगर ५७ हार ५८ पृथ्वी ५६ अंकुश ६० भृंगार ६१ घाघर ६२ नूपुर ६३ नग ६४ नगर ६५ वज्र ६६ किन्नर ६७ मयूर ६८ राजहंस ६६ सारस ७० चकोर ७१ चक्रवाक ७२ चामर

७३ खेट ७४ पव्विसक–वाद्य ७५ वीणा ७६ तालवृन्त–पंखा ७७ अभिषेक ७८ खड्ग ७६ कलश ८० वर्द्धमान–शरावा (तृतीय सूत्र)

(च० आ० द्वा०)

स्त्रियों के बत्तीस लक्षण

१ छत्र २ ध्वजा ३ यूप ४ स्तूप ५ दामिनी–डोरी ६ कमण्डल ७ कलस ८ वापी ६ स्वस्तिक १० पताका ११ यव १२ मत्स्य १३ कूर्म १४ प्रधान रथ १५ कामदेव १६ अंक १७ थाल १८ अंकुश १६ अष्टापद २० सुप्रतिष्ठक २१ देव या मयूर २२ लक्ष्मी का अभिषेक २३ तोरण २४ पृथ्वी २५ समुद्र २६ प्रधान भवन २७ प्रधान गिरि २८ दर्पण २६ गज ३० वृषभ ३१ सिंह ३२ चामर। (च० आ० द्वा०)

देवों के नाम

भवनपति जाति के देव

१ असुर कुमार २ नाग कुमार ३ गरुड कुमार ४ विद्युत् कुमार ५ अग्नि कुमार ६ द्वीप कुमार ७ उदधि कुमार ८ दिक्कुमार ६ पवन कुमार १० स्तनित कुमार।

व्यन्तर जाति के देव

१ अणपन्निक २ पणपन्निक ३ ऋषिवादिक ४ भूतवादिक ५ क्रंदित ६ महा क्रंदित ७ कूष्मांड ८ पतंगदेव ६ पिशाच १० भूत ११ यक्ष १२ राक्षस १३ किन्नर १४ किंपुरुष १५ महोरग १६ गन्धर्व। ४, ५, अधर्म द्वार

ज्योतिष्क देव

१ बृहस्पति २ चन्द्र ३ सूर्य ४ शुक्र ५ शनिश्चर ६ राहु ७ धूमकेतु ८ बुध ६ मंगल

कल्पों के नाम

१ सौधर्म २ ईशान ३ सनत्कुमार ४ माहेन्द्र ५ ब्रह्मलोक ६ लान्तक ७ महाशुक्र ८ सहस्रार ६ आणत १० प्राणत ११ आरण १२ अच्युत। (प० अ० द्वा०)

आहार के दोष

१ उद्दिष्ट २ स्थापित ३ रचित ४ पर्यवजात ५ प्रकीर्ण ६ प्रादुष्करण ७ अपमित्य ८ मिश्रजात ६ क्रीतकृत १० प्राभृत ११ दानार्थकृत १२ पुण्यार्थ कृत १३ श्रमणार्थ कृत १४ वनीपकार्थ कृत १५ पश्चात् कर्म १६ पुरः कर्म १७ नीति कर्म १८ म्रक्षित १६

अतिरिक्त २० वाचालता युक्त २१ आहित २२ स्वयंगृह (स्वगृहीत) २३ मृत्तिकोपलिप्त २४ अच्छेद्य २५ अनिसृष्ट २६ अन्तर्बहिर्वा स्थापित २७ हिंसा सावद्य युक्त कृत कारित।

ब्रह्मचर्य की ३२ उपमायें—

१ नक्षत्र मण्डल में जैसे चन्द्रमा प्रधान है वैसे व्रतो मे ब्रह्मचर्य व्रत बड़ा और प्रधान है। २ मणि आदि रत्नो की खानो मे समुद्र के समान। ३ मणियो में वैडूर्य मणि के समान। ४ आभूषणो में मुकुट के समान। ५ वस्त्रो मे कपास के वस्त्र के समान। ६ पुष्पो में कमल के समान। ७ चन्दनों मे गोशीर्ष चन्दन के समान। ८ औषधि स्थानो में हिमवान के समान ९ नदियो मे शीतोदा नदी के समान। १० समुद्रो मे स्वयंभूरमण के समान। ११ माण्डलिक पर्वतो मे रुचक पर्वत के समान। १२ हाथियो मे ऐरावत हाथी के समान। १३ जंगली पशुओ मे सिंह के समान। १४ सुपर्णकुमारो मे वेणुदेव के समान। १५ नागकुमारो मे धरणेन्द्र के समान। १६ बारह देवलोको मे ब्रह्मदेव लोक के समान। १७ सभाओ मे सुधर्म सभा से समान। १८ स्थितियो मे अनुत्तर विमानवासी देवों की स्थिति के समान। १९ दानो में अभयदान के समान। २० कम्बलो में रत्न कम्बल के समान। २१ शरीर के संहननो मे वज्र ऋषभनाराच संहनन के समान। २२ संस्थानो में समचतुरस्र संस्थान के समान। २३ चार ध्यानो मे शुक्ल ध्यान के समान। २४ पांच ज्ञानों मे केवल ज्ञान के समान २५ छह लेश्याओं मे शुक्ल लेश्या के समान। २६ मुनियो मे तीर्थंकर के समान। २७ क्षेत्रों मे महाविदेह क्षेत्र के समान। २८ पर्वतों मे सुमेरु पर्वत के समान २९ वनो मे नन्दन वन के समान। ३० वृक्षो मे जम्बू वृक्ष के समान। ३१ तुरगपतिओ मे राजा के समान। ३२ रथिको मे महारथी के समान ब्रह्मचर्य व्रत सब व्रतो मे बड़ा और प्रधान है।

ऐतिहासिक पुरुष

राम, केशव, वासुदेव, देवई-देवकी, रुक्मिणी, रक्त सुभद्रा, रोहिणी, पद्मावती द्रौपदी, सीता, समुद्रविजय, प्रद्युम्नकुमार, प्रदीपकुमार, संभकुमार, अनिरुद्ध कुमार निसर्ग कुमार, उल्मुक कुमार, गज कुमार, सारंगकुमार, सुमुखकुमार, दुर्मुख कुमार, चाणूरमल्ल, महाशकुनि, पूतना, कस, जरासध, केशरीसिंह दम नाग-काली नाग, अरिष्टवृषभ, स्वयंभू, प्रजापति, महावीर, जम्बू कुमार, वसुदेव।

वाद्य

१ मुरज २ मृदंग ३ पणव-पडहा ४ दर्दुर ५ कच्छभि ६ वीणा ७ विपंचि ८ कच्छकी वीणा विशेष ९ वतीसक १० सुघोष-घंटा ११ नंदी-बारह प्रकार का तुर्य-घोष १२ सुस्वरा १३ परिवादिनी १४ वंश-बांसुरी १५ तूणक १६ पर्वक १७ तंत्री १८ तलताल-हस्तताल १९ त्रुटित।

किसी वाद्य-कला के आचार्य से इनका परिचय प्राप्त करना चाहिये।

सुगन्धित द्रव्य—

१ पुष्प २ कोष्ट ३ तगर ४ पत्र-तमाल पत्रादि ५ त्वचा-छाल ६ दमनक ७ मरुआ ८ एलारस ९ पिकमंस-पका हुआ गंध १० गोशीर्ष-सरस चन्दन ११ कपूर १२ लवंग १३ अगर १४ कुंकुम १५ कंकोल १६ उशीर १७ श्वेत चन्दन १८ सारंग इत्यादि।

(पंचम संवर द्वार)

जलाशय

१ क्षुल्लिका २ पुष्करणी ३ वापि-चतुष्कोण बावडी ५ दीर्घिका ६ गंजालिका ७ सर ८ सरपंक्ति ९ सागर १० बिल कुआ ११ खाई १२ नदी १३ तालाव-खोद के बनाया हुआ १४ वप्रिण-नहर, कथारा।

प्रश्न व्याकरण सूत्र की पाठान्तर सूची !

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
प णवहं	पाणिवहं	अ
पाणवहो	प णिवहो	”
मरणावेम णस्सो	मरणावे र मणस्सो	”
कोलसुणक	कोलसुणका	”
दीविया	दीविय	”
सरव	सरग	ग०
गोधुंदर	गो धूदुर	अ
मुगुस	मुंगुसो	”
खाडहिल	ख डहिला	”
वाउप्पइय	वाउप्पिय	ग०
सेताय	सेतीय	अ
चकीव	कीव	”
सउण पिपीलिय	सउण पीविय	ग०
जीवजीवक	जीव जीवग	अ
कवोयक	कवोयकाग	”
वेसर	सेसर	”
सालग (करक)	कर करक	”
दतहा	दतही	”
चितिवेतिय खातिय	वेदिखातिय	ग०
जलावण	जलण जलावण	अ
केते	किते	”

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
मुरंडो दृभडग	मुरंडो रङ्ग भडग	ग०
विल्लल	चिल्लल	अ
महुर	मग्गर	,
मुट्ठिय आरव	मुट्ठिय मरहाटा मट्ठा आरव	ब
मसगा	मसग	”
कहिर्ला लग	रहिरा किन्न	”
उस्सासेत	उस्ससितं	”
मुयह मेमरामि	मुच्चमे मरामि	”
गडूलय	तहेव बेंदियेसु गडूयल	अ
भञ्जणगालण	भञ्जण तालण गालण	ब
अधयगा	आंधजगा	अ
हीणाहीणसत्ता	हीण दीणसत्ता	ब
भणांति नत्थि अहियाहि	भणति सुणंति नत्थि	अ
आइद्धा	आइट्ठा	”
विरयणं अलिय	विरयणं माया अलिय	ब
पुणब्भवकरं	भव पुणब्भवकरं	अ
चउरंग विभत्तबल	चउरंग समत्तबल	”
गाढदट्ठे सप्पहारणुज्जयकरे	गाढदढप्पहार कर णुज्जयकरे	ब
दरिय	दप्पिय	”
अवइट्ठ	बाणइद्ध	”
हच्छतरकेहिं	हत्थतरकेहि	”
कह कहितपहसित	कहकहकरंतपहसिय	”
कासे	कस्स	अ
सकोड मोडणाहिं	संकोडण मोडणाहिं	ग
नेत्तप्पहारसय	वेतप्पहारसत	अ
कोप्परपहार संभग्ग	कोप्परपहार घायविद्धा संभग्ग	बं
वज्झयाण भीता	वज्झपाणप्पीया	अ

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
खरफरुसएहिँ	खरकर सएहि	
समभिद्दुत्ते	समभिभूए	अ
पुणोविपवज्जंति	पुणोविपडिवज्जति	ब
सायगारवो वहार गहिय कम्मपडि०	सायगारवो असुहज्झवसायहि अपहार कम्म पडिबद्ध०	ब
रुद्दं	रुंदं	अ
अफलवंतकाय	अपच्चतकाय	,,
मणसंखेवो	मणसंखोभो	,,
चाणूर मूरगा	चूरगा	,,
सद्दूलसिह	सद्दूलरिसह	,,
सुपइट्ठ अमरसिरिया०	सुपइट्ठमयूर'सिरिया	ब
लोभकलिकसाय	लोभकलिमगागकसाय	,,
भवनवर विमाण	भवन वाणव्वंतर विमाण	
चउत्थभत्तिएहि एवं जावछम्मास भत्तिएहि–	चउत्थभत्तिएहिं छट्ठ भत्तिएहि अट्ठभत्तिएहिं दसम भत्तिएहिं एवं दुवालस चोद्दस सोलस अद्धमास दोमास तिमास चउमास पंच मास छम्मास भत्तिएहिं।	अ
पावियाते पावगं न किंचिवि	पावियाते पावक अहिमाय दारुणं निम्मंसं वहत्थ परिकिलेस बहुलं जरामरण परिकिलेस संकिलिट्ठं न कयाविवट्टए पावियाए पावगं किंचिवि	अ

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
सुपणिहियं एवं जाव आघवियं	सुपणिहियं इमेहिं पंचहिवि कारणेहि मणवयण काय परिक्खिएहिं णिच्चं आमरणं तं च जोगो णेयव्वो धिईमयामईमया अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्साई असंकिलिट्ठो सव्वजिणमणुण्णाओ एव तइयं संवरदारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं अणुपालियं आणाए आराहिअं भवइ एवं- णायमुणिणा भगवया पणवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धवर सासणमिणं आघमिय	ब
सुभासियं	सुसाहियं	ग
धीर सूर	वीर सूर	"
सुकयमज्झप्प	सुकयरक्खणं अज्झप्प	अ
सनद्धोच्छइय	संनद्धबद्धच्छगिय, सन्नद्धबद्धोच्छगिय	अ-ब
मथिय चुन्निय	महियमहिय चुन्निय १-महिय चुन्निय	ग
वाउसिक (य) हसिय	वाउसिक न वत्थ केस समारवणा इय हसिय	घ
अविरतिसुय एव	अविरतीसुय अणेसुय एव	"
विसुद्ध मूलो	विसुद्धबद्ध मूलो	अ
जस निविड पीण पवर	जसनिचिय पीण पीवर	"
तव संजम	तवसंवर संजम०	ब
जंगमाण दिट्ठा	जगाणं दिट्ठा	अ
दंसमसगसीय परिरक्खणट्ठयाए	दंसमसग सोउसिणपरिरक्खण- ट्ठयाए	ब
सोमभावयाए	सोमभावणाए	"

मूलपाठ	पाठान्तर	प्रति
कयपर निलये	कयपर घर निलये	ब
निस्संधि	निसन्निहिं	ग
छुद्दिय	सुद्दिय	ब
नरज्झियव्वं जाव न सइं	नरज्जियव्वं न गिज्झियव्वं न मुज्झियव्वं न विणिघायमावज्जियव्वं न लुभियव्वं न तुसियव्वं न हसियव्वं न सइं	ब
अंतरप्पा जाव चरेज्ज	अंतरप्पा मणुएणा मणुन्न सुब्भि दुब्भि राग दोस पणिहियप्पा साहु मण वयण कायगुत्ते संवुडे पणिहिन्दिए चरेज्ज	ब
रूसियव्वं जाव	रूसियव्वं न हिलियव्वं जाव	अ
नमुज्झियव्वं न विणिघायं	न मुज्झियव्वं न हसियव्वं न लुभियव्वं न तुसियव्व न विणिग्घाय	"
हिययदंत भंजण	हिय यंत दंत भंजण	"
एक्कसरगा	एका रसगा	"
दसमुचेवदिवसेसु	चउदसमुचेवदिवसेसु	"

पाठान्तर-सूची

पृ०	पं०	मूल पाठ हस्त०	पाठ भेद आ० मंदिर
३	१६	उट्ठेइ २ त्ता	उट्ठेइत्ता
३	१९	उवागच्छइ २	उवागच्छइत्ता
३	२०	करेइ २	करेइत्ता
३	२०	नमसइ	नमसइत्ता
३	२२	अगास्स	भते अगस्स
३	२७	अज्ज सुहम्मे थेरे	अज्ज सुहुम्मंथेरं
८	२७	विणासो	विसाणो
११	२०	विहाणक कए	विहाणकए
११	१६	का उदर	का ओदर
११	२३	आडासेतीय	आडासेती
११	२३	सउण पिपीलिय दीविय	सचण दीविय (पीलिय)
११	१८	एवमादी	एवमायी
१२	१६	पुढविमये	पुढवीमये
१२	१६	पुढविससिए	पुढवीसंसिये
१२	१	सुईमुह	सूयीमुह
१२	५	पोडरीय सालग करकं	पोडरीय सालग (करक)
१२	१४	वत्थोहर	वत्थोहार
२५	१५	छेलिहत्था	छेलिहत्था (दीविया)
२६	११	तिमिस्सेसु	तमिस्सेसु
२६	१९	असुभदुक्खविसहं	असुभगंध दुक्खविसह
३५	५	सामिभाय	सामिमाम
३५	१६	हसता	पासंता
३६	१	सुचए	सुव्वए
३६	१६	विसूणियंगमंगा	विसू णियंगमंगम (निगयंगजीवा पा.)
३७	१४–१५	दोहणाणिय कुदडगल	दोहणाणि य डगल
३७	१५–१६	निमज्जणाणि	निमज्जणाणि य

पृ०	पं०	मूल पाठ हस्त०	पाठ भेद आ० मंदिर
४६	२४	संपउत्ता (तहेव वेइंदिएसुं	निमज्जणाणिय संपउत्ता
४७	४	पुणो २ तहिं २	पुणो तहिं
४७	६	भज्जण	मज्जण
४७	१५	मूकाय	मूकाय (अविग्गजल मूया पा.
४७	१६	विणिहय सचिल्लया	विणिहय रुप्पे (पिस पा)
४७	१६	णरगाओ उव्वट्टिया	णारगाओ उव्वट्टंति
४७	२२	पारलोइओ	परलोइओ
४८	२	मरणवेमणस्सो	मरणवेमणसो
५३	२०	कूड कवड मवत्थुगं	कूड कवड मत्थुगंच
५६	२५	निययी (डी)	नियची
५६	२६	अवहीयं	अवहीयं (अवाथिअं पा.)
५६	२७	अणुवलेवओत्ति	अणुव (अन्नोअन्ना) लेवओत्ति
६०	१-२	एयं जदिच्छाएवा	एयं वा जदिच्छाएवा
६०	३	किंचि कयकं तत्तं	किंचि कयकतत्तं
६०	६	इमो विविस्संभवाइओ	इमोवि विसंधायओ
६०	१७	अहरगति गमणं अन्नंपि	अहरगति गमणं कारणं अन्नंपि
६०	१८	परमट्ठ भेदकमसकं (असत्कं)	परमट्ठ भेदकमसकं
६०	२१	अलियाहि संधि संनि०	अलिया हिंसंति संनि०
६१	५	साहिंति मगराणं	साहिंति मगराणं (भग्गिणं)
६१	६	वालचीणं	वालवीणं (वायलियाणं पा.)
६१	६	वध बध जायणंच	वधबंध जावणंच
६२	२	दुज्जतु	दुज्झतु
६१	२	साहिंति य	साहति
६१	१६	आहेवण आवि	आहेव (हिव्व पा.) ण आविं
६१	१८	पावकम्म करणं	पावकम्म कराणं
६१	१८	गामघातियाओ	गामघातवाओ
६१	२५	पियय दासि	पियय (खादत, पिबतदत्तच पा.) दासि

पृ०	पं०	मूल पाठ हस्त०	पाठ भेद आ० मंदिर
६१	२७	करित्तु कम्मं	करित्तु (करितु पा.) कम्मं
६१	२८	वल्लराइं उत्तण	वल्लराइं (छिद्यत्तामखिल भूमि-वल्लराणि पा.) उत्तण
६२	६	उप्पणिज्जंतु	उप्फणिज्जंतु
६२	१०	मुहुत्तेसु नक्खत्तेसुतिहिसु	मुहुत्तेसु तिहिसु
६२	१५	धूवायकार	धूवावकर
		अलियाणा	अलियप्पाणो
६२	२०-२२	होंति	होति
७७	२१	बहिरन्धगाय	बहिरन्धमूगाय
७७	२२	अकत विकय करणा	अकं (कपा.) त विकयकरणा
७७	२८	अणिट्ठखर	अणिट्ठसर
८२	१३	पत्थोइ मइय	पत्थाइ मइयं
८४	१०	कूरिकड	कूरिकडं (कुसट्ठयकयं पा.)
८४	११	तक्करत्तणंतिय	तक्करत्तणाति
८४	११-१२	हत्थललहु, त्तणं	हत्थलत्तणं (लहुत्तं पा.)
८४	१३	ओवीलो	अ (प्र. ओ) वीलो
८६	१७	लोकवज्झा	लोलवज्झा
८७	१	दप्पिएहिं सेन्नेहिं संपरिवुडा	दप्पिएहिं (सेन्नेहि पा.) संपरिवुडा
८६	१२	पडहा हय	पहडा हय
८६	२-३	माढिवरवम्म गुंडिया	माढिवर (गूढ पा.) वम्मगुंडिया
८६	५	मुयंत घण	मुयंत (मंते पा.) घण
८६	२३	समरभडा, आवडिय	समर भडावडिय
८६	२५	फुरफलगावरणं	पुरफलगावरणं
६०	१	कुच्छिदालिय	कुच्छि विदालिय
६०	२०	कल्लोल संकुलं	कल्लोल संकुलजलं
६०	२६	दूर सुच्चंत गंभीर	दूर सुव्वंत गंभीर
६०	२६	घुग घुगंत सद्दं	घुगु घुगत सद्दं

पृ०	प०	मूलपाठ हस्त०	पाठ भेद आ० मंदिर
९१	५	हत्थदच्छ तरकेहिं	हत्थ तरकेहि
१०२	५१	भेसणगभयाभिभूया	भेसणगा (गभया पा०) भिभूया
१०३	१	मद पुरणा	मद पुन्ना
१०३	७–८	उरक्खोडीं दिन्नगाढ	उरक्खडो दिन्न गाढ
१०३	२३	तुरिय उग्घाडिया पुरवरे	तुरिय उग्घाडिया पुरवरे
१०४	८–९	वज्झयाण भीता	वज्झयाण पीया (याए भीता पा०)
		तिल.तिलंचेव–	तिलं तिल चेव
१०४	२४	निरिक्खिया	गिरिक्खि (रक्कि) या
१०४	२५	(अलज्ज.विया) अलज्जा–अलज्जा	
१०४	२६	वेयण दुग्घट्ट घट्टिया	वेयण दुग्घ ट्टिया
१०५	७	सयणस्स वि	सयण रस विय
११३	२२	कहिंपि	कहिंचि
११४	१३–१४	पधावित वसण	पधावित (वाहिय पा० वसण
११४	१८	अत्ताणा सरण	अत्ताणऽसरण
११४	२४	गमण कुडिल	गमण कडिल
११५	२६-२७	उम्मग्ग निमग्ग	उम्मुग्ग निमुग्ग
११५	२८	उव्वुड्ढ निवुड्ढयं	उव्वुड्ड निवुड्डय
११६	१–२	अदिण्णा दाण हरदह	अदिन्नादाण हरदह
११६	४	समत्त त्तिवेमि	समत्त तिवेमि
१ ५	१३	छोभा सिप्प	शाभा सिप्प
११३	२६	संसारावत्त	ससार (रा) वत्त
१२५	११	चिर परिगय मणुगय	चिर परिचित मणुगयं
१२६	१६	सेवणाधिकारो	सेवणाधिक्कारो
१२८	९–१०	उस्सयणा तामसेण	उस्सण तामसेण
१२९	५	फोसेज्ज स णी सुत्तक	को० सो० सु० (कुंडलपा०)
		विभूसियंगा	गय
१२९	७	रइत माल रइग गय	र०मा०रु० (कुन्डलपा) गय

पृ०	पं०	मूल पाठ हस्त०	पाठ भेद आ० मंदिर
१-६	१९-२०	अणु भवेत्ता ते वि	अणुभवेत्ता (न्ता) तेवि
१३४	२५	भायरो सपरिसा	भा० सुपरिसा
१३५	५	णिव्वुय मुदितजण	णिव्वुय पमुदित जण
१३५	१२	महुर भणिया अब्भुवग	महुर भणिया (महुर परिपुण्ण-सच्च वयणा पा०) अब्भुवग।
१३५	१८-१६	जरासिंध माण महणातेहिय अविरल	ज०मा०म०ते(अब्भ पडल पिग लुज्ज लेहिपा०) अविरळ
१३६	४-५	विसदगधुद्धूयाभिरामाहिं	वि०ग०धर्याभि रामाहि
१ ६	६-७	हल मुस न कणग पाणी	ह० मु० (कणग पा०) पाणी
१३६	७	पव रुज्जल सुकन विमल	प० सुकत वि०
१३६	१६	अणेगवास सयमायुवतो	अणग वास सयमातुवतो
१३६	१८	अणु भवेत्ता	अणु भवेत्ता (न्ता)
१४२	२४	मणुभवित्ता	अणुभवित्ता (न्ता)
१४२	२७	पायचारिणो	पाद चारिणो
१४३	२	अणु पुव्व सुसहयगुलीया	अणु सुसं (जायपवरं पा) गु.
१४३	४	समुग्ग निसग्ग	स० निमग्ग
१४३	२०	रुइल निद्धनखा	रुइल निद्ध णक्खा
१४३	२३-२४	सद्दूल सीह	सद्दूल सिह
१४४	४	तवणिज्जरत्त तलातालु जीहा	तवणिज्जस्त तलतालु जीहा
१४४	१४	पयाहिणावतमुद्धसिरया सुजात सुविभत्त सग यगा	पयाहिणावत्त मुद्धया सु० सु० सगयंग मंगा
१४४	१६-१७	सीहस्सरा (ओघ)सरामेघसरा	सीहस्सरावग्घ (ओघ) सरा मेघसरा
१४४	२३	तिपलिओवमट्ठितिका	तिपलिओवमट्ठितीका
१४४	२४-२५	अवितत्ता कामाण	अवितित्ता कामाणं
१४५	१५	सम सहिय लट्ठ चूचुय आमेलग	सम सहिय लट्ठ चुचुय आमेलग

पृ०	पं०	मूल पाठ हस्त०	पाठ भेद आ० मंदिर
१ ६	४	मच्छ कुम्म रहवर मकर	म. कु. रथवर मकर
१५९	२८	हम्मंति, विसुणिया	हम्मंति विसुणिया
१६०	२	मारेंति एक्केक्क	मारेति एक्कमेक्कं
१६०	५	पावेंति अयसकित्ति	पावेति अ (जस पा.) कित्ति
१६०	७	परस्स दाराओ	परस्स दारओ
१६५	५	णाणामणिरयणकणग	णाणामणि कणग रयण
१६७	२७	लोहप्पा, महद्धी	लोहप्पा महइ (द्धी पा)
१६९	१२	असुर भुयग गरुल विज्जु-जलण	असुर भु० ग० सुवण्ण विज्जु-जलण
१७५	१७	परिग्गहस्स य अट्ठाए	परिग्गहस्सेव य अट्ठाए
१७५	१८	सउणरुयावसाणाओ, चउसट्ठि	स० रु० गणियप्प हाणाओ चउ०
१७५	२०	अत्थ सत्थ इसत्थच्छ रुप्पगयं	अत्थइसत्थच्छ रुप्पवायं
१७५	२७	कामगुण अण्हगाय	कामगुण अण्हवगा
१७८	२५	न य अवेतिऽत्ता	न अवेतति त्ता
१७८	२५	अत्थिहु मोक्खोत्ति	अत्थिहु मोक्खेत्ति
२८०	११	पंचर्हि असंवरेहि	पंचहि असंवरहि
१८०	११	रयमादिणत्तु अणु समयं	रयमादिणित्तु मणुसमयं
१८०	१२	चउब्विहगति पेरंतं	चउविहगइ पज्जतं
१८०	१५	काहेति अणंत ए	काहिंति अणंतए
१८०	१६	सोऊणयजे पमायंति	सुणिऊण यजे पमायति
१८०	१९	मिच्छादिट्ठीणरा (यजेणरा' अवुद्धीया	मिच्छादिट्ठीय जे नरा अहमा
१८१	१	पंचेवय उज्झिऊणं	पंचेवउज्झिऊणं
१८४	२५	महव्वयाइ लोकहिय-सव्वयाइं	महव्वयाइं (लोकहिसवयाइ)
१८५	३	कापुरिस दुरुत्तराइं सप्पु-रिस निसेवियाइं	कापुरिस दुरुत्तराइं (सुपरि-सतीरियाइं पा०) वियाइ
१८५	४	मग्ग सग्ग पणाय गाइंम, संवरदाराइं	मग्ग सग्गप्पणायकाइ (त्राण गाइं पा०) संवरदाराइं
१८६	८	अस्सासो	असासो
१८६	१२	अडवी मज्झेविसत्थगमण	अ० म० सत्थगमणं

पृ०	पं०	मूल पाठ हस्त०	पाठ भेद आ० मंदिर
१८६	१६	सुद ठु दिट्ठा	सुट ठु दिट्ठा (उवलद्धा)
१९०	३ ४	अन्तजीविहिं विविन्त जीविहि	अतजीवीहिं विविक्त जीवीहि
१६०	५	पडिमं ठाईहिं	पडिम ठाईहि
१६०	६	निच्छयववसाय पज्जत्तकयमतीया	नि० व० (वर्णीय पा०) पज्जतकय मतीया
१६५	७	न निसज्ज	ननिसिज्ज
१६१	८	निमित्त कह कप्पउत्तं	निमित्त कहप्पउत्तं
१६५	२१	विउसमणं	विउव्वसमण
२०१	१६	पावएण पावग	अपावएणं पावकं
२०१	२१	पावियाते पावगं	अपावियाते पावकं
२ २	१०	अणाइले अलुद्धे	अणाइले अकुद्धे
२ ७	६	आदान निक्खेवण समिई	आदाण निक्खेवणा समिई
२०७	१६	एव नाय मुणिणा	एयं नाय मुणिणा
२१२	१४	महासमुद्दमज्झेविमूढा-णियावि	महासमुद्दमज्झेविचिट्ठ तिनन्नि-मज्जंतिमूढाणियावि
२१३	२-३	परिग्गहिया असि पंजरगया	परिग्गहीया असि पंजरगया
२१३	४	निइति अणहा	नियति अणहा
२१५	१०	समयप्पदिन्न देविन्द नरिन्द	समयप्पदिन्न (महरिसि समयपइन्न चिन्तं पा.) देविन्द-नरिन्द
२ ५	११-१२	चारणगण समणसिद्ध विज्जं	चारणगमण समणसिद्ध विज्जं
२ ५	२०	अणज्ज	अणत्थ वज्जं
२२५	६	अन्नःस वा एवमादियस्स	अन्नस्स वा एगस्सवा (एवमादियस्सवा पा.)
२२५	२४	सुदेसितं	सुदेसियं
२-०	१६	रन्नमतरगतं वा किंची	रन्न (जल थलगयं खेत्त पा.) मतरगतं वा किंचि
२३१	१	नासेइ ज च सुकयं	ना. (सो) जं च सु.
२३१	२	मच्छरित्त च	मच्छरित च
२३८	१	विश्रोव समण	विश्रो समण
२३८	१-२	ततियस्स होति	ततियस्स वयस्स होति
२३८	८	जत्थ वद्धती	जत्थवट्टती
२३८	१४	सेज्जोवहिस्स अट्ठा	से० व० अट्ठे

२३८	१५	गेरिहुउं जे, हणि	गिएहुउं जेहणि
२४२	१६	सजएण समियं	संजमेणं स०
२४२	२१	साहारण पिंडपातलाभे	सा० पिंडवाय लाभे
२४२	२२	अदिन्नादाणवयनियमवेर-मण (विरमणवय नियमणं)	अदिन्नादाण (विरमणवय नियमणं वय नियमवेरमण पा.) एवं
२४३	१	गुरुसु साहूसु	गुरुसु साहूसु विणओ
२४६	५	जवू ! एत्तो	जम्बु एत्तो
२४७	८	पसत्थ गभीर थिमित मज्झ	पसत्थ गंभीर अतुच्छथि-मित मज्झं
२४७	२१	तारगाणं वा	तारगाणं व
२४७	२४	हिमवंतो चेव ओसहीण	हिमवंतोचेव नंगाणं ओस-हीण
२४८	२	पव्वकाणं चेव	पवकाणं चेव
२४८	५	किमिराउचेव	किमिराओचेव
२४८	१२	एक्कंमि वंभचेरे	एकमि वभचरे गुणे
२४८	१२–१३	आराहिय वयमिणं सव्वं	आ० व० सच्चं
२५४	१३	वे लंवक जाणिय	वे० जाणिय
२५४	१७	मूणवयकेसलोएय	मूणवयकेसलोय
२५७	२५	चउत्थयस्स होति	चउत्थवयस्स होति
२५८	६–७	जितेन्दिए वभचेर गुत्ते	जितिंदिए वंभचेर गुत्ते
२५८	१२	कहाओ सिंगार कलुणाओ	(अ) सिंगार कहाओ कलु-णाओ
२५८	१६	हसित भणितं चेट्ठिय विप्पेक्खितइ	हसित भणित चे० वि० गइ
२६६	६	छज्जीव निकाया, छचलेसाओ	छजीव नि० छच्च० ले०
२६६	११	भिक्खु पडिमा	भिक्खूणं पोडमा
२६६	२२	गय गवेलगवा (च)न जाणजुग्ग	गय गवेलग कंवल जाणजुग्ग
२६६	२५	मणिसिंग सेल	मणिसिग सेल (लेस पा०)
२७३	६	आदेण कुम्मासगंजं	ओ० कु० गंज
२७३	६–७	वेढिम वर सरक चुन्न	वेढ़िम वसरक चुन्न
२७३	१३	मट्टि उवलित्तं	मट्टि ओवलित्तं
		खते दते य हि निरते	खं० दं० य हिय (धितिपा) निरते

२७६	२	छिन्न गंथे निरुवलेवे	छि॰ गंथे (सोए पा॰) नि॰
२७६	६	इरयो विव समिय भावे	इरएविव समिय तावे
२७६	१७–१८	गामे गामे एगरायं नगरे २ य पंचरायं	गामे एक रायं नगरेय पंच-रायं
२७६	१८–१६	निब्भओ, विऊ सच्चित्ता	नि॰ वि॰ (सुद्धो॰ पा॰) सच्चित्ता
२७६	२०	जीविय मरणास विप्पमुक्के	जी॰ मरणास भय वि॰
२७६	२०	निस्संधि, निव्वणं	निस्संधिं नि॰
२९३	१२	गथिम वेढिम	गठिम वेढ़िम
२६३	१६	पउम-परिमंडियाभिरामे	पउमसड परिमंडियाभिरामे

अभिधान राजेन्द्र में मुद्रित प्रश्न० के पाठान्तर

छीरलसरंब	छीरल सरग (अभि. को. ५ भा. पृ. ८३४)
मुगुंस	सुगुंसा „ „
घीरोलिय	घरोलिय „ „
कादबक बक बलाका	कादंब कंक बबलाका „ „
चिडिग	चडग
विहंगभियणासि	विहंग भेयणासिय
कुलिय सदण	कुसिय संदण
विच्छुयडंकनिवातो	विच्छुय ढंक निवातो „ (३८)
पायालसहस्स सू० ११	पातालकलससहस्स (अभि को १ भा. पृ. ५२८)
माइयतवर	पाइय (पासिय) वर— „ २६

दूसरा आस्रव का टिप्पण—

"मणं च मणजीविया—

(१ कुछ बौद्धाचार्य पञ्चस्कन्धों के अतिरिक्त मनको ही जीव तरीके मानते है। ये लोग रूपादिज्ञान लक्षणो का उपादान मनको मानकर परलोक का स्वीकार करते है। सर्वथा साथ नही जाने वाले मनको जीव मान लेने से परलोक की सिद्धि नही होती, क्योकि वह मन क्षणान्तर के समान क्षणिक है। मनोमात्र को जीव मानना परलोक की असिद्धि से मृषा है।

हां परलोक मे साथ जाने वाले मनमें यदि जीवत्व मान लिया जाय तो किसी तरह यह सत्य हो सकता है।

(२) वायु जीवी—

कुछ आचार्य उच्छ्वास आदि लक्षण वायु को ही जीव मानते है, परन्तु वायु के जड़ होने से चैतन्यरूप जीवका इसमे योग नही हो सकता। अतः यह कथन भी मृषा है।

(३) नास्तिक का प्रकार—

शरीर सादि और सान्त है, केवल यह भव ही एक भव है, अन्य नही। इसमें सर्वथा जन्मान्तर का अभाव मानने से मृषावादिता है।

(४) स्वभाव, काल, या पुरुषार्थ आदि को एकान्त कार्य कर मानना भी इसी प्रकार मृषा समझना चाहिए।

पूज्य श्री हस्तिमल्लमुनि निर्मितच्छायाऽनुवादोपेतं पंचमगणधर श्री सुधर्माचार्य विरचितं सिरि पण्हावागरणसुत्तं समाप्तिमगात्।

—०—